

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY****KOTA (Raj.)**

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DATE	SIGNATURE

सभाष्य अथर्ववेद की विषयसूची ॐ

विषय

पृष्ठ

❀ बीसवाँ-काण्ड ❀

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसकी ऋचाओंका अग्निष्टोम आदि यज्ञों में प्रयोग होता है । मरुत् शब्दकी व्याख्या । अग्निस्तुति । १

द्वितीय सूक्त । इसकी ऋचाओंसे पोता आग्नीध्र और दाक्षणाच्यंसी यजन करते हैं । ५

तृतीय चतुर्थ पञ्चम षष्ठ और सप्तम सूक्त । ज्योतिष्टोम आदिमें इनका विनियोग होता है । इन्द्र अग्नि और अदित्यके घोड़ोंके नाम । ८

अष्टम सूक्त । इनका दाक्षणाच्यंसी आदि उच्चारण करते हैं । २६

नवम दशम एकादश औरद्वादश सूक्त । इनकी ऋचायें शस्त्रयाज्या और परिधानीया आदि होती हैं और इनकी ऋचाओंका दाक्षणाच्यंसीके शस्त्रमें विनियोग होता है । इत्यादि । ऋजीप शब्द ३४

त्रयोदश सूक्त । इसकी ऋचाओंका ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंमें विनियोग होता है । ६४

द्वितीय अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त । इनका उपस्थ-
तुके दाक्षणाच्यंसीशस्त्रमें विनियोग होता है । ६६

तृतीय अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त । इनका अग्नि-

विषय

पृष्ठ

रात्र क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्रमें विनियोग होता है। आदि १०६

पञ्चम पष्ठ सप्तम और अष्टम सूक्त। इनका अतिरात्र क्रतुके मध्यमपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग होता है १३८

नवम दशम एकादश और द्वादश सूक्त। इनका अतिरात्र क्रतुके तृतीय रात्रिपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग होता है। १६४

त्रयोदश सूक्त। इसका अनिरात्र ब्राह्मणाच्छंसितृतीयपर्यायशस्त्रमें विनियोग होता है। १८२

चतुर्थ अनुवाक-

प्रथम द्वितीय सूक्त। इनका नाम साम और अहीन सूक्त है। इन्द्र, युनि और क्षुमुरि असुर तथा गृत्समदश्रुपि का आख्यान; इन्द्रका अस्तित्व। २००

पञ्चम अनुवाक-

प्रथम सूक्त। अग्निसव षट्स्वरसाम आदिमें इसका प्रयोग होता है। २६७

द्वितीय सूक्त। गवामपन आदिमें इसका प्रयोग होता है। २७१

तृतीय सूक्त। पृष्ठयके तृतीय दिन आदिमें इसका पाठ होता है। २७४

चतुर्थ सूक्त। पृष्ठयषट्स्वरके चतुर्थ दिनमें इसका विनियोग होता है। २७५

पञ्चम सूक्त। अश्वमेध अश्वके द्वितीय दिन आदिमें इसका विनियोग होता है। २७७

षष्ठ सप्तम सूक्त। अग्नोर्वापक्रतु आदिमें इसका विनियोग होता है। २७८

विषय

पृष्ठ

अष्टम सूक्त । इसका तीव्र सुदुपशब्द उपहव्य और ऋग्य-
ष्टिद्वयहमें काम पड़ता है । २८१

नवम सूक्त । स्वरसोम आदिमें इसका काम पड़ता है । २८२

दशम सूक्त । इसका अतिरात्र अतिरिक्तोक्थ, छन्दोम,
वैश्वदेव ऋग्य और साकमेध ऋग्यहमें विनियोग होता है । २८४

एकादश सूक्त । विपुवत्सौर्यपृष्ठमें यह चतुर्थ स्तोत्रिय
होता है । २८२

द्वादश सूक्त । यह छठा स्तोत्रिय होता है । २८५

त्रयोदशसूक्त । वाजपेय और गवामयन आदिमें इसका
प्रयोग होता है । २८८

चतुर्दश सूक्त । चतुर्थमाध्यन्दिनसवन, अभिसवके युग
दिवस, विपुवत् और ऋग्यहमें इसका प्रयोग होता है । २८६

पञ्चदशसूक्त । पृष्ठय आदिमें इसका विनियोग होता है । ३०२

षोडश सूक्त । त्रिककुडशाहाहीनमें इसका विनियोग
होता है । ३०५

सप्तदश सूक्त । पृष्ठयपदह आदिमें इसका विनियोग है । ३०७

अष्टादश सूक्त । पृष्ठय पदह आदिमें इसका विनियोग
होता है । ३१०

उन्नीसवाँ सूक्त । पृष्ठयपञ्चाहके पञ्चम दिनमें इससे
काम लिया जाता है । ३१२

बीसवाँ सूक्त । श्येनसंदंशाजिर आदिमें इसका विनि-
योग होता है । ३१५

इक्कीसवाँ सूक्त । विपुवत् सौर्यपृष्ठ आदिमें इसका
विनियोग होता है । ३२२

बाईसवाँ सूक्त । दशरात्रमें इसका काम होता है । ३२६

विषय

पृष्ठ

तेईसवाँ सूक्त । वैकुण्ठ, पृष्ठपद आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३२८

चौबीसवाँ सूक्त । वैश्वदेव, अथर्व आदिमें इससे काम लिया जाता है । ३३२

पच्चीसवाँ सूक्त । इसका विनियोग अन्य सूक्तोंमें है । ३३५

छत्तीसवाँ सूक्त । पृष्ठपद, वाजपेय, अभिजित् निरवजित् आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३३६

सत्ताईसवाँ सूक्त । अभिसरेके पञ्चम दिनमें इसका काम होता है । ३४५

अष्टाईसवाँ सूक्त । यह दशाहके नवम दिनमें उच्यस्ती-त्रिय होता है । ३४८

उन्तीसवाँ सूक्त । इन्द्रस्तुति । ३४९

छठा अनुवाक-

प्रथम सूक्त । पृष्ठपदमें इससे काम लिया जाता है । ३५०

द्वितीय सूक्त । छन्दोमके प्रथम दिनमें यह पढ़ा जाता है । ३५५

तृतीय सूक्त । छन्दोमके द्वितीय दिनमें यह पढ़ा जाता है । ३६०

चतुर्थ सूक्त । छन्दोमके तृतीय दिनमें इसका पाठ होता है । ३६४

पञ्चम सूक्त । स्वरसाम आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३७१

सप्तम अनुवाक-

प्रथम सूक्त । पृष्ठपदमें इसका विनियोग होता है । ३७७

द्वितीय सूक्त । पृष्ठपदके चतुर्थ दिनमें इससे काम लिया जाता है । ३७९

तृतीय सूक्त । पृष्ठपदके पंचम दिन यह काममें आता है । ३८३

चतुर्थ सूक्त । पृष्ठपदके छठे दिन यह काममें आता है । ३८५

पञ्चम सूक्त । छन्दोम आदिमें इसका विनियोग है । ३८८

विषय पृष्ठ

सप्तम सूक्त । वाजपेय आदिमें इसका विनियोग है । ३६८
अष्टम सूक्त । विपुवत् सौर्यपृष्ठ आदिमें इससे काम लिया
जाता है । ४०१

नवम सूक्त । वाजपेय आदिमें इसका प्रयोग है । ४०३

दशम सूक्त । विश्वजित् वैराजपृष्ठ आदिमें इसका
विनियोग है । ४०५

एकादश सूक्त । असौर्याम क्रतु आदिमें इसका विनि-
योग है । ४०७

द्वादश सूक्त । विश्वजित् आदिमें इससे काम लिया
जाता है । ४०८

त्रयोदश चतुर्दश सूक्त । चतुर्विंश साम्बत्सरिक, छन्दोम
त्रिष्वह आदिमें इसका विनियोग है । ४१०

पञ्चदश षोडश सप्तदश अष्टादश एकोनविंश सूक्त ।
छन्दोममें इससे काम लिया जाता है । ४१५

अष्टम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । तृतीय छन्दोम दिन आदिमें इसका विनि-
योग है । ४३३

द्वितीय सूक्त । अतिरात्र पृष्ठचपडह और अभिजित्में
इसका प्रयोग होता है । ४३८

तृतीय सूक्त । श्येनसंशान्तिरवज्ज आदिमें इससे काम
लिया जाता है । ४४८

चतुर्थ सूक्त । तृतीय छन्दोममें इससे काम होता है । ४५२

पञ्चम सूक्त । महाव्रतमें यह पढ़ा जाता है । ४५८

छठा सूक्त । महाव्रत माव्यन्दिन सवनमें यह पढ़ा जाता है । ४६१

नवम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । सर्वजित् ऋषभ, बृहस्पतिसव, त्रिकवुद्ध
दशाह आदिमें इसका प्रयोग है । ४७२

द्वितीय सूक्त । तनूपुत्र आदिमें इसका विनियोग है । ४७५

तृतीय सूक्त । अपूर्व एकाहमें यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । ४७६

चतुर्थ सूक्त । व्रात्यस्तोम पवित्र आदि राजसूय आदि
में इसका काम पढ़ता है । ४७७

पञ्चम छठा सूक्त । अग्निष्टुत् एकाह आदिमें इससे
काम लिया जाता है । ४८०

सप्तम सूक्त । २० । १०१ के साथ इसका विनियोग
कह दिया है । ४८३

अष्टम सूक्त । २० । ४५ के साथ इसका विनियोग है । ४८४

नवम सूक्त । माचीन स्तोम एकाह और राज एकाह
में इसका विनियोग है । ४८६

दशम सूक्त । इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें यह पढ़ा जाता है । ४८८

एकादश सूक्त । विद्यन एकाहमें यह पढ़ा जाता है । ४९०

द्वादश सूक्त । वज्रपुनः स्तोम, पवित्र आदि राजसूय
वैदस्वरसाम, अभ्यासंग्य, पञ्चशारदीय, आदिमें इसका
विनियोग है । ४९८

त्रयोदश सूक्त । अश्वमेधयह आदिमें इसका विनियोग है । ५०१

चतुर्दश सूक्त । विराट् आदि चार एकाहोंमें इसका
विनियोग है । ५०३

पञ्चदश सूक्त । पवित्र राजसूय आदिमें इसका विनि-
योग है । ५०५

विषय

. पृष्ठ

सोलहवाँ सत्रहवाँ मूक्त । विनुनि अभिभूत आदिमें इसका विनियोग है । ५०७

अठारहवाँ मूक्त । पवित्र राजमूय आदिमें इसका विनियोग है । ५०८

उन्नीसवाँ मूक्त । साद्यःक्र नामक एकाहमें इसका विनियोग है । ५१०

बीसवाँ मूक्त । अतिरात्रके सर्वस्तोम आदिमें इसका विनियोग है । ५११

इक्कीसवाँ मूक्त । त्रिटु आदिमें इसका विनियोग है । ५१३

चार्दसवाँ मूक्त । चातुर्मास्य वैश्वदेव, और त्रिहृद् दशाहाहीनमें इसका विनियोग है । ५१४

तेईसवाँ मूक्त । वैश्वदेव आदि त्र्यहमें इसका विनियोग है ५१७

चौबीसवाँ मूक्त । दशाह गवामयनिक आदिमें इसका विनियोग है । ५१८

पच्चीसवाँ द्वाविंशतिवाँ मूक्त । तनूष्ट पडहमें इसका विनियोग है ५१९

सत्तार्दसवाँ मूक्त । विपुवन् सौर्यशृष्टमें इससे काम लिया जाता है । ५२२

अट्ठाईसवाँ मूक्त । तनूष्ट पडहमें इसका विनियोग है । ५२३

उन्नीसवाँ मूक्त । पृष्ठ सौत्रामणि आदिमें इससे काम लिया जाना है । ५२६

तीसवाँ मूक्त । पृष्ठयमें इसका गान होता है ५३१

३१-६० मूक्त । कुन्ताय मूक्त ५४१

विषय

पृष्ठ

इकतालीसवाँ सूक्त । सोमयाग और पृष्ठयपडह आदि
में इसका प्रयोग होता है । ५६४

वयालीसवाँ सूक्त । त्रिककुडशाह आदिमें इसका विनि-
योग होता है । ५७१

७. तैंतालीसवाँ सूक्त । अतिरात्रके अतिरिक्तोक्त्यमें इसका
पाठ होता है ५७३

चाँवालीसवाँ, पैंतालीसवाँ धियालीसवाँ और सैंता-
लीसवाँ सूक्त । अश्विनीकुमारोंकी स्तुति आदि । ५७५

अथर्ववेदसंहिताकी विषयसूची समाप्त.



मिलने का पता—

सनातनधर्म-यन्त्रालय,

मुरादाबाद.

ॐ श्रीहरिः ॐ

अथर्ववेदसंहिता

विंश-काण्डम्

ॐ

सायणभाष्ये तथा अनुवादसंहिते

यस्य निश्वासितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म प्रायशः प्राक् प्रपञ्चितम् ।
विंशेथ ब्रह्मवर्ग्याणां शस्त्रयाज्यादि वर्ण्यते ॥

श्रीः । वेद जिनके निश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनु-
सार सम्पूर्ण जगत्की रचना की है, उन विद्यातीर्थ महेश्वरको मैं
प्रणाम करता हूँ । शान्तिक और पौष्टिक कर्मका वर्णन प्रायः
पहिले कह दिया है । अब बीसवें काण्डमें ब्रह्मवर्ग्योंके शस्त्रयाज्या
आदिका वर्णन किया जाता है ॥

तत्र विंशे काण्डे नवानुवाकाः । तत्र प्रथमेनुवाके त्रयोदश
सूक्तानि । तत्र प्रथमं सूक्तं वृचात्मकम् । तास्तिस्रश्चः अग्निष्टो-
मादियज्ञेषु ब्राह्मणाच्छंसिपोत्राग्नीध्राणां क्रमेण प्रातःसवनिक्यः
प्रस्थिनयाज्याः । सूत्रितं हि वैताने । “प्रस्थितैश्चरिष्यन्नध्वर्युः
संमेष्यति । होतव्यं यजमानस्तब्राह्मणाच्छंसिन् पौनर्नेष्टरशीद् इति ।
इन्द्र त्वा वृषभं वयम् इति ब्राह्मणाच्छंसि यजनि । उत्तराम्यां
पोत्राग्नीध्री” इति [वै० ३. ८] ॥

इस बीसवें काण्डमें नौ अनुवाक हैं । और पहिले अनुवाक में तेरह सूक्त हैं । इनमें पहिला सूक्त तीन ऋचाओंका है । वे तीनों ऋचाएँ अग्निष्टोम आदि यज्ञोंमें ब्राह्मणाच्छंसी पोता और आग्नीध्र आदिके क्रमसे मानःसवनकी प्रस्थिनयाज्या हैं । इसी वानको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“प्रस्थितैश्वरिष्यन्नध्वयुः सम्प्रेष्यति । होतर्यज मशास्तर्वाभ्रणाच्छंसिन् पोतर्नेष्टरपीद् इति । इन्द्र त्वा वृषभं वयम् इति ब्राह्मणाच्छंसी यजति । उत्तराभ्यां पोत्राध्रीर्ना ।” (वैतानसूत्र ३ । ८)

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

इन्द्र । त्वा । वृषभम् । वयम् । सुते । सोमे । हवामहे ।

सः । पाहि । मध्वः । अन्धसः ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्यगुणविशिष्ट । ॐ इदि परमैश्वर्ये । अत्रेन्द्र० [३०२.२८] इत्यादिना रन् प्रत्ययः । निच्वाद् आधुदात्तः ॐ । अथ वा इन्द्रो सोमे निमित्तभूते सति द्रवति त्वरया गच्छतीति इन्द्रः । यद्वा इन्द्रवे सोमाय तत्पानार्थं द्रवतीति वा इन्द्रः । सत्सु अन्येषु दक्षिणःप्रभृतिषु द्रव्येषु सोमस्यातिशयेन मियत्वाद् उक्तव्युत्पत्तिर्निन्द्रशब्दस्यात्र द्रष्टव्या । नादृश इन्द्र त्वा त्वाम् । ॐ “आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्” इति पूर्वस्य अविद्यमानवत्त्वेन पदान् परत्वाभावेऽपि अनुदात्तस्वादेशश्चादृशः ॐ । कीदृशं त्वाम् । वृषभम् कामानां वर्णितारं वयं यजमानाः सोमे सुते अभिषुते सति तत्पानार्थं हवामहे आहवामः । ॐ हेव् स्पर्धांशशब्दे च । शपि “वह्लं इन्द्रमि” इति संवसारणम् ॐ । स नादृशः अस्मापि-

राहूतस्त्वं मध्वः मधुररसस्य अन्यमः अन्नस्य सोमलक्षणस्य । एकदेशम् इति शेषः । अथ वा मध्वः मधु अन्यसः अन्यः अन्नं सोमलक्षणम् । ॐ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वात् “चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि” इति पृष्ठी ॐ । पाहि पिव ॥

हे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न इन्द्रदेव ! (वा इन्दु (सोम) के लिये त्वरासे दौड़ने वाले इन्द्र !) आप कामनाओंकी वर्षा करने वालेको हम सोमके अभिपुत्र होने पर बुलाते हैं । हमारे बुलाये हुए आप मधुर सोमरसरूपी अन्नका पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।

स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥

मरुतः । यस्य । हि । क्षये । पाथ । दिवः । विमहसः ।

सः । सुगोपातमः । जनः ॥ २ ॥

हे विमहसः विशिष्टेन अतिशयितेन महसा तेजसा युक्ताः । देवेषु मध्ये एषाम् अतिशयितवीर्यत्वात् । हे मरुतः । म्रियन्ते प्राणिन एभिरिति मरुतः । प्राणात्मकस्य वायोर्निर्गमे सति प्राणिनां मृतिः प्रसिद्धैव । अथ वा म्रियन्त इति मरुतः । इन्द्रेण अदित्या उदरं प्रविश्य एकोनपञ्चाशद्धा खण्डितत्वात् तादृशा एतत्संज्ञया प्रसिद्धा देवा यूयं यस्य हि यस्य खलु यजमानस्य क्षये देवानां निवासस्थाने यागगृहे । ॐ “क्षयो निवासे” इति आशुदात्तत्वम् ॐ । दिवः । द्योतमानाद् द्युलोकाद् अन्तरिक्षाद् आगत्य । ॐ “ऊडिदम्” इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् ॐ । पाथ पिवथ । सोमम् इति शेषः । स खलु जनः यजमानः सुगोपातमः अतिशयेन गोपायितृमः लोके ये गोपायितारः स्वाश्रि

तरत्तका सन्ति तेषां मध्ये स एव श्रेष्ठतम इत्यर्थः । ॐ गोपायतेः
विरपि अतोलोपयलोपी ॐ । यस्माद् एवं तस्माद् ममापि यज्ञ-
गृहे सोमं पिबतेत्यभिप्रायः ॥

हे देवताओंमें विशिष्ट तेजस्वी मरुतो ! (मरुत् शब्दकी व्युत्पत्ति
यह है, कि-“अग्नन्ते प्राणिनः एभिः-इनसे प्राणी मर जाते हैं”
इस लिये ये मरुत् कहलाते हैं । प्राणरूपी वायुके निकलने पर
मरण होना प्रसिद्ध ही है । अथवा यह व्युत्पत्ति भी होती है,
कि “अग्नन्त इति मरुतः ।-जो मरे हैं वे मरुत् हैं” इन्द्रने इनकी
माताके उदरमें प्रवेश करके इनके उदरवास टुटड़े कर डाले थे,
इस कारण ये मरुत् कहलाते हैं, ऐसे हे मरुतो !) तुम जिस
यजमानके यागगृहमें द्युलोकसे आकर सोमका पान करते हो
वह पुरुष, लोकमें जो पुरुष अपने आश्रितोंकी रक्षा करते हैं उन
में परमश्रेष्ठ (गोपायितृत्तम) होजाता है । यह बात है इस लिये
आप मेरे यज्ञगृहमें भी सोमका पान करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमं पृष्ठाय वेधसे ।

स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ३ ॥

उक्षऽअन्नाय । वशाऽअन्नाय । सोमऽपृष्ठाय । वेधसे ।

स्तोमैः विधेम । अग्नये ॥ ३ ॥

उक्षः सेचनसंमर्थो गौः अन्नं यस्य स तथोक्तः । तादृशाय
तथा वशान्नाय । वशा वन्ध्या अजादिका सा अन्ने हविर्पस्य स
वशान्नः । तस्मै । उक्षवशयोरग्नेरन्नत्वम् “अगोरुधाय” इत्येतं
मन्त्रं व्याचक्षाणेन आश्वलायनेन उक्तम् । “एत एव म उक्षाणश्च
अपभाश्च वशाश्च भवन्ति” इति [आश्व० गृ० १.१] । तथा सोम-

पृष्ठाय सोमः सोमरसः पृष्ठे उपरिदेशे मुखे यस्य स तादृशाय वेधसे
विधात्रे सर्वस्य स्रष्ट्रे एवम् उक्तगुणविशिष्टाय अग्नये अद्भनादि-
गुणविशिष्टाय देवाय अग्नये अग्न्यर्थम् । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्त-
न्यम्” इति चतुर्थी ❀ । स्तोमैः स्तोत्रैः स्तुतिसाधनभूतैः शस्त्रा-
दिभिः विधेम परिचरेम । ❀ विध विधाने । तौदादिकः ❀ ॥

इति प्रथमं सूक्तम् ॥

वृषभ और बंध्या बकरी आदि जिनका अन्न है, और जिन
के ऊपर सोम रहता है ऐसे सबके स्रष्टा अद्भनादि गुणोंसे संपन्न
अग्निदेवके लिये हम स्तुतिके भेद शस्त्र आदिसे स्तुति करते हैं ३

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६१७)

“मरुतः पोत्रात्” इत्याद्यारचत्वार ऋतुमैषाः । तत्र आद्योत्त-
माभ्यां पोता यजति । द्वितीयतृतीयाभ्याम् आग्नीध्रब्राह्मणाच्छं-
सिनौ । सूत्रितं हि । “सदस्युपविष्टा यथामैषम् ऋतून् यजन्ति ।
मरुतः पोत्राद् इति प्रथमोत्तमाभ्यां पोता । द्वितीययाग्नीध्रः । तृती-
यया ब्राह्मणाच्छंसी” इति [वै० ३. ६] ॥

“मरुतः पोत्राद्” आदि चार ऋतुमैष हैं । इनमेंसे पहिली
और उत्तमा (अन्तिम) ऋचाओंसे पोता यजन करता है ।
और दूसरी तथा तीसरी ऋचाओंसे आग्नीध्र और ब्राह्मणा-
च्छंसी यजन किया करते हैं । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी
है, कि—“सदस्युपविष्टा यथामैषं ऋतून् यजन्ति । मरुतः पोत्राद्
इति प्रथमोत्तमाभ्यां पोता । द्वितीययाग्नीध्रः । तृतीयया ब्राह्म-
णाच्छंसी” । (वैतानसूत्र ३ । ६) ॥

तत्र प्रथमः प्रैषः ॥

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु १

मरुतः । पोत्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । ऋतुना । सोमम् ।
पिवतु ॥ १ ॥

मरुतः एतन्नाम्ना प्रसिद्धा देवाः पोत्रात् पोतुः कर्म पोत्रम्
तस्मात् । तत्कृताद् यागाद् इत्यर्थः । कीदृशात् । सुऽस्तुभः ।
ॐ स्तोभतिः स्तुतिकर्मा ॐ । शोभनस्तोभोपेतात् तथा स्वर्कात्
सुऽस्तु अर्च्यते देवः अनेनेनि स्वर्कम् तस्मात् स्वर्चनात् । यद्वा
सुऽस्तुभः । अत्र स्तोभशब्देन स्तोभोपेतं स्तोत्रम् उच्यते । शोभन-
स्तोत्रोपेतात् । स्वर्कात् । अर्च्यन्ते एभिरिति अर्का मन्त्राः । शोभ-
नमन्त्रोपेतात् । शोभनशस्त्रोपेताद् इत्यर्थः । एवंभूतात् पोतुर्यागाद्
ऋतुना सह सोमम् अभिपवादिसंस्कारोपेतं सोमरसं पिवतु
पियन्तु । वचनव्यत्ययः ॥

मरुत् नामक प्रसिद्ध देवता पोताके किये हुए सुन्दर स्तुति
वाले और शोभन मन्त्रों वाले यागरूपी कर्म पोत्रसे ऋतुके साथ
अभिपव आदि संस्कारोंसे सम्पन्न सोमको पियें ॥ १ ॥

द्वितीयः ॥

अग्निराग्नीध्रात् सुऽस्तुभः स्वर्काद्ऋतुना सोमं पिवतु २
अग्निः । आग्नीध्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । ऋतुना । सोमम् ।
पिवतु ॥ २ ॥

अग्निः अह्नादिगुणविशिष्टो देवः आग्नीध्रात् । अग्निम् इन्द्र
इति अग्नीत् । स एव आग्नीध्रः एतन्नामा ऋत्विक् । तत्कर्मापि
आग्नीध्रम् । यद्वा अग्नीध्रः कर्म आग्नीध्रम् । तस्माद् आग्नी-
ध्रात् । शिष्टं पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥

अंगनादि गुणविशिष्ट अग्निदेव, अग्निका समिधन करने वाले
आग्नीध्र नामक ऋत्विजके कर्म आग्नीध्रसे प्रसन्न होकर ऋतुके

साय सोमरसका पान करें । इस आग्नीध्रमें सुन्दर स्तुतियों हैं और सुन्दर मन्त्र हैं ॥ २ ॥

तृतीयः ॥

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु

इन्द्रः । ब्रह्मा । ब्राह्मणात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । अृतुना ।

सोमम् । पिबतु ॥ ३ ॥

इन्द्रः परमैश्वर्यादिगुणयुक्तो देवः स एव ब्रह्मा । बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च । इन्द्रस्य ब्रह्मात्मना स्तुतिः “इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिः” [ऋ० ८. १६. ७] इत्यादिमन्त्रवर्णाद् अवगन्तव्या । ब्राह्मणात् । अत्र ब्राह्मणशब्देन ब्राह्मणाच्छंस्याख्य ऋत्विग् अभिधीयते । तत्कृतं कर्मापि ब्राह्मणम् इत्युच्यते । यद्वा अत्र ब्रह्मशब्देन ब्राह्मणाच्छंसी निर्दिश्यते । तत्कर्म शस्त्रयागलक्षणं ब्राह्मणम् तस्मात् । शिष्टं पूर्ववत् ॥

परम ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न इन्द्र ही ब्रह्मा हैं, क्योंकि वे बृहत् हैं । [इन्द्रकी ब्रह्मारूपमें स्तुति ‘इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिः’ ऋग्वेदसंहिता ८ । १६ । ७ आदिक मन्त्रोंसे समझनी चाहिये ।] ऐसे ब्रह्मा इन्द्र । ब्राह्मणाच्छंसी नामक ऋत्विगके किये हुए सुन्दर स्तुति और सुन्दर मन्त्रोंसे सम्पन्न यागरूपी कर्मसे, अभिषव आदि संस्काररूप ऋतुसे (शुद्ध हुए), सोमरसका पान करें ३ अथ चतुर्थः ॥

देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु

देवः । द्रविणः । उदाः । पोत्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । अृतुना ।

सोमम् । पिबतु ॥ ४ ॥

द्रविणोदाः । द्रविणं हिरण्यादिलक्षणं धनं बलं वा । तद्ददा-
तीति द्रविणोदाः एतन्नामको देवः । अस्य धनदातृत्वम् “द्रवि-
णोदा ददातु नो वसूनि” [ऋ० १. १५. ८] इत्यादिमन्त्रान्त-
रेषु धनप्रार्थनाविषयतया प्रसिद्धम् । ॐ शुद्धिभ्याम् इनम् [उ०
२. ५०] इति इनन्मत्पयान्तो द्रविणशब्दः ॐ ॥

इति द्वितीयं सूक्तम् ॥

धनका प्रदान करने वाले द्रविणोदा नामक देवता, कि-जिन
का धन देना धर्म “द्रविणोदा ददातु नो वसूनि ।—द्रविणोदा
देवता हमको धन प्रदान करें” अथर्ववेदसंहिता (१ । १५ ८)
आदिक मन्त्रोंमें प्रसिद्ध है वह पोता नामक अतिवृद्ध के किये हुए
सुन्दर स्तुति और सुन्दर मन्त्रोंसे सम्पन्न यागरूपी कर्मसे अभि-
षेक आदि संस्काररूप अर्चुसे शुद्ध हुए सोमरसका पान करें ४

. प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६१८) ॥

उपोतिष्ठोपादिषु प्रातःसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे “आ याहि”
इति पञ्च सूक्तानि विनियुक्तानि । तत्र “आ याहि सुपुमा हिते”
इत्यर्था तृती स्तोत्रियानुरूपी । “अयमु त्वा विचर्षणे” इति सप्तर्चः
“इन्द्र त्वा वृषमं वयम्” इति नवर्चश्च शंसनीयाः उपयमुखम् इति
व्यवहियन्ते । “उदयेदभि” इति तिस्रः अचः पर्यास इत्युच्यते ।
अत्रोत्तमा परिधानीया । सूत्रितं हि । “आ याहि सुपुमा हिते
[२०. ३] आ नो याहि मुतावनः [२०. ४] इति स्तोत्रि-
यानुरूपी । अयमु त्वा विचर्षणे [२०. ५] इत्युक्तमुखम् । उदये-
दभि श्रुतामघम् [२०. ७] इति पर्यासः । उत्तमा परिधानीया ।
त्रिः पर्यासा विरुत्तमाम् अन्वाह । अर्चर्चशस्य अगन्तं प्रणवेनोप-
संननोति” इति [वै० ३. ११] ॥

उपोतिष्ठोपादिषु प्रातःसवनेके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे “आ
याहि” आदि पाँच सूक्तोंका विनियोग होता है । इनमें “आ याहि

सुपुमा हि ते” ये आदिम दो वृत्त स्तोत्रियानुरूप है । “अयमु
त्वा विचर्षणे” यह सात अक्षरों और “इन्द्र त्वा वृषभं वयम्”
यह तीन अक्षरों शंसनीय और अवयवमुख कहलाते हैं । “उद्घे-
दभि” आदि तीन अक्षरों पर्यास कहलाती हैं । इनमें उत्तमा
परिधानीया है । मूत्रमें भी कहा है, कि—“आ याहि सुपुमा हि
ते (२० । ३) आ नो याहि सुतावतः (२० । ४) इति स्तो-
त्रियानुरूपी । अयमु त्वा विचर्षणे (२० । ५) इत्युत्थमुखम् ।
उद्घेदभि श्रुतमयम् (२० । ७) इति पर्यासः । उत्तमा परिधा-
नीया । त्रिः पथमां त्रिरुत्तमां अन्नाह । अर्धर्चस्य अगन्तम् पण-
वेनोपसंतनोति” (वैतानमूत्र ३ । ११) ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ याहि सुपुमा हि त इन्द्र सोमं पिबाम् इमम् ।

एदं वहिः सदो मम ॥ १ ॥

आ । याहि । सुपुमा । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिबाम् । इमम् ।

आ । इदम् । वहिः । सदः । मम ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर्यादिगुणविशिष्ट त्वम् आ याहि आगच्छ ।
किमर्थम् आगमनम् इति तत्राह । ते त्वदर्थं सोमं सुपुमा हि अभि-
पुतवन्तः खलु । ॐ पुद् अभिपवे । “यहुलं छन्दसि” इति शपः
खलुः । “हि च” इति निघातमतिषेधः । सुपुमा हि त इत्यत्र
छान्दसः साहित्यो दीर्घः ॐ । इमम् अभिपुतं सोमं पिब पानं
कुरु । इदम् आस्तीर्णं वहिः आ सदः आसीद । ॐ लोटि अटा-
गमे इत्यत्र लोपे च कृते रूपम् ॥

हे इन्द्र ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिपव कर लिया

है । इस अभिषुत सोमका आप पान करिये । इन विद्वां हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ त्वां ब्रह्मयुजा हरी वहन्तामिन्द्र केशिनां ।

उप ब्रह्माणि न शृणु ॥ २ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मयुजा । हरी इति । वहन्ताम् । इन्द्र । केशिना ।

उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां ब्रह्मयुजा ब्रह्मयुजा ब्रह्मणा मन्त्रेण रथे युज्यमानां हरी अभिमतप्रदेशं प्रति आहरणशीली पतन्नामानावश्वौ । एताविन्द्रस्य प्रतिनियतौ । ❀ हरी इन्द्रस्य लोहितोऽग्रेर्हरित आदित्यस्येत्यादि निरुक्तात् [निघ० १. १५] ❀ । तावेव विशिनष्टि केशिनेति । केशिना केशिनौ प्रकृष्टैः केशैः स्कन्धवाल इत्यादिप्रदेशस्थैर्युक्तौ । अनेन तयोः प्रभूतशक्तिमत्त्वम् उक्तं भवति । तौ आ वहन्ताम् आगमिष्यताम् । तदर्थं नः अस्माकं ब्रह्माणि आह्वानसाधनान् मन्त्रान्-उप शृणु । अथ वा आगत्य नः ब्रह्माणि स्तोत्राणि उप शृणु । ❀ वृह वृहि वृद्धौ इत्यस्य वृंहेरम् नलोपरच [उ० ४. १४५] इति मनिन्प्रत्यये नलोपे च कृते तत्संनियोगेन अमागमे च कृते ब्रह्मेति रूपम् ❀ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले, अभीष्टस्थान स्थानको लेजाने वाले, बड़े २ अयालों वाले हरी + नामक घोड़े आपकी (हमारे यज्ञमें) लावें, आप आकर हमारे आह्वानके मन्त्रोंको सुनिये ॥ २ ॥

+ “हरीन्द्रस्य लोहितोऽग्रेर्हरित आदित्यस्येत्यादि ।—इन्द्रके घोड़ोंका नाम हरी है । अग्निदेवके घोड़ेका नाम लोहित है और आदित्यके घोड़ोंका नाम हरित है । (निघंटु १ । १५)

तृतीया ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमपाम् । इन्द्र । सोमिनः ।
सुतऽवन्तः । हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र वयं यजमाना ब्रह्माणः ब्राह्मणाः । यद्वा ब्रह्माणः
ब्राह्मणान्द्वंसिनो वयम् । ॐ ब्रह्मशब्दः पुंलिङ्गोन्तोदात्तः ॐ ।
त्वा त्वां युजा । युज्यत इति युक् । स्तोत्रेण देवताहृदयस्पृशा स्तो-
त्रेण हवामहे आह्वयामः । कीदृशं त्वाम् । सोमपाम् सोमस्य पाता-
रम् । इन्द्रस्य सोमपाने अतिशयितप्रियत्वाद् एवं विशेष्यते ।
कीदृशा वयम् । सोमिनः सोमवन्तः कृतसोमयागाः । अस्तु प्रस्तुते
किमायातम् इति तत्राह । सुतावन्तः सोमानभिपुतवन्तः सुतेन
सोमेन युक्ता वा । अभिषवग्रहणादिसंस्कारैः संपादितसोमा
इत्यर्थः । ॐ ब्रान्दसो दीर्घः ॐ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले ब्राह्मण सोमयाग कर चुके हैं
और अभिषव किया हुआ सोम हमारे पास है । ऐसे हम सोम-
पान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (६९९)

“आ नो याहि” इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“आ नो याहि” सूक्तरा पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह
दिया है ।

तथ प्रथमा ॥

आ नो याहि सुतावन्तोस्माकं सुप्रतीरुषं ।

पिवा सु शिंपिन्नन्धसः ॥ १ ॥

आ । नः । याहि । सुतज्वतः । अस्माकम् । सुस्तुतीः । उप ।
पिव । सु । शिंपिन् । अन्धसः ॥ १ ॥

हे इन्द्र सुतावतः स्रूयते अभिपूयत इति सुतः सोमः । तद्वतः
अभिपुतसोमान् नः अस्मान् प्रति । ॐ “शरादीनां च”
इति मतुपि पूर्वपदस्य सांहितिको दीर्घः ॐ । आ याहि
आगच्छ । तदेव विशिनष्टि । अस्माकं सुष्टुतीः शोभनाः स्तुतिः
उपा याहि उपागच्छ । सोमे सुसंस्कृते कृते च शस्त्रे अवश्यम् आ-
गच्छेत्यर्थः । आगत्य च हे मुशिंपिन् शोभनहनूयुक्त । अनेन
सोमपानोचितवक्रोपेतत्वम् उक्तं भवति । अथ वा शोभननासिको-
पेत । अनेन सोमरसाग्राणोचितनासायुक्तत्वम् उक्तं भवति । ॐ शिमे
हनू नासिके वेति निरुक्तम् [नि० ६, १७] । ॐ तादृश
त्वम् अन्धसः अन्धः अन्नं सोमरसलक्षणम् अन्धस एकदेशं वा
ग्रहेण घृतम् अंशं पिव पानं कुरु ॥

हे इन्द्र ! हम सोम बालोंके पास आप आइये, हमारी सुन्दर
स्तुतियोंकी ओर ध्यानदेकर आप आइये और सुन्दर नासिका
वा ठोड़ी वाले आप इस सोमरूप अन्नके कुछ भागका माशन
करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा विधावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥

आ । ते । सिञ्चामि । कुक्ष्योः । अनु । गात्रा । वि । धावतु ।
गृभाय । जिह्वया । मधु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ते तव कुक्षयोः । भागद्वयापेक्षया द्विवचनम् । कुक्षेरु-
भयोः पारर्वयोः आ सिञ्चामि पूरयामि । सोमरसम् इति शेषः ।
अनेन दीयमानस्य सोमरसस्य कुक्ष्यवयवपूर्तिपर्यन्तम् अभिवृद्धि-
रुक्ता भवति । स च उदरस्यो गात्रा गात्राणि । अनेन गात्रशब्देन
गात्रावयवा लक्ष्यन्ते । सर्वाण्यङ्गानि हस्तपादादीनि वि धावतु
तत्तन्नाडीषु सर्वत्र प्रवहतु । अतस्त्वं मधु मधुवत् स्वादुतरं सोम-
रसं जिह्वया रसनया गृभाय गृहाण । ॐ ग्रहेः “हृन्दसि शाय-
जपि” इति श्रुः शायजादेशः । संसारणं च । “हृग्रहोर्मः०”
इति भत्वम् ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी दोनों कोखोंको मैं सोमरससे पूर्ण करना
चाहता हूँ, वह सोम आपके हाथ पैर आदि सब अङ्गोंमें अर्थात्
उनकी नाड़ियोंमें दौड़े अतः आप मधुकी समान स्वादु सोमरस
को जिह्वासे ग्रहण करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स्वादुष्टं अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वेऽ त्वं ।

सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥

स्वादुः । ते । अस्तु । सम्सुदे । मधुमान् । तन्वे । त्वं ।

सोमः । सम् । अस्तु । ते । हृदे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र संसुदे सम्यक् सुष्ठु दात्रे । अत्र सम् इत्यनेन दानस्य
मुकरत्वम् अभिधीयते । सु इत्यनेन च दानविषयस्य घनादेः
प्राशस्त्यं बहुत्वं च विवक्ष्यते । तादृशाय ते तुभ्यं मधुमान् माधु-
र्योपेतः सोमः अस्माभिर्दीयमानः स्वादुरस्तु स्वदनीयोस्तु । अन-
न्तरं च स सोमः तव तन्वे शरीराय । बलकार्यस्त्विति शेषः ।
अथ वा शम् अस्तु इत्येतद् अत्राप्यन्वेनग्यम् । तव शरीराय

सुखकरं भवत्वित्यर्थः । तथा ते हृदे हृदयाय च शम् अस्तु मनसे
सुखकरं भवतु । ॐ स्वादुष्ट इति । “युष्मत्तत्तत्तुःप्वन्तःपादम्”
इति सकारस्य पत्वम् । ततः ष्टुत्वम् ॐ ॥

इति चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! धन आदिका भली प्रकार दान करने वाले आपके
लिये हमारा दिया हुआ मधुररसयुक्त सोम भली प्रकार स्वाद
लेने योग्य होवे और आपके अरीरके लिये बलमद् हो, और यह
सोम आपके हृदयको सुख देने वाला होवे ॥ ३ ॥

चतुर्थं सूक्त समाप्त (६२०) ॥

“अयमु त्वा विचर्पणे” इति सप्तर्चस्य विनियोग उक्तः ॥

“अयमु त्वा विचर्पणे” इस सात ऋचा वाले सूक्तका विनि-
योग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

अयमु त्वा विचर्पणे जनींस्त्रिभिः संवृतः ।

प्र सोमं इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥

अयम् । ऊँ इति । त्वा । विचर्पणे । जनीः । इव । अत्रिभिः । सम् । संवृतः ।

म । सोमः । इन्द्र । सर्पतु ॥ १ ॥

हे इन्द्र विचर्पणे । विचर्पणिः परयतिकर्मा । हे विद्रष्टः इन्द्र
जनीरिव जनय इव । ॐ विभक्तिव्यत्ययः ॐ । जनयन्त्यपत्या-
न्यास्विति जनिशब्दव्युत्पत्तिः । ता यथा पुत्रादिभिः अभितः
संवृता बतेन्ते एवं श्रयणद्रव्यैः अध्वर्युप्रभृतिभिर्वा अभि संवृतः
अभित आच्छन्नायं सोमः । उ इति पूरणः । त्वा त्वां प्र सर्पतु
प्रगच्छतु । ॐ विचर्पण इति । विपूर्वात् कृष विलेखने इत्यस्मात्
कृपेरादेशच चः इति [उ० २. १०३] अनिमस्ययः आदेः
फकारस्य चकारश्च ॐ ॥

हे द्रष्टा इन्द्रदेव ! जैसे सन्तानोंको उत्पन्न करने वाली स्त्रियें पुत्र आदिसे चारों ओरसे घिरी रहती हैं । इसी प्रकार अध्वर्यु आदिसे भली प्रकार घिरा हुआ यह सोम आपको प्राप्त होवे ।

द्वितीया ॥

तुवि॒ग्रीवो॑ व॒पोदरः॑ सु॒बाहु॑रन्ध॒सो मदे॑ ।

इन्द्रो॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्र॒ते ॥ २ ॥

तुवि॒ग्रीवः॑ । व॒पाऽउ॑दरः । सु॒बाहुः॑ । अन्ध॒सः । मदे॑ ।

इन्द्रः॑ । वृ॒त्राणि॑ । जिघ्र॒ते ॥ २ ॥

अनया सोमस्य अतिशयितवीर्यसाधनत्वम् अभिधीयते । अन्धसः सोमलक्षणस्य अन्नस्य भक्षणसे मदे सति इन्द्रो देवः तुविग्रीवः । तुवीति बहुनाम । प्रभूतकन्धरः । भवतीति शेषः । ग्रीवाशब्दः स्कन्धस्योपलक्षकः । वृषवत् • समृद्धस्कन्ध इत्यर्थः । तथा वपोदरः वपा यथा विस्तीर्णा भवति एवं विस्तृतोदरश्च भवति । तथा सुबाहुः शोभनबाहुः पृथुभुजश्च भवति एव सोमपानेन अभिवृद्धगात्रः मन् पश्चाद् वृत्राणि वृत्रवद् आवरकान् शत्रून् जिघ्रते हिनस्ति इत्येवं सोमस्य महिमा ॥ यद्वा तुविग्रीवत्वादयः इन्द्रस्य स्वाभाविका धर्माः । उक्तलक्षण इन्द्रः सत्स्वपि तेषु अन्धसो मदे सत्येव वृत्राणि जिघ्रते इति सोमप्रशंसा ॥

[इस ऋचामें सोमका परमवीर्यपद होना वर्णन किया गया है, कि—] सोमरूपी अन्नके भक्षणसे मद होने पर इन्द्रदेवके कंधे बेलके कन्धोंकी समान मोटे होजाने हैं, पेट वपा (चरबी) सा विशाल होजाता है और भुजाएँ मोटी होजाती हैं । इस प्रकार सोमपान शरीर बढ़जाने पर इन्द्रदेव वृत्रकी समान घेरने वाले शत्रुओंको मार डालते हैं । [यह सोमकी महिमा है] ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र मेहिं पुरस्त्वं विश्वस्येशान् ओजसा ।

वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३ ॥

इन्द्र । मे । इहि । पुरः । त्वम् । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा ।

वृत्राणि । वृत्रहन् । जहि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र विश्वस्य स्यावरजइमात्मकस्य सर्वस्य ईशानः । अनेन इन्द्रस्य सर्वत्र मविमटरादित्यम् उक्तं भवति । तादृशस्त्वं पुरः मेहि अस्माकं सेनायाः पुरतो गच्छ । गत्वा च हे वृत्रहन् वृत्रस्य एतन्नामकस्य अमुरस्य हन्तः वृत्राणि अस्मदावरकान् शत्रून् जहि पानय । ॐ “हन्तेर्जेः” इति जभावः ॐ ॥

हे स्यावर जइम सब जगन्के ईश इन्द्र ! आप हमारी सेनाके आगे २ चलिये और हे वृत्र नामक शत्रुओंको मारने वाले ! आप वृत्रामुरकी समान घेरने वाले हमारे शत्रुओंका संहार करिये ३ चतुर्थी ॥

दीर्घस्ते अमृद्गुशो येना वसुं प्रयच्छंसि ।

यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥

दीर्घः । ते । अमृद्गुः । येन । वसुं । प्रयच्छमि ।

यजमानाय । सुन्वते ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते अमृद्गुः । अमृद्गुवमृद्गुलिको इन्द्रः अमृद्गु इत्युच्यते । स दीर्घोऽसु । प्रदानविषये संकोचरहितोस्त्वित्यर्थः । तपेव विनिनष्टि । येनामृद्गुनेन सुन्वते सोमामिषं कुर्वते सोम-

लक्षणस्य हविषो दात्रे यजमानाय वसु धनं मयच्छसि । स तादृशो दीर्घोस्तु ॥

हे इन्द्र ! आपका अङ्गुशर्का समान नमी हुई अङ्गुलियों वाला अङ्गुशर्का हाथ, देनेके लिये लम्बा होवे, जिस हाथमें आप सोमामिषव करने वाले सोमर्षी हविके दाता यजमानको धन देते हैं, वह हाथ लम्बा होवे ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अयं तं इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।

एहीमस्य द्रवा पिवं ॥ ५ ॥

अयम् । ते । इन्द्र । सोमः । निपूतः । अधि । बर्हिषि ।

आ । इहि । ईम् । अस्य । द्रव । पिव ॥ ५ ॥

हे इन्द्र अधि बर्हिषि । अधिः सप्तम्यर्थानुवादी । आस्तीर्णे दर्भे निपूतः दशापवित्रेण नितरां शोधितः । उपलक्षणम् एतत् । ग्रहणश्रयणादिसंस्कारैः संस्कृतोयं सोमः ते त्वर्घ्यः । यस्मादेवं तस्माद् एहि आगच्छ । अस्मद्यज्ञं प्रतीति शेषः । आगमनविलम्बम् असहमान आह द्रवेति । त्वरया आगच्छेन्न्यर्थः । आगत्य च ईम् इदानीम् अस्य अमुं त्वर्घ्यं निपूतं सोमं पिव पानं कुरु ॥

हे इन्द्रदेव ! दर्भों पर दशापवित्रके द्वाराके (अंगोष्ठके द्वारा) परम पवित्र किया हुआ (ग्रहण श्रयण आदि संस्कारोंसे संस्कृत) ये सोम आपके लिये हैं अत एव आप हमारे यज्ञकी ओर आइये (आगमनमें विलम्बको न सहना हुआ कहता है, कि—) शीघ्रतासे आइये और आकर इस समय आपके लिये पवित्र किये हुए सोमका पान करिये ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

शाचिङ्गो शाचिपूजनाय रणाय ते सुतः ।

आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥

शाचिङ्गो इति शाचिङ्गो । शानिऽपूजन । अयम् । रणाय । ते । सुतः ।

आखण्डल । प्र । हूयसे ॥ ६ ॥

हे शाचिङ्गो । शाचयः मत्पानेतुं शक्ता गावो यस्य स शाचिङ्गः ।
 पण्डितिरपहृतानां गवां मत्पानेतृत्वमसिद्धेः । तथा शाचिपूजन ।
 पूज्यते एभिरिति पूजनानि स्तोत्राणि । शाचीनि शक्तानि स्तुत्य-
 विषयगुणप्रकाशकानि स्तोत्राणि । यस्य स शाचिपूजनः । तस्य
 संबोधनम् । ❀ “आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्” इति पूर्वस्य
 अविद्यमानवत्त्वेन पादादित्वाग्निघटाभावः ❀ । हे उक्तगुणवि-
 शिष्ट इन्द्र रणाय । ❀ मकारलोपरब्दान्दसः ❀ । रमणाय रमणी-
 याय ते तुभ्यम् । यद्वा ते तव रणाय रमणाय क्रीडनाय अयं सोमः
 सुतः अभिषवादिना संस्कृतः । तस्मात् कारणात् हे आखण्डल
 आ समन्तात् खण्डयति शत्रून् इति आखण्डलः । शत्रुहंसक इन्द्र
 त्वं प्र हूयसे प्रकर्षेण आह्वानविषयः करिष्यसे सोमपानार्थम् अस्मा-
 भिराहूयसे । ❀ आखण्डलेति । आङ्पूर्वात् कडि खडि भेदने
 इत्यस्माच्चौरादिकाद्धातोः मङ्गेरलच् [उ० ५, ७०] इत्यत्र बाहु-
 लकाद् अलच् प्रत्ययः । आमन्त्रिताद्युदात्तः ❀ ॥

हे पण्डित नामक असुरोंके द्वारा हरी हुई गौओंको लौटानेमें
 समर्थ शाचिङ्गो ! हे स्तुतिके योग्य गुणोंको प्रकाशित करने वाले
 स्तोत्रोंसे सम्पन्न शाचिपूजन इन्द्र ! यह सोम आपको आनन्द
 देनेके लिये अभिषुत होगया है । हे शत्रुओंको चारों ओरसे
 खण्डित करने वाले आखण्डल इन्द्र ! इस लिये हम आपको
 चुला रहे हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।

न्यस्मिन् दध्रे आ मनः ॥ ७ ॥

यः । ते । शृङ्गवृषः । नपात् । मनपादिति । मज्जनापात् । कुण्डपाय्यः ।

नि । अस्मिन् । दध्रे । आ । मनः ॥ ७ ॥

हे शृङ्गवृषो नपात् शृङ्गवृणामा कश्चिद् अपिः तस्य न पातयति कुलम् इति नपात् पुत्रः । तस्य संबोधनम् । यद्वा शृङ्गवृष उन्नता रश्मयः शृङ्गशब्देन उच्यन्ते । तैर्वर्षतीति शृङ्गवृष आदित्यः । तस्य न पातयिता दिवि स्थापयिता इन्द्रः शृङ्गवृषो नपाद् इत्युच्यते । तादृश इन्द्र ते तव यः प्रसिद्धः प्रणपात् कुण्डपाय्यः कुण्डैः पातव्यः सोमो यस्मिन् क्रतौ स कुण्डपाय्यः क्रतुरस्ति । ❀ “क्रतौ कुण्डपाय्यसंचायौ” इति पिवतेः वयम्पत्ययान्तत्वेन निपातितः ❀ । अस्मिन् बहुसोमवति क्रतौ त्वं मनो नि दध्रे धारयसि सर्वतः स्थापयसि । ❀ दधातैर्लिटि “इरयो रे” इति रेभावः ❀ ॥

इति पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे शृङ्गवृषो नपात् इन्द्र ! आपका जो पतन न होने देने वाले शृङ्गवृषो नपात् इन्द्र ! आपका जो पतन न होने देने वाला (जिसमें कुण्डोंसे सोम पिया जाता है ऐसा) कुण्डपाय्य नामक क्रतु है, उस बहुतसे सोम वाले यज्ञमें आप मनको लगाइये ॥७॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (६२१)

“इन्द्र त्वा वृषमं वयम्” इति नवर्चस्य सूक्तस्य मातःसवनशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“इन्द्र त्वा वृषमं वयम्” इस नौ ऋचा वाले सूक्तका मातःसवनशस्त्रमें विनियोग कह दिया है ।

तत्र मथेमा ॥

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

इन्द्रे । त्वा । वृषभम् । वयम् । सुते । सोमे । हवामहे ।

सः । पाहि । मध्वः । अन्धसः ॥ १ ॥

व्याख्यातेयम् अनुवाकादी ॥

हे इन्द्रदेव ! फलोंकी वर्षा करने वाले आपका हम सोमके अभिषुत होने पर आह्वान करते हैं, आप मधुररससम्पन्न सोम-रूपी अन्नके एक भागका पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुष्टुत ।

पिवा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥

इन्द्र । क्रतुऽविदम् । सुतम् । सोमम् । हर्यं । पुरुऽस्तुत ।

पिवा । आ । वृषस्व । तातृपिम् ॥ २ ॥

हे पुरुष्टुत पुरुभिर्वहुभिर्व्यजमानैः स्तुत बहुपकारं स्तुत वा हे इन्द्र क्रतुविदम् क्रतोर्पागंस्य लम्भकं निष्पादकं सुतम् अभिषवा-दिना संस्कृतम् इमं सोमं हर्यं कामय । ॐ हर्यं गतिकान्तयोः इत्यस्य लोटि रूपम् । निघातः ॐ । कामयित्वा च तातृपिम् तर्पकं मीण-पितारम् इमं सोमं पिब पानं कुरु । तदेव विशिनष्टि । आ वृषस्व जठरे सिञ्च । यथा जठरकुहरस्य अत्यन्तं सर्वतः पूर्तिर्भवति तेषां कुर्तित्यर्थः । ॐ तातृपिम् । वृषं मीणने इत्यस्मात् “छन्दसि सदा-दिभ्यो दर्शनात्” इति किन् । तस्य लिङ्बद्धावाद् द्विर्वचनादि ।

संहितायाम् “अन्येषामपि दृश्यते” इत्यभ्यासस्य दीर्घः । निस्वाद्
आद्युदात्तः ॐ ॥

हे बहुतसे यजमानोंसे स्तुति पाने वाले इंद्र ! आप यज्ञको
साधने वाले, अभिषव आदिसे संस्कृत इस सोमकी कामना करिये ।

और कामना करके इस वृत्त करने वाले सोमका पान करिये
इससे अपने उदरको सींचिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।

तिर स्तवान विशपते ॥ ३ ॥

इन्द्र । प्र । नः । धितस्वानम् । यज्ञम् । विश्वेभिः । देवेभिः ।

तिर । स्तवान् । विशपते ॥ ३ ॥

हे स्तवान् । ॐ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॐ । स्तूयमान हे विशपते
विशो देवविशो मरुतः तेषां स्वामिन् । यद्वा विशां मजानां सर्वासां
पते हे इन्द्र नः अस्माकं धितावानम् धितं धानं तद्वन्तं सोमस्य
निधानवन्तम् । ग्रहादिभिर्गृहीतसोमम् इत्यर्थः । ॐ “अन्दसी-
वनिषौ” इति मत्वर्थीयो वनिप् ॐ । उक्तलक्षणं यज्ञं विश्वेभिः
सर्वैर्यष्ट्यैः देवेभिः देवैः सह प्र तिर वर्धय । हविःस्वीकारे-
णेति शेषः । ॐ तरतेर्व्यत्ययेन शः । प्रत्ययस्वरः । प्र ए इति ।
“उपसर्गाद् बहुलम्” इति संहितायां एत्वम् ॐ ॥

हे स्तुति पाने वाले ! हे देवमजा मरुतोंके स्वामिन् इंद्र ! आप
हमारे सोम वाले यज्ञको सब पूजनीय देवताओं सहित हवि स्वी-
कार करके बढ़ाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्र सोमाः सुता-इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।

क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

इन्द्र । सोमाः । सुताः । इमे । तव । प्र । यन्ति । सत्पते ।

क्षयम् । चन्द्रासः । इन्दवः ॥ ४ ॥

हे सत्पते सतां यजमानानां पालक, इन्द्र सुताः, अभिपुताः चन्द्रासः चन्द्रा आह्लादकारिण इन्दवः विलन्ना रसात्मका इमे हूयमानाः सोमाः तव क्षयम् । क्षियन्ति निवसन्ति अग्रेति क्षयो निवासस्थानम् । तव जठरम् इत्यर्थः । ॐ “क्षयो निवासे” इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । प्र यन्ति गच्छन्ति । ॐ इन्दव इति । उन्दे-
रिच्चादेः [३०१, १२] इति समत्ययः । निदित्यनुवृत्तेराद्युदात्तः ॐ ।

हे सज्जन यजमानोंका पालन करने वाले इन्द्रदेव ! ये अभि-
पुत आन्हाद देने वाले सोम आपके जठरको प्राप्त हो रहे हैं ॥४॥

पञ्चमी ॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।

तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥

दधिष्व । जठरे । सुतम् । सोमम् । इन्द्र । वरेण्यम् ।

तव । द्युक्षासः । इन्दवः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र वरेण्यम् वरणीयं स्पृहणीयं सुतम् अभिपुतम् इमं सोमम् अस्माभिर्हूयमानं जठरे दधिष्व धारय । ॐ दधातेर्लोठि रूपम् । “आगमा अनुदात्ताः” इति इटोनुदात्तत्वात् प्रत्यय-
स्वरः ॐ । सोमानाम् इन्द्रस्य असाधारणं स्वत्वम् आह । द्युक्षासः दीप्तिमन्तो दीप्तिनिवामस्थानभूता इन्दवः सोमाः तव । असाधा-
रणस्वभूता इति शेषः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस स्पृहणीय अभिषुत सोमको अपने हृदय में धारण करिये दीप्तिके निवासरूप ये सोम आपके असाधारण भाग हैं ॥ ५ ॥

पृष्टी ॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।

इन्द्रः त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥

गिर्वणः । पाहि । नः । सुतम् । मधोः । धाराभिः । अज्यसे ।

इन्द्र । त्वादातम् । इत् । यशः ॥ ६ ॥

हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय संभजनीय इन्द्र । ॐ वन पण संभक्तौ इत्यस्माद् अमुन् । गिर उपधाया दीर्घाभावश्छान्दसः । “आमन्त्रितस्य च” इति पाष्ठिकम् आद्यदातृत्वम् ॐ । नः अस्माकं संबन्धिनं सुतम् अभिषुतं सोमं पाहि पिव । अहूयमानस्य कथं पानप्रसक्तिरित्यत्राह । मधोर्धाराभिरिति । यस्माद् मधोः मधुरस्य सोमस्य धाराभिः अज्यसे आर्द्रीक्रियसे । ह्यस इत्यर्थः । अपेक्षितस्य फलस्य अभावे होमस्य का प्रसक्तिरित्यत्राह । हे इन्द्र त्वादानमित् त्वया दातव्यमेव यशः अन्नम् । अस्तीति शेषः । “अस्ति त्वादातम् अद्रिवः” इत्यमुं मन्त्रभागं व्याचक्षाणेन यास्केन त्वया नस्तद् दातव्यम् [नि० ४. ४] इति हि त्वादातशब्दो व्याख्यातः । यद्वा त्वादातम् त्वया शोधितं यशोस्ति । ॐ दैप् शोधने । सत्यपि प्रकारे “नानुबन्धकृतम् अनेजन्तत्वम्” इत्येजन्त एवायम् । ततः “आदेचः” इति आस्वम् । अस्मात् कर्मणि क्तः । “दाघा घवदाप्” इत्यत्र अदाप् इति प्रतिषेधेन घुसंज्ञाया अभावाद् “दो दद् घोः” इति दद् आदेशो न भवति । त्वेति युष्मच्छब्दस्य तृतीया । “कर्तृकरणे कृता बहुलम्” इति ममासः । “तृतीया कर्मणि” इति पूर्वपदप्रकृस्वरः ॐ ॥

हे स्तुतियोंसे सेवा करने योग्य इन्द्र ! हमारे अभिपुत्र सोम का पान करिये । आप मधुर रस वाले सोमकी धाराओंसे आर्द्र किये जा रहे हैं अर्थात् आपको सोमकी आहुति दी जा रही है । हे इन्द्र ! यह आपका शोधित यश ही है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अभि घुम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥

अभि । घुम्नानि । वनिनः । इन्द्रम् । सचन्ते । अक्षिता ।
पीत्वी । सोमस्य । वावृधे ॥ ७ ॥

वनिनः देवान् संभजमानस्य यजमानस्य घुम्नानि द्योतमानान्यन्नानि सोमलक्षणानि । ॐ घुम्नं द्योततेऽर्पशो वान्नं वेति यास्कः [नि०, ५, ५] ॐ । घुम्नानि विशेष्यन्ते । अक्षिता अक्षितानि अक्षीणानि अतिप्रभूतानि इन्द्रं देवम् अभि सचन्ते अभितः संगच्छन्ते । स च इन्द्रः सोमस्य प्रभूतस्य । अंशम् इति शेषः । अथ वा सोमस्य सोमं पीत्वी पीत्वा । ॐ पा पाने इत्यस्मात् क्त्वाप्रत्ययस्य “स्नात्व्यादयश्च” इति निपातनात् त्वीभावः । “घुमास्थागापा०” इत्यादिना ईत्वम् । प्रत्ययस्वरः ॐ । वावृधे प्रवृद्धो भवति । देवताओंकी भक्ति करने वाले यजमानके दमकते हुए सोम अतिप्रवृद्धभावमें इन्द्रदेवको चारों ओरसे प्राप्त हो रहे हैं । और इन्द्र भी सोमके अंशको पीकर बढ़ रहे हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अर्वावतो न आ गंहि परावतंश्च वृत्रहन् ।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥

अर्वाञ्चतः । नः । आ । गहि । पराञ्चनः । च । वृत्रहन् ।

इमाः । जुपस्व । नः । गिरः ॥ ८ ॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्य हन्तस्मिन् नः अस्मान् यजमानान् अर्वाञ्चतः अर्वाञ्चीनाद् अन्निकाद् देशाद् आ गहि आगच्छ । तथा पराञ्चनः दूरदेशाच्च नः आ गहि आगच्छ । ॐ “उपमर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे” इति वतिप्रत्ययः । प्रत्ययस्वरः ॐ । आगत्य च नः अम्माकम् इमा गिरः स्तुतिरूपा वाचो जुपस्व सेवस्व ॥

हे वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्र ! आप हम यजमानोंके पास समीपके स्थानमें हों तो समीपके स्थानमें आजाइये और दूर हों तो दूरसे आजाइये । और आकर हमारी स्तुतिरूपा वाणियों का सेवन करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यदन्तरा पराञ्चतमर्वाञ्चतं च ह्यसे ।

इन्द्रेह तत् आ गहि ॥ ९ ॥

यत् । अन्तरा । पराञ्चतम् । अर्वाञ्चतम् । च । ह्यसे ।

इन्द्र । इह । नतः । आ । गहि ॥ ९ ॥

हे इन्द्र पराञ्चतम् पराञ्चद् दूरस्थानं तथा अर्वाञ्चतं च संनिहित स्थानं च यत् यस्मिन् अन्तरा तयोरन्तरालदेशे । ॐ नमयत्र “अन्तरान्तरेण युक्ते” इति द्वितीया ॐ । तत्र ह्यसे सम्यग् इज्यसे ततः तस्माद् देशात् पराञ्चतः अर्वाञ्चतश्च सकाशाद् इह अस्मद्याग-देशं प्रति आ गहि आगच्छ ॥

इति पष्ठं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप दूर वा पासके जिस अन्तराल स्थानसे बुलाये
जारहे हैं उस स्थानसे हमारे यागस्थलमें शीघ्रतासे आइये ॥६॥

छठा सूक्त समाप्त (६२२)

“उद्घेदभि” इति त्वस्य ब्राह्मणाच्छंसिनः प्रातःसवने विनि-
योग उक्तः ॥

“उद्घेदभि” त्वका ब्राह्मणाच्छंसीके प्रातःसवनमें विनियोग
कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।

अस्तारमेपि सूर्य ॥ १ ॥

उत् । घ । इत् । अभि । श्रुतमघम् । वृषभम् । नर्यापसम् ।

अस्तारम् । एपि । सूर्य ॥ १ ॥

हे सूर्य त्वं श्रुतामघम् । मघम् इति धननाम । श्रुतं विख्यातं
स्तोतृभ्यो यष्टृभ्यश्च दानव्यं धनं यस्यार्मा श्रुतमघः तम् ।
सत्यपि श्रुतधनत्वे दानाभावे प्रयोजनाभावाद् उच्यते वृषभम्
इति । अभिमतस्य धनस्य वर्षकम् इत्यर्थः । तथा नर्यापसम् नरेभ्यो
दितं नर्यम् भयः कर्म यस्यार्मा नर्यापाः तम् । ☉ “तस्मै
हितम्” इति यत् । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ☉ । स्वसेवका-
नाम् इष्टपाप्मनिष्टपरिहारविपयकर्मवन्तम् इत्यर्थः । तथा अस्ता-
रम् शत्रूणां निरसितारम् । ☉ असु क्षेपणे । तुनि “रघादि-
भ्यश्च” इति इड्विकल्पः ☉ । एवंमहानुभावम् इन्द्रम् अभिलक्ष्य
उद्घेदेपि । घेति प्रसिद्धौ । उदेपि ऊर्ध्वं गच्छसि उदयसि । सूर्यो-
दयाभावे इन्द्रस्य सोमलक्षणहविःप्रदानासंभवाद् उक्तलक्षणम् इन्द्रं
मति उदेपीत्युच्यते ॥

हे सूर्यदेव ! इन्द्र श्रुत्वैव हैं अर्थात् स्तोता और यष्टाओंका इन्द्रका धनप्रदान करना प्रसिद्ध है, और इन्द्र अभिमत फलोंकी वर्षा करने वाले हैं, तथा इन्द्र नपर्याप्त है अर्थात् इन्द्रके कर्म अपने सेवक मनुष्योंके इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार करने वाले हैं, तथा इन्द्र शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हैं । ऐसे महानुभाव इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर आप उदय होते हैं । [सूर्योदयके अभावमें इन्द्रका सोमात्मकद्विःप्रदान असम्भव है अतः यह कहा, कि-हे सूर्यदेव ! आप इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर उदय होते हैं] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

नव यो नवतिं पुरां विभेदं बाहुोजसा ।

अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥

नव । यः । नवतिम् । पुरः । विभेदं । बाहुऽओजसा ।

अहिम् । च । वृत्रऽहा । अवधीत् ॥ २ ॥

य इन्द्रः शम्बरस्यासुरस्य नव नवतिं च पुरः नवोत्तरनवति-
संख्याका मायानिर्मिताः पुरीः । ॐ “पङ्क्तिर्विंशतिः” इत्या-
दिना निपत्ययान्तो निपा ततः ॐ । बाहुोजसा बाहुबलेन अन्य-
नैरपेक्ष्येणैव विभेद भिन्नवान् नाशितवान् । तथा च मन्त्रान्तरम् ।
“दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य” इति
[अ० २. १६. ६] । किं च वृत्रहा । वृत्रशब्दः शत्रुसामान्य-
वचनः “वृत्राणि वृत्रहं जहि” [२०. ५. ३] “इन्द्रो वृत्राणि
जिघ्रन्ते” [२०. ५. २] इत्यादौ तथा दर्शनात् । वृत्राणां
शत्रूणां हन्ता इन्द्रः अहिं च । अयति गच्छतीत्यहिर्मेघः ।
ॐ अहिर्यनाह एत्यन्तविशे इति निरुक्तम् [नि० २. १७] ॐ ।

अथ वा आगत्य हन्तीत्यर्द्धव्रतः । ॐ इन हिंसागत्योः । आदि
थिहनिष्पां हस्वश्च [उ० ४. १३७] इति आङ्पूर्वाद् इञ्
प्रत्ययः । वानेडित् [उ० ४. १३३] इत्यनुवर्तनात् ढिद्वद्भावः
आङो हस्वश्च । वित्ताद् आद्यदात्तः ॐ । सम् अवधीत् इतवान् ।
स न इत्युत्तरत्र संबन्धः ॥

जो इन्द्रदेव शम्बरासुरके मायानिर्मित निन्यानवे पुरोको अपने
भुजबलसे नष्ट कर चुके हैं । उन शत्रुनाशक इन्द्रने वृत्रासुरका
संहार कर डाला है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् ।

उरुधारेव दोहते ॥ २ ॥

सः । नः । इन्द्रः । शिवः । सखा । अश्ववत् । गोमत् ।
यवमत् ।

उरुधाराऽश्व । दोहते ॥ ३ ॥

स पूर्वोक्तगुणविशिष्ट इन्द्रः नः अस्माकं शिवः सुखकारी सखा
मित्रभूतः । तादृश इन्द्रः अश्ववत् अश्ववैर्बहुभिरुपेतं गोमत् बही-
भिर्गोभिरुपेतं यवमत् । यत्रो धान्यविशेषः । बहुभिर्षवैर्घुक्तं धनम्
उरुधारेण मभूतधारायुक्ता बहुक्षीरा गौरिव दोहते सा यथा
सर्वेषां तर्पणसमर्थ बहुक्षीरं दुग्धे एवं सर्वजनवृत्तिसाधनम् अश्व-
घुपेतं धनं दुग्धाम् प्रयच्छतु । ॐ बाहुलकात् शपो लुगभावः ।
लेटि वा अडागमः ॐ ॥

इति सप्तमं सूक्तम् ॥

ऐसे इन्द्रदेव हमारे लिये सुखकारी यन् और हमारे मित्र बनें
ऐसे इन्द्रदेव हमको बहुतसे घोड़ोंसे सम्पन्न तथा बहुतसी गौओं

से सम्पन्न और यव आदि बहुतसे धान्योंसे सम्पन्न उरुधारा की समान हमको प्रदान करें अर्थात् विशाल धारा वाली बहु-क्षीरा गौ जैसे सबको तृप्ति करने योग्य दुग्धको देती है इसी प्रकार सबकी तृप्तिके साधन अन्न आदिसे सम्पन्न धनको प्रदान करें ॥ ३ ॥

सप्तम सूक्त समाप्त

“इन्द्र क्रतुविदम्” इत्येषा आद्या ऋक् ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रयाज्या । उक्तं हि । “उक्थसंपदः परिधानीयोत्तरा याज्या” इति [वै० ३. ११] ॥

“एवा पाहि” इत्याद्यास्तिस्र ऋचस्नेषामेव ब्राह्मणाच्छंस्यादीनां त्रयाणाम् ऋत्विजां क्रमेण माध्यन्दिनसवनिक्यः प्रस्थितयाज्याः । तथा च वैतानं सूत्रम् । “एवा पाहीति प्रस्थितयाज्या” इति [वै० ३. ११] ॥

“इन्द्र क्रतुविदम्” यह पहिली ऋचा ब्राह्मणाच्छंसीकी शस्त्र-याज्या है । वैतानसूत्र ३ । ११ में कहा भी है, कि—“उक्थसम्पदः परिधानीयोत्तरा याज्या” ।

“एवा पाहि” आदि तीन ऋचाएँ इन ही ब्राह्मणाच्छंसी आदि तीनों ऋत्विजोंकी क्रमशः माध्यन्दिनसवनिकी प्रस्थितयाज्या हैं। इसी बातको वैतानसूत्र ३ । ११ में कहा है, कि—“एवा पाहीति प्रस्थितयाज्या” ॥

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुष्टुत ।

पित्रा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

इन्द्रं । क्रतुविदम् । सुतम् । सोमम् । हर्यं । पुरुष्टुतम् ।

पिव । आ । वृषस्व । तवृषिम् ॥ ४ ॥

हे पुरुषदुत बहुविबुधमकारं वा स्तुत इन्द्र क्रतुः मन्त्रा भवति तस्या लम्भकम् । अथवा क्रतोरैव ज्योतिष्टोमादेर्लम्भकं साधकं सुतम् अभिपुतं तवृषिम् तर्पकं सोमं हयं कामय । ॐ तवृषिम् इत्यप्र “आह्वगमइन०” इति विहितः “इन्द्रमि मदादिभ्यो दर्शनात्” इति क्तिन ॐ । पिव । अपि च आ वृषस्व जठरे सिञ्च । पिवे-त्यनेन उक्त एवार्थः पुनरनेन अभिहितः पानस्याधिक्याभिधानाय । व्याख्यातेयम् अस्मिन्नेवानुवाके [६. २] ॥

हे अनेक मकारमे स्तुत इन्द्रदेव ! आप ज्योतिष्टोम आदिको सम्पन्न करने वाले, अभिपुत वृषिजनक सोमकी कामना करिये । और इसका पान करिये तथा जठरमें सींचिये ॥ ४ ॥

अथ द्वितीया ॥

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा शुधि ब्रह्म वावृधस्वोत
गीभिः ।

आविः सूर्य कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूग्भि गा
इन्द्र तृन्धि ॥ १ ॥

एव । पाहि । प्रत्नथा । मन्दतु । त्वा । शुधि । ब्रह्म । वावृधस्व ।
उत । गीःभिः ।

आविः । सूर्यम् । कृणुहि । पीपिहि । इषः । जहि । शत्रून् ।
अभि । गाः । इन्द्र । तृन्धि ॥ १ ॥

हे इन्द्र मन्त्रथा । मन्त्रम् इति पुराणनाम । पूर्व यथा अद्विरः-
मधुनीनां सोमयागे सोमम् अथाः । ॐ “मन्त्रपूर्वविश्वेमान् याल्

द्वन्दसि” इति इवार्थे याल् प्रत्ययः ॐ । एव एवम् अस्मदीयमपि
 सोमं पाहि पिब । स च पीतः सोमः त्वा त्वां मन्दतु मदयतु ।
 तदर्थम् अस्मदीयं ब्रह्म मन्त्रात्मकं स्तोत्रं श्रुधि शृणु । ॐ “श्र-
 शृणुपकृतृभ्यश्चन्दमि” इति द्वैविभावः ॐ । न केवलं श्रवणमेव
 उत अपि च गीर्भिः अस्मदीयाभिः स्तुतिवाग्भिः बृधस्व वर्धस्व
 अभिवृद्धो भव । अतस्तव यागार्थं सूर्यम् सर्वकर्मणां प्रेरकं देवम्
 आविष्कुरुहि प्रकाशितं कुरु । यद्वा अस्माकं व्यवहाराय बहु-
 कालं सूर्यम् आविष्कुरु । तत इयः अन्नानि अस्मदुपभोगसा-
 धनानि पीपिहि प्यागय समर्थय । किं च शत्रून् शातयितुन् अस्म-
 द्विरोधिनो द्वेष्यान् जहि घानय । हे इन्द्र गाश्च पणिभिरपहृता
 अभि वृन्धि प्रयच्छ । ॐ वृधस्वेति । वृधेर्बहुलग्रहणाच्छपः
 रलुः । “व्यत्ययो बहुलम्” इत्यत्र “क्वचिद् विकरणं च” इति
 चवनात् शप्-प्रत्ययः । विकरणस्वरेण मध्योदात्तः । वृन्धि ।
 उवृदिर् हिंसानादरयोः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे पहिले अंगिरा आदिके सोमयागमें आपने
 सोमका पान किया था, इसी प्रकार आप हमारे सोमका भी
 पान करिये । वह पिया हुआ सोम आपको प्रसन्न करे । इस
 लिये आप हमारे मन्त्रात्मक स्तोत्रको सुनिये । केवल सुनिये ही
 नहीं किन्तु हमारी स्तुतिकी वाणियोंसे बढ़िये और अपने याग
 के लिये सब कर्मोंके प्रेरक सूर्यदेवको प्रकाशित करिये । फिर
 हमारे उप भोगोंके साधन अन्नोंको बढ़ाइये और हमसे विरोध
 करने वाले शत्रुओंको नष्ट करिये । और हे इन्द्रदेव ! पणियोंसे
 हरी हुई गाँओंको हमें प्रदान करिये ॥ १ ॥

तृतीया ॥

अर्वाङ्गेहि सोमं कामं त्वाहुरयं मुनस्तस्य पिबामदाय

उरुव्यचां जठर आ वृषस्व पितेवंनः शृणुहि हूयमानः

अर्वाङ् । आ । इहि । सोमऽकामम् । त्वा । आहुः । अगम् ।

सुतः । तस्य । पिव । मदाय ।

उरुव्यचाः । जठरे । आ । वृषस्व । पिताऽइव । नः । शृणुहि ।

हूयमानः ॥ २ ॥

हे इन्द्र अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् एहि आगच्छ । किमर्थम् आगमनम् इति चेद् उच्यते सोमकामं त्वाहुरिति । यतस्त्वा त्वां सोमकामम् सोमं कामयमानं सोमविषये अत्यन्ताभिलषितवन्तम् आहुः अभिज्ञाः कथयन्ति । “सोमकामं हि ते मनः” इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० ८. ६१. २] । “इमं जम्भसुतं पिव” इति [ऋ० ८. ६१. २] मन्त्रे जम्भनिष्पीडितस्यापि सोमस्य पानाभिधानाद् इन्द्रस्य सोमे अतिशयप्रीतिसद्भावे उक्तो भवति । यस्मादेवं तस्माद् अयं सोमः सुतः अभिपुतः । तस्य । तं सोमम् इत्यर्थः । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्ये पठ्यते ❀ । पिव पानं कुरु । कस्मै प्रयोजनायेति उच्यते । मदाय । तस्य पियेति सोमपानमात्रम् अभिहितम् । इदानीं कुक्षिपरिपूर्तिपर्यन्तं पानम् अभिधीयते उरुव्यचा इत्यादिना । उरु प्रभृतं व्यचनं कुक्षिबाहुज्यं यस्य स उरुव्यचाः । ❀ व्यचेराणादिकाः असिप्रत्ययः । “व्यचेः कुडादित्वम् अनसीति वक्तव्यम्” इति वचनात् द्वित्वाभावेन संप्रसारणाभावः । “परादिश्चन्द्रसि बहुलम्” इति उत्तरपदाद्यदात्तत्वम् ❀ । तादृशस्त्वं जठरे उदरे अतिविस्तीर्णे आ वृषस्व आसिञ्च सर्वतः पूरय । तदर्थम् आहूयमानस्त्वं पितेव यथा पिता पुत्राय वचनं शृणोति एवंनः अस्माकम्

आहानं शृणुहि शृणु । ॐ “जनश्च मृत्ययाच्छन्दसि वा वचनम्”
इति हेतुर्गर्भावः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे अभिमुख होकर आइये । क्योंकि-
विद्वान् पुरुष आपको सोमकी कामना वाला कहते हैं । यह सोम
अभिपुत होगया है, इसका आप मदके लिये पान करिये । आप
सोमको प्रभूतमात्रामें अपनी दोनों कोखोंमें भरिये । इसके लिये
बुलाये हुए आप पिता जैसे पुत्रके वचनको सुनता है, जिसप्रकार
हमारे आहानको सुनिये ॥ २ ॥

चतुर्थी ॥

आपूर्णा अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे
पिवन्थै ।

समुं प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमांस
इन्द्रम् ॥ ३ ॥

आऽपूर्णाः । अस्य । कलशः । स्वाहा । सेक्ताऽश्व । कोशम् ।
सिसिचे । पिवन्थै ।

सम् । ऊं इति । प्रियाः । आ । अववृत्रन् । मदाय । प्रदक्षिणिद्वि ।
अभि । सोमांसः । इन्द्रम् ॥ ३ ॥

अस्य अस्मै इन्द्राय । ॐ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॐ । तदर्थं कलशः
द्रोणकलश आपूर्णाः सोमरसेन सर्वतः पूर्ण आसन् । नञ् पूरणे
किमर्थम् इति चेद् उच्यते । स्वाहा स्वाहुतत्वाय । सोमायाम्
इत्यर्थः । ततः सेक्तेव कोशम् सेक्ता पूरकः पुमान् कोशम् इति
यथा सिञ्चति पूरयति वदकादिना एवं पिवन्थै इन्द्रस्य पानाय ।
ॐ पा पाने इत्यस्य तुमर्थे शब्देन मृत्ययः । शित्वात् पिबादेशः ।

निरवाद् आद्युदात्तः ॐ । सिसिचे सिञ्चति अध्वर्युः सोमरसम् ।
 सामर्थ्याद् ग्रहादिष्विति लभ्यते । ते च सिक्ताः प्रियाः हृद्याः
 स्वादवः सोमासः सोमाः मदाय इन्द्रस्य हर्षाय मदक्षिणित्वाद-
 क्षिण्येन इन्द्रं सम् अभ्यावृत्रन् सम्यग् अभिमुखा वर्तन्ते सम-
 भिव्याप्नुवन्ति । ॐ वृत्तु वर्तने । लङि “बहुलं छन्दसि” इति श्लुः ।
 व्यत्ययेन परस्मैपदम् । “बहुलं छन्दसि” इति भेकदागमः ॐ ॥
 इति अष्टमं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवके लिये द्रोणकलश सोमरससे चारों ओरसे भरा
 हुआ रक्खा था-होम करनेके लिये भरा हुआ रक्खा था जैसे
 सेचक पूरक पुरुष मशकको जल आदिसे पूर्ण करता है, इसी
 प्रकार अध्वर्यु इन्द्रके पीनेके लिये सोमरसको ग्रहादिकोंमें सिक्त
 करता है, वे भरे हुए (सिक्त) स्वादु सोम इन्द्रदेवके हर्षके लिये
 चतुरतासे इन्द्रदेवकी ओरको अभिमुख होकर व्याप्त होजाते हैं ३

अष्टम सूक्त समाप्त (६२४)

“तं वो दस्ममृतीपहम्” इत्यादिचत्वारि सूक्तानि माध्यन्दिन-
 सवने ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि । चतुर्थसूक्तस्यान्तिमा
 “ऋन्नीषी वज्री” [२०. १२. ७] इत्येषा ऋक् शस्त्रयाज्या ।
 “तं वो दस्ममृतीपहम्” [१] “तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” [३]
 इति मगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । “उदु त्ये मधुमत्तमाः” [२०. १०. १]
 इति साममगाथः । “इन्द्रः पूर्वित्” [२०. ११] इति सूक्तम्
 उक्थमुत्थम् । “उदु ब्रह्माणि” [२०. १२] इति सूक्तं पर्याप्त-
 संज्ञम् । “एवेदिन्द्रम्” [२०. १२. ६] इति परिधानीया । एतद्
 सर्वं चेताने सूत्रितम् । “तं वो दस्ममृतीपहं तत् त्वा यामि सुवी-
 र्यम्” इति [वै० ३. १२] ॥

। “तं वो दस्ममृतीपहम्” आदि चार सूक्त माध्यन्दिनसवनमें
 ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होते हैं । चतुर्थ सूक्तकी अंतिम

“ऋजीपी वज्री” (२० । १२ । ७) ऋचा शस्त्रयाज्या है । “तं वो दस्ममृतीपहम्” (१) “तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” (३) ये मगाय स्तोत्रियानुरूप है । “उदु त्वे मधुमत्तमाः” (२० । १० । १) यह साममगाय है । “इन्द्रः पूभित्” (२० । ११) यह सूक्त उक्थमुन्व है । “उदु ब्रह्माणि” (२० । १२) सूक्त पर्याप्त कहलाता है । “एवेदिन्द्रम्” (२० । १२ । ६) यह परिधानीया है । इस सबको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तं वो दस्ममृतीपहम् तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” (वैतानसूत्र ३ । १२) ॥

तत्र प्रथमा ॥

तं वो दस्ममृतीपहं वसोर्भिन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ?

तम् । वः । दस्मम् । ऋतिऽस्तहम् । वसोः । मन्दानम् । अन्धसः ।

अभि । वत्सम् । न । स्वसरेषु । धेनवः । इन्द्रम् । गीऽभिः ।

नवामहे ॥ १ ॥

हे यजमानाः वः युष्मदर्थं युष्मद्यागनिष्पत्त्यर्थं युष्मदभिमत-फलार्थं वा तं प्रसिद्धम् इन्द्रम् अभिलक्ष्य गीर्भिः स्तुतिप्रकाशिकाभिर्ऋग्भिः नवामहे स्तुम इति संबन्धः । कीदृशम् इन्द्रम् । दस्मम् दर्शनीयम् । तत्तत्फलार्थिभिरवरयं सेवनीयम् इत्यर्थः । ऋतीपहम् । अर्तेऽर्तिशब्दः । आर्तेरभिभवितारम् नाशकम् । ❀ “सहेः पृतनर्ताभ्यां च” इत्यत्र सहेरिति योगविभागात् पचम् ❀ । तथा वसोः वासकस्य अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य । पानेनेति शेषः । मन्दानम् मन्दमानम् । स्तुतौ दृष्टान्तम् आह । वत्सं न स्वसरेषु धेनवः । स्वसरेषु स्वयं सरन्तीति वा स्वः आदित्यः स एनानि सारयतीति वा स्वसराण्यहानि । तेषु आगच्छत्सु निर्ग-

च्छन्मु वा । सायंप्रातःकालेऽप्यित्यर्थः । तेषु धेनवः प्रभूतेन पयसा
प्रीणयिष्यो गावः अभिनवमसवा वा ता वत्सं न । यथा वत्सं
स्तनप्रदानाय दम्भाशब्दम् उर्ध्वर्ध्वशः कुर्वन्ति तद्वत् ॥

हे यजमानों ! हम तुम्हारे यागकी पूर्णताके लिये वा तुम्हारे
अभिगन फलके लिये इन्द्रदेवकी स्तुतिप्रकाशिका वाणियोंसे स्तुति
करते हैं । यह इन्द्रदेव दर्शनीय है अर्थात् फलाभिलाषियोंको
इनका दर्शन अवश्य करना चाहिये और यह आर्तिका नाश करने
वाले हैं । और यह वासक सोमरूपी अन्नके पानसे आनन्दमें
भरे रहते हैं । जैसे सूर्य दिनको करता है उन दिनोंके आने जाने
के समय धेनुएँ हंभा २ करती हुई बछड़ोंकी ओरको दूध पिलानेके
लिये दौड़ती हैं, इसी प्रकार हम भी (सोम पिलानेके लिये)
इन्द्रकी ओर स्तुतिवाणियोंसे दौड़ते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

द्युत्तं मुदानुं तविपीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजंसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे
यत्तम् । सुदानुम् । तविपीभिः । आश्रुतम् । गिरिम् । न । पुरु-
भोजंसम् ।

क्षुमन्तम् । वाजम् । शतिनम् । सहस्रिणम् । मक्षू । गोमन्तम् ।
इमहे ॥ २ ॥

यत्तम् दीप्तं सुदानुम् शोभनदानं विशिष्टदानार्हं तविपीभिः
बलेः आश्रुतम् आच्छन्नम् । यत्तमदम् इत्यर्थः । गिरिं न पुरुभोज-
सम् । पुरु इति बहुनाम् । बहुनां प्रजानां भोगयोग्यं गिरिं न
पर्यतमिव । यथादुमिसे प्रजा जीवनाय बहुभिः कन्दमूलाद्यन्नेरु-

पेतं गिरिम् अर्ययन्ते तद्वत् । ॐ उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिसे नव
वृत्तयः इति हि मन्त्रवर्णः [नि० ६. ५] ॐ । अयम् वाजम्
ईमहे इत्यत्र दृष्टान्तः । तथा जुमन्तम् । ॐ जु शब्दे ॐ । शब्दो-
पेतम् । स्तुतिमन्तम् इत्यर्थः । यो लोके ब्रह्मो भवति स शब्दयत
इति प्रसिद्धम् । शतिनम् शतपुक्तं शतसंख्यानां प्रजानां पोषक-
त्वेन तद्वन्तम् । एवं सहस्रिणम् इत्येतदपि योज्यम् । अपरिमित-
प्राणिपोषकम् इत्यर्थः । तथा गोमन्तम् बह्वभिर्गोभिर्युक्तम् । एवम्
उक्तैर्विशेषणैर्विशिष्टं वाजम् अन्नं मज्जु शीघ्रम् ईमहे याचामहे ॥

दीप्तिमय, सुन्दरतासे दान करने योग्य, बलप्रद, स्तुतिके पात्र,
सैंकड़ों और सहस्रों प्रजाओंका पोषण करने वाले और बहुतसी
गौओंसे युक्त धनकी हम इस प्रकार प्रार्थना करते हैं जिस प्रकार
दुर्भिक्षमें प्रजाएँ जीवनके लिये बहुतसे कन्द मूल आदि अन्नोंसे
सम्पन्न पर्वतकी प्रार्थना करते हैं । [निरुक्त ६ । ५ में कहा भी
है, कि—“उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिक्ते नव वृत्तयः ।”] ॥ २ ॥

तृतीया ॥

तत् त्वां यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धनें हिते येन प्रस्कण्वमाविंथ ३

तत् । त्वा । यामि । सुवीर्यम् । तत् । ब्रह्म । पूर्वचित्तये ।

येन । यतिभ्यः । भृगवे । धनें । हिते । येन । प्रस्कण्वम् । आविंथ ३

हे इन्द्र तत् वक्ष्यमाणलक्षणं सुवीर्यम् शोभनवीर्यपितं ब्रह्म
परिवृढम् अन्नं त्वा त्वां यामि याचे । ॐ वर्णलोपरद्धान्दसः ।

“तत् त्वा यामीति द्विवर्णलोपइति हि यास्कः [नि० २. १] ॐ ।

उक्तमेवार्थं पुनराह इतरेभ्यः पूर्वलाभाय । तत् उक्तलक्षणं ब्रह्म
अन्नं पूर्वचित्तये पूर्वप्रज्ञानाय । यामीति संबन्धः । तद् इत्युक्तम् ।

कीदृक् तद् इत्याह । येन ब्रह्मणा अन्नेन यतिभ्यः कर्मभ्यो निवृत्तेभ्यः सकाशाद् आहत्य भृगवे एतन्नामकाय महर्षये धने दिते अभिमते सति तं भृगुं ग्रीणितवान् असि । यद्वा येन सुवीर्येण अन्नेन यतिभ्यः नियतिमद्भयः कर्मसु नियतेभ्यः अन्येभ्यो महर्षिभ्यः तदर्थं धने दिते सति परितोषितवान् असि । तथा भृगवे एतन्नामकाय महर्षये च । येन च धनेन मस्कएवम् कएवस्य पुत्रम् एतन्नामानम् अपिम् आविष ररक्षिष ॥

हे इंद्रदेव ! मैं आपसे सुन्दर वीर्यसम्पन्न दृढ़ अन्नकी याचना करता हूँ । उस अन्नको पूर्वमज्ञानके लिये याचना करता हूँ । जिस धनके देने पर नियम वालोंको और भृगु अपिको शांति प्राप्त हुई थी और जिस धनसे आपने कएव नामक अपिके पुत्र मस्कएव अपिकी रक्षा की थी उस धनकी हम आपसे याचना करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनां समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णिं ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीनुचक्रदे
येन । समुद्रम् । असृजः । महीः । अपः । तत् । इन्द्र । वृष्णिं । ते । शवः ।
सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । सम्नशे । यम् । क्षोणीः ।
अनुचक्रदे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र येन शवसा बलेन समुद्रम् । समभिद्रवन्त्येनम् आप इति समुद्रः उदधिः । तं प्रति महीः महतीः अनिमभूता अपः समुद्रपूर्तिपर्यन्तानि उदकानि असृजः स्पृष्ट्यादीं स्पृष्टवान् असि । तत् तादृक् ते शवः बलं वृष्णि वर्षकं सर्वेषाम् अभिमतप्रदातु ।

भवतीति शेषः ॥ अयं परोक्षम् आह । अस्य इन्द्रस्य स महिमा बहुभिरुदकैः समुद्रपूर्त्यादिलक्षणः सद्यः तदानीमेव न संनश्ये परैर्न सम्यग् व्याप्तुम् अर्हः । महिम्न आनन्त्याद् अनन्यसाधारणत्वाच्चेति भावः । ॐ नशतिर्व्याप्तिकर्मा । कृत्यार्थे केन प्रत्ययः ॐ । यं महिमानं क्षोणीः । क्षोणी पृथिवी । तेन तन्निष्ठः प्राणिनिकरो लक्ष्यते । अनुचक्रटे अनुक्रन्दति । उद्घोषयतीत्यर्थः ॥

इति नवमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस बलसे आपने समुद्रमें निमित्त सृष्टि की आदि में समुद्रका पूर्णरूपसे भरने वाले जलोंकी सृष्टि की है । वह बल सबको अभिलषित फल प्रदान करता है । बहुतसे जलोंमें समुद्र-पूर्ण आदिकी इनकी महिमाको शत्रु नहीं पासकते इनकी महिमा का पृथिवीवासी वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

नवम सूक्त समाप्त (६२५)

“उदु त्ये” इति सूक्तस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

“उदु त्ये” सूक्तका विनियोग पहिले सूक्तके साथ कह दिया है।

तत्र प्रथमा ॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमांस ईरते ।

सत्राजितो घनमा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव १

उद् । ऊ० इति । त्ये । मधुमत्तमाः । गिरः । स्तोमांसः । ईरते ।

सत्राजितः । घनमाः । अक्षितोत्तयः । वाजयन्तः । रथा इवा

त्ये । तच्छब्दसमानार्थस्त्यच्छब्दः । ते वक्ष्यमाणाः स्तोमांसः

स्तोमाः त्रिवृदादयः प्रगीतमन्त्रमाख्यानि स्तोत्राणीत्यर्थः । ते

विशेष्यन्ते । मधुमत्तमाः अतिशयेन मधुगः वस्तुषद् वाच्यपि

माधुर्यम् अस्त्येव । ते उदीरते मादुर्भवन्ति । तथा गिरः अत्रापि

मधुगत्तमा इत्येतत् संबध्यते । अतिशयेन मधुरा गिरः शस्त्राश्रय-
भूना वाचः अमर्गीतमन्त्रसाध्यान्वपि शस्त्राणि उदीरन्ते । ते विशेष-
प्यन्ते । सत्राजितः सदैव एकवारमेव जयन्ति शत्रून् इति सत्रा-
जितः । तथा धनसाः धनानां संभक्तारो धनप्रदाः । ❀ “जन-
सनखनक्रमगमो विट्” इति विट् । “विड्वनोरजुनासिकस्यात्”
इति आच्चम् ❀ । एवम् अक्षितोत्तयः । क्षितं क्षयः । न विद्यते
क्षितं यासां ता अक्षिताः । अक्षिता ऊतयो येषां ते तथोक्ताः ।
सर्वदा रक्षका इत्यर्थः । ❀ “निष्ठायाम् अण्यदर्थे” इति पयुर्दासाद्
दीर्घाभावः । अत एव “क्षियो दीर्घात्” इति निष्ठानत्वाभावः ❀ ।
वाजयन्तः वाजम् अन्नम् इच्छन्तः । ❀ वयचि “नच्छन्दस्य-
पुत्रस्य” इति इत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः ❀ । तत्र दृष्टान्तः । रथा
इव । अत्र सत्राजितइत्यादिविशेषणानि दृष्टान्तेपि योजयितव्यानि ।
यथोक्तलक्षणा रथा यथा रथस्वामिनः प्रयोजनाय उदीरन्ते एवम्
इन्द्रस्य परितोपाय स्तोमा उदीरन्त इत्यर्थः ॥

ये आगे कहे जाने वाले अमर्गीतमन्त्रसाध्य त्रिष्टुप् आदि स्तोत्र
और अमर्गीतमन्त्रमाध्य शस्त्र आदिकी मधुर वाणियों मादुर्भूत
होरही हैं, ये धन प्रदान करने वाली हैं और एकवार ही शत्रुओं
को जीत लेती हैं, ये सदा रक्षक हैं और यह अन्न प्रदान करने
वाली हैं और रथ जैसे रथमें बैठने वालेके प्रयोजनके लिये दीढ़ता
है तैसे ही यह इन्द्रके संतोषके लिये प्रकट होती हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् २

कण्वाऽइव । भृगवः । सूर्याऽइव । विरवम् । इत् । धीतम् ।

आनशुः ।

इन्द्रम् । स्तोमेभिः । महयन्तः । आयवः । मियमेधासः । अस्वरन्

कण्वा इव कण्वगोत्रोत्पन्ना महर्षयोपि कण्वाः । ते यथा विरवम् व्याप्तं लोकत्रयस्वामिनम् । इत् शब्दः अव्यवहितेन इन्द्रम् इत्यनेन संबध्यते । धीनम् ध्यातं तत्तत्फलार्थिभिः सर्वैर्ध्यानोपलक्षितेन स्तोत्रेण विषयीकृतम् इन्द्रमित् इन्द्रमेव आनशुः स्तोत्रशस्त्रादिभिः प्राप्ताः । भृगवः । केवलतोपि भृगुशब्दः इवेन विशिष्टार्थः परिगृह्यते । भृगव इव ते यथा उक्तलक्षणम् इन्द्रम् आनशुः । सूर्या इव सूर्या धात्र्यमादयः । ते यथा स्वनियन्तारम् इन्द्रम् आनशुः । एवम् उक्तगुणकम् इन्द्रं मियमेधासः । येषां मेधाः मियभूतास्ते मियमेधाः । एतन्नामानः आयवः मनुष्या महर्षयः महयन्तः पूजयन्तः स्तोमेभिः स्तोत्रैः अस्वरन् शब्दम् अकुर्वन् । अस्तुवन्नित्यर्थः ॥

इति दशमं सूक्तम् ॥

कण्व गोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि जिस प्रकार, तीनों लोकोंके स्वामी, फलाभिलाषियोंके द्वारा ध्याये हुए इन्द्रको ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियोंसे प्राप्त होते हैं, जैसे धाता अर्धमा आदि सूर्य अपने नियन्ता इन्द्रको प्राप्त होते हैं अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करते हैं । और भृगुवंशी महर्षि जिस प्रकार इन्द्रकी शरणमें जाते हैं इसी प्रकार मियमेधा नामक मनुष्य पूजा करते समय स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

दशम सूक्त समाप्त (६२८)

“इन्द्रः पूर्भित्” इति सूक्तस्य उक्तो विनियोगः ॥

“इन्द्रः पूर्भित्” सूक्तका विनियोग पहिले कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रः पू॒र्भि॒दाति॑र॒द् दास॑म॒र्केर्वि॒दद्व॑सु॒र्दय॑मानो वि शत्रून्
 ब्रह्म॑जूतस्तन्वा वावृ॒धानो भूरि॑दात्र आ॒पृणा॑द् रोद॑सी
 उ॒भे ॥ १ ॥

इन्द्रः । पूऽभित् । आ । अतिरत् । दासम् । अर्केः । विदत्स्वसुः ।

दयमानः । वि । शत्रून् ।

ब्रह्मज्जूतः । तन्वा । ववृधानः । भूरि॑दात्रः । आ । अपृणत् ।

रोदसी इति । उ॒भे इति ।

इन्द्रो देवः पूर्भित् शत्रुपुर्गं भेत्ता दासम् उपक्षपयितारं शत्रुम्
 अर्केः अर्चनीयैः स्ववीर्यैः आतिरत् सर्वतो हिंसितवान् । सूर्या-
 त्मना वा अर्केः अर्चनीयं रश्मिभिः दासम् तपसः क्षपयितारं
 चासम् आतिरत् सर्वतो वर्धितवान् । प्रकाशितवान् इत्यर्थः ।
 किं कुर्वन् । विदद्वसुः लब्धधनः । शत्रुधनापहर्तेत्यर्थः । शत्रून्
 वृत्रादीन् वि दयमानः विशेषेण हिंसन् । ॐ तथा च यास्कः ।
 विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् इति हिंसाकर्मा इति [नि०४.१७] ॐ ।
 ब्रह्मजूतः ब्रह्मणा मभूनेन स्तोत्रेण अभिवृद्धः तन्वा शरीरेण ववृ-
 धानः वर्धमानः । ॐ वृधु वर्धने । कानचि रूपम् । संहितायाम्
 अभ्यासस्य “अन्येषामपि दृश्यते” इति दीर्घः ॐ । भूरिदात्रः ।
 दात्यनेन खण्डयति शत्रून् इति दात्रम् आयुधम् । मभूतायुध
 इत्यर्थः । यद्वा दीयत इति दात्रं धनम् । ववृधनः । उक्तगुणविशिष्ट
 इन्द्रः उभे रोदसी उभे घानापृथिव्यौ आपृणत् । व्यमोद् इत्यर्थः ॥

इन्द्रदेव शत्रुमोके नगरोंका नाश करनेवाले हैं । इन्होंने मृद-

बड़ी डालने वाले शत्रुओंको अपने प्रशसनीय वीर्योंसे नष्ट कर डाला है । यह शत्रुओंके घनको पाने वाले हैं । और वृत्र आदि शत्रुओंको इन्होंने विशंपरूपसे नष्ट कर डाला है, इनका शरीर मन्त्रसे बढ़ जाता है, इनके पास शत्रुओंको नष्ट करने वाले बहुत से आयुध हैं । ऐसे इन्द्रदेवने द्युलोक और पृथिवीलोक दोनोंको व्याप्त कर लिया है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मखस्यं ते तविपस्य प्र जूतिमियमि वाचममृताय भूपन्
इन्द्रं क्षितीनामसि मानुषीणां विशां देवीनामुत पूर्व-
यावां ॥ २ ॥

मखस्यं । ते । तविपस्यं । प्र । जूतिम् । इयमि । वाचम् । अमृ-
ताय । भूपन् ।

इन्द्रं । क्षितीनाम् । असि । मानुषीणाम् । विशाम् । देवीनाम् ।
उत । पूर्वयावां ॥ २ ॥

हे इन्द्र मखस्य मंहनीयस्य मखात्मकस्य वा तविपस्य । तवः
बलम् । अतिशयितबलस्य ते तव जूतिम् प्रेरयित्रीं वर्धयित्रीं वा
वाचम् स्तुतिलक्षणां प्रेयमिं प्रेरयामि । ॐ इयतिर्जुहोत्यादिः ।
“अतिपिपत्योश्च” इति अभ्यासस्य इत्त्वम् । “अभ्यासस्यासवर्णे”
इति इयङ् आदेशः । पादादित्वाद् अनिघातः । “अभ्यस्तानाम्
आदिः” इत्यानुदात्तः ॐ । किमर्थम् । अमृताय अमृतत्वाय अन्नाय
वा । किं कुर्वन् । भूपन् त्वाम् अलङ्कुर्वन् । ॐ भूप अलङ्कारे ।
शत्रुपत्ययः ॐ । हे इन्द्र यस्माद् मानुषीणाम् मनुषः संबन्धि
नीनां क्षितीनाम् प्रजानाम् उत अपि च देवीनाम् देवसंबन्धि

नीनां विशाम् मजानां पूर्वयावा पुरोगन्तासि । सर्वेषां प्राणिनां
श्रेष्ठो भवसीत्यर्थः । तस्माद् वाचम् इयमीति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं यज्ञस्वरूप परम-बली आपको बढ़ाने वाली
वाणीको अन्नके लिये विभूषित करता हुआ उच्चारण करता
हूँ । हे इन्द्र ! आप मनुष्योंकी और देवनाओंकी मजाके आगे जाने
वाले हैं । अर्थात् सर्वमें श्रेष्ठ हैं इस लिये मैं वाणीको धेरित
करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रो वृत्रमंवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनामभिनाद् वर्ष-
णीतिः ।

अहन् व्यंसमुशश्चग् वनेष्वविधेनां अकृणोद् राम्या-
णाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रः । वृत्रम् । अकृणोत् । शर्धनीतिः । प्र । मायिनाम् । अभि-
नात् । वर्षनीतिः ।

अहन् । विऽअसम् । उशश्चक् । वनेषु । आविः । धेनाः । अकृ-
णोत् । राम्याणाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवः शर्धनीतिः । शर्धः द्विसकं बलम् । ॐ अत्र अका-
रान्तरं ह्यन्दसम् ॐ । नस्य नीतिर्नयनं प्रापणं यस्य स तथोक्तः ।
शर्धं प्रति स्वबलप्राप्तक इत्यर्थः । तादृशः सन् वृत्रम् अपावरकं
मेघं सर्वतो व्याप्नुवानम् अहुरम् । ॐ वृत्रो मेघ इति निरुक्ता-
स्त्वाष्ट्रोसुर इत्येतिहासिका इति निरुक्तम् [नि० २. १६] ॐ ।
तम् अकृणोत् अरुधत् । तथा स एव इन्द्रः वर्षनीतिः । वर्ष इति

रूपनाम । अत्र अकारान्तः । तस्य नेता । युद्धे शत्रुं प्रति स्वशरीर-
प्रापक इत्यर्थः । अनेन तस्य गतम् अयन्नम् उक्तं भवति । तादृशः
सन् मायिनाम् मायावताम् असुराणाम् अत्र सामर्थ्याद्विघ्नानीति
गम्यते । यद्वा । ॐ द्वितीयार्थे पृष्ठी ॐ । मायिन इत्यर्थः । प्राप्ति-
नात् प्रावधीत् । ॐ मीन् हिंसायाम् । “मीनातेर्निगमे” इति
ह्रस्वत्वम् ॐ । इन्द्रो वृत्रम् अष्टुणोत् इत्युक्तमेवार्थं विस्पष्टम् आह ।
उशधक् कामयित्वा शत्रुदाहकः । यद्वा उशतां युद्धं कामयमानानां
शत्रूणां दाहक इन्द्रः वनेषु उदकेषु निमित्तभूतेषु वृत्रम् आवरकं
मेघं व्यंसम् विगतांसं यथा भवति तथा विदार्य अहन् अवधीत् ।
ततो राम्याणाम् रमणीयानाम् अपाम् अर्पाय धेनाः । बाह्ना-
मैतत् । वाचः स्तनितानि आविरकृणोत् प्रकाशम् अकार्षीत् ॥
वृत्रासुरपक्षे वनेषु आच्छन्नं वृत्रम् उशधक् सन् व्यंसम् विगतांसं
कृत्वा अंसाद्यद्भानि विन्द्ध्य अहन् अवधीत् । राम्याणाम् रम-
णार्हाणां क्रीडासाधनानां तद्योपिताम् । ॐ रामम् अर्हतीत्यर्थे
“द्वन्दसि च” इति यत् प्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः ॐ ।
आर्निवाच आविरकृणोद् इत्यर्थः । अथ वा राम्याणाम् क्रीडा-
र्हाणां रात्रीणां संबन्धिनीर्धनागाः । रात्रौ तमसा वृताः असुरा-
पहृता गा इत्यर्थः । ताः आविरकृणोत् असुरान् अपहृत्य ताः
स्पष्टाश्चकार । असुरैर्देवानां गवादिलक्ष्णधनम् अपहृत्य रात्रि-
प्रवेशमूर्त्तिरीयके । “अहर्देवानाम् आसीद् । रात्रिरसुराणाम् ।
तेसुरा यद् देवानां वित्तं वेद्यम् आसीत् तेन सह रात्रिं प्राविशन्”
इति [तै० सं० १. ५. ६. २] ॥

इन्द्रदेव शत्रु पर अपने हिंसक बलको डाल देते हैं. ऐसे इंद्रने
वृत्र (असुर वा आवरक मेघ) को रोक लिया था और युद्धमें
अपने शरीरको शत्रुकी ओर लेजाने वाले इंद्रने मायावी असुरों
को नष्ट कर डाला था, कामना करके शत्रुओंको नष्ट कर डालने

वाले इन्द्रने वनसे घिरे हुए वृत्रासुरको कंधों रहित करके नष्ट कर डाला था और क्रीड़ा करनेके योग्य रात्रियोंमें पणियोंकी हरी हुई गाँधोंकी (शत्रुसंहार करके) प्रकट कर दिया था ३ चतुर्थी ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिरिभः पृतना अभिष्टिः ।

प्ररोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्वृहते रणाय
इन्द्रः । स्वःऽसाः । जनयन् । अहानि । जिगाय । उशिक्षभिः ।
पृतनाः । अभिष्टिः ।

प्र । अरोचयत् । मनवे । केतुम् । अहाम् । अविन्दत् । ज्योतिः ।
वृहते । रणाय ॥ ४ ॥

स्वर्षाः स्वर्गस्य लम्भकः । ॐ पणु दानं । विष्णु । “जन-
सनखनां सन्भ्रूलोः” इति आत्वम् । “सनोत्तेरनः” इति पत्वम् ।
“अहरादीनां पत्यादिपूषसंख्यानम्” इति रत्वम् ॐ । अभिष्टिः
अभिगन्ता शत्रूणाम् अभिभविता । ॐ इषुगर्ता । “मन्त्रे वृष०”
इत्यादिना क्तिन सदात्तत्वम् । स हि भावपरोपि भवितारं लज्ज-
यति । “तितुवत्तयास०” इत्यादिना इट्प्रतिषेधः । शकन्धादिस्त्वात्
पररूपत्वम् । कुटुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ॐ । तादृश इन्द्रः अहानि
जनयन् प्रादुर्भावयन् नमोनिवर्तनेन युद्धानुकूलानि कुर्यन् उशिरिभः
युद्धं काषण्णानैरशुरैः सह युद्धं कृत्वा पृतनाः तेषां सेना जिगाय
अजैगीत् । ति च । मनवे मनुयाय । जातावेकवचनम् । मनुष्ये-
भ्यो यजमानेभ्यः वृहते महते रणाय रमणाय क्रीडनाय । प्रभूत-

वैदिकलौकिकव्यवहारायेत्यर्थः । तदर्थम् अह्नां वंतुम् प्रज्ञापकम्
आदित्यं प्रारोचयत् दिवि अदीपयत् । ततो ज्योतिः सर्वपदार्थ-
प्रकाशकं तेजः अविन्दत् लब्धवान् ॥

स्वर्गलो मात कराने वाले, शत्रुघोका अभिभव करने वाले
इन्द्रदेवने दिनों लो प्रकट करके (तमको दूर कर उनको युद्धके
अनुकूल करके) युद्धाभिलाषी अशुरोंने युद्ध लर उनसी मेनाको
जीत लिया था और उन्होंने यजमान मनुष्योंके लौकिक वैदिक
व्यवहारोंके लिये दिनके प्रज्ञापक आदित्यको द्यलोकमें दमका
रक्खा है । इस प्रकार सर्वपदार्थप्रकाशक तेजको प्राप्त कर
रक्खा है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरुणि
अचेनयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरुच्छुक्रमा-
साम् ॥ ५ ॥

इन्द्रः । तुजः । बर्हणाः । आ । विवेश । नृवत् । दधानः ।
नर्या । पुरुणि ।

अचेनयत् । धियः । इमाः । जरित्रे । प्र । इमम् । वर्णम् । अति-
रत् । शुक्रम् । आसाम् ॥ ५ ॥

इन्द्रो देवः बर्हणाः अभिवृद्धाः तुजः हिंसिकाः शत्रुसेनाः ।
⊗ तुज हिमायाम् । क्विप् । धातुस्तरः ⊗ । आ विवेश प्रावि-
क्षत् । तत्र दृष्टान्तः । नृवत् मनुष्य इव स यथा शत्रुमेना युद्धार्थं
प्रविशति तद्वत् । किं कुर्वन् । नर्या नर्याणि नरेभ्यः ऋत्विगादि-
रूपेभ्यो मनुष्येभ्यो हितानि पुरुणि बहूनि । सामर्थ्याच्छत्रुघना-

नीति गम्यते । दधानः धारयन् । ॐ दधातेः शानचि रूपम् ।
 “अध्यस्तानाम् आदिः” इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । किं च इमाः
 परिदृश्यमानाः प्रसिद्धा धियः । धीजनकत्वात् सर्वेध्यायमान-
 स्वाच्च धिय उपसः । धीशब्दस्य उपःपरत्वं मन्त्रान्तरे । “शुक्र-
 वर्णामुदु नो यंसते धियम्” इति [ऋ० १४३. ७] । जरित्रे
 स्तोत्रे स्तोतृणाम् अर्थाय अचेतयत् प्राज्ञापयत् । उपसि हि मनु-
 ज्ञायां स्तोत्रशस्त्रादीनि प्रवर्तन्ते । उक्त एवार्थः प्रकारान्तरेण
 उच्यते । आसां धियाम् उपसाम् इमं प्रसिद्धं शुक्रवर्णं मातिरत्
 मानर्धयत् । ॐ आसाम् । “इदमोन्वादेशेशनुदात्तस्वृतीयादी”
 इति इदमः अश् आदेशः । सोऽप्यनुदात्तः । मत्स्ययश्च सुप्त्वाङ्
 अनुदात्तः । अतः सर्वानुदात्तम् आसाम् इति पदम् ॐ ॥

मनुष्य युद्ध करनेके लिये जिस प्रकार शत्रुसेनामें प्रवेश करता
 है, तिसी प्रकार इन्द्रदेव भी ऋत्विज आदिरूप मनुष्योंके बहुत
 से हितोंको और शत्रुधनोंको ग्रहण करनेके लिये बढ़ी हुई शत्रु-
 सेनाओंमें घुस जाते हैं, और (सबसे ध्यान करने योग्य इन धी
 अर्थात्) उपायोंको स्तोत्राओंके लिये प्रकट करते हैं [उपःकाल
 के होने पर ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियाँ होती हैं, इसी बातको
 बड़ाते हैं कि—] इन उपायोंके शुक्रवर्णको इन्द्रदेव बड़ाते हैं ॥५॥

पृष्ठी ॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि ।
 वृजनेन वृजिनान्तसं पिपेप मायाभिर्दस्यूरभिभूत्योजाः ६

महः । महानि । पनयन्ति । अस्य । इन्द्रस्य । कर्म । सुकृता ।

पुरुणि ।

वृजनेन । वृजिनान् । सम् । पिपेय । मायाभिः । दस्यून् । अभि-

भूतिऽश्रोजाः ॥ ६ ॥ 1264 13-1425

महः मंहनीयस्य महतो गुणैः महद्भ्यस् वा । छि मह पूजा-
याम् । चिक्प् । “सावेकाचः०” इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् ।
महच्छब्दस्य वा । छान्दसः शतृप्रत्ययलोपः छि । अस्य प्रसिद्धस्य
इन्द्रस्य महानि मंहनीयानि सुकृता सुकृतानि सुष्ठु संपादितानि
पुरुणि बहूनि कर्म कर्माणि पनयन्ति स्तुवन्ति स्तोतारः । तेषु
एकं कर्म अत्रोपवर्ण्यते । अभिभूत्योजाः अभिभूतिरभिभवः ।
अभिभवितु ओजो बलं यस्य । अयं वा शत्र्वभिभवे समर्थम्
ओजो यस्य स तथोक्तः । छि अभिभूतिरभिभवनम् । भावे
क्तिन् । “तादौ च निति०” इत्यभेः प्रकृतिस्वरत्वम् । अभि-
भूता ओजः अस्येति “सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिः” इति
समासः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः छि । तादृश इन्द्रो वृजनेन
आवर्जकेन बलेन आयुधेन वा वृजिनान् पापरूपान् असुरान् सं
पिपेय सम्यक् चूर्णीकृतवान् । तथा मायाभिः स्वशक्तिभिः दस्यून्
उपक्षपयितुं शत्रून् सं पिपेय ॥

इन पूजनीय इन्द्रदेवके प्रशंसनीय पूर्णरूपसे पूर्ण किये हुए
बहुतसे कर्मोंकी स्तोता पुरुष स्तुति करते हैं । (उनमेंका एक
कर्म यहाँ वर्णन किया जाता है, कि-) जिनमें शत्रुओंको दाने
की शक्ति है ऐसे इन्द्रने अपने आवर्जक आयुधसे पापरूप असुरों
को भली प्रकार चूर्ण कर डाला है । तथा अपनी शक्तियोंसे
छोप करने वालोंको पीस डाला है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

युधेन्द्रो महा वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्पणिप्राः ।

विवस्वतः सद्ने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो
गृणन्ति ॥ ७ ॥

युधा । इन्द्रः । महा । वरिवः । चकार । देवेभ्यः । सत्स्पतिः ।
चर्पणिष्ठाः ।

विवस्वतः । सद्ने । अस्य । तानि । विप्राः । उक्थेभिः । कवयः ।
गृणन्ति ॥ ७ ॥

इन्द्रो देवः युधा युद्धेन । ॐ युध संपहारे । भावे संपदादि-
लक्षणः विवप् । “सावेकाचः०” इति विभक्तेरुदात्तता ॐ । महा
स्वमहत्त्वेन । अन्यनैरपेक्ष्येत्यर्थः । देवेभ्यः । दीन्यतिरत्र स्तु-
त्यर्थः । स्तोतृभ्यः तेषामर्थाय वरिवः । धननामैतत् । वरणीयं
धनं चकार कृतवान् । ॐ वृञ् वरणे । इत्यस्य यङ्लुकि रूपम् ।
“ऋतश्च” इति अभ्यासस्य रिगागमः । तदन्ताद् असुन् । बाहु-
लकाद्विलोपः । नित्स्वरः ॐ । इन्द्रो विशेष्यते । सत्पतिः सतां
कर्मानुष्ठापिनां यजमानानां पालकः चर्पणिष्ठाः चर्पणयो मनुष्याः ।
तेषाम् अभिमतफलपूरकः । कुत्र वरिवश्चकारेति उच्यते । विव-
स्वतः । विवस्वान् आदित्यः । तस्य सद्ने स्थाने वृष्टिप्रतिबन्ध-
कान् अमुरान् पराजित्य वृष्टिलक्षणं धनं चकारेत्यर्थः । अथ वा
एतद् उत्तरत्र संबध्यते । विवस्वतः विशेषेण अग्निहोत्रादिकर्मार्थं
वसतो यजमानस्य सद्ने गृहे । ॐ विपूर्वाद् वस निवासे इत्य-
स्मात् संपदादिलक्षणो भावे विवप् । तद् अस्यास्तीति मतुप् ।
“बाहुषवाचाः०” इत्यादिना तभ्य वत्वम् । मत्पयस्य पित्र्वाद्
अनुदात्तत्वे धातुस्वर एव । अवग्रहाभावश्चान्दसः ॐ । अस्य
उक्तमहिमोपेतस्य इन्द्रस्य तानि प्रसिद्धानि वृषवधादिलक्षणानि
कर्माणि विप्रा मेधाविन ऋत्विजः । कीदृशाः । कवयः क्रान्त-

महाः अनूचाना वा । “ये वा अनूचानास्ते कवयः” इति [ऐ०
ब्रा० २. २] श्रुतेः । उक्थेभिः । उक्थैः आज्यप्रजगादिशस्त्रैः
गृणन्ति स्तुवन्ति ॥

इन्द्रदेवने किसी दूसरेकी अपेक्षा न रख अपनी ही महिमासे
पुष्ट करके, स्तोताओंके लिये धनको किया है । यह इन्द्रदेव
कर्मानुष्ठानी सज्जन यजमानोंके पालक हैं । मनुष्योंके अभिल-
षित फलको देने वाले हैं । (कहाँ ?) विशेषरूपसे अग्निहोत्र
आदि कर्मके लिये ही बसने वाले यजमानके घरमें (यह उक्त
फल करते हैं) इन महिमावान् इन्द्रके वृत्रवध आदिक प्रसिद्ध
कर्मोंका विद्वान् पुरुष उक्थोंसे गाँन करते हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां सस्र्वांसं स्वर्गपथं देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनुधीरणासः ॥
सत्रासहम् । वरेण्यम् । सहः । द्याम् । सस्र्वांसम् । स्वर्गः । अपः ।
च । देवीः ।

ससान । यः । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । इन्द्रम् । मदन्ति ।
अनु । धीरणासः ॥ ८ ॥

सत्रासाहम् । सह त्रायते स्वामिनम् इति सत्रा सेना । शत्रु-
सेनाया अभिभक्षितारम् अथ वा सत्रासहम् एकप्रपत्नेनैव शत्रु-
सेनाया अभिभक्षितारम् । ॐ यह मर्षणे । छान्दस उपधावृद्ध-
भावः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । वरेण्यम् सर्वैः
स्वस्वफलार्थिभिर्वरणीयं सेवनीयं सहोदाम् । सह इति बलनाम ।
बलस्य दातारम् तथा स्वः स्वर्गस्य देवीः देवनशीला अपथ
सस्र्वांसम् । ॐ वन पण संभक्ता । अस्य क्वर्मा इडभावे नका-

रत्नोपे रूपम् ॐ । एवंमहानुभावम् इन्द्रं धीरणासः धीरणाः धीषु
स्तुतिषु कर्मसु वा रणं रमणं येषां ते तथोक्ताः तादृशस्तोतारो
यजमानाश्च इन्द्रम् अनु मदन्ति अनुक्रमेण हर्षयन्ति स्तुत्या हवि-
रादिना च । इन्द्रमेव विशिनष्टि । यं इन्द्रः पृथिवीम् विस्तीर्णा
धाम् दिवम् इमां पृथिवीं च द्यावापृथिव्यां सप्तान देवेभ्यो मनुष्ये-
भ्यश्च प्रादात् । तम् इन्द्रं मदन्तीति संबन्धः ॥

जो शत्रुसेनाको एक बार ही दबा देते हैं, सब फल चाहने
वाले अपने २ लिये जिनका वरण करते हैं, जो बलदाता हैं, जो
स्वर्गका और जलोंका सेवन करने वाले हैं, जिन इन्द्रदेवने इस
विस्तीर्ण पृथिवीको और धल्लोकको देवता और मनुष्योंके लिये
प्रदान किया है, ऐसे महानुभाव इन्द्रको स्तुतियोंमें रमण करने
वाले स्तोता और यजमान स्तुति और हवि-आदिसे प्रसन्न
करते हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सप्तानात्प्रां उत सूर्यं सप्तानेन्द्रः सप्तान पुरुभोजसं
गाम् ।

हिंस्त्रययमुतभोगं सप्तान हत्वी दस्यून् प्रायं वर्ण-
मावत् ॥ ९ ॥

सप्तान् । अत्यान् । उत । सूर्यम् । सप्तान् । इन्द्रः । सप्तान् । पुरु-
भोजसम् । गाम् ।

हिंस्त्रययम् । उत । भोगम् । सप्तान् । हत्वी । दस्यून् । य ।
आर्यम् । वर्णम् । आवत् ॥ ९ ॥

अत्यान् अतनाहान् अरवान् । उपलक्षणम् एतत् । सुरगग-

जोषादिकानि वाहनानि प्राणिनां व्यवहाराय इन्द्रो देवः ससान
 मादात् । ॐ पणु दाने । लिटि रूपम् ॐ । उत अपिच सूर्यम्
 सर्वस्य प्रकाशकं देवं प्राणिनां व्यवहारार्थं ससान । एवं पुरुभो-
 जसम् पयोदध्यादिलक्षणबहुभकारभोगसाधनां बहुविधप्राणिभो-
 गसाधनां वा गाम् । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । गाः ससान ।
 एतन्महिष्यादेरपि उपलक्षणम् । उत अपिच हिरण्यम् हिरण्यमयं
 हिरण्यविकारात्मकं भोगम् भोगसाधनं कटकमुकुटादिकं ससान ।
 ॐ हिरण्यशब्दाद् विकारार्थं “मयद्वैतयोः” इति विहितस्य
 छन्दसि विषये “ऋत्पवास्त्ववास्त्वमाज्जीहिरण्ययानि च्छ-
 न्दसि” इति निपातनाद् मयटो मकारलोपः । प्रत्ययस्वरः ॐ ।
 किंच दस्यून् उपत्तपयितुं प्राणिविघातकान् असुरादीन् हत्वा
 हत्वा । ॐ हन्तेः त्वर्थे “स्नात्व्यादयश्च” इति निपातितः ॐ ।
 आर्यम् उत्तमं वर्णं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यात्मकं यजनादिकर्माधिकार-
 वन्तं भावत् प्रकर्षेण रक्षितवान् ॥

इन्द्रदेवने सदा गमन करने वाले घोड़े गज ऊँट आदिको
 प्राणियोंके व्यवहारके लिये प्रदान किया है । और सर्वप्रकाशक
 सूर्यदेवको भी प्राणियोंके व्यवहारके लिये प्रदान किया है ।
 और घृत दुग्ध आदि बहुतसे रूपोंमें प्राणियोंके उपभोगकी साधन
 गाँ भैंस आदिको भी प्रदान किया है और सुवर्णके बने हुए
 भोगसाधन मुकुट कंकण आदिको भी प्रदान किया है । और
 प्राणियोंका संहार करने वाले असुरोंको मार कर इन्द्रदेवने यह
 करनेके अधिकार वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य (आर्य) की
 बड़ी भारी रक्षा की है ॥ ६ ॥

दशमी ॥

इन्द्रोपधीरसनोदहानि वनस्पतीरसनोदन्तरिच्छम् ।

विभेदं बलं जुनुदे विवाचोयाभवद् दमिताभिकतूनाम् ।

इन्द्रः । ओषधीः । असनोत् । अहानि । वनस्पतीन् । असनोत् ।

अन्तरिक्षम् ।

विभेद । बलम् । जुनुदे । विवाचः । अयं । अभवत् । दमिता ।

अभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

उक्तमहिमोपेतः स एव इन्द्रः ओषधीः व्रीहियवादिका असनोत् प्राण्युपभोगार्थं सृष्ट्वा प्रादात् । तथा अहानि असनोत् दिवसान्यपि प्राण्युपभोगार्थं कल्पयित्वा प्रायच्छत् । एवं वनस्पतीन् तरुंश्चूतपनसाद्यान् असनोत् सृष्ट्वा प्रायच्छत् । एवम् अन्तरिक्षम् अन्तरा क्षान्ते भवति सर्वम् इत्यन्तरिक्षम् आकाशः । तदपि सर्वोपकारार्थम् असनोत् । किंच बलम् एतन्नामानम् असुरं विभेद अदारयत् । विवाचः विरुद्धा मतिकूला चाग्नेषां ते विवाचः । तानपि जुनुदे दूरं निराचकार । अयं अनन्तरम् अभिक्रतूनाम् । क्रतवः कर्माणि । अभिगतकर्मणाम् अनुष्ठितविरुद्धकर्मणां दुष्टानां दमितां शमयितां अभवत् अभूत् । अनेन प्राणिनाम् इष्टप्राप्तिम् अनिष्टपरिहारं च कृतवान् इत्युक्तं भवति ॥

पूर्वोक्तं महिमा वाले इन्द्रदेवने ही व्रीहि यव आदि औषधियों को प्राणियोंके भोगके लिये रच कर प्राणियोंको प्रदान किया है । दिनोंको भी प्राणियोंके उपभोगके लिये रच कर प्रदान किया है । आत्र आदि वनस्पतियोंको भी रच कर प्रदान किया है । और अन्तरिक्षको भी सबके उपकारके लिये दिया है । और शक्रने यलासुरको विदीर्ण कर डाला था और विरुद्ध बोलने वालोंको भी तिरस्कृत कर दिया था और विरुद्ध कर्मोंका अनुष्ठान करने वालोंको भी शमन कर दिया था । [इससे यह कहा है, कि-शक्रने प्राणियोंकी इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार किया है] ॥

एकादशी ॥

शुनं हुवेम मघवान्मिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं
 धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् । हुवेम । मघवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृतमम् ।
 वाजसातौ ।

शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊनये । समत्सु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्-
 जितम् । धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् शुनम् अभिवृद्धं सर्वैर्गुणैरुत्कृष्टम् । अथ वा शुनम्
 इति सुखनाम । सुखकरं वा । ॐ दुःश्रीरिव गतिवृद्धयोः । निष्ठायां
 “यस्य विभाषा” इति इट्प्रतिषेधः । यजादित्वात् संप्रसारणम् ।
 दीर्घाभावरञ्जान्दसः । “ओदितश्च” इति निष्ठानत्वम् । प्रत्यय-
 स्वरः ॐ । मघवानम् । मघम् इति धननाम । अनवन्तम् अस्मिन्
 एतस्मिन् भरे । भर इति संग्रामनाम भरणात् हरणाच्च । संग्रामे ।
 यद्वा ये ये संग्रामनामानस्ते सर्वे यज्ञनामान इति व्यपदेशाद् अस्मिन्
 भरे अस्मिन् यज्ञे वाजसातौ । वाजः अन्नम् । तस्य सातिर्लाभः
 अन्नलाभे निमित्तभूते । अथ वा एतद् भरविशेषणम् । वाजस्य
 सातिर्यस्मिन् तस्मिन् भरे नृतमम् नेतृत्वं संग्रामे पुरतो गन्तारं
 यज्ञस्य नेतारं वा शृण्वन्तम् आह्वानस्य श्रोतारम् उग्रम् उद्गूर्ण-
 बलं समत्सु संग्रामेषु वृत्राणि आवरकान् शत्रून् घ्नन्तम् हिंसन्तं
 धनानाम् शत्रुसंबन्धिनां संजितम् सम्यग्नेतारम् एवंमहानुभावम्
 इन्द्रम् ऊनये रक्षाय हुवेम आह्वयेम ॥

इति एकादशं सूक्तम् ॥

सुखदायक धनवान् इन्द्रको हम इस संग्राममें युलाते हैं (वा इस यज्ञमें युलाते हैं) हम जिसमें अन्नकी प्राप्ति होती है उस संग्राम (वा यज्ञ) में आह्वानको सुनने वाले प्रचण्ड बली इन्द्र को रक्षाके लिये युलाते हैं । संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करने वाले और धनोंको भली प्रकार जीतने वाले इन्द्रदेवको युलाते हैं ११

प्रथम अनुवाकमें एकविंश सूक्त समाप्त (६२७) ॥

“उदु ब्रह्माणि” इति सूक्तस्य विनियोग उक्तः ॥

“उदु ब्रह्माणि” इस सूक्तका विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्थं महया वसिष्ठ ।

आ यो विश्वानि शवसा तनानोपश्रोता म ईवतो
वचांसि ॥ १ ॥

उदु । ऊं इति । ब्रह्माणि । ऐरत । श्रवस्या । इन्द्रम् । समर्थम् ।
महय । वसिष्ठ ।

आ । यः । विश्वानि । शवसा । तनान । उपश्रोता । मे ।
ईवतः । वचांसि ॥ १ ॥

हे अश्विजः यूयं श्रवस्या श्रवस्यया । श्रयत इति श्रवः अन्नम् । तस्येच्छया ब्रह्माणि स्तोत्राणि उदैरत मेरयेत । हे वसिष्ठ यजमान समर्थं मयैर्मर्त्यैश्च त्विभिः सहिते । यद्वा मर्या मर्यादा । तत्सहिते यज्ञे इन्द्रं देवं महय पूजय । हनिरादिभिः साधनैरिति शेषः । एवम् आत्मानमेव परोक्षीकृत्य निर्दिदेश । य इन्द्रः शवसा बलेन विश्वानि भूतजातानि आ तनान वितस्तार । स इन्द्रः ईवतः गच्छतः परिचरतः । ॐ ईदु गती । विवप् । ईर्गमनम् । “तदस्यास्त्य-

स्मिन्०" इति मनुष्यः । "छन्दस्रिः" इति मनुष्यो वत्त्वम् । मनुष्यः
पित्वाद् अनुदात्तत्वे धातुस्वरः ॐ । तादृशस्य मे वचांसि स्तुति-
रूपाणि वाक्यानि उपश्रोता उपेत्य श्रोता । भवत्विति शेषः ॥

हे ऋत्विजो ! तुम अन्नकी इच्छासे मन्त्रोंका (स्तोत्रोंका)
उच्चारण करो । हे इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले यजमान ! आप
मर्त्यधर्मी ऋत्विजोंसे सम्पन्न यज्ञमें इन्द्रदेवकी इवि आदिसे पूजा
करिये । जिन इन्द्रदेवने अपने बलसे सब प्राणियोंको विस्तृत किया
है वह इन्द्र हम सेवा करने वालोंके स्तुतिरूप वाक्योंको सुनें ॥१॥

द्वितीया ॥

अयामि घोषं इन्द्र देवजामिरिज्यन्त यच्छुरुयो
विवाचि ।

नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदं ह्यस्यति पर्प्यस्मान्
अयामि । घोषः । इन्द्र । देवजामिः । इरज्यन्त । यत् । शुरुयः ।

विवाचि ।

नहि । स्वम् । आयुः । चिकिते । जनेषु । तानि । इत् । ऊंहांसि । अति ।
पर्पि । अस्मान् ॥ २ ॥

हे इन्द्र देवजामिः देवा जामयो वन्धवो यस्य स तादृशो घोषः
शब्दः उक्तलक्षणं स्तोत्रम् अयामि । अकारात्पर्यः । ॐ यम
उपरमे । कर्मणि चिण् ॐ । यत् यस्मात् कारणाद् विवाचि विग-
तवचसि नियमस्ये । अथवा विविधा मन्त्ररूपा वाचो यस्य तादृशे
यजमाने तस्मिन्निमित्तभूते सति शुरुयः शुचं रुन्धन्तीति शुरुयः ।
ॐ ककारलोपश्छान्दसः ॐ । जनिमृतिलक्षणशोकनिवर्तकाः
स्वर्गफलकाः सोमा इरज्यन्त अवर्धन्त । ॐ इरज् ईर्ष्यायाम् इति

धातुरत्र वृद्धयर्थः । अस्मात् कण्ठ्यादेर्यक् । सनादित्याद् धातु-
संज्ञायाम् अस्माद्धृ । “बहुलं छन्दसि” इति अटभावः । एका-
देशस्वरेण मध्योदात्तः छ । एवं स्तोत्रेण हविषा च इन्द्रं परि-
तोष्य अथ स्वाभिमतं याचते नदीत्यादिना । जनेषु मनुष्येषु ।
मनुष्याणाम् इत्यर्थः । यद्वा जनाः जननात् जन्मानि निमित्तभू-
तानि । तेषु सत्सु अयं जनो यजमानः स्वम् स्वकीयम् आयुः
आयुष्यं न चिकित्ते न ज्ञातवान् । एतावद् आयुष्यं ममास्तीति न
जानातीत्यर्थः । अतस्त्वदीययागाद्यनुष्ठानोपयोगार्थं दीर्घम् आयुः
प्रयच्छेति शेषः । क्लृप्तस्य शतसंवत्सरलक्षणस्यायुषोऽन्वीभावे
अंष्टसां कारणत्वात् तदसंस्पर्शं प्रार्थयेते । तानीत् तान्यपि आयुः
क्षपणहेतुत्वेन प्रसिद्धान्यपि अंष्टांसि पापानि अस्मान् त्वां संभ-
जमानान् अति अतिक्रम्य परि पालय ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं देवता जिसके बंधु हैं ऐसे घोष (स्तोत्र) का
उच्चारण करता हूँ, क्योंकि—इससे अनेक प्रकारकी मंत्ररूपा वाणियों
से सम्पन्न यजमानके निमित्त जन्ममरणकी निवृत्तिरूप स्वर्गफल-
प्रद सोम (याग) बढ़ते हैं [इस प्रकार स्तोत्र और हविसे इन्द्र
को संतुष्ट करके अपने अभिमत फलकी याचना करते हैं, कि—]
मनुष्योंमें रहता हुआ यह यजमान मेरी इतनी आयु है, इस बात
को नहीं जानता है । अतः आप इसको अपने यागके अनुष्ठानकी
उपयोगी आयुः प्रदान करिये । [पापोंके ही कारण सौ वर्षकी
पूर्ण आयुसे कम आयु होती है अतः पापोंसे शून्य रहनेकी प्रार्थना
करते हैं, कि—] आयुका नाश करनेमें प्रसिद्ध जो पाप हैं आप
अपना सेवन करने वालोंको उन पापोंसे दूर रखते हुए पालन करिये

तृतीया ॥

युजं रथं गवेपणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।

विवाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघ-
नवान् ॥ ३ ॥

युजे । रथम् । गोऽर्पणम् । हरिऽभ्याम् । उप । ब्रह्माणि ।
जुजुषाणम् । अस्थुः ।

वि । वाधिष्ट । स्यः । रोदसी इति । महिऽत्वा । इन्द्रः । वृत्राणि ।
अप्रति । जघनवान् ॥ ३ ॥

य इन्द्रो गवेषणम् गवां प्रापयितारं रथम् । ❀ “अवह् स्फो-
टायनस्य” इति अवह् आदेशः ❀ । हरिभ्याम् । हरी इन्द्रस्या-
साधारणावर्वा । ताभ्यां युजे युयुजे युनक्ति । यागसदनं प्राप्तुम्
इति शेरः । ब्रह्माणि अस्मदीयानि प्रवृद्धानि स्तोत्राण्यपि जुजु-
षाणम् सेवमानं सर्वैः सेव्यमानं वा इन्द्रम् उपास्थुः उपतिष्ठन्ते
सेवन्ते । स्यः स इन्द्रः महित्वा स्वमहत्त्वेन रोदसी द्यावापृथिव्यां
वि वाधिष्ट व्यवाधिष्ट । आचक्रामेत्यर्थः । किं च वृत्राणि स्वाव-
रकान् शत्रून् अप्रति न विद्यते प्रतिगतिः पुनःप्राप्तिर्येस्मिन् कर्मणि
तद् अप्रति । नद् यथा भवति तथा जघनवान् नाशितवान् ।
❀ हन्तेतिटः क्वसुः । अभ्यासस्य कृत्वम् । “विभाषा गमहन०”
इति इडभावः ❀ ॥

इन्द्रदेव गौओंको प्राप्त कराने वाले अपने रथमें अपने असा-
धारण अश्व हरी नामक घोड़ोंको यागगृहमें आनेके लिये जोतते
हैं । और हमारे स्तोत्र भी सर्वोंसे सेवनीय इन्द्रकी ही सेवा करते
हैं । इन इन्द्रदेवने अपनी महिमासे द्यावापृथिवीको दबा रक्खा
है । और इन इन्द्रदेवने अपने शत्रुओंको जिस प्रकार उन पर फिर
न जाना पड़े, इस प्रकार नष्ट कर डाला है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आपश्चित् पिप्यु स्तयो न गावो नक्षन्तुं जरि-
तारस्त इन्द्र ।

याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे
वि वाजान् ॥ ४ ॥

आपः । चित् । पिप्युः । स्तयः । न । गावः । नक्षन् । श्रुतम् ।
जरितारः । ते । इन्द्र ।

याहि । वायुः । न । नियुतः । न । अच्छ । त्वम् । हि । धीभिः ।
दयसे । वि । वाजान् ॥ ४ ॥

हे इन्द्र आपश्चित् आपोपि सोमाभिषवार्याः स्तयो न गावः
स्तयो वशा गाव इव पिप्युः अभिवृद्धा आसन् । ॐ प्यायी वृद्धौ ।
“प्यायः पी” इति पीभावः ॐ । हे इन्द्र ते तव जरितारः स्तो-
तार श्रुत्विजः श्रुतम् सत्यफलं यज्ञं नक्षन् प्राप्नुवन् । ॐ नक्ष
गता ॐ । यत एवम् अनो नः अस्माकं नियुतः नियोजनानि स्तो-
त्राणि अच्छ लक्ष्मीकृत्य याहि आगच्छ । तत्र दृष्टान्तः । वायुर्न
नियुतः । नियुतो वायोरश्वाः । वायुर्देवो यथा स्वीयान् अश्वान्
प्रति याति यज्ञदेशमाप्त्यर्थम् तद्वन् । त्वं हि त्वं खलु धीभिः कर्म-
भिस्तुष्टः सन् वाजान् । वाजः अन्नम् । अन्नानि वि दयसे ।
ॐ दयतिरत्र दानार्थः ॐ । अयच्छसि ॥

हे इन्द्र ! ये सोमके अभिषवके जल वशा गौ आदिकी समान
बढ़ गए हैं और हे इन्द्र ! आपकी स्तुति करने वाले श्रुत्विज
सत्यफल वाले यज्ञमें आ गए हैं, इस कारण आप हमारे स्तोत्रों

को ध्यानमें रख कर यज्ञभूमिमें इस प्रकार आइये जिस प्रकार वायुदेव यागमें जानेके लिये अपने नियुक्त नामक घोड़ोंकी ओर जाते हैं । आप कर्मोंसे सन्तुष्ट होकर अन्न प्रदान करते हैं ॥४॥

पञ्चमी ॥

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे
एको देवत्रा दयसे हि मर्तान् अस्मिन् सवने मादयस्व
ते । त्वा । मदाः । इन्द्र । मादयन्तु । शुष्मिणम् । तुविराधसम् ।
जरित्रे ।

एकः । देवत्रा । दयसे । हि । मर्तान् । अस्मिन् । शूर । सवने ।
मादयस्व ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ते अभिषवादिना संस्कृताः प्रसिद्धा मदा मदकराः सोमास्त्वा त्वाम् मादयन्तु मदयुक्तं कुर्वन्तु । कीदृशं त्वाम् । शुष्मिणम् बलवन्तं जरित्रे स्तोत्रे स्तोतुरर्थाय तुविराधसम् प्रभूतधनम् । किं च त्वं देवत्रा देवेषु मध्ये । ❀ “देवमनुष्य०” इत्यादिना सप्तम्यर्थे आप्रत्ययः ❀ । त्वम् एक एव मर्तान् मनुष्यान् दयसे हि दयां करोषि रक्षसि खलु । ❀ विश्वयोगाद् अनिघातः ❀ । मनुष्यरक्षणे त्वम् एक एव नान्यो देव इत्यर्थः । यस्माद् एवं तस्मात् हे शूर शौर्योपेत इन्द्र अस्मिन् सवने यागे माध्यंदिनसवने वा मादयस्व अभिमतप्रदानेन अस्मान् हर्षय स्वात्मानं वा सोमपानेन हर्षय ॥

हे इन्द्रदेव ! अभिषव आदिसे संस्कृत मद करने वाले सोम आपको हर्षित करें, आप बलवान् हैं, और स्तुति करने वालोंके लिये आपके पास बहुतसा धन है, और देवताओंमें आप एक

ही मनुष्यों पर दया करते हैं-उनकी रक्षा करते हैं । इस कारण है शूरतासम्पन्न शक्र ! आप इस माध्यन्दिनसवनमें अभिलषित फल देकर हमको दर्पित करिये ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रवाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्केः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातुगोमद्यूयपात स्वस्तिभिः
सदा नः ॥ ६ ॥

एव । इत् । इन्द्रम् । वृषणम् । वज्रवाहुम् । वसिष्ठासः । अभि ।
अर्चन्ति । अर्केः ।

सः । नः । स्तुतः । वीरवत् । धातु । गोमत् । यूयम् । पात ।
स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

उक्तां स्तुतिम् उपसंहरति । एव एवम् उक्तप्रकारेण वृषणम् वर्षकं कामानां वज्रवाहुम् वज्रं बाहौ यस्य स तादृशम् इन्द्रं वसिष्ठासः वसिष्ठा अर्केः अर्चनीयैः स्तोत्रैः अभ्यर्चन्ति अभिपूजयन्ति । स इन्द्रः स्तुतः स्तोत्रैः पूजितः सन् नः अस्मभ्यं वीरवत् बहुभिर्वीरैः पुत्रादिभिरुपेतं गोमत् बहीभिर्गोभिरुपेतं धनं धातु दधातु मयच्छतु । ॐ “बहुलं बन्दसि” इति श्लोकरभावः ॐ । हे देवा यूयं च इन्द्रम् अनुसृत्य नः अस्मान् स्वस्तिभिः क्षेमैः सदा पात रक्षत ॥

[अब इस स्तुतिका उपसंहार करते हैं, कि-] इस प्रकार कामनाओंकी वर्षा करने वाले, हाथमें वज्रको धारण करने वाले शक्रकी इन्द्रियोंको दमन करने वाले पुरुष स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं । स्तोत्रोंसे पूजित होते हुए इन्द्रदेव हमको बहुतसे पुत्र आदि

वीरों वाला, बहुतसी गोओं वाला धन प्रदान करें। और हे देवताओं ! तुम भी इन्द्रकी ओर ध्यान देकर हमारी रक्षा करो ६

पञ्चमी ॥

ऋजीपी वज्री वृषभस्तुरापाद्भुष्मी राजा वृत्रहा सोम-
पावा ।

युक्त्वा हरिभ्यामुप यासर्वाद् माध्यंदिने सवने
मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋजीपी । वज्री । वृषभः । तुरापाद् । शुष्मी । राजा । वृत्रहा ।
सोमपावा ।

युक्त्वा । हरिभ्याम् । उप । यासन् । अर्वाद् । माध्यंदिने । सवने ।
मत्सत् । इन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋजीपी प्रातर्माध्यंदिनसवनाभ्याम् अभिपत्रेण गतसारस्व-
तीयसवन उपयोद्धपमाणः सोम ऋजीपः । “तस्मात् तृतीयसवन
ऋजीपम् अभिपुण्वन्ति” इति [तै० सं० १. ६. ४] श्रुतेः ।
तद्वान् ऋजीपी । अनेन मवनत्रयेपि इन्द्रस्य सोमसम्बन्ध उक्तो
भवति । वज्री वज्रवान् वृषभः कामानां वर्पिता तुरापाद् । तुरा-
स्त्वरमाणाः शत्रवः । तेषाम् अभिभविता शुष्मी । शुष्मं शत्रुशो-
षकं वल्लम् । तद्वान् राजा देवेषु मध्ये क्षत्रियजातीयः सर्वस्य स्वामी
वा वृत्रहा वृत्रस्य हन्ता सोमपावा यत्रयत्र सोमाभिपवोस्ति तत्र-
नत्र नियमेन सोमस्य पाता एवमहानुभाव इन्द्रः हरिभ्याम् अस्वा-
भ्यां युक्त्वा रथं योजयित्वा अर्वाद् अस्मदभिमुखाञ्जनः सन् उप

यासत् उपागच्छतु गत्वा च अस्मिन् माध्यंदिने सवने मत्सत् अस्मा-
भिर्दत्तेन सोमेन माधतु ॥

इति द्वादशं सूक्तम् ॥

[मातःसवन और माध्यन्दिन सवनोंके द्वारा अभिषवसे गत-
सार तृतीय सवनमें उपयोगमें लाया जाने वाला सोम ऋजीप
कहलाता है । तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । ६ । ४ की श्रुतिमें कहा
है, कि—“तस्मात् तृतीयसवन ऋजीपम् अभिषुण्वन्ति ।—इस
लिये तृतीयसवनमें ऋजीपका अभिषव करते हैं” ऐसे ऋजीप
भाग वाले] ऋजीपी [इससे तीनों सवनोंमें इन्द्रका सोमसंबंध
बता दिया] वज्रधारी, कामनाओंकी पूर्ति करने वाले, त्वरा
करने वाले शत्रुओंको दवाने वाले, शत्रुशोषक बलसे सम्पन्न,
देवताओंमें राजा, वृत्रासुरका संहार करने वाले, और जहाँ कहीं
सोमका अभिषव हो तहाँ नियमपूर्वक सोमका पान करने वाले
इन्द्रदेव अपने हरि नामक अश्वोंसे रथको जोत कर हमारे अभि-
मुख आवें और माध्यन्दिनसवनमें हमारे दिये हुए सोमसे प्रसन्न
होवें ॥ ७ ॥

प्रथम अनुशाकमें द्वादश सूक्त समाप्त (६२८) ॥

उपोतिष्टोमादिषु क्रतुषु “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते” इत्याद्या-
स्तिस्र ऋचस्तेषामेव त्विजां त्रयाणां क्रमेण तार्तीयसवनिक्यः प्र-
स्थिनयाज्याः । सूत्रितं हि । “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पत इति
प्रस्थितयाज्याः” इति [वै० ३. १२] ॥

“ऐभिरग्ने” [४] इत्यनया आग्नीध्रः पात्रीवतग्रहं यजेत ।
सूत्रितं हि । “ऐभिरग्ने इत्युपांशु पात्रीवतस्य आग्नीध्रो यजति”
इति [वै० ३. १३] ॥

उपोतिष्टोम आदि क्रतुओंमें “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते”
इत्यादि तीन ऋचाएँ इन ही तीन ऋत्विजोंकी क्रमशः तार्तीय-

सवनिकी प्रस्थितयाज्या है । सूत्रमें भी कहा है, कि—“इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पति इति प्रस्थितयाज्याः” (वैतानसूत्र ३ । १२) ॥

“ऐभिरग्ने” इस चौथी ऋचासे आग्नीध्र पात्नीवतग्रहका यजन करे । इस विषयमें वैतानसूत्र ३ । १३ का प्रमाण है, कि—“ऐभिरग्ने इत्पुषांशु पात्नीवतस्य आग्नीध्रो यजति” ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेस्मिन् यज्ञे मन्दसाना
वृषणवसू ।

आ वां विशन्तिवन्दवः स्वाभुवोस्मे रयिं सर्ववीरं नि
यच्छतम् ॥ १ ॥

इन्द्रः । च । सोमम् । पिबतम् । बृहस्पते । अस्मिन् । यज्ञे । मन्द-
साना । वृषणवसू इति वृषणवसू ।

आ । वाम् । विशन्तु । इन्द्रवः । सुऽआभुवः । अस्मे इति । रयिम् ।
सर्ववीरम् । नि । यच्छतम् ॥ १ ॥

हे बृहस्पते बृहतो वेदराशेः स्वामिन् एतन्नामकदेव त्वम् इन्द्रश्च युवां सोमं पिबतम् । कीदृशौ युवाम् । अस्मिन् यज्ञे मन्दसाना हृष्यन्तौ वृषणवसू वर्षितृधनौ । यजमानाय दीयमानधनावित्यर्थः । वाम् युवां स्वाभुवः सुष्ठु सर्वतो भवन्तः । कृत्स्नशरीरव्यापन-समर्था इत्यर्थः । तादृशा इन्द्रवः सोमाः आविशन्तु युवयोः शरीरं प्रविशन्तु । अस्मे अस्मभ्यं रयिम् धनं सर्ववीरम् सर्वपुत्राद्युपेतं नि यच्छतम् दत्तम् ॥

हे बृहत् वेदराशिके स्वामी बृहस्पति नामक देव ! आप और

इन्द्रदेव दोनों सोमका पान करिये । आप इस यज्ञमें हर्षमें भरे हुए हैं । और यजमानके लिये धन प्रदान करने वाले हैं, ऐसे आप दोनोंके शरीरोंमें सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होसकने वाले सोम प्रवेश करें । और हमारे लिये आप पुत्र आदि सब वीर्यसे उत्पन्न होने वालों सहित धन दीजिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ वो व॒हन्तु॑ सप्त॒यो रघु॑प्यदो रघु॒पत्वानः॑ प्र जिगात॒
वाहुभिः॑ ।

सी॒दता॒ ब॒र्हि॒रुरु॒ वः स॒द॒स्कृतं॑ मा॒दय॑ध्वं म॒रुतो॑ म॒ध्वो
अ॒न्य॒सः ॥ २ ॥

आ । वः । व॒हन्तु॑ । सप्त॒यः । रघु॑स्पदः । रघु॒स्पत्वानः॑ । प्र ।
जिगात् । वाहु॑भिः ।

सी॒दत । आ । ब॒र्हिः । उ॒रु । वः । स॒दः । कृ॒तम् । मा॒दय॑ध्वम् । म॒रुतः॑ ।
म॒ध्वः । अ॒न्य॒सः ॥ २ ॥

हे मरुतः रघुप्यदः लघुस्यन्दना लघुगतयः सप्तयः सर्पणशीला
अरवाः वः युष्मान् आ वहन्तु यज्ञगृहं प्रति प्रापयन्तु । यूयं च
वाहुभिः शीघ्रगमनसाधनं रघुपत्वानः लघुपतनाः । ॐ पल्लु
गती । “अन्येभ्योपि दृश्यन्ते” इति वनिष् । कृदुत्तरपदमकृतिस्वरेण
प्रत्ययस्य पित्वाद् घातुस्वर एव ॐ । तादृशः सन्तः प्र जिगात
प्रकर्षेण गच्छत । ॐ जिगातीत्ययं गतिकर्मसु पठितः । गा स्तुती ।
जीहोत्यादिकः । लोएमध्यमवहुवचनस्य “तप्तन०” इत्यादिना
तयादेशः । तस्य पित्वेन ङित्वाभावाद् “ई दृश्यघोः” इति ईत्वा-

भावः ॐ । वः युष्माकम् उरु विस्तीर्णं सदः सीदत्यत्रेति सदः
सदनं स्थानं वेदिलक्षणं कृतम् निष्पादितम् । तत्र बर्हिः आस्तीर्णं
बर्हिः सीदत बर्हिषि निषण्णा भवत । बर्हिरित्येतत् सद इत्यस्य
विशेषणं वा । बर्हिरूपेण सदनम् इत्यर्थः । अथ वा सदः सदनाहं
कृतं बर्हिः सीदतेति योज्यम् । निषद्य च मध्वः मधुरस्य अन्धसः
सोमलक्षणस्य अन्नस्य अंशम् । यद्वा मध्वः मधु अन्धसः अन्नं
सोमम् । पीत्वेति शेषः । मादयध्वम् वृत्ता भवत । ॐ मद वृत्ति-
योगे । चुरादिः । आत्मनेपदी ॐ ॥

हे मरुत् देवताओं ! शीघ्रतासे चलने वाले, सर्पणशील घोड़े
तुमको यज्ञगृहमें लावें, तुम भी शीघ्रगमनकी साधन भुजाओंसे
शीघ्रतासे चलते हुए आओ । आपके लिये विशाल वेदीरूप
स्थान बना दिया गया है । तहाँ कुशा विद्यादी गई है उस कुशा-
सन पर तुम बैठो और बैठकर मधुर रस वाले सोमके अंशका पान
करके वृत्त होओ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यशे सख्ये मा रिषामा
वयं तव ॥ ३ ॥

इमम् । स्तोमम् । अर्हते । जातवेदसे । रथम् । इव । सम् । महेम ।
मनीषया ।

भद्रा । हि । नः । प्रमतिः । अस्य । सम् । सदि । अग्रे । सख्ये ।
मा । रिषाम् । वयम् । तव ॥ ३ ॥

अर्हते पूज्याय । ॐ अर्ह मरामायाम् इति घातोः लुटः शवा-

देशः ॐ । जातवेदसे जातमहाय जातधनाय वा जातानाम् उत्प-
न्नानां वेदित्रे वा इमम् इदानीं क्रियमाणं स्तोमम् एतत् स्तोत्रं
मनीषया निशितया बुद्ध्या सं महिम सम्यक् पूजयेम निष्पादयेम ।
तत्र दृष्टान्तः । रयमिव यथा रयं रयकारः अन्नफलकाद्यवयवसं-
योजनेन संस्करोति तद्वत् । महानुभावस्याग्नेः स्तोमनिष्पादने अति-
शयितया बुद्ध्या भवितव्यम् इति प्राप्ते तत्सद्भाव दर्शयति । अस्य
पूज्यस्याग्नेः संसदि संसदने उपसर्त्तौ तद्विषये नः अस्माकं प्रमतिः
प्रकृष्टा मतिः भद्रा हि कन्याणी खलु । अतः हे अग्ने तव सख्यं
बन्धुभावे सति वयं स्तोतारो मा रिषाम हिंसिता न भवेम ॥

पूजनीय, उत्पन्न हुआ को जानने वाले जातवेदा अग्निके लिये
हम इस स्तोत्रको अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे इस प्रकार निष्पन्न
करते हैं, जिस प्रकार रयको रयकार अन्नफलक आदि अवयवों
से संस्कृत करता है [महानुभाव अग्निकी पूजाके लिये बड़ी
बुद्धि होनी चाहिये ऐसी प्राप्ति होने पर दिखाते हैं, कि—] इन
पूजनीय अग्निदेवके संसदनमें हमारी श्रेष्ठ बुद्धि कन्याणमयी है,
अत एव हे अग्ने! हम स्तोता बन्धुभावके होने पर हिंसित न होंगे ३
चतुर्थी ॥

ऐभिर्ऽग्ने सरथं याह्यर्वाह् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः
पत्नीवतस्त्रिंशत् त्रींश्च देवाननुष्वधमा बह मादयस्व ४

आ । एभिः । अग्ने । सरथम् । याहि । अर्वाह् । नानाऽरथम् ।

वा । विष्मनः । हि । अश्वाः ।

पत्नीऽवनः । त्रिंशत् । त्रीन् । च । देवान् । अनुऽस्वधम् । आ ।

बह । मादयस्व ॥ ४ ॥

हे अग्ने एभिः वक्ष्यमाणैस्त्रिंशत्संख्याकैर्देवैः सह सरथम् समानः एक एव रथो यस्मिन्नागमनकर्मणि तत् सरथं तद् यथा भवति तथा अर्वाङ् अस्मदभिमुखम् आ याहि आगच्छ । सरथम् इति न नियम इत्याह । नानारथं वा नाना पृथग्भूता रथा यस्मिन् कर्मणि तद् नानारथम् । तत्तत्प्रतिनियतं रथम् आरुह्येत्यर्थः । सरथपक्षे बहूनां देवानाम् एकेनैव रथेन आनयनम् अतिभारत्वात् कथं घटन इति तत्राह विभवो ह्यरथा इति । अरथास्तथ रथे नियुक्ता विभवो हि शक्ताः खलु । अतः पत्नीवतः स्वकीयाभिः पत्नीभिर्युक्तान् त्रिंशत् त्रींश्च अष्टोत्तरत्रिंशत्संख्याकान् देवान् “ये देवा दिव्येकादश स्य” इति [तै० सं० १. ४. १०. १] मन्त्रोक्तान् अनुष्वघम् । स्वधेत्यन्नाम । तां तां स्वधाम् अनुलक्ष्य यदा-यदा सोमो हूयते तदा तदेत्यर्थः । आ वह तान् देवान् प्रापय । आवाह्य च मादयस्व सोमप्रदानेन हर्षय ॥

इति त्रयोदशं सूक्तम् ॥

विंशे काण्डे प्रथमोऽनुवाकः ॥

हे अग्निदेव ! आगे कहे जाने वाले तैत्तीस देवताओंके साथ एक रथमें बैठ कर आइये । वा अनेक रथोंमें बैठ कर आइये (सब देवता एक रथमें बैठ कर आवेंगे तो घोड़े उस रथको कैसे खेंचेंगे तो कहते हैं, कि—) आपके रथमें जुते हुए घोड़े समर्थ हैं । अतः अपनी २ पत्नियोंसे युक्त उन तैत्तीस देवताओंको जब २ उनको स्वधा (अन्न) दी जावे तब २ प्राप्त कराइये और आवाहन करके उनको सामप्रदानसे हर्षित करिये ॥ ४ ॥

त्रयोदश सूक्त समाप्त (६२९)

वीसवें काण्डमें प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

द्वितीयानुवाके चत्वारि सूक्तानि । तानि च उच्यते क्रमाद्वाक्प-
णाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि । चतुर्थसूक्तस्यान्तिमा शस्त्रयाज्या ।

“उक्त्यै मैत्रावरुणादिभ्यः” इति मक्रम्य सूत्रितं वैताने । “वयमु त्वामपूर्व्य [२०. १४. १] यो न इदमिदं पुरा [२०. १४. ३] इति स्तोत्रियानुरूपी । स्तोत्रियस्य प्रथमां शस्त्वा तस्या उत्तमं पादं द्वितीयस्याः पूर्वेण संधायावसाय द्वितीयेन द्वितीयां शंसति । तस्याश्चोत्तमम् उत्तरेण संधायावसायोत्तमेन तृतीयाम् । एवं काकु-
मानां स्तोत्रियानुरूपाणां प्रग्रयनम् । इनः पच्छः शंसति । प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये [२०. १५] इत्युक्त्वमुखम् । उद्भुतो न वयो रत्नमाणाः [२०. १६] इति वार्हस्पत्यं सांशंसिकम् । अच्छा म इन्द्रं मनयः स्वर्विदः [२०. १७] इति पर्यासः । इत्यै-
काहिकानाम् उत्तमया परिदधाति परया यजति” इति [वै० ४. १] ॥

दूसरे अनुवाकमें चार मूक्त हैं । वे उक्त्यै क्रतुमें ब्राह्मणा-
च्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होते हैं । चतुर्थमूक्तकी अन्तिम श्रुति
शस्त्रयाज्या है । “उक्त्यै मैत्रावरुणादिभ्यः” को कह कर वैतान-
मूत्र ४ । १ में कहा है, कि—“वयमु त्वामपूर्व्य (२० । १४ । १)
यो न इदमिदं पुरा (२० । १४ । ३) इति स्तोत्रियानुरूपी ।
स्तोत्रियस्य प्रथमां शस्त्वा तस्या उत्तमं पादं द्वितीयस्याः पूर्वेण
संधायावसाय द्वितीयेन द्वितीयां शंसति । तस्याश्चोत्तमं उत्तरेण
संधायावसायोत्तमेन तृतीयाम् । एवं काकुमानां स्तोत्रियानुरूपाणां
प्रग्रयनम् । इनः पच्छः शंसति । प्रमंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये (२० । १५)
इत्युक्त्वमुखम् उद्भुतो न वयो रत्नमाणाः (२० । १६) इति
वार्हस्पत्यं सांशंसिकम् । अच्छा म इन्द्रं मनयः स्वर्विदः (२० । १७)
इति पर्यासः । इत्यैकाहिकानां उत्तमया परिदधाति परया यजति”
(वैतानमूत्र ४ । १) ॥

तत्र प्रथमा ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कञ्चिद् भ्रान्तो वस्यवः ।

वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

वपम् । ऊं इति । त्वाम् । अपूर्व्यम् । स्थूरम् । न । कत् । चित्रम् ।

भरन्तः । अवस्यवः ।

वाजे । चित्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

हे अपूर्व्यम् । पूर्वम् अर्हतीति पूर्व्यः । न पूर्व्यः अपूर्व्यः । सत्यपि सर्वदा गमने नूतन इत्यर्थः । अनेन तस्य सर्वदा अनादरविषयत्वाभाव उक्तो भवति । तादृश इन्द्र चित्रम् चायनीयं पूजनीयं त्वां भरन्तः हविरादिना पोषयन्तः अवस्यवः रक्षाकामाः । ॐ अवतेरसुनि “वपाच्छन्दसि” इति उपत्ययः ॐ । वाजे । वाजः अन्नम् । अन्ने निमित्तभूते सति । अथ वा वाजः संग्रामः । तस्मिन् तज्जयार्थं वयम् वयमेव हवामहे आह्वयामः । अस्मान् मत्पेव त्वम् आगच्छ नास्मत्प्रतिपत्तान् इत्यमुम् अर्थं द्योतयितुम् उशब्दः । तत्र दृष्टान्तः स्थूरं न कच्चित् । यथा लोके कच्चित् कदाचित् स्थूरम् स्थूलं गुणाढ्यं राजादिकं भरन्तः तदभिमतभदानेन पोषयन्तो जनाः स्वजयार्थम् आह्वयन्ति तद्वत् ॥

हे वारम्बार गमन करने पर भी गवीन ही रहने वाले अपूर्व्य (अर्थात् आपका अनादर कभी नहीं होता) इन्द्र! आप पूजनीयका अन्नप्राप्ति वा संग्राममें हवि आदिसे पोषण करने वाले हम रक्षाकाम ही, आवाहन करते हैं आप हमारी ओर ही विजय दिलाने के लिये आइये हमारे प्रतिपत्तिप्योंकी ओर न जाइये, क्योंकि— हम ही आपका आवाहन कर रहे हैं । जैसे मनुष्य किसी परम गुणी राजाको अभिमत फलदेकर पुष्ट करते हैं उसको ही अपनी विजयके लिये बुलाते हैं, इसी प्रकार हम आपका आवाहन करते हैं?

द्वितीया ॥

उप त्वा कर्मन्तूतये स नो युवोग्रश्रंक्राम यो धृपत् ।

खलु । स्तुत्य इति शेषः । अतः उक्तगुणविशिष्टत्वात् तमेवेन्द्रं
स्तुते इत्यर्थः । यद्वा यः अमन्दत यो नरः इन्द्रदत्तेन धनेन तप्त
आसीत् स हि स्म स एव नरः उक्तलक्षणम् इन्द्रं तु दृष्टि । स
मयवा धनवान् इन्द्रः । तुशब्दो वाक्यच्छेदे । स्तोतृभ्यां नः अ-
स्मभ्यं शतम् शतसंख्याकं गव्यम् गोसमूहम् अश्व्यम् शतसंख्या-
कम् अश्वसमूहं च आ वयति प्रापयतु । ॐ वीगत्यादिषु ।
अस्मान्लोटे अडागमः ॐ ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जिन इन्द्रदेवके हरि नामक घोड़े हैं, जो श्रेष्ठ कर्म करने वाले
मनुष्योंके पालक हैं और मनुष्योंको नियममें रखने वाले हैं, उन
इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ । जो इन्द्रदेव स्तुतिसे प्रसन्न होते
हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ । वह धनवान् इन्द्र हम स्तुति करने
वालोंको सौ गौओंका और सौ घोड़ोंका झुण्ड प्रदान करें ॥४॥

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६३०)

“प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये” इति सूक्तस्य उक्त्ये क्रतौ ब्राह्मण-
च्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये” सूक्तका उक्त्य क्रतुके ब्राह्मण-
च्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है, कि—

तत्र प्रथमा ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवंसे
अपावृतम् ॥ १ ॥

प्र । मंहिष्ठाय । बृहते । बृहद्रये । सत्यशुष्माय । तवसे ।
मतिम् । भरे ।

अपामुऽइव । प्रवणे । यस्य । दुःऽधरम् । राधः । विश्वऽआयु ।

शवसे । अपऽवृतम् ॥ १ ॥

मंहिष्ठाय अतिशयेन मंहनीयाय दातृतमाय वा बृहते महते गुणैः
मष्टदाय बृहद्रये । रयिरिति धननाम । प्रभूतधनाय सत्यशुष्माय
सत्यवलाय अवित्रयसः मध्यस्थ तवसे । तवो बलम् । अतिशयि-
तवलाय इन्द्राय । अथ वा तवसे बललाभाय उक्तगुणकाय इन्द्राय
मतिं म भरे स्तोत्रं संपादयामि । यस्य उक्तगुणविशिष्टेन्द्रस्य
विश्वायु । आयवो मनुष्याः । विश्वेषां मनुष्याणां पोषणसमर्थ
राधः धनम् अपामिव प्रवणे । प्रवणः अवनतो देशः । तस्मिन्
अपां पूर इव न यथा दुर्धरो भवति एतं दुर्धरं धनं शवसे बलाय
प्रयोजनाय अपावृतम् अपगतावरणं कृतम् । तस्मा इन्द्राय मतिं
भर इति संबन्धः ॥

परम दाता गुणोंमें बृद्ध, महाधनी, अमोघ सामर्थ्य वाले इन्द्र
के स्तोत्रका मैं उच्चारण करता हूँ । जिन इन्द्रदेवका धनबल
सम्पूर्ण मनुष्योंका पोषण करनेमें समर्थ है । और ढलकाव वाले
स्थानमें जलका अहला जैसे दुराधर्प होता है ऐसे ही प्रयोजन
के समय जिनका धनबल दुराधर्प होता है, उन इन्द्रदेवके लिये
मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अथ ते विश्वमनु हासद्विष्टय आपो निम्नैव सवन्ता
हविष्मन्तः ।

यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्रथिना
हिरण्ययः ॥ ३ ॥

अथ । ते । विश्वम् । अनु । इ । असत् । इष्टये । आपः । निम्ना
इव । सवना । हविष्मतः ।

यत् । पर्वते । न । सम्प्रश्नीत । ह्येतः । इन्द्रस्य । वज्रः ।
अथिना । हिरण्यगः ॥ २ ॥

अथ अथ हे इन्द्र ते तव इष्टये एषणाय यागाय वा विश्वम्
सर्वं जगत् अनु हामत् । हेति प्रसिद्धा । अनुकूल भवेत् । तत्र
दृष्टान्तः । आपो निम्नेव निम्नानि स्थलानि आप इव । ता यथा
अनुक्रमेण प्रवहन्ति तद्वद् विश्वम् अनु हासद् इति संबन्धः । अथ
वा उत्तरत्र दृष्टान्तः । आपो निम्नानीव हविष्मतः यजमानस्य
सवना सवनानि ग्रीष्मपि त्वाम् अनुगच्छन्ति । यत् यस्मात् ह्येतः
कान्तः कमनीयः अथिना शत्रूणां हिंसको हिरण्यगः हिरण्यमयो
हिरण्येन भूयितु इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न । नशब्दः अप्यर्थे । पर्व-
तेपि न समशीत न मत्कोभूत् किं तु व्यदारयदेव । अतो विश्वम्
अनु हासद् इति पूर्वत्र संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी इष्टिके लिये सब जगत् इस प्रकार अनु-
कूल होवे, जिस प्रकार जल निम्नस्थलके अनुकूल होता है ।
इसी प्रकार हवि वाले यजमानके तीनों सवन आपके अनुकूल
होने हैं । क्योंकि कमनीय, शत्रुओंको मसलने वाले, सुवर्णविभू-
षित इन्द्रका वज्र पर्वतमें भी नहीं हिलगा, किंतु उसको विदीर्ण
न कर सका अत एव जगत् उनके अनुकूल होता है ॥ २ ॥

ॐ वृतीया ॥

अस्मै भीमाय नमसा समञ्चर उपो न शुभ्र आ भरा
पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे

अस्मै । भीमाय । नमसा । सम् । अध्वरे । उपः । न । शुभ्रे ।

आ । भर । पनीयसे ।

यस्य । धाम । श्रवसे । नाम । इन्द्रियम् । ज्योतिः । अकारि ।

हरितः । न । अयसे ॥ ३ ॥

हे शुभ्रे दीप्ते हे उपः उपोदेवने भीमाय । विभेत्यस्माद् इति भीमः । शत्रूणां भयंकराय पनीयसे अतिशयेन स्तोतव्याय अस्मै इन्द्राय । यागः क्रियत इति शेषः । अनो नमसा न । नमः अन्नं च । नशब्दः चार्थे । चकाराद् उक्तलक्षणम् इन्द्रं च । समा भर सम्यग् आह्वय अस्मद्यज्ञं प्रापय । अस्मदभिमतम् अन्नं यष्टव्यम् इन्द्रं च आनयेत्यर्थः । उपम्युदितायां सत्यामेव इन्द्रस्यागमनाद् उपस इन्द्राहरणव्यपदेशः । अय वा नशब्दः अनर्थकः । उक्त लक्षणाय इन्द्राय नमसा । नमः अन्नम् । आ भर । अन्ने समृद्धे सत्येव इन्द्रम् उद्दिश्य यागप्रवृत्तेरेवम् उक्तम् । यस्य इन्द्रस्य धाम सर्वेषां धारकं पोषकम् इन्द्रियम् इन्द्रहितम् इन्द्रदत्तं वा । ॐ “इन्द्रियम् इन्द्रलिङ्गम् इन्द्रदृष्टम् इन्द्रसृष्टम्” इत्यादिना इन्द्रिय-शब्दो निपातितः ॐ । उक्तलक्षणं नाम सर्वेषां नामकम् उदकं श्रवसे अन्नाय तत्समृद्धये भवति । येन च इन्द्रेण हरितो न हरितामिव दिशामिव अयसे प्राणिनां गमनाय गमनादिव्यवहाराय । ॐ अय पय गर्तो इत्यस्माद् अमुन् ॐ । ज्योतिः अकारि क्रियते । तं समा भरेति पूर्वत्र संबन्धः ॥

हे दीप्ते उपा देवते । जिनसे शत्रु हरते हैं, उन भीम-स्तुतिके परम पात्र इन इन्द्रदेवके लिये याग किया जा रहा है अतः अन्नको

और इन्द्रको भी हमारे यज्ञमें ला । [उपाके उदित होने पर ही इन्द्रका आगमन होनेसे उपाका इन्द्रानयनका वर्णन किया है । अथवा मूलका न शब्द अनर्थक माना जाय तो पूर्वोक्त लक्षणों वाले इन्द्रके लिये अन्नको ला, क्योंकि-समृद्ध अन्नके होने पर ही इन्द्रके उद्देश्यसे यागकी प्रवृत्ति होसकती है] जिन इन्द्रका सबका पोषक धाम (जल) अन्नसमृद्धिके लिये होता है, जिन इन्द्रने प्राणियोंके गमन आदिके व्यवहारके लिये दिशाओंमें उद्योति की है उनको यज्ञमें ला ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इमे तं इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति
नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥

इमे । ते । इन्द्र । ते । वयम् । पुरुःस्तुत । ये । त्वा । आरभ्य ।
चरामसि । प्रभूवसो इति प्रभुवसो ।

नहि । त्वत् । अन्यः । गिर्वणः । गिरः । सघत् । क्षोणीः इव ।
प्रति । नः । हर्य । तत् । वचः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त इमे । प्रसिद्धिवाचकस्तच्छब्दः । इदम् शब्दः अप-
रोक्षवाची । त्वदर्थकत्वेन प्रसिद्धा वयं ते तव स्वभृताः । हे पुरु-
ष्टुत बहुभिर्बहुप्रकारं वा स्तुत । एतद् इन्द्रेत्पस्य विशेषणम् ।
त इत्युक्तम् कीदृशास्त इत्यत्राह । ये वयम् हे प्रभूवसो मभूतधन
इन्द्र त्वा त्वाम् आरभ्य आश्रित्य त्वामेव शरणं प्राप्य चरामसि
चरामः । ते वयम् इति पूर्वत्र संबन्धः । हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय

इन्द्र त्वदन्यः त्वत्तो व्यतिरिक्तो देवः गिरः अस्मदीयानि वचांसि
 नहि सद्यत् न खलु सहते । स्तुत्यस्य तव महिम्नो निरवधित्वाद्
 अस्मदीयानां स्तुतिवचसाम् अत्यल्पत्वाच्च तादृग्वचस्त्वयैव सोढ-
 व्यम् इत्यर्थः । ॐ सहेल्लेदि अडागमः । वर्णविपर्ययेण हकारस्य
 घकारः ॐ । तत्र दृष्टान्तः क्षोणीरिव क्षोण्य इव । क्षोणीशब्दे-
 नात्र प्रजा विवक्ष्यन्ते । प्रजा राज्ञो यद्यद् विज्ञापयन्ति तत् सर्वं
 स राजा यथा सहते तद्वद् इत्यर्थः । यस्माद् एवं तस्माद् नः अ-
 स्माकं तद् वचः तादृग्वचनं प्रति हर्य प्रतिकामय ॥

हे वाणियोसे स्तुति करने योग्य ! हे बहुतसे धन वाले ! जो
 हम आपका ही आश्रय लेकर रहते हैं, वे हम आपके ही हैं
 आपके अतिरिक्त और कोई देव हमारी वाणियोंको नहीं सह
 सकता, क्योंकि—आप स्तुति करने वालेकी महिमा अवधि-
 रहित है और हमारे स्तुतिवचन थोड़े ही हैं अत एव ऐसे
 वचन आपको सहने ही चाहिये । जैसे प्रजाएँ राजासे जो कुछ
 कहती हैं, राजा उनको सहन करता है, इसी प्रकार आप हमारे
 वचनोंकी कामना करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

भूरिं त इन्द्र वीर्यं तवं स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।

अनु ते द्यौर्वृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम
 ओजसे ॥ ५ ॥

भूरि । ते । इन्द्र । वीर्यम् । तव । स्ममि । अस्य । स्तोतुः ।
 मयञ्चन । कामम् । आ । पृण ।

अनु । ते । द्यौः । बृहती । वीर्यम् । ममे । इयम् । च । ते ।
पृथिवी । नेमे । ओजसे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ते तव वीर्यम् वीरकर्म वृत्रवधादिलक्षणं भूरि अतिबहु
यतः अतो वयं तव स्मसि स्मः तव विधेया भवामः । ॐ “श्रसो-
रलोपः” इति अकारलोपः । “इदन्तो मसिः” ॐ । अस्य स्तीतुः
स्नवं कुर्वतोस्य यजमानस्य कामम् अभिलषितम् । हे मघवन्
धनवन् इन्द्र आ पूण आपूरय । ॐ पूण मीणने । तीदादिकः ।
अत्र पूरणार्थः । “अतो हेः” इति हेतुक् ॐ । भूरि त इन्द्र वीर्यम्
इत्पृक्तं वीर्यबहुत्वमेव स्पष्टयति । ते तव वीर्यं बृहती महती द्यौः
महान् अलोकः अनु ममे अनुक्रमेण माति परिद्धिनत्ति । इन्द्रस्य
एस्य वृष्ट्युदकादेरास्पदत्वेन द्यौरेव ममे । अन्यः कश्चित् परि-
च्छेत्ता नास्तीत्यर्थः । ॐ माह् माने । लिटादि सर्वम् ॐ । न
केवलं द्यौरेव इयं पृथिवी च ते ओजसे तव ओजसा बलेन निमि-
त्तेन नेमे ननाम नम्रा भवति । त्वदोजासंभूतेन गिरितरुगुल्मपा-
द्यादिधारणेनेत्यभिप्रायः । अतः पृथिवी च वीर्यं ममे इति भावः ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका वृत्रवध आदि वीरकर्म बहुत बड़ा है,
अन एव हम आपके सेवक बनते हैं । इस स्तुति करने वाले
यजमानकी अभिलाषाकी हे धनी इन्द्र ! आप पूर्ण करिये
आपके वीर्यकी विशाल अलोक ही, वृष्टिबल आदिका स्थान
होनेमें मान करना है । और कोई परिच्छेत्ता नहीं है । वा-यह
पृथिवी भी आपके बलमें नम्र होजाती है । अतएव यह भी मान
करती है ॥ ५ ॥

पष्टी ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्वकं तिथीः

अवांसृजो निवृत्ताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिपे
केवलं सहः ॥ ६ ॥

त्वम् । तम् । इन्द्र । पर्वतम् । महाम् । उरुम् । वज्रेण । वज्रिन् ।
पर्वशः । चकृतिथ ।

अव । असृजः । निवृत्ताः । सर्तवै । अपः । सत्रा । विश्वम् ।
दधिपे । केवलम् । सहः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र वज्रिन् वज्रवन् त्वं तं प्रसिद्धं महाम् महान्तं महत्त्वो-
पेतम् । ॐ नकारतकारपोर्लोपशब्दान्दसः ॐ । उरुम् अतिमभूतं
पर्वतम् पर्वतन्तं गिरिम् । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । गिरीन् वज्रे-
ण आयुधेन पर्वशः अवयवशः पक्षादिक्रमेण चकृतिथ शकली-
कृतवान् असि । ॐ कृती छेदने । यलि कादिनिपमात् इट् ।
गुणः ॐ । यद्वा अत्र पर्वतशब्दः उत्तरत्र वृष्ट्यभिधानाद् मेघ-
वाची । उक्तलक्षणं मेघं वज्रेण पर्वशो विदारितवान् असीत्यर्थः ।
अनन्तरं निवृत्ताः नितरां मेघेन वृता अपः सर्तवै नद्याद्यात्मना
सरणाय अवांसृजः अवाङ्मुखं विसृष्टवान् असि । एवमाद्यात्मकं
केवलम् असाधारणं विश्वम् सर्वं बलं त्वं दधिपे धारयसि ।
एतत् सत्रा सत्यं न मृषा । सत्रेति सत्यनाम ॥

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं मूक्तम् ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! आपने महत्त्वमय परमविशाल पर्व बाले
पर्वत (वा मेघ) को (पर आदिके क्रमसे) टुकड़े २ कर डाला
था । तथा आपने मेघमे घिरे हुए जलको सरकनेके लिये नदी-
रूपसे छोड़ दिया था । ऐसे असाधारण सब बलोंको आप धारण
करते हैं । यह बात सत्य है, मिथ्या नहीं है ॥ ६ ॥

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६३१)

“उदमुतः” इति सूक्तस्य उक्त्ये क्रतौ ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“उदमुतः” सूक्तका उक्त्ये क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसिके शस्त्रमे विनियोग कह दिया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

उदमुतो नवयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोपाः
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन्
उदमुतः । न । वयः । रक्षमाणाः । वावदतः । अभ्रियस्यऽइव ।

घोपाः ।

गिरिभ्रजः । न । ऊर्मयः । मदन्तः । बृहस्पतिम् । अभि ।

अर्काः । अनावन् ॥ १ ॥

उदमुतः उदकेषु गच्छन्तश्चरन्तः । ॐ छान्दसत्वाद् असंज्ञा-
यामपि उदकशब्दस्य उदादेशः । ॐ रक्षमाणाः आत्मानं व्याधा-
दिभ्यः पालयन्तो वयो न पक्षिण इव ते यथाः एच्छैर्ध्वनन्ति ।
वावदतः भृशं शब्दं कुर्वतः । ॐ वदेर्यङ्लुकि शतंरि रूपम् ।
“अभ्यस्तानाम् आदिः” इति आशुदात्तः । ॐ अभ्रियस्यः मेघ-
समूहस्य घोपाः शब्दा इव । तथा गिरिभ्रजः । गिरिरिति मेघ-
नाम । मेघेभ्यः सकाशाद् गच्छन्तः अधः पतन्तः मदन्तः सस्या-
दींस्तर्पयन्तः । अनेन धाराध्वनिरुपलक्ष्यते । ऊर्मयो न ऊर्मयः
उदकानि ते यथा अधःपतनसमये शब्दं कुर्वन्ति एवम् अर्काः
अर्चनसाधना मन्त्राः । ॐ अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्तीति
निरुक्तम् [नि० ५: ४] ॐ । अथ वा अर्काः अर्चकाः स्तोतारो
बृहस्पतिम् बृहतो मन्त्रराशेः स्वायिनम् एतन्नामानं देवम् अभ्य-
नावन् अभिस्तुवन्ति । ॐ नोतिश्छान्दसे लङ्निव्यत्ययेन शप् ॐ ।

जलमें विचरण करने वाले, व्याधि आदिसे बचाने वाले, पक्षियोंकी समान उच्च ध्वनि वाले, मेघोंके गड़गड़ानेकी समान शब्द करने वाले, मेघोंसे धारापातरूपसे चलने वाली शब्दायमान ऊर्मियें नीचेको गिरनेके समय शब्दको करती है, इसी प्रकार पूजा के मन्त्र मन्त्रराशिके स्वामी बृहस्पतिदेवकी स्तुति करते हैं ॥१॥

द्वितीया ॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशु-
रिवाजौ ॥ २ ॥

सम् । गोभिः । आङ्गिरसः । नक्षमाणः । भगःऽइव । इत् । अर्य-
मणम् । निनाय ।

जने । मित्रः । न । दम्पती इति दम्पती । अनक्ति । बृहस्पते ।
वाजय । आशुन्ऽइव । आजौ ॥ २ ॥

आङ्गिरसः अङ्गिरो गोत्रोन्पन्नः एतन्नामा महर्षिः गोभिः ।
विकारे प्रकृतिशब्दः । गोविकारैराज्यैः । यद्वा गोभिः स्तुति-
वाग्भिः नक्षमाणः व्याप्नुवन् भग इवेत् एतन्नामको देव इव स
यथा बधूवरौ अर्यमणं देवं नयति विवाहसमये एवम् अर्यमणम्
विवाहहोमाभिमानिनम् एतन्नामानं देवं दम्पती सं निनाय नयतु ।
किं च जने प्राणिसमूहे मित्रो न मित्रारयो देव इव स यथा स्व-
रश्मिर्न अनक्ति प्रकाशाय एवं स एव महर्षिः दम्पती बधूवरौ
अनक्ति योजयति ॥ हे बृहस्पते देव त्वं च आशुन् आजोविच
यथा संग्रामे योद्धारः आशुन् व्यापकान् अश्वान् योजयन्ति एवं
बधूवरौ वाजय संयोजये ॥

अंगिरागोत्रमें उत्पन्न द्रुण अंगिरस नामक महर्षि भगदेवता की समान गोघृत आदिसे विवाहके समय दम्पतीको जिस प्रकार अर्पमा देवकी शरणमें लेजाते हैं । इसी प्रकार विवाहहोमाभिपानी अर्पमा नामक देवको दम्पतीको प्राप्त करावे और माणियों में सूर्य जैसे अपनी किरणोंको प्रकाशके लिये संयुक्त करते हैं, इसी प्रकार महर्षि बधूवरोंको संयुक्त करें । और हे बृहस्पति देव ! आप भी संग्राममें योधा जैसे व्यापक अश्वोंको युक्त करते हैं, इसी प्रकार बधू और वरको संयुक्त करें ॥ २ ॥

द्वतीया ॥

साध्वर्या अतिथिनीः। इषिरा स्पर्हाः सुवर्णा अनवद्य-
रूपाः ।

बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थि-
विभ्यः ॥ ३ ॥

साधुः। अर्प्याः । अतिथिनीः । इषिराः । स्पर्हाः । सुवर्णाः ।
अनवद्यरूपाः ।

बृहस्पतिः । पर्वतेभ्यः । वितूर्य । निः । गाः । ऊपे । यवमृश्व ।
स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥

साध्वर्याः साध्वभिगन्तव्या अतिथिनीः अतिथितर्पका अतन-
शीला वा इषिराः पृषणीयाः स्पर्हाः सर्वेः स्पृहणीयाः सुवर्णाः
शोभनशुक्लादिवर्णोपेता अनवद्यरूपाः अनिन्दितरूपाः मशस्त-
रूपाः । ॐ “अवद्यपण्य०” इत्यादिना गद्यार्थे अवद्यशब्दो निपा-
तितः । पूर्वपदमकृतिस्वरः ॐ । एवंलक्षणा गाः बृहस्पतिर्देवः पर्व-

तेभ्यः बलसंवन्धिभिरसुरैः पिहितेभ्यः पर्वतेभ्यः सकाशाद् वितूर्य
निर्गमय्य निरूपे निर्घपति निष्कृष्य प्रयच्छति स्तोतृभ्यः । तत्र
दृष्टान्तः । यवमिव स्थिविभ्यः । स्थिवयः स्थिरा यवकाण्डाः ।
तेभ्यः सकाशाद् यथा यवं निष्कृष्य वपति तद्वत् । यद्वा स्थिवयः
कुमुलाः । तेभ्यः सकाशाद् यवमिव ॥

जैसे कोठियोंमेंसे यवोंको निकालते हैं इसी प्रकार बृहस्पतिदेव
स्तुति करने वालोंके लिये, साधुओंके योग्य, अतिथियोंको वृत्त
करने वाली, अभिलाषा करने योग्य, सबसे स्पृहणीय, शुक्र
आदि शोभन वर्णसे सम्पन्न अनिन्दित रूप वाली बल नामक
असुरोंके द्वारा छिपाई हुई गौओंको पर्वतोंसे निकाल कर प्रदान
करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आप्रुपायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्का-
मिव द्योः ।

बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्देव वि त्वचं
विभेद ॥ ४ ॥

आप्रुपायन् । मधुना । ऋतस्य । योनिम् । अवक्षिपन् । अर्कः ।
उल्काम् इव । द्योः ।

बृहस्पतिः । उद्धरन् । अश्मनः । गाः । भूम्याः । उद्देव इव ।
वि । त्वचम् । विभेद ॥ ४ ॥

बृहस्पतिदेवः मधुना । मधु इति उदकनाम । उदकेन आप्रुपा-
यन् भूमिं सर्वतः सिञ्चन् । ॐ प्रप प्लुप स्नेहमेचनपूरणेषु ।

व्यत्ययेन विकरणस्य शायजादेशः । चित्स्वरः ॐ । अतस्य योनिम् उदकस्य कारणभूतं मेघम् । यद्वा अतस्य योनिरित्युदकनाम । मेघम् उदकं वा । ॐ मधुन अतस्येत्यत्र संहितायाम् “अत्यकः” इत्यत्र ह्रस्व इत्यनुवर्तनात् ह्रस्वत्वम् ॐ । यो यः लोकसकाशाद् अवक्षिपन् अवाङ्मुखं मेरयन् । तत्र दृष्टान्तः । अर्कः आदित्यः योः सकाशाद् उन्कांमिव तां यथा अवक्षिपति तद्वत् । किं च स बृहस्पतिः अरमनः मेघसकाशाद् गां उदकानि उद्धरन् च्यावयन् । अथ वा अरमनः पणिभिः पिहितात् पर्वतात् तदुद्धारेण गां तैरपहृत्य स्थापितां उद्धरन् अपगमयन् उद्धने उदकंनेव तेन यथा भूम्यांस्त्वचं विभिनत्ति उच्छ्रूनां करोति एवं भूम्यास्त्वचं गोसुराग्रैः वि विभेद विदारितवान् । सर्वत्र गाः समचारयद् इत्यर्थः ॥

जिस प्रकार सूर्यदेव धूलोकसे उन्काको अधोमुखी करके गिराते हैं, इसी प्रकार बृहस्पतिदेव जलसे भूमिको सींचते हुए मेघको नीचेकी ओर मुख वाला करके मेरित करते हैं, और वह बृहस्पति देव पणि नामक असुरोंके द्वारा पर्वतमें छिपाई हुई गौओंको निकाल कर भूमिकी त्वचाको गोसुरोंसे इस प्रकार विभिन्न कर डालते हैं, जिस प्रकार जलसे भूमिको फुलां देते हैं अर्थात् सर्वत्र गौओंका सञ्चार कर देते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्गः शीपालमिव वात आजत् ।

बृहस्पतिस्सुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आचक्र आ गाः ॥ ५ ॥

अप । ज्योतिषा । तमः । अन्तरिक्षात् । उद्गनः । शीपालम् इव ।

वातः । आजत् ।

बृहस्पतिः । अनुमृश्य । वलस्य । अभ्रम् इव । वातः । आ । चक्रे ।

आ । गाः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिर्देवः ज्योतिषा दीप्त्या प्रकाशेन अन्तरिक्षात् आका-
शाद् गिरिकुहरात् तमः अन्धकारं गवाम् आवरकम् उदाजत् उद-
गमयत् । तत्र दृष्टान्तः । वातः वायुः उद्गनः उदकात् । “पद्म०”
इत्यादिना उदकशब्दस्य उदन्नादेशः । “अल्लोपोनः” इति अकार-
रलोपः । उदात्तनिवृत्तिस्वरः । तत्सकाशात् शीपालमिव
शीपालं शैवालम् । वर्णव्यत्ययेन ऐकारवकारयोरीकारप-
कारौ । तद् यथा उदजति अपगमयति तद्वत् । किं च बृह-
स्पतिर्देवो वलस्य एतन्नामकस्यामृत्स्य गवाम् अवस्थानप्रदेशम्
अनुमृश्य पगमृश्य वातः वायुः अभ्रमिव स यथा मेघम् आकरोति
सर्वतः प्रसारयति अन्तरिक्षे एवं गाः बलेन अपेहृत्य आच्छन्नाः
आ चक्रे सर्वतो व्याप्ता अकरोत् ॥

जिस प्रकार वायु जलसे सिकारको दूर कर देता है, तिसी
प्रकार बृहस्पतिदेव गिरिकन्दरासे प्रकाशके द्वारा गौओंको
रोकने वाले अन्धकारको हटा देते हैं । और बृहस्पतिदेव वल
नामक अमृत्के गोस्थानको विचार कर, वायुके मेघको छितरा
देनेकी समान बलके द्वारा रोकती हुई गौओंको चारों ओर फैला
देते हैं ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

यदा वलस्य पीयंतो जसुं भेद् बृहस्पतिरभितपोभिरर्क्कैः ।

दन्तिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निर्धारकृणोदुस्त्रिया-
णाम् ॥ ६ ॥

यदा । बलस्य । पीयतः । जमुम् । भेत् । बृहस्पतिः । अमित्रपः-
ऽभिः । अर्केः ।

दत्ऽभिः । न । जिह्वा । परिविष्टम् । आदत् । आविः ।
निऽधीन् । अकृणोत् । उस्त्रियाणाम् ॥ ६ ॥

बृहस्पतिर्देवो यदा यस्मिन् काले बलस्य एतन्नामकस्यामुरस्य
पीयतः । हिंसाकर्मतत् । हिंसकस्य तस्य जमुम् हिंसासाधनम्
आयुधं भेत् अभेत् अभिनत् । ॐ भिदिर् विदारणे । लेट् ।
लघुपञ्चगुणः । “इतश्च लोपः” संयोगान्तलोपश्च । ध्वान्दसत्त्वाद्
अटभावः ॐ । केः साधनैरित्युच्यते । अमित्रपोभिः अग्निवत्ता-
पकेः अर्केः दीप्तैः स्वरश्मिभिः मन्त्रैर्वा । तदा दन्तिः दन्तैः परि-
विष्टम् परितः खादितं मण्डकादिलक्षणम् अन्नं जिह्वा यथा अस्ति
तद्ब्रह्म बलनामानम् अमुरम् आदत् अभक्षयत् । ततश्च उस्त्रिया-
णाम् गवां निधीन् आविरकृणोत् स्पष्टान् अकरोत् ॥

बृहस्पति देवने जिस समय बल नामक अमुरके हिंसक आयुध
को अग्नि की समान संतप्त करने वाले मन्त्रों से तोड़ डाला, उस
समय दोनों से तोड़े हुए अन्नको जिस प्रकार जिह्वा खाती है
तिस प्रकार वह बल नामक अमुरको खागए, फिर उन्होंने दूध
देने वाली उसरिया गौओं की निधियों को प्रकट किया ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

बृहस्पतिरमन्तहित्यदांतां नाम स्वरीणां सदेने गुहा
यत् ।

आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदास्रियाः पर्वतस्य
त्मनाजत् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिः । अमन । हि । त्यत् । आसाम् । नाम् । स्वरीणाम् ।
सदने । गुहा । यत् ।

आण्डाड्डेव । भित्त्वा । शकुनस्य । गर्भम् । उत् । उस्रियाः ।
पर्वतस्य । त्मना । आजत् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिदेवः गुहा गुहायां सदने । सीदत्यथेति सदने स्थानम् ।
तस्मिन् स्वरीणाम् शब्दायमानानाम् आसाम् गवां त्यत् तत् प्रसिद्धं
नामधेयं यत् यदा अमन हि ज्ञातवान् । ॐ मनु अवबोधने ।
लुङि “तर्नादिभ्यस्तयासोः” इति सिचो लुक् । “हि चे” इति
निघानप्रतिषेधः । अडागमस्वरः ॐ । तर्नादीनां पर्वतस्य गिरिरन्तः
स्थिता उस्रियाः । उस्रम् उत्स्रावणं क्षीरस्यन्दनम् अहन्तीत्युस्रिया
गावः । ता त्मना आत्मनैव सहायनैरपेक्ष्येणैव । ॐ “मन्त्रेष्व-
ङ्ग्यादेरात्मन” इति आदेराकारस्य लोपः ॐ । उदजित् पर्वत
विभेदनेन उदगमयत् । तत्र दृष्टान्तः । आण्डेव भित्त्वेति । शकु-
नस्य पक्षिणो मयूरादेः आण्डानि भित्त्वा तदन्ते स्थितं गर्भम्
उदगमयति तद्वत् ॥

बृहस्पतिदेवने गुहास्थानमें शब्द करती हुई इन गौओंके नाम
को जव जाना, तब इन पर्वतके भीतर स्थित गौओंको अपने
आप पर्वत भेद करके इस प्रकार निकाल लिया जिस प्रकार
मयूर आदि पक्षियोंके अण्डोंको भेद कर उसके भीतर स्थित गर्भ
को प्रकट किया जाता है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अश्रापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि
क्षियन्तम् ।

निष्टज्जभारचमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य
अश्रा । अपिऽनद्धम् । मधु । परि । अपश्यत् । मत्स्यम् । न ।
दीने । उदनि । क्षियन्तम् ।

निः । तत् । जभारः । चमसम् । न । वृक्षात् । बृहस्पतिः । विऽ-
रवेण । विऽकृत्य ॥ ८ ॥

बृहस्पतिर्देवः अश्रा अश्रपना पर्वतेन अपिनद्धं मधु मधुवज्रो-
गयोग्यं गोसमूहं पर्यपश्यत् अद्राक्षीत् । आवरणभूतपर्वतापसार-
णेनेति शेषः । तत्र दृष्टान्तः । दीने परिक्षीणे अन्पे उदनि उदके ।
⊗ उदकशब्दस्य उदन्नादेशे “विभाषा-द्विर्योः” इत्यन्लोपा-
भावपक्षे रूपम् ⊗ । तस्मिन् क्षियन्तम् निवमन्तं मत्स्यं न मत्स्य-
मिव । तं यथा जनः पश्यति तद्वत् । तत् गोलक्ष्णं मधु चमसं
न वृक्षात् । चम्यते भक्षयते अनेनेति चमसः सोमपात्रम् । चमसं
यथा तदुपादानभूतान्निष्कृष्य हरति तद्वत् । विरवेण विविध-
शब्देन हम्भालक्षणेन लिङ्गेन ज्ञात्वा विकृत्य बलारूपम् असुरं
गौरूपपारिणं द्विरवा निर्जभार विलान्निजहार ॥

जितं प्रकारं जलके मुखने परं अन्पं जलमं मनुष्यं मद्यलीको
देख लेना है; इसी प्रकार बृहस्पतिदेवने, आवरणभूत पर्वतको
हटा कर पत्यरोंसे ढके हुए मधुकी समान भोगनेयोग्य गोसमूह
को देखा और जैसे चमस नामक भोजनपात्रको उपादानभूत

वृक्षसे निकालते हैं तिम प्रकार दंभा आदि विविध लिंगोंसे गौओं को जान कर गोरूपधारी बल नामक असुरको मार कर गौओं को बिलमे निकाल डाला ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सोपामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि
ववाधे तमांसि ।

बृहस्पतिर्गोवपुषो बलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभारः

सः । उपाम् । अविन्दत् । सः । स्वः । रिति स्वः । सः । अग्निम् ।

सः । अर्केण । वि । ववाधे । तमांसि ।

बृहस्पतिः । गोवपुषः । बलस्य । निः । मज्जानम् । न । पर्वणः ।

जभारः ॥ ८ ॥

स पूर्वोक्तो बृहस्पतिः पर्वतकुहरे अन्धकारावस्थितानां गवां दशनाय उपाम् उपासम् उपमम् । ॐ आन्दसः सकारलोपः ॐ अविन्दत् अलभत । स एव बृहस्पतिः स्वः । स्वरादित्यः । आदित्य च प्रकाशाय अविन्दत् । एवम् अर्सा अग्निं च अविन्दत् । लब्ध्वा च अर्केण तेजसा तमांसि वि ववाधे विशेषेण वाधितवान् । तदनन्तरं गोवपुषः वृषभरूपधारिणो बलस्य असुरस्य हननेन मज्जानं न पर्वणः अस्थनः संबन्धिनं मज्जानम् पष्टं घातुं पर्वणः अस्थिरवसकाशाद् यथा बलाद् निर्हन्ति तद्वत् गा निर्जभार निष्कृष्य आहूतवान् ॥

इन बृहस्पतिदेवने पर्वतकी गुफामें अन्धकारमें पड़ी हुई गौओं को देखनेके लिये उपाको पाया, और इन ही बृहस्पतिदेवने सूर्य को भी प्रकाशके लिये प्राप्त किया, और अग्निको भी प्राप्त किया ।

आर भाग करके तेमसे अन्यकारोंको विशेषरूपसे नष्ट करेवाला। तदनन्तर वृषभका रूप धारण करने वाला। अमुरको नष्ट करके अस्थियोंके जोड़से पञ्जा नष्ट करनेकी समान वलपूर्वक गौओंको निकाल लिया ॥ ६ ॥

दशमी ॥

हिमेव पर्णा मुपिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् बलो

गाः ।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः

हिमाऽव । पर्णा । मुपिता । वनानि । बृहस्पतिना । अकृपयद् ।

बलोः । गाः ।

अननुकृत्यम् । अपुनरिति । चकार । यात् । सूर्यामासा । मिथः ।

उच्चरातः ॥ १० ॥

बृहस्पतिना देवेन हिमेव पर्णा हिमानि पर्णानीव । यथा हिमानि पर्णानि निःसाराणि कृत्वा मुष्णन्ति एवं वनानि वननीयानि धनानि गोलज्जणानि मुपिता मुपितानि । आसन् । स च बलोपि गाः मुपिता अकृपयद् । मायच्छद् इत्यर्थः । किं च स बृहस्पतिः तादृक् कर्म अननुकृत्यम् अन्यैरननुकरणीयम् अन्येन कर्तुम् अशक्यं तथा अपुनः न विद्यते पुनस्तत् कर्म यस्मिन् तद् अपुनः पुनः करणरहितं च चकार कृतवान् । अन्यकर्तव्यरहितं स्वेनापि पुनः कर्तव्यरहितं चाकरोद् इत्यर्थः । किं तत् कर्मेति उच्यते । यात् । यद् इत्यर्थः । ॐ छान्दसो दीव्यः । सूर्यामासा । मस्यते परिमीयते स्वकलावृद्धिहानिभ्याम् इति माश्रन्द्रमाः । मातीति वा माश्रन्द्रः । सूर्याचन्द्रमसौ । ॐ देवतादन्द्रे

च" इति आनङ् । "देवनादन्धे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वर-
त्वम् । "सुपां सुलुक्" इत्यादिना विभक्तेराकारः ॐ । तौ
मियः परस्परम् अहोरात्रयोः उच्चरातः उच्चरतः ऊर्ध्वं गच्छन् इति
यत् तच्चकार ॥

बृहस्पति नामक देवने, हिम जैसे पत्तों को निःसार करके ग्रहण
कर लेता है तिस प्रकार, सेवनीय गोरूप धनको ग्रहण कर
लिया या । और बलने भी चुराई हुई गौएँ बृहस्पतिजीको देदीं
यीं । तथा बृहस्पति देवने एक और भी ऐसा कर्म किया है, कि-
दूसरे उसको नहीं कर सकते और उन्हें भी उसको दूसरी बार
नहीं करना पड़ा । वह कर्म यह है, कि-सूर्य और चन्द्रमा दिन
और रातको करते हुए ऊपर विचरण करते रहते हैं ॥ १० ॥

एकादशी ॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामं-
पिंशन् ।-

रात्र्यां तमो अदधुज्योतिरहन् बृहस्पतिं भिनदद्रिं विदद्
गाः ॥ ११ ॥

अभि । श्यावम् । न । कृशनेभिः । अश्वम् । नक्षत्रेभिः । पितरः ।
द्याम् । अपिंशन् ।

रात्र्याम् । तमः । अदधुः । ज्योतिः । अहन् । बृहस्पतिः । भिनद् ।
अद्रिम् । विदद् । गाः ॥ ११ ॥

बृहस्पतिदेवः यदा अद्रिम् गवाम् आच्छादकं गिरिं भिनत्
अभिनद विदारितवान् विदार्य च यदा गाश्च विदत् । ॐ विदलु
लाभे । लुडि लृदित्वाद् अद् ॐ । तदा पितरः पालका देवा

इन्द्राद्याः श्यावं न अश्वम् कपिशवर्णम् अश्वमिव तं यथा लोके
 कुशनेभिः । कुशनम् इति सुवर्णनाम । कुशनैः सुवर्णमयैराभरणैः
 पिशन्ति अलंकुर्वन्ति एवं नक्षत्रेभिः । नक्षत्रात् नाशात्त्रायन्तीति
 नक्षत्राणि न विद्यन्ते तत्रं बलम् एवम् इति वा नक्षत्राणि ग्रह-
 तारकादीनि । तैः धाम् धूलोकम् अपिशन् अलंकृतः । ॐ पिश
 अवयवे । रुधादिः ॐ । एवं राज्याम् । निशितमः अन्धकारम्
 अदधुः स्थापितवन्तः । एवम् अहन् अहनि ज्योतिः सर्वस्य दीपकं
 तेजः आदित्याख्यम् अदधुः ॥

जब बृहस्पतिदेवने गौओंके आच्छादक गिरिको विदीर्ण
 किया और विदीर्ण करके गौओंको प्राप्त किया, उस समय पालक
 देवता (पितर) इन्द्र आदिने, कपिश वर्ण वाले घोड़ेको जिस
 प्रकार सुवर्णके आभूषणोंसे अलंकृत करते हैं, जिस प्रकार
 धूलोकको नक्षत्रोंसे अलंकृत किया था । और उन्होंने राजीमें
 अंधकारको स्थापित किया तथा दिनमें सबको दिवाने वाले तेज
 मयको स्थापित किया ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

इदमंकर्म नमो अभिषाय यः पूर्वीरन्वानोत्तंवीति ।
 बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स
 नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

इदम् । अंकर्म । नमः । अभिषाय । यः । पूर्वीः । रन्वः । आ-
 नोत्तंवीति ।

बृहस्पतिः । सः । हि । गोभिः । सः । अश्वैः । सः । वीरेभिः ।

नः । नृभिः । नः । वयोः । धात् ॥ १२ ॥

अन्निपाय अभ्रम् अर्हतीति अन्नियः । ॐ “०अभ्राद् घः”
इति घमत्ययः ॐ । मेघविदारणेन जलं प्रयच्छने बृहस्पतये इदं
नमः नमस्कारो गत्वन्निगम् अन्नम् अन्नसाधनं वा स्तोत्रम् अर्घ्यं
ययम् अन्तर्घ्यम् । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इत्यादिना च्लो-
लुङि कृते “इन्द्रम्युभयथा” इति तिङ् आर्धधातुकत्वाद् द्वि-
ज्ञावाभावे गुणः ॐ । यो बृहस्पतिः पूर्वीः बह्वीर्ऋचः अनुक्रमेण
आनोनवीति अन्यर्थम् आभिमुख्येन व्रवीति साधु स्तुतवान् इति
व्रूते । स हि स खलु बृहस्पतिः नः गोभिः बह्वीभिः सहितं वयः
अन्नम् अथात् प्रयच्छन्विति संबन्धः । एवम् उत्तरत्रापियोज्यम् ।
स एव बृहस्पतिः अश्वैर्बहुभिः सहितं वयोधात् । स बृहस्पतिः
वीरेभिः वीरैः पुनैरुपेतं वयोधान् । स च बृहस्पतिः नृभिः नेतृ-
भिर्भृत्यादिभिः सहितं वयोधात् ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

मेघको निरीर्ण करके जलको प्रदान करनेवाले बृहस्पति देवके
लिये, हम इस हवि वा स्तोत्रको अर्पण करते हैं, कि-जो बृहस्पतिदेव
बहुतसी श्रृंखलाओंके विषयमें अनुक्रमसे कहते हैं कि-बड़ी अच्छी
स्तुति हुई । वह बृहस्पति देव हमको गाँओं सहित अन्न प्रदान
करे, वह घोड़ों सहित, पुत्रोंसहित और भुज्य आदिसे सम्पन्न
अन्न प्रदान करे ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६३२) ।

‘अच्छा म इन्द्रम्’ इति सूक्तप्रति नयैव उच्यते ब्रह्मणस्त्रे
विनिष्कृतम् । तत्र “बृहस्पतिर्नः परि पातु” [११] इत्येषा परि-
धानीया । “बृहस्पते युवमिन्द्रश्च” [१२] इत्येषा शस्त्रयाज्या ॥

“अच्छा म इन्द्रम्” यह सूक्त भी तहाँ ही उच्यते ब्रह्मणस्त्रे
में विनिष्कृत होता है । तहाँ ‘बृहस्पतिर्नः परि पातु’ (११) यह
परिधानीया है । “बृहस्पते युवमिन्द्रश्च” (१२) यह शस्त्रयाज्या है

इन्द्राद्याः स्यात्वं न अश्वम् कपिशवर्णम् अश्वमित्रं तं यथा लोके
 कुशनेभिः । कुशनम् इति सुवर्णनाम । कुशनैः सुवर्णमयैराभरणैः
 पिशन्ति अलंकुर्वन्ति एवं नक्षत्रेभिः । नक्षत्रात् नाशात् प्रायन्तीति
 नक्षत्राणि न विद्यते क्षत्रं बलम् एवम् इति वा नक्षत्राणि ग्रह-
 तारकादीनि । तैः याम् द्युलोकम् अपिशन् अलंकृः । ॐ पिश
 अवयवे । रुधादिः ॐ । एवं राज्याम् । निशि तमः अन्धकारम्
 दधुः स्थापितवन्तः । एवम् अहन् अहनि ज्योतिः सर्वस्य दीपकं
 तेजः आदित्याख्यम् अददुः ॥

जब बृहस्पतिदेवने गौओंके आच्छादक गिरिको विदीर्ण
 किया और विदीर्ण करके गौओंको प्राप्त किया, उस समय पालक
 देवता (पितर) इन्द्र आदिने, कपिश वर्ण वाले घोड़ेको जिस
 प्रकार सुवर्णके आभूषणोंसे अलंकृत करते हैं, तिस प्रकार
 द्युलोकको नक्षत्रोंसे अलंकृत किया था । और उन्होंने रात्रिमें
 अंधकारको स्थापित किया तथा दिनमें सबको दिवाने वाले तेज
 मूर्धको स्थापित किया ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वोऽन्वानो नन्वीति ।
 बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स
 नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

इदम् । अकर्म । नमः । अभ्रियाय । यः । पूर्वोः । अन्व । आ-
 नो नन्वीति ।

बृहस्पतिः । सः । हि । गोभिः । सः । अश्वैः । सः । वीरेभिः ।

सः । नृभिः । नः । वयः । धात् ॥ १२ ॥

अभियाय अभम् अर्हतीति अभ्रियः । ॐ “०अभाद् यः”
इति घपत्ययः ॐ । मेघविदारणेन जलं प्रयच्छते बृहस्पतये इदं
नमः नमस्कारोत्तमज्ञानम् अन्नम् अन्नसाधनं वा स्तोत्रम् अग्नौ
ययम् अकार्णम् । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे यस०” इत्यादिना च्ले-
लुङि कृते “हृन्दस्युभयथा” इति तिङ् आर्षधातुवत्त्वाद् हिन्-
श्चावाभावे गुणः ॐ । यो बृहस्पतिः पूर्वीः बह्वीर्ऋचः अनुक्रमेण
आनोनवीनि अन्यर्थम् आभिमुख्येन व्रतीति साधु स्तुतवान् इति
ब्रूते । स हि स खलु बृहस्पतिः नः गोभिः बह्वीभिः सहितं वयः
अन्नम् अथात् प्रयच्छत्विति संबन्धः । एवम् उत्तरत्रापि योज्यम् ।
स एव बृहस्पतिः अश्वैर्बहुभिः सहित वयोधात् । स बृहस्पतिः
वीरेभिः वीरैः पुनैरुपेतं वयोधात् । स च बृहस्पतिः नृभिः नेतृ-
भिर्भृत्यादिभिः सहित वयोधात् ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

मेघको विदीर्णं करके जलको प्रदान करनेवाले बृहस्पति देवके
लिये हम इस हवि वा स्तोत्रको अर्पण करते हैं, कि-जो बृहस्पतिदेव
बहुतसी ऋषीओंके विषयमें अनुक्रमसे कहते हैं कि-बड़ी अच्छी
स्तुति हुई । वह बृहस्पति देव हमको गौओं सहित अन्न प्रदान
करे, वह घोड़ों सहित, पुत्रोंसहित और भृत्य आदिसे सम्पन्न
अन्न प्रदान करे ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमे तृतीय सूक्त समाप्त (६२२) ।

‘अच्छा म इन्द्रम्’ इति सूक्तमपि तत्रैव उत्तरार्धे ब्रह्मणस्त्रे
विनियुक्तम् । तत्र “बृहस्पतिर्नः परि पातु” [११] इत्येषा परि-
धानीया । “बृहस्पते युवमिन्द्रश्च” [१२] इत्येषा शस्त्रयाज्या ॥

“अच्छा म इन्द्रम्” यह सूक्त भी तहाँ ही उत्तरार्धमें ब्रह्मणस्त्र
में विनियुक्त होता है । तहाँ ‘बृहस्पतिर्नः परि पातु’ (११) यह
परिधानीया है । “बृहस्पते युवमिन्द्रश्च” (१२) यह शस्त्रयाज्या है

तत्र प्रथमा ॥

अच्छां म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वां उश-
तीरनूपत ।

परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मय-
वानमृतये ॥ १ ॥

अच्छ । मे । इन्द्रम् । मतयः । स्वःऽविदः । सध्रीचीः । विश्वाः ।
उशतीः । अनूपत ।

परि । स्वजन्ते । जनयः । यथा । पतिम् । मर्यम् । न । शुन्ध्युम् ।
मयऽवानम् । ऊतये ॥ १ ॥

इन्द्रं देवम् अच्छ अभिमुखीकृत्य मे मम सुहृत्स्यस्य घापेयस्य
मतयः स्तुतयः अनूपत स्तुवन्ति । ॐ नु स्तुतौ । च्लोः सिच् ।
“लिङ्सिचावात्मनेपदेषु” इति किङ्करावाद् गुणाभावः ॐ ।
मतयो विशेष्यन्ते । स्वर्विदः स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भयिष्यः
सध्रीचीः सहाश्रनाः परस्परं संगताः । ॐ अश्नु गतिपूजनयोः ।
“अस्तिग्दृक्स्त्रिंशत्” इत्यादिना नकारलोपः । सदस्य सध्रया-
देशः । “अश्नतेरचोपसंख्यानम्” इति ङीप् । मसंज्ञायाम्
“अचः” इत्यङ्कारलोपः ॐ । विश्वाः व्याप्ता उशतीः इन्द्रं काम-
यमानाः । आदर्शतिशयश्रोतनाय उक्तमेवार्थं, सदृष्टान्तं पुनराह
परि ष्वजन्ते इति । जनयः जनयन्ति उत्पादयन्ति अपत्यम् इति
जनयो योपितः । ता यथा पतिं परि ष्वजन्ते दृढम् आलिङ्गन्ति ।
किं च शुन्ध्युम् शोधकं मर्यं न मर्त्यमिव यथा पित्रादिकं दूरद्
आगतं पुत्रादयो यन्धुभृता ऊतये स्वरक्षणाय परिष्वजन्ते तद्वद्

मयवानम् मयवन्तं धनवन्तम् इन्द्रम् ऊतये रक्षणाय मे मतयः परि
ष्वजन्ते । निर्धनस्य रक्षाकरणायोगाद् मयवन्तम् इत्युक्तम् ॥

इन्द्रदेवको लक्ष्यमें रख कर मुझ सुन्दर हाथ और घोष वाले
की स्तुतियों स्तुति करती हैं । यह स्तुतियों स्वर्ग की प्राप्ति कराने
वाली हैं, परस्पर मिली हुई हैं, व्याप्त हैं और इन्द्रजी कामना करती
रहती हैं । जिस प्रकार सन्तानको उत्पन्न करने वाली स्त्रियें
पतिका दृढ़तासे आलिंगन करती हैं और जिस प्रकार शोधक
पिता आदिको दूरसे आते देख कर पुत्र आदि बांधव अपनी
रक्षाके लिये उससे लिपट जाते हैं । इसी प्रकार धनवान् इन्द्रको
रक्षाके लिये मेरी स्तुतियों आलिंगन करती हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न घां त्वद्रिगपं वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत
शिश्नय ।

राजेव दस्म नि पदोधिं बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमैवपानं-
मस्तु ते ॥ २ ॥

न । घ । त्वद्रिक् । अप । वेति । मे । मनः । त्वे इति । इत् ।
कामम् । पुरुहूत । शिश्नय ।

राजाऽयम् । दस्म । नि । सदः । अधि । बर्हिषि । अस्मिन् । सु ।
सोमे । अवपानम् । अस्तु । ते ॥ २ ॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूत इन्द्र त्वद्रिक् त्वां गच्छत् मे मम मनः
न घ न खलु अप वेति अपगच्छति कदाचिदपि त्वत्तो नापसरति
किं तु त्वे इत् त्वय्येव कामम् अभिलाषं शिश्नय अयनि आश्र-

यति । ॐ श्रिञ् संवायाम् । द्वान्दसे लिटि “एलुत्तमो वा” इति
 वृद्धयभावे रूपम् ॐ । यस्माद् एवं तस्मात् हे दस्म शत्रूणाम्
 उपक्षयितः दर्शनीय वा इन्द्र त्वं राजेव यथा राजा सिंहासने
 निषीदति । एवम् अधि वहिषि । ॐ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ॐ ।
 आस्तीर्णे दर्भे नि पदः निषीद । निषीदतेऽत्र को लाभ इति
 उच्यते । अस्मिन् सोमे सोमयागे संस्कृते वा सोमे ते तव अवपा-
 नम् अवनतं पानम् अस्तु भवतु ॥

हे पुरुहूत इन्द्र ! आपको प्राप्त होता हुआ मेरा मन, कभी
 भी आपसे अलग नहीं होता है, किंतु आपमें ही अभिलाषा
 रखता हूँ । इस कारण हे शत्रुओंका संहार करने वाले इन्द्र !
 जिस प्रकार राजा सिंहासन पर बैठता है, तिस प्रकार कुशासन
 पर बैठिये । इस संस्कृतसोमयागमें आपका अवपान होवे ॥२॥

तृतीया ॥

विपूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मयवा वस्व
 ईशते ।

तस्येदिमे प्रवणे सप्तसिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य
 शुष्मिणः ॥ ३ ॥

विपूवृत् । इन्द्रः । अमतेः । उत । क्षुधः । सः । इत् । रायः ।
 मयवा । वस्वः । ईशते ।

तस्य । इत् । इमे । प्रवणे । सप्त । सिन्धवः । वयः । वर्धन्ति ।
 वृषभस्य । शुष्मिणः ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवः अस्माकम् अमनः दारिद्र्यस्य शून्याया मतेर्वा

वर्ततेः विपूवृत् विष्वग् वर्तयिता मच्यावयिता भवतु । ॐ विपु-
 शन्द्रोपपदाद् वर्ततेः विवप् ॐ । उत अपि च इन्द्रः क्षुधः पुष्ट-
 ताया विपूवृद् भवतु । सत्स्वन्येषु देवेषु इन्द्र एव कथं प्रार्थयत
 इति तत्राह । स इत् स एव मघवा धनवान् इन्द्रः रायः दानार्हस्य
 वस्वः वसुनो वासकस्य धनस्य ईशते ईष्टे स्वामी भवति । ॐ “तिष्ठां
 तिष्ठो भवन्ति” इत्येकवचनस्थाने बहुवचनम् ॐ । किं च वृष-
 भस्य वर्षकस्य शुष्मिणः बलवतः तस्येत् तरयैवेन्द्रस्य संबन्धिनः
 इमे प्रसिद्धाः सप्त सिन्धवः स्पन्दनशीलाः “इभं मे गङ्गे” [अ०
 १०. ७५. ५] इतिमन्त्रोक्ता गङ्गाद्याः सप्त सिन्धवः प्रवणे अव-
 नते देशे वयो वर्धन्ति अन्नं समर्पयन्ति । ॐ वृधु वृद्धौ । एिच् ।
 “छन्दस्पुभयथा” इत्यार्धधातुकसंज्ञायाम् णिलोपः ॐ ॥

इन्द्रदेव हमारी दग्धिताको भली भाँति नष्ट करने वाले बनें,
 और इन्द्रदेव हमारी भूखको दूर करें (और देवताओंके होने
 पर भी इन्द्रदेवकी ही प्रार्थना क्यों की जाती है तो कहते हैं,
 कि-)यह धनी इन्द्र ही वासक धनके स्वामी हैं । और इन वर्षक
 वाली इन्द्रदेवकी ही गंगा आदि सात नदियें अवनत स्थानमें
 अन्नको बढ़ाती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमांस इन्द्रं मन्दिनं-
 श्रमूपदेः ।

प्रेषामनीकं शवंसा दविद्युतद् विदत् स्वर्भनवे-
 ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥

वयः । न । वृक्षम् । सुपलाशम् । आ । असदन् । सोमांसः ।

इन्द्रम् । मन्दिनः । चमूऽसदः ।

प्र । एषाम् । अनीकम् । शवसा । दविद्युतत् । विदत् । स्वः ।

मनवे । ज्योतिः । आर्यम् ॥ ४ ॥

वयो न वृत्तम् यया वयः पक्षिणः सुगलाशम् शोभनपर्णोपितं
पल्लवितं वृत्तम् आसीदन्ति तद्वद् मन्दिनः मदकराः चमूषदः
चम्बोरधिपवणफलकयोरवस्थिताः सोमासः सोमा इन्द्रम् आस-
दन् । एषां सोमानाम् अनीकम् समूहो मुखं वा शवसा दविद्युतत्
द्योतते । ॐ “दाधर्ति दधर्ति” इत्यादिना यद्वलुगन्ताद् द्युतेः
शनरि अभ्यासस्य संप्रसारणमात्रः अभ्यासस्य अस्त्वं विगाग-
मश्च निषान्यते । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ॐ । किं
च तद् अनीकं स्वः आदित्याख्यम् आर्यम् अर्यम् अरणीयम्
अभिगमनीयं ज्योतिः मनवे मनुष्याय मनुष्याणां प्रकाशाय विदत्
अविदत् प्रायच्छद् इत्यर्थः ॥

जैसे पक्षी सुन्दर पक्षों वाले पल्लवित वृत्त पर बैठते हैं, इसी
प्रकार मद करने वाले अधिपवणके फलकों पर स्थित सोमइन्द्र
का आश्रय लेते हैं । इन सोमोंका मुख दमकता रहता है । उस
मुखने आदित्य नाम वाली सेवनीय ज्योतिकी मनुष्योंके प्रकाश
के लिये दिया है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

कृतं न श्वश्री वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं
जयन्त ।

न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुंराणो मघवन्
नोत नृत्तनः ॥ ५ ॥

कृतम् । न । श्वश्री । वि । चिनोति । देवने । सम्वर्गम् ।

यन् । मघवा । सूर्यम् । जयन्त ।

न । तत् । ते । अन्यः । अनु । वीर्यम् । शक्त् । न । पुराणः ।

मघवन् । न । उत । नूननः ॥ ५ ॥

कृतं न शक्नी । वर्णव्यत्ययेन सकारस्य शकारः । स्वम्
आत्मानं हन्त्यनेनेति स्वघ्नं द्यूतम् । तद् अस्यास्तीति शक्नी ।
यद्वा स्वम् आत्मानं हतवान् शक्नी कृतवः । स यथा देवने द्यूते
कृतम् कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुम् अयं विचिनोति विचयं करोति
एवम् इन्द्रम् अस्मदीया स्तुतिः देवने क्रीडने ममोदे वा निमित्त-
भूते सति वि चिनोति । ॐ शक्नीति । स्वशब्दोपपदात् हन्तेः
“घवर्णे कविधानम्” इति कप्त्ययः । “अत इनिठनौ” इति
इनिप्त्ययः । यद्वा “बहुलं छन्दसि” इति वचनाद् ब्रह्मादिव्य-
तिरिक्तेषुपपदे हन्तेः क्विप् । “ऋन्नेभ्यः०” इति ङीप् । “अल्लो-
पोनः” इत्यकारलोपः । “हो हन्तेः०” इति घत्वम् । व्यत्ययेन
स्त्रीलिङ्गना ॐ । यत् यस्मात् कारणाद् मघवा धनवान् इन्द्रः
संवर्गं रसस्य तमसो वा संवर्जकं सूर्यं देवं जयत् अजयत् । सकल-
जगत्प्रकाशनाय दिवि स्थापितवान् इत्यर्थः ॥ अथ प्रत्यक्षकृतः ।
हे मघवन् इन्द्र ते तव तत् उक्तलक्षणं वीर्यम् अन्यस्त्वत्तोऽपरो
नानु शक्त् अनुकर्तुं न शक्नोति । अन्यमेव विशिनष्टि । त्वत्तो-
ऽन्यः पुराणः पूर्वकालीनः नानु शक्त् । उत अपि च नूननः
आधुनिकोपि नानु शक्त् ॥

जैसे जुआरी जुएमें लाभ देने वाले कृत्त नामक फाँसिका बरण
करता है, इसी प्रकार हमारी स्तुति ममोदके लिये इन्द्रका बरण
करती है, क्योंकि— इन्द्रदेवने अंधकारको दूर करने वाले संवर्जक
सूर्यको सकल जगत्को प्रकाशित करनेके लिये शूलोकमें स्थापित
कर दिया है । हे इन्द्रदेव ! आपके ऐसे वीर्यकी और कोई अनु-
कृति (नकल) नहीं कर सकेगा, और आपसे प्राचीन भी कोई

ऐसा काम नहीं कर सका था और आज कलका भी कोई नहीं कर सका है ॥ ५ ॥

पष्ठी ॥

विशंविशं मधवा पर्यशायत् जनानां धेनां अवचा-
कशद् वृषा ।

यस्याहं शक्रः सवनेषु रणयति स तीव्रैः सोमैः सहते
पृतन्यतः ॥ ६ ॥

विशम् विशम् । मधवा । परि । अशायत् । जनानाम् । धेनाः ।
अवचाकशद् । वृषा ।

यस्य । अहं । शक्रः । सवनेषु । रणयति । सः । तीव्रैः । सोमैः ।
सहते । पृतन्यतः ॥ ६ ॥

वृषा कामानां वर्णिता मधवा धनवान् । अभिमतप्रदानं धन-
वत एव युज्यत इत्यस्य प्रकृष्टधनवत्त्वाभिधानाय अत्र मधवेत्यु-
क्तम् । उक्तगुणक इन्द्रो विशंविशम् तंतं यजमानं पर्यशायत् परि-
शेते । ये ये यष्टारः सन्ति तास्तान् सर्वानपि स्वविभूत्या समकाल
एव प्राप्तवान् इत्यर्थः । किं च जनानाम् स्तोतॄणां धेनाः भीष्म-
पित्रीः स्तुतीरेककाल एव अवचाकशद् । ॐ परयतिकर्मैतत् ॐ ।
अभिपश्यति । स्तोत्रं शृणोतीत्यर्थः । एवं शक्रः शक्त इन्द्रो यस्य
यजमानस्य सवनेषु त्रिष्वपि रणयति रमते । ॐ रणतिः क्रीडा-
कर्मा । व्यत्ययेन श्यन् । यच्छब्दयोगाद् अनिघातः ॐ । स
यजमानः तीव्रैः अत्यन्तपदकरैः सोमैः सोमरसैः । ॐ सवनत्र-
यापेक्षया बहुवचनम् ॐ । सोमपानेन पृतन्यतः संग्रामम् इच्छतः
शत्रून् सहते अभिभवति ॥

कामनाओंकी पूर्णा करने वाले धनवान् इन्द्रदेव जो २ पूजा करने वाले हैं उन सबके पास अपनी विभूतिसे एक समयमें ही प्राप्त होजाते हैं। और स्तोता मनुष्योंकी प्रसन्न करनेवाली स्तुतियों को एक समयमें ही सुनते हैं ऐसे समर्थ इन्द्रदेव जिस यजमानके तीजों सबनोंमें रमण करते हैं वह यजमान बड़ा मद करने वाले सोमपानके प्रभाववश सेना लेकर संग्राम करना चाहने वाले शत्रुओंको दवा देता है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमांस इन्द्रं
कुल्या इव हृदम् ।

वर्धन्ति विषा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन
दानुना ॥ ७ ॥

आपः । न । सिन्धुम् । अभि । यत् । सम्प्रक्षरन् । सोमांसः ।
इन्द्रम् । कुल्याः इव । हृदम् ।

वर्धन्ति । विषाः । महः । अस्य । सादने । यवम् । न । वृष्टिः ।
दिव्येन । दानुना ॥ ७ ॥

यत् यदा सोमांसः सोमाः आपो न सिन्धुम् आपः सिन्धुम् समुद्रमिव कुल्याः अक्षाः सरितश्च हृदमिव इन्द्रं देवं प्रति अभि समक्षरन् अभिक्षरन्ति तदा विषाः मेघाविनः स्तोतारः सादने यज्ञगृहे अस्य इन्द्रस्य महः माहात्म्यं वर्धन्ति वर्धयन्ति । स्तुतिभिरिति शेषः । अभिवर्धने दृष्टान्तः यवं न वृष्टिरिति । वृष्टिः । वर्षतीति वृष्टिर्मेघः । स यथा दिव्येन दिवि भवेन दानुना ज्दकदानेन वृष्टिरेव वा दिव्येन स्वकीयेन दानेन यवं न यवमिव तं यथा वर्धयति तद्वत्

जब सोम, जलके सिंधुमें प्रवेश करनेकी समान, छोटी २ नदियोंके सरोवरमें प्रवेश करनेकी समान, इंद्रदेवकी ओर अभि-
क्षरण करते हैं, तब स्तुति करने वाले विद्वान् पुरुष यज्ञघरमें इन
इंद्रदेवके माहात्म्यको स्तुतियोंसे बढ़ाने हैं। जैसे मेघ दिव्य जलदान
से यवको बढ़ाने हैं इसी प्रकार स्तोता स्तुतियोंसे इंद्रको बढ़ाने हैं०
अष्टमी ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपवीरकृणोदिमा
अपः ।

स मुन्वते मयवा जीरदानवेविन्दज्योतिर्मनवे हवि-
ष्मते ॥ ८ ॥

वृषा । न । क्रुद्धः । पतयद् । रजः । स्वा । यो । अर्यपवीरः । कृ-
णोन् । इमाः । अपः ।

मः । मुन्वते । मयवा । जीरदानवे । अविन्दन् । ज्योतिः ।
मनवे । हविष्मते ॥ ८ ॥

य इन्द्रः अर्यपवीरः अर्येण अभिगन्त्रा आदित्येन पालिता इमाः
ममिदा अपः उद्गच्छन्ति अकृणोन् करोति भूमिष्ठानि करोति स
इन्द्रो वृषा न क्रुद्धः यथा क्रुद्धः क्रोधेन अन्धीभूतो वृषा वृषमः
मयवाः पतन्ति गच्छन्ति स्वगतिमर्हन् वृषमं परामविनुम् एवं स इन्द्रो
रजःसु लोकेषु आ सर्वतः पतयन् पतन्ति गच्छन्ति । मेयं दारयि-
नुम् इति शेषः । अनन्तरं मयवा पतयान् इन्द्रः मुन्वते सोमाभि-
पवं कुर्वते जीरदानवे क्षिप्रदानाय शीघ्रे हविः मयच्छते हविष्मते
हविर्भिः सोमादिभिस्तृणैर्मनवेमननवने यजमानाय ज्योतिः प्रका-
शकं नेतः अविन्दन् अलुपन् मायच्छन् मयच्छति ॥

— ओ इंद्रदेव सूर्यसे-पालित-ईर्न-जलोंको भूमिष्ठ करते हैं;
 यह इंद्रदेव क्रोधमें मरा हुआ बैल जैसा । अपने प्रतिपेट मन्त्र
 का पराभव करनेके लिये सर्वतो भावसे जाता है; इसी, मंकार
 लोको पर मेघको विदीर्ण करनेके लिये पूर्णरीतिसे गमन करते
 हैं, इसके अतिरिक्त वह-धनी (इंद्र)-सोमाभिषव करने वाले;
 शीघ्रतासे इवि प्रदान करने वाले इविष्मान् पत्रपानके, लिये तेज
 प्रदान करते हैं ॥ ६ ॥
 उज्जायतां परशुज्योतिषा सह भूया अतस्य सुदुघा
 पुराणवत् ।

वि रोचतामरुयो भानुना शुचिः स्वर्णं शुक्रं शुशुचीत्
 । सत्स्यतिः ॥ ६ ॥
 उज्जायतां परशुज्योतिषा सह भूया अतस्य सुदुघा
 पुराणवत् ।
 वि । रोचताम् । अरुयः । भानुना । शुचिः । स्वर्णं । न । शुक्रम् ।
 शुशुचीत् । सत्स्यतिः ॥ ६ ॥

परशुः इंद्रस्य वज्रः ज्योतिषा स्वतेजसा सह उज्जायिताम्
 ऊर्ध्वं प्रादुर्भवतु मेघविदारणार्थम् । किं च अतस्य उदकस्य सं-
 बन्धिनी सुदुघा-सुष्ठु दोहयित्री माध्यमिका वाक्-“दुहः
 कथञ्च” इति कप् । इकारस्य-घकारः । पुराणवत्-पूव-यथा
 इदानीमपि, एवं भूयाः भूयात् । पुरुषव्यत्ययः । किं-च
 अरुयः आरोचमानो भानुना स्वतेजसा शुचिः प्रज्वलन् वि रोच-

ताम् प्रकाशताम् । वित्तमेवार्थं सहृष्टान्ति पुनरोहः । स्वर्गं शुक्रम्
 स्वः आदित्यः सं यथा शुक्रम् दीप्तं तेजः प्रकाशयति । तेजसा
 स्वयं दीप्यत इत्यर्थः । एवं सत्पतिः सती पालके इन्द्रः शुशुचीत
 अत्यन्तं दीप्यताम् । ॐ शुची शोकेन निमित्ययेन आत्मनेपदम् ।
 लिङि "बहुला द्वन्द्वसि" इति शर्पः प्लुः । सिपुडोदिः ॐ ॥ ३ ॥
 इन्द्रदेवको विष्णुमेधका विदारण करनेके लिये अपने तेजके
 साथ ऊपरको मकट होवे । और जलको दुहनेवाली माध्यमिका
 बाणी पहिलेकी समान इस समर्थ भी मकट होवे । और अपने
 तेजमे दमकती हुई प्रकाशित होवे । और जिससे दमकता हुआ सूर्य
 अपने तेजसे अपने आप ही दमकता है, इसी प्रकार सबजनोंके
 पालक इन्द्रदेव परम मदीप्त होवे ॥ ६ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुभं पुरुहूतः विश्वाम् ।
 त्वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम
 गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।
 विश्वाम् । गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुभम् । पुरुहूतः ।

तवानुग्रहेण समानानां मध्ये मुख्यभूता त्रयं-राजभिः-सन्निधैर्भू-
 पालैर्यत्नानि वहन्ति । लभेमहीति शेषः- एषु संपन्नेषु सत्सु अस्मा-
 फेन अस्मत्सन्निधना । ॐ संवन्धार्थे अणि विहिते "तस्मिन्नणि
 च युष्माकास्माका" इति अस्माकादेशः । वृद्धयभावश्चानन्दसः ॐ ।
 वृजनेनैवलोत जयेम । शत्रून् इति शेषः ॥ १०७ ॥
 न हे पुरुहूत, इंद्र । हम यज्ञमानि आपका, अनुग्रह पाते हुए आप
 की दी हुई गाँओसे दुर्दशामें डालने वाले दरिद्र के पार, जावें ।
 और आपके दिये हुए जौं धाने आदिसे पुत्र भृत्य आदिकी भूख
 को दूर कर सकें । और आपके, अनुग्रहसे समान पुरुषोंमें मुख्य
 हुए हम राजाओंसे बहुतसे धनको प्राप्त करें, इन सबके होनेपर
 हम अपने बलसे शत्रुओंको जीतें ॥ १०७ ॥
 वृहस्पतिर्नः पारि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः
 इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः
 कृणोतु ॥ ११ ॥
 वृहस्पतिः नः पारि पातु पश्चात् । उतोत्तरस्मात् ।
 (अधरात्) अयधयोः । इन्द्रः । पुरस्तात् । उत । मध्यतः । नः । सखा । सखिभ्यः ।
 वरिवः । कृणोतु ॥ ११ ॥
 वृहस्पतिर्देवः पश्चात् पश्चिमदेशाद् आगच्छतः अधायोः अधं
 पापं परेषाम् इच्छतो हिसकात् । ॐ "इन्द्रसि परेच्छायाम्" इति
 वयं च प्रत्ययेः । "वयोच्छन्दसि" इति उपत्ययेः । "अश्वाधम्यात्"
 इति आश्चम् । प्रत्ययेस्वरः ॐ । तस्माद्देवः अस्मान् पारि पातु

सर्वतो रक्षतु । अतः अपि च उत्तरस्माद् अधराच्च देशाद् आ-
गच्छतः अघोर्योः नः अस्मान् परि पातु । एवम् इन्द्रोऽपि देवः
पुरस्ताद् आगच्छतः अघोर्योः परि पातु । मध्यतः मध्यमाद् देशा-
दप्यगच्छतः परि पातु । एवं सर्वतो रक्षां कृत्वा सखा मित्रभृत
इन्द्रः सखिभ्यः सखिभृतेभ्यः अस्मभ्यं वरिषा । धनंतामैवत् ।
धनं कृणोतुं करोतु मयच्छतु । हविःप्रदानवरप्रदानाभ्यां पुरस्परं
संस्विभावो द्रष्टव्यमीति । अतः अतः अतः अतः अतः
वृहस्पतिदेव हमको, दूसरेके लिये हिंसास्पर्षापापको उपाहने
वाले हिंसक-अघोर्यसे सर्वत्र बचावे । और उत्तर तथा अधर दिशा
से आते हुए अघोर्यसे हमको बचावे । इन्द्रदेव सामनेसे आते हुए
मध्यदेशसे आते हुए हिंसकसे भी हमारी रक्षा करे । इस प्रकार
चारों ओरसे रक्षा करके मित्रभृत इन्द्र हम मित्र बने हुए हमको
धन-प्रदान करे । यहाँ हविः प्रदान और वरदानसे मित्रभाव
समझना चाहिये ॥ ११ ॥

वृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यरेयंशाथे उत पार्थिवस्य
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये त्रिव्यूयं पान स्वस्तिभिः सदा नः

वृहस्पते । युवम् । इन्द्रः । च । वस्वः ॥ दिव्यस्य ॥ ईशाथे इति ।

उत पार्थिवस्य । अतः । अतः । अतः । अतः । अतः ।

धत्तम् । रयिम् । स्तुवते । कीरये । चित् । युवम् । पान ।

स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १२ ॥

वृहस्पते त्वं च इन्द्रश्च युवम् युवाम् ॥ "मयमायाश्च दि-
वने भाषायाम्" इति विहितम् आस्यं सन्दर्शितं न भवति ॥

दिव्यस्यं दिवि भवस्य वस्वः वसुनः ईशाये स्वामिनो भवथः ।
उत अपि च पार्थिवस्य पृथिवीसंघन्धिनो वस्व ईशाये । यस्माद्
एवं तस्माद् स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते कीरये स्तोत्रे मह्यम् । चिद् इति
पूरणः । त्रिभिर्धनं धत्तम् प्रयच्छतम् । गतम् अन्यत् ॥

द्वितीयेनुवाके, चतुर्थं सूक्तम् । द्वितीयोऽनुवाकः ॥
इति विंशे काण्डे द्वितीयोऽनुवाकः ॥

हे धृष्टस्यते ! आप और इन्द्रदेव ! दोनों धुलोकके धनके
स्वामी हो और पृथिवीलोकके धनके भी स्वामी हो, इस कारण
हमका स्तुति करने वालेको धन प्रदान करो और आप अपनी
रक्षक शक्तियोंसे सदा हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त (६३३)

वींसे काण्डमें, द्वितीय अनुवाक समाप्त

तृतीयेनुवाके प्रयोदश सूक्तानि । तत्र आद्यानि चत्वारि
सूक्तानि अतिरात्रे क्रुक् मथमपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनि-
युक्तानि । चतुर्थसूक्तस्य अन्तिमा "य एहचेन्द्रि" इत्येषा परि-
धानीया । "अतिरात्रे होरात्रादिभ्यः" इति प्रक्रम्य सूत्रितं वैताने ।
"वयमु त्वा तदिदयाः [१] वयमिन्द्र त्वायवा [४] इति स्तो-
त्रियानुरूपौ । ऊर्ध्वं सर्वत्र व्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः ।
य एहचि [२०, २१, ११] इति परिधानीया । अप्सु धृतस्य
[२०, ३३, १] इति याज्या ॥ इति [वै० ४, ३] ॥

स्तोत्रियानुरूपाणां शंसनप्रकारस्तत्रैव उक्तः । "स्तोत्रियानु-
रूपयोः मथमे पर्याये मथमानि पदानि पुनरादायम् अर्धर्चशस्य-
पच्छंसनि । मध्यमे पर्याये मध्यमानि । उत्तम उत्तमानि" इति
[वै० ४, २] ॥

तीसरे अनुवाकमें, तेरह सूक्त हैं । इनमें पहिले चार सूक्त
अतिरात्र क्रुक् मथम पर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसीके, शस्त्रमें विनि-

कथानि स्तोत्राणि । तैर्जग्न्ते स्तुवन्ति । ॐ जरतिर्नरुक्तो धातुः
स्तुत्यर्थे वर्तते ॥

हे इन्द्रदेव ! यह स्तोत्र ही हे प्रयोजन जिनका ऐसे, आपकी
चाहते हुए, आपक मित्रभूत हम कण्वगोत्री उषयो (स्तोत्र) से
आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥
न धिमन्यदा पपन्न वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।

तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥
न । ध । इम् । अन्यत् । आ । पपन्न । वज्रिन् । अपसः । नविष्टौ ।
तव । इत् । ऊं इति । स्तोमम् । चिकेत ॥ २ ॥

हे वज्रिन् वज्रेवनिन्द्र अपसः कर्मणो यागान्मनो नविष्टौ तव-
नस्य स्तुतेरेपणार्या सत्यां तवोयाम् इष्टौ वा नूतने यागे कर्तव्ये
सति । ॐ शकन्वादित्वात् पररूपत्वम् ॥ इम् इदानीम् अन्यत्
त्वद्विषयाद् अपरम् अन्यदेवताविषय स्तोत्र न य नैव आ पपन्न
अभिष्टौमि । ॐ पनतेः स्तुतिकर्मणः उत्तमं एतत् रूपम् ॥ किं
तु तवेदु तवैव स्तोमम् स्तोत्रं चिकेत जानामि ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! अपरम नवीन यज्ञक समय में आपके
अतिरिक्त दूसरे देवताकी स्तुति नहीं करता हूँ-किंतु आपके ही
स्तोत्रको जानता हूँ ॥ २ ॥

इच्छन्ति देवाः सुव्रन्त न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।

यन्ति प्रमादिमतन्द्राः ॥ ३ ॥
इच्छन्ति । देवाः । सुव्रन्तम् । न । स्वप्नाय । स्पृहयन्ति ।
यन्ति । प्रमादिमतन्द्राः ॥ ३ ॥

यन्ति । प्रमादम् । अतन्द्राः ॥ ३ ॥

देवाः इन्द्राद्याः सुवन्नम् सोमाभिषवं कुर्वन्तम् । यजमानम्
इच्छन्ति रक्षितुम् इच्छां कुर्वन्ति । स्वमाय । स्वमशब्देन अनादरो
लक्ष्यते । तद्विषयानादराय न स्पृहयन्ति नैच्छन्ति । अदासीन्यं
न कुर्वन्तीत्यर्थः । ॐ “स्पृहेरीप्सितः” इति कर्मणि चतुर्थी ॐ ।
किं तु प्रमादम् प्रकर्षेण मादयितारं तं तस्य मदकरं सोमं वा उदि-
श्य अतन्द्राः अनलसाः सन्तो यन्ति गच्छन्त्येव । ॐ स्पृहय-
न्तीति । स्पृह ईप्सायाम् । पुरादिरदन्तः ॥ ३ ॥

इन्द्र आदि देवता सोमका अभिषव करने वाले यजमान की
इच्छा करते हैं—अर्थात् उसकी रक्षा करना चाहते हैं—उसके विषय
में अदासीनता नहीं करते हैं, किंतु प्रकृष्टतासे मदमें भरने वाले
सोमको लक्ष्यमें रख आलस्यशून्य हो जाते ही हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥ ३ ॥

वयमिन्द्रे त्वायवोभि प्र णोनुमो वृषन् ॥ ४ ॥

विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वायवः । अभि । प्र । नोनुमः । वृषन् ।

विद्धि । तु । अस्य । नः । वसो इति ॥ ४ ॥

हे वृषन् कामानां वर्षक इन्द्र त्वायवः त्वाम् इच्छन्तो वयम् ।

ॐ “मुप् आत्मनः वयच्” । “प्रत्ययोत्तरपदयोश्च” इति स्वा-
देशः । कुदन्तस्वात् मात्तिपदिकसंज्ञायाम् सुपो लुक् । “वयोच्छन्द-
सि” इति उपत्ययः । प्रत्ययस्वरेण प्रत्ययोदात्तः ॥ अभि प्र णो-
नुमः आभिमुख्येन प्रकर्षेण स्तुमः । तु अपि च हे वसो वासक
इन्द्र त्वपि नः अस्मदीयम् अस्य एतत् स्तोत्रं विद्धि कामये ॥

वयम् । इन्द्र । त्वायवः । अभि । प्र । नोनुमः । वृषन् ।

विद्धि । तु । अस्य । नः । वसो इति ॥ ४ ॥

हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले इन्द्रदेव ! आपकी चाहते हुए हम अभिमुख होकर आपकी स्तुति करते हैं, और हे वासक इन्द्र ! आप भी हमारी स्तुतिकी कामना करिये ॥ ४ ॥
 मा नो निन्दे च वक्तव्यो रन्धीरावाणे ।
 त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥

मा । नः । निन्दे । च । वक्तव्ये । अयोः । रन्धीः । अरावणे ।
 त्वे इति । अयि । क्रतुः । मम ॥ ५ ॥
 मा रन्धीः । अरावणे । अदात्रे । शत्रवे । मा रन्धीः ॥ अपि अपि च । मम । क्रतुः । मदीयः । सं-
 कल्पः । स्तुतिलक्षणं कर्म वा त्वे त्वयि । यत् । एवम् । अतो । निन्दः ।
 कादिभ्योऽस्मान् । मा रन्धीरिति संबन्धः ॥

हे स्वामी इन्द्र ! आप हमें निन्दकके विशेषों न डालिये, कठोर भाषण करने वालेके वशमें न डालिये, दान न देने वाले शत्रुके वशमें न डालिये, मेरा संकल्प वा स्तुतिरूप कर्म आपके लिये ही है अतः मुझको निन्दक आदिके वशमें न डालिये ॥ ५ ॥

त्वं वर्मांसि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।
 त्वया प्रतिं ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥
 त्वम् । मम । अमि । सप्रथः । पुरोऽयोधः । च । वृत्रहन् ।

द्रष्टव्यः । तत्र प्रः कर्म इत्यर्थे वा द्राक्षणादित्वात् एषः । अत्राह
आद्यदाचः ॐ । शवसे बलाय अपि च पृतनापादय परकीय
सेनाभिभवाय ॥ १ ॥ यह अभिभव इत्यस्माद्भावे “शक्तिसहोश्च”
इति यत् । सहितायां “सहेः पृतनर्थाभ्यां च” इति पत्वम् । छान्दसो
दीर्घः ॐ । तदर्थं स्वा स्वाम् आवर्तयामसि आवर्तयामः । अस्म-
दभिमुखं कुर्मः ॥

हम वृत्रहननरूप कर्मके लिये, बल दिखानेके लिये, शत्रुओं
की सेनाओंका तिरस्कार करनेके लिये आपको अपने अभिमुख
करते हैं ॥ १ ॥

अर्वाचीनं सु ते मनः उत चक्षुः शतक्रतो ॥ २ ॥
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

अर्वाचीनम् । सु । ते । मनः । उत । चक्षुः । शतक्रतो इति शतः शतक्रतो ।
इन्द्रः । कृण्वन्तु । वाघतः ॥ २ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मन्द्रते त्वं मनः वाघतः यज्ञनिर्वाहका अतिव्रजः
सु सुष्ठु अर्वाचीनम् अस्मदभिमुखं कृण्वन्तु ॥ “विभाषाश्चे-
रदिकस्त्रियाम्” इति खमर्यपः । खस्य इनादेशः । मर्यपस्वरः ॥
उत अपि च ते चक्षुः तव दृष्टिमपि । अस्मदभिमुखाम् अस्मासु
कृपावर्ती कुर्वन्तु ॥

हे अनेक कर्मसे सम्पन्न शतक्रतो इन्द्र ! यज्ञके निर्वाहके
अतिव्रज आपको भली प्रकार हमारे अभिमुख करें आपकी दृष्टि
को भी हमारी ओर कृपा भरी करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीभिरीमहे ।

प्राप्तां स्थानानां शतेन युक्तस्य । असंख्यातस्थानवन इत्यर्थः ।
 चर्पणीधृतः । चर्पणयो मनुष्याः । तान् धारयति रक्षतीति चर्पणी-
 धृत् । तस्य उक्तलक्षणस्येन्द्रस्य । उक्तलक्षणम् इन्द्रम् इत्यर्थः ।
 महयाममि महयामः पूजयामः स्तुमः । यद्वा शतेन शतसंख्याकेन
 स्तोत्रेण उक्तलक्षणम् इन्द्रं महयामसीति योज्यम् ॥

बहुतसे स्तोत्राओंसे स्तुत, सैकड़ों तेजोंसे सम्पन्न और मनुष्यों
 की रक्षा करने वाले इन्द्रदेवकी हम पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप-ब्रुवे ।

भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

इन्द्रम् । वृत्राय । हन्तवे । पुरुहूतम् । उप । ब्रुवे ।

भरेषु । वाजसातये ॥ ५ ॥

पुरुहूतम् बहुभिर्यजमानैराहूतं संग्रामे वा स्वस्वजयार्थं बहुभि-
 राहूतम् इन्द्रं वृत्राय । “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः
 संप्रदानत्वम् । वृत्रनाशनम् असुरं पापं वेत्यर्थः । हन्तवे
 हन्तुम् । “तुमर्षे” तवेन् प्रत्ययः । निस्वरः । किं च
 भरेषु । संग्रामनामेवत् । संग्रामेषु वाजसातये । वाजः अन्नम् ।
 “अन्नं वै वाजः” इति श्रुतेः [तै० सं० ५, ४, ६, ६] । अन्न-
 लाभाय । शत्रुजयम् अन्तरेण तदीयस्यान्नस्य लाभाभावात् तज्ज-
 यायेत्युक्तम् भवति । उक्तलक्षणोभयविधप्रयोजनाय इन्द्रम् उप-
 ब्रुवे उपेन्य स्तौमि ॥

यज्ञमें बहुतसे यजमानोंमें और संग्राममें अपनी २ विजयके
 लिये बहुतसे योधाओंमें आदान किये हुए इन्द्रदेवकी मैं पापको

नष्ट करनेके लिये और संग्राममें वाजे अर्थात् अन्न^१ पानेके लिये
इन्द्रकी स्तुति करता है ॥ ५ ॥ वाजेपु सासहिर्भव त्वामेमहे शतक्रतो ॥

वाजेपु सासहिर्भव त्वामेमहे शतक्रतो ॥

इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

वाजेपु । सासहिः । भव । त्वाम् । ईमहे । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

इन्द्र । वृत्राय । हन्तवे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र त्वं वाजेपु संग्रामेषु सासहिः शत्रूणाम् अभिभवित्वा
भव । ॐ सहैर्यदन्तात् किमत्ययः ॐ । तदर्थम् हे शतक्रतो बहु-
कर्मन्त्र त्वाम् ईमहे याचामहे ॥ अथ परोक्षवादः । किं च-इन्द्र
देवं वृत्राय हन्तव वृत्रम् असुरं पापं वा हन्तुम् ॥ स्तामीति शेषः ।
अथ वा इन्द्रशब्दो यागिकोत्र द्रष्टव्यः । इन्द्रं परमेश्वर्ययुक्तं त्वा
वृत्राय हन्तवे ईमहे इति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव । आप संग्राममें शत्रुओंके तिरस्कारक बने, इसके
लिये हे शतक्रतो । हम आपकी प्रार्थना करते हैं । हे इन्द्रदेव मैं
पापका संहार करनेके लिये आपकी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

धुम्नेषु पृतनाज्ये पृसुतृषु श्रवःसु च ।

इन्द्र साक्षाभिमानिषु ॥ ७ ॥

धुम्नेषु । पृतनाज्ये । पृसुतृषु । श्रवःसु । च ।

^१ तीक्ष्णगीर्वाहता ५ । ४ । ६ । ६ में अन्नको वाज कहा है,
अथ "अन्नं वै वाजः" ॥

इन्द्र । साक्ष । अभिऽमातिषु ॥ ७ ॥

हे इन्द्र पृतनाज्ये । संग्रामनामैतत् । पृतनानाम् अजनं जयो वाऽत्रेतित्युत्पत्तिः । संग्रामे । ॐ पृतनाशब्दोपपदाद् अजतेर्जयतेर्वा “अघ्न्यादयश्च” [उ० ४. १११] इति यक् प्रत्ययः । अनतिपसे “वा यति” इति बीभावविकल्पः । जयतेस्तु टिलोपो निपातनात् ॐ । घन्नेषु द्योतमानेषु धनेषु प्राप्तव्येषु पृच्छतृषु पृतनासु तर्तव्यासु च । ॐ पृतनाशब्दस्य सौ परंतो “मांसपृत्स्नूनाम् उप-संख्यानम्” इति पृदादेशः । अत्रिवा संभ्रमे इति संपदादिलक्षणः क्विप् । “ज्वरत्वर०” इत्यादिना ऊट् । “तत्पुरुषे कृति बहु-लम्” इति सप्तम्या अलुक् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ॐ । तथा श्रवःसु च । अन्ननामैतत् । ॐ श्रव इत्यन्ननाम श्रयत इति सत निरुक्तम् [नि० १०. ३] ॐ । अन्नेषु च लब्धव्येषु एवम् अभि-मातिषु शत्रुषु पापेषु वा । हन्त० येष्विति शेषः । एतेषु फलेषु निमित्त-भूतेषु साक्षं अस्मान् सचस्व अनुमर । ॐ यह अभिभवे । लोटि “बहुलं छन्दसि” इति शपोलुक् कुत्वपत्वे । दीर्घश्चान्दसः ॐ ॥

इति तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! संग्रामके समय, दमकते हुए घनोंको मांस करते समय सेनाओंको तरनेके समय, अन्नप्राप्तिके अवसर पर और शत्रु वा पापोंको नष्ट करनेके अवसरों पर आप हमारा अनुमरण करिये ॥ ७ ॥

— ३ — तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६३५)

— “द्युष्मिन्तमं न ऊनये” इति सूक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसिनः मयमपर्यायशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

— “द्युष्मिन्तमं न ऊनये” सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसी के मयमपर्यायशस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥ १ ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये शुम्निनं पाहि जागृविम् ।

इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥

शुष्मिन्तमम् । न ऊतये । घृन्निनम् । पाहि । जागृविम् ।

इन्द्र । सोमम् । शतक्रतो इति शतःक्रतो ॥ १ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मन्द् नः अस्माकं संबन्धिनः शुष्मिन्तमम्

अतिशयेन बलवन्तम् । ॐ "नाइ घस्य" इति जुडागमः ।

घृन्निनम् द्योतनं वन्तं जागृविम् जागरणशीलं स्वमनिवारकम् ।

न हि सोमं पीतवतः स्वममसद्गोस्ति अस्वप्नत्वसाधनत्वात् तस्य ।

उक्तमहिमोपेतं सोमम् ऊतये अस्माकं रक्षणेयं पाहि पिव ॥

हे शतक्रतु इन्द्रदेव । आप हमारे परमबलप्रद, दमकत रूप, स्वमनिवारक सोमका हमारी रक्षाके लिय पान करिय ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।

इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतःक्रतो । या । ते । जनेषु । पञ्चसु ।

इन्द्र । तानि । ते । आ । वृणे ॥ २ ॥

हे शतक्रतो हे इन्द्र ये तव सेवन्धीनि यानि प्रसिद्धानि इन्द्र-

पाणि इन्द्रस्यानि इन्द्रदेवानि वा वीर्याणि दर्शनश्रवणादिलेख-

णानि पञ्चसु जनेषु देवमनुष्यविषमुररक्षासु निपादपञ्चमेषु चतुषु

षष्ठेषु वा विद्यन्ते ते तव स्वमूत्रानि तानि आ वृणे संभजेय ।

ॐ रुद्र संभक्तो इत्यस्य लटि रूपम् ॥ ॥

हे इन्द्रदेव ! हे शतक्रतो ! आपके जो दर्शन श्रवण आदिरूप
वीर्य, देव मनुष्य पितर अमुर और राक्षसोंमें है उन सबको मैं
प्राप्त करूँ ॥ २ ॥

वृणीषा ॥

अगनिन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥

अगन् । इन्द्र । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् । दधिष्व । दुष्टरम् ।

उत् । ते । शुष्मम् । तिरामसि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र- तव संबन्धि बृहत् महत्-मभूत्, श्रवः अक्षम्-अगन्
अस्मान् गच्छतु । यद्वा उक्तरूपं सोमलक्षणम्, अग्ने त्वाम् अगन्
प्राप्नोत् । * गमेल्लिटि "बहुलं छन्दसि" इति शबोलुक् । "हल्-
इया०" इत्यादिना तिलोपः । "मो-नो धातोः" इति-मकारस्य
नकारः । अडागमः । स्वरः * । त्वं च दत्तस्य शक्तिरन्विता
अयोग्यं द्युम्नं द्योतमानं यशो

स्थापय । वयं तु ते शुष्मम् बलम् उत् तिरामसि सोमेन स्तोत्रेण
च वर्धयामः । * तू सवनतरणयोः । लटि व्यत्ययेन शः ।
"भूत इदातोः" इति इत्त्वम् । "इदन्तो मसिः" * ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी विशाल अन्न हमकी प्राप्त होवे और आप
शत्रुओंसे तरनेके अयोग्य-दमकते । हुए धनकी हममें स्थापित
करिये, और हम तो आपके बलको सोम और स्तोत्रसे बढ़ाते हैं
चतुर्थी ॥

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अदिव इन्द्रेह-तत आ गहि ॥ ४ ॥

(१२२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहितः

अर्वाञ्चतः । नः । आ गहि । अयो इति शक्र । पराञ्चतः ।
 उ इति । लोकः । ते । अद्रिञ्चः । इन्द्र । इह । ततः । आ । गहि

हे शक्र बलवन्निन्द्र अर्वाञ्चतः अर्वाचीनात् समीपाद् देशाद्
 अयो अपि चत्पराञ्चतः अतिदूराद् देशात् । नि । उपसर्ग-
 च्छन्दसि धात्वर्थे ” इति वृत्तिः । प्रत्ययस्वरः । नः । अस्मात्
 अभिलक्ष्य आ गहि आगच्छ । उ इति वाक्यार्थलंकारः । अद्रिञ्चः ।
 अत्ति भक्षयति शत्रून् इति अद्रिर्वचः । आदृणातीति वा । तद्वन्
 ते तव यो लोकः उत्तमो लोकोस्ति हे इन्द्र ततस्तस्मादेपि लोकाद्
 इह अस्मिन् देवयजने देशे सोमपानार्थम् आ गहि आगच्छ ।
 गम्लं सप्लुगितो ” बहुलं छन्दसि ” इति शंपो लुक् । संहि-
 रादेशः । हरपित्वाद् द्विद्वावेन ” अनुदात्तोपदेशः ” इत्यादिना
 अनुनासिकलोपः ।

हे बलवान् इन्द्र । आप सोमपाने स्थले ही तो सोमपाने स्थल
 से आर दूरके स्थलमे ही तो दूरसे हमारे पास आइये, हे वृक्ष-
 धारिन् इन्द्र । आपका जो उत्तम लोक है उस स्थानसे भी आप
 सोमपान करनेके लिये इस पूजाके स्थानमें आइये ॥ ४ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी पदप चुव्यवत् ।

सा हि स्थिरो विचपणिः ॥

इन्द्रः । अङ्ग । महत् । भयम् । अभि । सत् । अप । चुव्यवत् ।

सः । हि । स्थिरः । विचपणिः ॥ ५ ॥

अङ्गेति आत्मानम् अस्त्वित्वा वा अभिमुखीकृत्य व्रते । इन्द्रो
 देवः अस्माकम् उत्पन्नं महत् प्रभूतम् अन्यैः परिहर्तुम् अशक्यं

भयम् अभी पद् अभिभवति परिहरति । ॐ अभिपूर्वात् सदर्शः ।
बहुलवचनाद् अहमावः । "इतश्च" लोपः । संयोगान्तलोपः ।
"सदिरमतेः" इति पत्वम् । निपातस्य च" इति दीर्घः । ॐ । किं
भयस्य अभिभवमात्रम् नेत्याह अप-चुच्यवद् इति । भयम् अप-
च्यावयति अस्मत्तः पृथक्कृत्य दूरतोपसारयति । ईदृशः सामर्थ्यस्य
संभावनाम् आह । स हि स खल्विन्द्रः स्थिरः स्वयम् अन्यन् न
च्याव्यः विचर्षणिः विरवस्य द्रष्टा । भयकृतः प्रच्छन्नान् प्रका-
शांश्च रक्षणीयान् अस्मांश्च जानातीत्यर्थः । ॐ अप चुच्यवद्
इति । च्युङ् प्लुङ् गतौ इत्यस्मात् लुङि णिलोपे उपधाह्रस्वत्वे
"त्वरनिमृणोति०" इत्यादिना अभ्यासस्य विकल्पेन इत्त्वम् ।

"बहुलं छन्दसि०" इति अहमावः ॥ इति । हे आत्मा वा अत्विज ! इन्द्रदेव हमारे ऊपर पड़े हुए, दूसरा
से नः हटाने योग्यः बड़े भारी भयका तिरस्कार कर डालते हैं ।
और भयको हमसे अलग करके दूर भगा देने हैं, वह इन्द्रदेव
स्थिर रहने वाले हैं अर्थात् कोई उनकी च्युत नहीं कर सकता
और वह सबको देखने वाले हैं अर्थात् द्विपे हुए भय देने वालों
को और प्रकाशित हम रक्षणीयोंको भी जानते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रश्च मृत्याति नो न नः पश्चादद्य नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥

इन्द्रः । च । मृत्याति । नः । नः । पश्चात् । अद्यम् । नशत् ।
भद्रम् । भवाति । नः । पुरः ॥ ६ ॥

इन्द्रश्च । च शब्दश्चेदर्थः । अस्मांभिः शरणं गन्तव्यो देवः
इन्द्रश्चेत् परमेश्वरगुणविशिष्टः सर्वभूतस्य रक्षकश्चेद् नः अस्मान्

(१२४) अथर्ववेदसंहिता समाप्यः भाषाभिरुपादंसहितः २८

सुखयानि सुखयतु । ॐ मृदयतेलेटि आदि कृते रूपम् ॐ । स
तादृशयेत् पथात् पृष्ठतो नः अस्मान् अयम् दुःखं न नेशत् न
मोमोतु । ॐ नशेलेटि ॐ किं च नः अस्माकं पुरः पुरस्ताद्
मद्रम् मद्रलं च भवति भवतु । ॐ भवतेलेटि ॥

यदि इन्द्रदेव हमारे रत्नक हो तो वह हमको सुख देवे, यदि
इन्द्रदेव हमारे रत्नक हो तो पीछे हमारा दुःख नष्ट हो जावे, और
हमारे सामने मद्रल होवे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं कर्तुः ।

जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

इन्द्रः आशाभ्यः परि सर्वाभ्यः अभयम् कर्तुः ।

जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

स इन्द्रः सर्वाभ्य आशाभ्यस्परि परीतिपञ्चमीद्योतकः ।

दिग्भ्यो विदिग्भ्यः उपर्यधोदिग्भ्यां च अस्माकम् अभयम् भय-

गहित्यं क्षेमं कर्तुं करोतु । सकलदिग्गतभयपरिहारसामर्थ्यं तस्य

संभावयति । स इन्द्रः शत्रून् जेता सर्वास्वपि विजुः अस्माकं ये

भयकारिणः शत्रवः सन्ति तेषां सर्वेषाम् अभिभवित्वा विचर्षणिः

तेषां विद्रष्टा च ॥

इति तृतीयैश्वराके तृतीयं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव सब दिशा विदिशाओंसे हम पर पड़ सकने वाले
भयोंको दूर करे । यह इन्द्रदेव सब दिशाओंमें जो हमारे शत्रु
होंगे उनको गृह्यमतासे देखने वाले हैं ॥ ७ ॥

तृतीय अनुवाकमें तृतीयः सूक्त समाप्त (६३६)

“न्यूषु वाचम्” इति मूक्तस्य ब्राह्मणाच्छंसिनः प्रथमपर्यायशस्त्रे
विनियोग उक्तः । अत्र “य उदचि” इत्येषा अन्तिमा परिधानीया ॥

“न्यूषु वाचम्” मूक्तस्य ब्राह्मणाच्छंसिने मथम शस्त्रपर्यायमे
विनियोग कदा है । यहाँ “य उदचि” यह अन्तिम ध्युचा परि-
धानीया है ।

तत्र प्रथमा ॥

न्यूषु वाचं प्रमहे भरामहे गिरिन्द्राय सदनं विवस्वतः
नू चिच्छि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु
शस्यते ॥ १ ॥

नि । ऊं इति । नू । वाचम् । प्र । महे । भरामहे । गिरिन्द्राय । सदनं । विवस्वतः ।

नू । चिच्छि । रत्नम् । ससताम् । अविदन् । न । दुः । शस्यते ।
द्रविणः । शस्यते ॥ १ ॥

महे महते । ॐ महच्चन्द्रस्य अर्च्यन्दलोपरानन्दसः ।
इन्द्राय देवाय नू वाचम् शोभना स्तुतिं नि प्र भरामहे गितरां
प्रयुज्जमहे । उ इति पदपूरणम् । ॐ न्यूष्विति । “उदात्तस्वरित-
योर्गणः स्वरितोऽनुदात्तस्य” इति स्वरितत्वम् । नच उदात्तपर-
त्वात् संहितायां कम्पते । “इकः सुजि” इति दीर्घत्वम् । “सुजः”
इति पञ्चम् ॐ । यतो विवस्वतः पञ्चिचरतो यजमानस्य सदनं यत्र
गृहे इन्द्राय गिरः स्तुतयः क्रियन्ते । हि यस्मात् स इन्द्रः नू चिच्छि
क्षिमेव रत्नम् रमणीयम् असुराणां धनम् अविदत् विन्दति ।
नच इष्टान्तः । ससतामिष यथा ससताम् स्वपत्नीं पुरुषाणां धन

(१२६) अथर्ववेदसंहिता समोप्य-भाषानुवादसहितः । २००

चोरः क्षिप्तं लभतेः तद्वत् । अतोऽस्मभ्यं धनं दातुं शक्त इति भावः ।
द्रविणोदेष्टु-धनस्य दातृषु पुरुषेषु दुष्टदुतिः असमीचीनाः स्तुतिः
न शस्यते, नाभिधीयते, न युज्यते वा । अतः सुचार्यं प्रभारामहे इति
पूर्वेण संबन्धः ॥ १॥

महान् इन्द्रदेवके लिये हम सुन्दर वाणी वाली स्तुतिका पूर्ण-
रीतिसे प्रयोग करते हैं, क्योंकि-सेवा करने वाले यजमानके यह-
गृहमें इन्द्रके लिये स्तुतियें उच्चारण की जा रही हैं, क्योंकि-बहु
इन्द्रदेव, चोर जैसे सोने वालोंके धनको शीघ्रभासे लेलेता है इसी
प्रकार अगुसोंके धनका शीघ्रतासे प्राप्त कर लेते हैं [तत्पर्य यह
है, कि-तब हमको धन दे सकते हैं] और धनको प्रदान करने
वाले पुरुषोंके लिये आद्वी स्तुति उपयुक्त नहीं होती अतः एव मैं
सुन्दर, वाणी, वाली स्तुतिका पूर्णरीतिसे प्रयोग करता हूँ ॥१॥
द्वितीया ॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गौरसि दुरो यवस्य वसुन
इनस्पतिः ।

शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्त्वमिदं
गृणीमसि ॥ ३ ॥

दुरः । अश्वस्य । दुरः । इन्द्र । गौरः । असिग दुरः । यवस्य ।
वसुनः । इनः । पतिः ।

शिक्षानरः । प्रदिवः । अकामकर्शनः । सखा । सखिभ्यः ।
तम् । इदम् । गृणीमसि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वम् अश्वस्य । ॐ जातावकवचनम् ॐ । अश्वानाम्

एतद्गुणनादीनामपि उपलक्षणम् । अश्वगजादिवाहनानां दुरः
 दाता असि । ॐ इदाब् दाने । मन्दिवाशीत्यादिना [उ० १.
 ३८] विधीयमान उरच् मत्पयो बहुलवचनोद्देश्यस्मादपि भवेति ।
 अतएव आकारलोपः ॐ । तथा गोः । एतद् उपलक्षणं महि-
 प्यादेः । गोमहिष्यादीनां दुरोसि । तथा यवस्य । एतद् ब्रीह्या-
 दिधान्यजातस्य उपलक्षणम् । तस्य दुरोसि । एवं वसुनः धनस्य
 हिरण्यमणिमुक्तादिरूपस्य इतः स्वामी पनिः पालकश्चासि । शिन्ना-
 नरः । ॐ शिन्नतिर्दानकर्मा ॐ । शिन्नाया दानस्य नेतासि ।
 यद्वा शिन्नाविषयभूता नरो मनुष्या यस्य स शिन्नानरः । मन्दिवा-
 मगता दिवो दिवसा यस्य स तथोक्तः । पुराणइत्यर्थः । अकाम-
 कर्शनः कामानां कर्शकः कामकर्शनः स न भवतीत्यकामकर्शनः ।
 स्वमेविनां कामवर्धक इत्यर्थः । एवं सखिभ्यः समानख्यानेभ्यः
 सखिभूतेभ्य ऋत्विग्भ्यः सखा मित्रभूतः एवंमहिमा य इन्द्रोस्ति
 तांताह्वाम् इन्द्रम् इदं स्तोत्रं गृणीमसि गृणीमः उच्चारयामः कुर्मः ।
 ॐ गृ शब्दे । क्रैयादिकः । “प्रादीनां हस्वः” इति हस्वत्वम् ।
 “इदन्तो मसिः” इति मसे इकारः ॥ इति पञ्चमः सर्गः ॥
 हे इन्द्रदेव ! आप अश्वगजान् आदि वाहनोक्तो प्रदान । करने
 वाले हैं, गौ भैंस आदिके प्रदान करने वाले हैं, जौ धान आदि
 के दाता हैं तथा हिरण्य मुक्ता आदि धनके स्वामी और रक्षक
 हैं, मनुष्योंको शिन्ना देने वाले हैं, आपको बहुत दिन बीत गए
 हैं अर्थात् आप प्राचीन हैं, आप अपने मेवकोंके कामोंको बढ़ाने
 वाले हैं और आप समान ख्याति वाले ऋत्विजोंके मित्ररूप हैं,
 ऐसे इन्द्रदेवके लिये हम इसे स्तोत्रका उच्चारण करते हैं ॥ २ ॥
 शचीव इन्द्रपुरुष इह मुत्तम तवेदिदमभिनश्चकिते वसु

(१२८) अथर्ववेदसंहिता समाख्ये भाषानुवादसहित

अतः संगृह्याभिभूत आभर मा त्वीयतो जरितुः

काममूनयीः ॥ ३ ॥

शचीवः । इन्द्र । पुरुषकृत् । धूमत्तम । तव । इत् । इदम् ।

अभितः । चेकिते । वसु ।

अतः । सम्गृह्य । अभिभूते । आ । भर । मा । त्वीयतो ।

जरितुः । कामम् । ऊनयीः ॥ ३ ॥

हे शचीवः । महानामैतत् । मिशानवन्निन्द्रः । “मर्तुवसोः

संयुद्धोदन्दसि” इति रुक्त्वम् । पाष्टिकम् आमन्त्रितांश्च दातृत्वम् ।

हे इन्द्र परमैश्वर्यगुणविशिष्ट पुरुषकृत्ः बहूनां कर्तः धूमत्तमः दीप्ति-

मत्तमः । “एषाम् इन्द्रादीनाम् आष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम् । न

च “आमन्त्रितं पूर्यम् अविद्यमानं वत्” इत्यविद्यमानवत्त्वम् । “ना-

मन्त्रिते समानाधिकरणे” इति निषेधात् । एवमहानुभाव

इन्द्र अभितः सर्वत्र यद्वा वसु धनं विद्यते तद् इदं सर्वं तवेत् तवैव

स्वम् । धनजातस्य सर्वस्यापि त्वमेव स्वाधीन्यर्थः । इत्थं चेकिते

भूशम् अस्माभिर्हायते । कितं हाने । अस्माद् यदन्ताद् वर्त-

माने लिटि “० अमन्त्रे ०” इति निषेधाद् आमन्त्रययाभावे सति

लिटि आर्धधातुकत्वाद् अतो लोपपतो लोपो । हे अभिभूते शत्र-

णाम् अभिभविनस्मिन् अतः अस्मात् कारणात् संगृह्य सर्वं धनं

संगृह्य आभर आहर असंगृह्यं मयच्छ । स्वायनः स्वाम् आत्मन

इच्छतो जरितुः स्तोतुर्मम कामं सोनयीः ऊनं मा कारीः । पूर्ये-

त्यर्थः । ऊन परिहाणे । लुकि “णिश्रितुस्त्रयः ०” इति स्ले-

कादेशस्य “नोनयतिष्वनयति ०” इत्यादिना मतिपेधे “अयन्त-

क्षण ०” इति सिचिबुद्धिप्रतिषेधः ॥

ही प्रज्ञानवान्, परमैश्वर्यविशिष्ट, बहुतसे कर्मोंको करने वाले, परम मदीस इन्द्रदेव । चारों ओर जो धन है वह सब आपका ही है अर्थात् उस सब धनके आप ही-स्वामी हैं, इस बातको हम अच्छी तरह जानते हैं । हे शत्रुओंको दवाने वाले इन्द्र ! इस कारण आप सब धनको संग्रह करके हमें मदान करिये, अपने लिये आपकी इच्छा करने वाले मुक्त स्तोताको आप काम मन करिये, पूरा करिये ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमति

गोभिरश्विना । इन्द्रेण दस्युं दारयन्त इन्दुभिर्युतद्वेपसः समिधारभेमहि

एभिः । यऽभिः । सुमनाः । एभिः । इन्दुभिः । निरुन्धानः । अमतिम् । गोभिः । अश्विना । इन्द्रेण । दस्युम् । दारयन्तः । इन्दुभिः । युतद्वेपसः । समिधः ।

इषा । रभेमहि ॥ ४ ॥

॥ ३ ॥

॥ हे इन्द्र एभिः अस्माभिर्देतैः यं भिः दीप्तैश्चरुपुरोडाशादिभिः एवम् एभिः अस्माभिर्देतैः इन्दुभिः सोमैश्च प्रीतस्त्वम् अस्माकम् अमतिम् दारिद्र्यम् गोभिर्वह्नीभिः अश्विना अश्विना धनं च निरुन्धानः निवर्तयन् सुमनाः शोभनमनाः । भवेति शेषः । वयम् इन्दुभिः अस्माभिर्देतैः सोमैः प्रीतेन इन्द्रेण दस्युम् उपक्षयित्वारं शत्रुं दारयन्तः दारयन्ता हि सन्तः अत एव युतद्वेपसः । अत्र योतिरपिश्रणार्थः । पृथग्भूतद्वेषाः अपगतेशत्रवः सन्तः इषा अन्नं इन्द्रदेवेन सं रभेमहि सं रब्ध्वा भवेम । संगता भवेमेत्यर्थः ॥

योधनं युध् तेन । प्रहरणेनेत्यर्थः । ॐ संपदादिलक्षणः विष्णुः ।
 कीदृशेन । धृष्ट्या धर्षकेण युधम् शत्रोरायुधं प्रहरणं वा उप
 घेदेपि । घेति पूरणः । उपैष्येव उपगच्छस्येव । अनेनास्य द्वन्द्व-
 युद्धकुशलत्वम् उक्तं भवति । एवं पुरा नगरेण । अत्र पूरुषादेन
 तत्रस्या भटा, लक्ष्यन्ते । पुरस्थैः स्वकीयैर्योद्धुभिर्महत्प्रभृतिभिः
 इदम् इदानीं पुरम् शत्रुनगरं पुरस्थान् योद्धुन् वा ओजसा बलेन
 सं हंसि सम्पग्नं नाशयसि । यत् यस्मात् कारणात् नम्या नम्यया
 सर्वैः महीभक्षितुम् अर्हं वा सरूपा - सखिभूतया शक्त्या आयुधेन
 परावति दूरदेशे नमुचि नाम नमुचिनामपेयम्, असुरं मायिनम्
 मायावन्तं निवर्हयः निनगम् अहिंसीः । अतस्त्वम् । एवं स्तुयस
 इत्यर्थः ॥ ११ ॥

“हे इंद्रदेव ! आप धर्षक महारके साधन आयुधसे शत्रुओं आयुध
 पर दृष्ट ही पड़ते हैं, (इससे इंद्रदेवका 'द्वन्द्वयुद्धमें कुशल' होना
 कहा) और अपने पुरमें स्थित महत् आदि भटोंसे शत्रुनगर-
 निवासी योधाओंको बलपूर्वक मारवा देते हैं । क्योंकि-आपने
 सबसे जगदीय मित्ररूपा शक्ति आयुधसे दूरदेशमें मायावी नमुचि
 को मार डाला है अत एव आपकी स्तुति की जाती है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

त्वं करञ्जमुत प्रणये वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।

त्वं शता चङ्गदस्याभिन्त पुरोऽनानुदः परिपृता

ऋजिर्वना ॥ ८ ॥

त्वम् । करञ्जम् । उत । प्रणयेम् । वधीः । तेजिष्ठया । अतिथि-

ग्वस्य । वर्तनी ।

ढाला या, और, पर्णय, नामक असुरको भी आपने-मार ढाला
या और आपने किसीकी सहायता न, लेकर-अजिश्वन, नामक
राजाके लिये बहूद, नामक असुरके सौ रत्तिन पुरोंको-नष्ट कर
ढाला या ॥ ८ ॥

नवमी ॥

त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशान्धुनाः सुश्रवसोऽपजग्मुषः ।
पष्टिं सहस्रां नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या
दुष्पदावृणक् ॥ ८ ॥

त्वम् । एतान् । जनराज्ञः । द्विः । दश । अन्धुना । सुश्रवसा ।
अपजग्मुषः ।

पष्टिम् । सहस्रा । नवतिम् । नव । श्रुतः । नि । चक्रेण । रथ्या ।
दुःस्पदा । अवृणक् ॥ ८ ॥

एतद्दे इन्द्र श्रुतः विख्यातस्त्वम्, अन्धुना । अन्धुरहितेन, सहायव-
र्जितेन सुश्रवसा एतन्नामकेन राज्ञा, इतिमित्तेन एतान्, अस्मिन्नान्
अपजग्मुषः अपगतान् निरोधं, कृतवतः द्विर्दश-द्विगुणितान् दशसं-
ख्याकान् । विंशतिसंख्याकान् इत्यर्थः । तथा पष्टिं सहस्रा, सह-
स्राणां पष्टिम्, पष्टिसहस्रसंख्याकान् तथा नवतिं नव नवोत्तरनव-
तिसंख्याकान् जनराज्ञः जनानां भटानां, स्वामिनः सक्तसंख्या-
कान् सेनानायकान् दुष्पदा दुष्पदनेन-शत्रुभिर्गन्तुम् अशक्येन
रथ्या रथार्हेण । “रथाइ यत्” इति, यत् । चक्रेण न्यवृ-
णक् न्यवर्जयः, अनाशयः । वृणीवर्जने । रौपादिवः । लङि
मर्यापेकवचने “हल्ङ्यावृण्यः” इति, सिपो लोपः । “चोः कुः”
इति कुत्वम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप मंसिद्ध हैं आपने सहायकरहित सुश्रवा
 रामाके कारण उसको घेरने वाले बीस, सौठ हजार और निग्यानबे
 सेनानायकोंको चक्रसे मार डाला था शत्रु उस चक्रको पहुँच नहीं
 सकते थे ॥ ६ ॥

दर्शनी ॥

त्वमविध सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्व-
 पाणम् । अतिथिग्वमायुं महेराज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥

त्वम् । आविध । सुश्रवसम् । तव । अतिथिभिः । तव । त्रामभिः ।

इन्द्र । तूर्वपाणम् ।

त्वम् । अस्मै । कुत्सम् । अतिथिग्वम् । आयुम् । महे । राज्ञे । यूने ।

अरन्धनायः ॥ १० ॥

हे इन्द्र त्वम् सुश्रवसम् पूर्वमन्त्रे अवन्धुना सुश्रवसेत्युक्तम्
 असहाये दुर्बलम् युनेन्नामानं राजानं तव अतिथी रिक्ताभिः
 आविध ररक्षिये । तथा तस्यैव राज्ञोर्यायः तूर्वपाणम् एतत्संज्ञकं
 राजानं तव त्रामभिः पालनेः । आविधेति संबन्धः । ॐ ब्रह्म
 पालने । “आदेचः” इति आश्रयम् । “आतो मनिने” इति
 मनिने । निश्चादं आश्रयदात्तत्वम् । एवं त्वम् अस्मै सुश्रवसे
 राज्ञे । कीदृशाय । महे महते यूने वयास्यायुं सुवराजभृताय सुश्र-
 वसे कुत्सम् अतिथिग्वम् आयुं च अरन्धनायः वशम् अनैषीः ।
 ॐ रन्धनं वशीकरणं करोति । “तत् करोति” इति णिच् ।
 “इष्टवर्षणी मातिपदिकस्य” इति इष्टवर्षावाहितोपे । लङि सिपि
 दीर्घरश्मिन्दसः ॥

[अ० ३ सू० २१] ६३७ - विंशं काण्डम् (१३७)

हे इन्द्रदेव! आपने सुश्रवा नामक राजाकी अपनी रक्त
शक्तियोंसे रत्ना की है और उसी राजाके लिये तूर्वयाण नामक
राजाका पालकशक्तियोंसे पालन किया है। इस पुत्रराज सुश्रवा
राजाको कुंसे अतिथिगु और आपुको सौंप दिया था ॥ १० ॥

य उदचीन्द्रदेवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम् ॥

त्वां स्तोषाम् त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं

दधानाः ॥ ११ ॥

ये । चतुश्चि । इन्द्रा देवगोपाः सखायः । ते । शिवतमाः ।

असाम् । स्तोषाम् । त्वया । सुवीराः । द्राघीयः । आयुः ।

प्रतरं । दधानाः ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ये वयम् उदचि उदकं यज्ञसमाप्तौ वर्तमाना देवगोपाः

देवेन त्वया पालिताः ते तव सखायः सखिवद् अत्यन्तमियाः

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ असौ

चि । लुङ्ये लोटि । आहुत्समस्ये पिबे इति पिबेद्वावात् पिबे

डिन्ने इति डिङ्वाभावे असोरलोपः । इत्येकारलोपोभावः ।

पिबेदेव तिङोनुदात्तत्वम् । धातुस्वरः शिष्यते ॥ ते च यं

यज्ञसमाप्त्युत्तरकालमपि त्वां स्तोषाम स्तवाम् ॥ स्तोतेर्लोटि

सिन्वहुलं लेटि इति बहुलग्रहणात् लोट्यपि सिप् । तस्य

पिबेद्वावात् ॥ असौभिः स्तुतेन त्वया सुवीराः शोभनेषु भ-

वन्ते सन्तः द्राघीयः अतिशयेन दीर्घम् आयुः । जीवनं प्रतरम्

मैरुप्रतरं यथा भवति तथा दधानाः आरयन्तो भूयास्म ॥ ११ ॥

इति तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

गोपनिगिराः (४) इति स्तोत्रियानुरूपो । चर्हिर्वा यत्स्वपत्याय
(२० । २५ । ६) इति परिधानीया प्रोप्रां पीतिम् (२०२५७)
इति याज्या (वैतानमूत्र ४ । २) ॥

“ऊर्ध्वं सर्वत्र शीलिं मुक्तानि । अन्त्ये पच्छः पर्यासः । पहिले
सर्वत्र तीन मुक्तों को कहे, फिर अन्त्ये पच्छः पर्यासको कहे” इस
प्रकार वैतानमूत्र ४ । २ में सूचित होनेके कारण सर्वत्र तीनों
पर्यासोंमें स्तोत्रियानुरूपोंमें पहिले तीनों मुक्तों को कहना चाहिये ।
अतः “आ तू न इन्द्र मद्रथक” (२० । २३) आदि तीन मुक्तों
का मध्यमपर्यासस्वमें विनियोग उपपन्न है । अत एव “अश्वा-
वृत्ति” (२० । २५) इस तृतीयमुक्तकी अन्तिम श्रुति की सूत्र-
कारने परिधानीया बताया है ।

अभि त्वा वृषभा सुत सुत सृजामि पीतये ।

तृप्ता व्यश्नुही मदम् ॥ शिवां न मद्रथक ॥ २३ ॥
अभि । त्वा । वृषभ । सुत । सुतम् । सृजामि । पीतये ।

तृप्ता व्यश्नुही मदम् ॥ शिवां न मद्रथक ॥ २३ ॥
ह वृषभ वृषभ इन्द्र सुत सोम अभिपुत सति सुतम् अभिप-
वादिना संस्कृत सोम पीतये पीताय त्वा त्वाम् अभि सृजामि
संयोजयामि तेन सृष्टेन सोमेन त्वम् प्रीतो भव । त्वम् त्वा
तुदादित्वात् शः । हलाः । विकरणास्वरान् अन्तोदात्तः ।
त्वे च मदम् मदकर सोम व्यश्नुहि विशपण व्यामहि । अश्व
व्याप्ता । व्यत्ययेन परस्मैपदम् ॥

हे नर्पक इन्द्रदेव ! हम सोमके अभिपुत होने पर अभिपुन
आदिसे संस्कृत सोमका पान करनेके लिये आपको संयुक्त करते

हे । आप उत सोमसे वस इजिये और आप उत मदकरी सोमको
व्याप्त कर लीजिये ॥ १ ॥

॥ द्वितीया ॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दधन् ।

मा कीं ब्रह्मद्विषा वनः ॥ २ ॥

मा त्वा मूरा अविष्यवो मा उपहस्वान आ दधन् ।

मा कीं ब्रह्मद्विषा वनः ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वा मूरा अविष्यवो अविष्य कर्तुम् इच्छन्तः अथ वा

आत्मानं पालयितुं कामयमानाः त्वदनुग्रहम् अन्तरेण आत्मानं

रक्षन्तः । ॐ अविशब्दात् वयम् “व्याचक्षन्तः” इति उभयस्यः ।

प्रत्ययस्वरैण अन्तोदात्तः । अत एव मूराः मुदा आत्महितो-

पायम् अमानन्तः । ॐ मूरशब्दस्य मूदशब्दपर्यायितो यास्क

आह । ‘मूरा अमूर न वयं विकितवः’ । मुदा प्रियं स्मः अमूद-

स्त्वम् असीति [नि० ६. ८] ॐ । मा दधन् मा हिंसन्तु । तथा

उपहस्वान उपहसनं कतरोपि त्वा मा दधन् । ॐ उपपूर्वात् हसतेः

“अन्वेभ्योपि हरयन्ते” इति वनिष् । कृदुत्तरपदमकृतिस्वरैण मयो-

दात्तः । त्वं च ब्रह्मद्विषा ब्रह्मणद्वेष्टन् माकीम् । माशब्दपर्यायो

मा कींशब्दः । मा वनः मा भजेयाः । ॐ वनः पण संभक्तौ । लङ् ।

मयमकवचनम् । “न मादृशो” इति अदभावः ॥

हे इन्द्रदेव । आपको बिना अपनी रक्षा करना चाहने वाले
मूद पुरुष आपका हनन न कर सकें, तथा इसी उद्धाने वाले भी
आपको न दबा सकें, आप ब्रह्मद्विषियों का सेवन न करिये । २ ।

हमीया ॥

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधस

सरो गौरो यथा पिवता ॥ ३ ॥

इह । स्वा । गोपरीणसा । महे । मन्दन्तु । राषसे ।

सरः । गौरः । यथा । पिवता ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वाम् इह यागे गोपरीणसा । ॐ विकारे प्रकृति-
शब्दः ॐ । गोविकारेण पयसा मिश्रितेन सोमेन । ॐ परिपूर्वाद्
व्याप्तिकर्मणो नसते विष । “अन्येषामपि हरयते” इति दीर्घः ॐ ।
महे महते राषसे घनाय मन्दन्तु अस्त्विजो मादयन्तु । त्वे च सरः
सरणीलीलम् उदके सरःस्थं वा गौरः गौरमृगो यथा अस्पन्त-
तुषितः सन् निकामं पिवति तथा पिव ॥

हे इन्द्र ! इस यागमें अस्त्विज आपको गौदुग्ध मिले हुए सोम
से महाघनकी प्राप्तिके लिये हर्षित करे और आप भी प्यासा
गौरमृग सरोवरके जलको जैसे पीता है तिस प्रकार सोमको
पीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे-

सूनु सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

अभि । प्र । गोपतिम् । गिरा । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे ।
सूनुम् । सत्यस्य । सत्पतिम् ॥ ४ ॥

हे स्तोता गोपतिम् स्वर्गस्य गवां वा स्वामिनम् इन्द्रम् यथा
येन प्रकारेण विदे अस्मान् स्वीयंतया जानाति । ॐ विदेर्व्यत्य-
येन लिङात्मनेपदम् । द्विर्वचनमकरणे “इन्द्रसि वेति वक्तव्यम्”
इति द्विर्वचनाभावः । “यावयथाभ्याम्” इति निघातमतिषेधः ।

(१४२) अथवेवेदसंहितासभाष्य-भाषानुवादसहितम् ॥ ६ ॥

मत्पयस्वरेण अन्तोदात्तः ॐ । तंयां गिरा अभिः प्रार्चं मिर्कषेण
अभ्यर्चं पूतय । कीदृशम् इन्द्रम् । सत्यस्य सत्यफलस्य यज्ञस्य
सत्यस्यैव वा मनुम् पुत्रस्यानीयम् । यत्र यज्ञस्तेवेन्द्र इति पितृ-
पुत्रवद् अव्यवहितसंबन्धात् मनुत्वोपपत्तारः ॥ सत्पतिम् सताः स्व-
सेवकानां पालयितारम् ॥

हे स्तोत्रः । स्वर्गके स्वाधी इन्द्रदेव जिम् प्रकार हमरो अपना
सम्पत्ति तमी वाणीसे आप उनकी पूजा करिये । यह इन्द्रदेव सत्य
फल वाले यज्ञके पुत्रस्थानीय हैं । जहाँ यज्ञ होता है तहाँ इन्द्र
होते हैं इस प्रकार पिता पुत्रकी समान अव्यवहित सम्बन्ध होने
से पुत्रत्वका उपचार है । और यह इन्द्रदेव सर्वजन सेवकोंका
पालन करने वाले हैं ॥ ४ ॥

आ । हरयः । ससृजिरेरुपीरधिः । वहिपि ।
यत्र । अभि । समुज्जवामहे ॥ ५ ॥

आ । हरयः । ससृजिरे । अरुपीः । अधि । वहिपि ।
यत्र । अभि । समुज्जवामहे ॥ ५ ॥

अरुपीः अरुण्यः । अरुणम् इति रूपनाम । आसीत्मानाः ।
आह् पूर्वादि कचिर्बाहुत्काद् उपच । विलोपः । आदीहस्वश्च ।
“अन्येनो ङीप्” । ट्णादित्वाद् आद्युदात्तः ॐ । उक्तरूपा हरयः
अधि वहिपि । ॐ अधिः सप्तर्षयान्वेगादी ॐ विहिपि आस्तिते
आ ससृजिरे आससृजिरे आसृजन्तु । इन्द्रयम् इति शेषः । यत्र
यस्मिन् विहिपि इन्द्रम् अभि संनवामहे अभिसंस्तुयः ॥ ६ ॥
स्तुती । “आहुत्तमेस्य पिच्य” इति पिच्योद् घातुस्वरेण आद्यु-
दात्तः ॐ ॥

रूपवान् घोड़े कुशाओंके पिछाने पर इन्द्रके रथको उन कुशाओं
पर लावे जहाँ किन्तु स्तुति कर रहे हैं ॥ ५ ॥
पृष्ठी ॥

इन्द्राय गावं आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु
यत् सीमुपहरे विदत् ॥ ६ ॥

इन्द्राय । गावः । आशिरम् । दुदुहे । वज्रिणे । मधु ।
यत् । सीम् । उपहरे । विदत् ॥ ६ ॥

वज्रिणे वज्रयुक्ताय इन्द्राय गावो मधु मधुरम् आशिरम् आश्र-
यणसाधनं पर्यः दुदुहे दुहते । दुहप्रकरणे "बहुलं चन्दसि"
इति लिटि क्त् । वचनव्यत्ययः प्रत्ययस्वरणं अन्नोदात्तः । यद्वा
इरेच ईकारलोपरश्चान्दसः । चित्त्वाद् अ-तोदात्तः । यत् सदा
उपहरेः सप्रीये वर्तमानं मधु मधुर्त्वाद् स्वादुभूतः सोमं सीम् सर्वतः
विदत् अ-इन्द्रो लभते नी-विदत् लोभेति-लृदिच्चाद् अङ् ।
"बहुलं चन्दसि" इति अङ्भावः । "निपातयद्यदि" इत्या-
दिना निघानप्रतिषेधः । प्रत्ययस्वरणं अन्नोदात्तः ॥

ननु इति तिनीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

जब इन्द्रदेव समीपमें वर्तमान मधुकी समान स्वादु, सोमकी
सब ओरसे पाते हैं तब वज्रधारी इन्द्रके लिये गौएँ मधुर दुग्धको
दुहती हैं ॥ इत्यादि ।
तुवाये अनुवाकमे पञ्चम सूक्त समाप्त (६३८)

"आ तू न इन्द्र मद्रचक्" इति सूक्तस्य अतिरात्रे मध्यमे रात्रि-
पर्याये ब्राह्मण, च्छंसिनः शस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

"आ तू न इन्द्र मद्रचक्" सूक्तका अतिरात्रके मध्यम रात्रि-
पर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसिके शस्त्रमें विनियोग कहा है ।

(१४४) अथर्ववेदसंहिता समाख्ये भाषानुवाहसहितः ७००

तत्र प्रथमा ॥

आ तू न इन्द्रं मद्रय्यं हुवानः सोमपीतये ।

हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥

आ । तू । नः । इन्द्र । मद्रय्यं । हुवानः । सोमपीतये ।

हरिभ्याम् । याहि । अद्रिवः ॥ १ ॥

हे अद्रिवः । अद्रिरिति वज्रनाम इन्द्र हुवानः हुयमानस्त्वं मद्रय्यं

मदभिमुखः सन् नः अस्मदीये यज्ञे सोमपीतये सोमपानार्थम् हरि-

भ्याम् आ याहि आगच्छ । ॐ मद्रय्यं इति । ॐ माम् अश्नतीति

“अतिवग्दधूक्” इत्यादिना विवन् मत्ययः । “मत्ययोत्तरपदयोश्च”

इति अस्मच्छब्दस्यैकवचने मपर्यन्तस्य प्रादेशः । “विष्वदेवयोश्च

देवद्रव्यश्च तावमत्यये” इति टेः अद्रि इत्यादेशः । अद्रिसघचोरन्तो-

दात्तनिषालनं कृत्स्वरनिवृत्त्यर्थम् । इति वचनाद् अद्र्यादेशोऽ-

न्तोदात्तः । यणादेशो ऋते “उदात्तस्वरितयोर्यणः” इति यणः

स्वरितत्वम् । “विन्मत्येयस्य कुः” इति कृत्वम् । ॐ ।

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आहानं किये जाते हुए आपो हमारे

अभिमुख होकर हमारे यज्ञमें सोमपान करनेके लिये हरि नामक

घोड़ोंके द्वारा आइये ॥ १ ॥

हे इन्द्र-नः, अस्मदीये-यज्ञे होता एतन्नामिकः अतिवक् अस्वियः
 प्राप्तकालः सन् । "इन्द्रसि-यम्" इति-यम् । यणादेशः-
 मृत्ययस्वरः । सत्तः निपण्णोभूत् । कर्तरि-क्तः । सर्व-
 विधीनां इन्द्रसि विकल्पितस्वाद् निष्ठानत्वाभावः । तथा बहिः-
 वेद्याम् आनुषक् अनुपक्तं परस्परसंबद्धं यथा भवति तथा तस्मिन्
 स्तीर्णम् अभूत् । स्तवः कर्मणि लिटि रूपम् । "आन इदातो-"
 इति इत्थम् । द्विवचनम् । "शर्पिर्वाः स्वयः" इति तृकारस्य शेषः ।
 "लिठस्तभयोरेशिरेच्" इति ऐशं इत्यादेशः । एवं प्रानः
 प्रातःसवने अद्रयः ग्रावाणः सोमाभिपवाचार्थम् अयुजन् संगता
 अभूवन् ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे यज्ञमें होतानांमिकः अतिविजं समर्थ आने पर
 उपस्थित-है तथा वेदीमें कुशाभी परस्पर मिले हुए बिले हुए हैं ।
 इसी प्रकार प्रातःसवनमें सोमाभिपवके पत्थरः भी सोमका अभि-
 वच करनेके लिये संगत होगए हैं ॥ २ ॥
 इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्ते आ बहिः सीदन्
 वीहि शूर पुरोलाशम् ॥ ३ ॥
 इमा । ब्रह्म । ब्रह्मवाहः । क्रियन्ते । आ । बहिः । सीदन् ।
 वीहि । शूर । पुरोलाशम् ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मवाहः । ब्रह्मणा मन्त्रेण स्तोत्ररूपेण प्राप्यत इति ब्रह्म-
 वाहाः । तस्य संबोधनम् । तादृश इन्द्र तुभ्यम् इमा इमानि ब्रह्म
 ब्रह्माणि स्तोत्राणि अस्माभिः क्रियन्ते । अतस्तदर्थं बहिः आ
 सीद उपविश । हे शूर शौर्योपेत इन्द्र आसन्नस्त्वं पुरोलाशम्
 अस्माभिर्दीयमानं वीहि भक्षय ॥

मृतयः अस्माभिः क्रियमाणाः स्तुतयः । ॐ मनः ज्ञाने इत्य-
स्मात् कर्मणि, "मन्त्रे वृष०" इत्यादिना क्तिन्नुदात्तः । ॐ । उक्तम्
महान्तं सोमपाम् सोमस्य पातारं शवसः बलस्य पतिम् स्वामि-
नम् इन्द्रं रिहन्ति लिहन्ति प्राप्नुवन्ति । तत्र दृष्टान्तः । वत्सं न
मातरः यथा वत्सं मातरो गावो लिहन्ति तद्वत् ॥ ३ ॥

हमारी की हुई स्तुतियाँ सोमका पान करनेवाले बलके स्वामी
महान् इन्द्रदेवको इस प्रकार प्राप्त होती हैं, जिसमें मेकार बहड़ेको
गौएँ चाटती हैं ॥ ५ ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राघसे तन्वा महे ।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राघसे तन्वा महे ।

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

(६४८) अथर्ववेदसंहिता समाप्त्ये-आषाढिर्वाहसंहिता ॥ १० ॥

[हर्म्ये भरनेके दी मयोजन है, १ हर्म्ये भरने हुए इन्द्रके शरीरकी अभिवृद्धि और २ हविषे प्रदान की यज्ञमामकी धनकी भीति] और सुभे स्तोत्रीकी दूसरेकी निदामे न लंगाइये ॥ ६॥ अथर्ववेदसंहिता ॥ १० ॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ॥ ७ ॥
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ८ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वायवः । हविष्मन्तः । जरामहे ।

उत । त्वम् । अस्मयुर्वसो इति ॥ ७ ॥ ८ ॥

हे इन्द्र त्वायवः त्वां कामयमाना त्वयः हविष्मन्तः । इदित्सतेन सोमलक्षणेन हविषा तद्वन्तः सन्तो जरामहे त्वां स्तुमः । ७ त्वायव इति । इन्द्रार्थि कयचि मययन्तस्य त्वाददेशो "कयाच्छन्दसि" इति उपत्यये त्वयव इति मासी । "युष्मदस्मदोरनादेशो" इति अविभक्तावपि हलादौ व्यत्ययेन आत्वम् । अन्ययस्वरः । ८ उत अपि च हे वसो सर्वस्य वासके इन्द्र त्वम् अस्मयुर्वसुमिमानप्रदानाय अस्मान् कामयिता भव ॥

हे इन्द्रदेवः आपकी कामना करते हुए हम, दी जाने वाली सोमन्त्री हविसे सदैवन्त दोकर आपकी स्तुति करते हैं । और हे वासके इन्द्रदेव । आपको हमे अभिमन फल देना चाहिये ७ अथर्ववेदसंहिता ॥ १० ॥

यार अस्मद्वि सुमुत्रो हरिप्रियावाह याहि ।

इन्द्र स्वभावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

मा । आरे । अस्मत् । वि । सुमुत्रः । हरिप्रिया । अर्वाह । याहि ।

इन्द्र । स्वधाँडवः । मत्स्व । इह ॥ ८ ॥

हे हरिमिय । इसी एतन्नामानावरवाँ प्रियाँयस्य स तर्पाक्तः ।
तस्य संबोधनम् । अस्मत् अस्मत्तः । आरे । दूरे मा । वि । मुमुक्षुः ।
हरिमियेत्युक्तत्वाद् । रथयुक्तावरवाँ-यो । विमोचय किं तु । रथारूढ
एव अर्वाङ् अस्मद्भिमुखं याहि । आगच्छ । आगत्य च हे स्व-
धावः हविर्लक्षणेनान्नेन तर्पयिन्द्र इह अस्मिन्-देवयजने मत्स्व
सोमपानेन-हृष्टो भव । छि मदि स्तुतीत्यादि । अस्य लोटि “बहुलं
हृन्दसि” इति विकरणस्य लुक् । आमन्त्रितस्य अविद्यमानव-
त्त्वाद् अनिघातः ॥ ८ ॥

हे हरि नामके अश्वोंकाँ प्रिये समंभने वालें इन्द्र । आपें अपने
रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको दूर पर मत छोड़िये, किंतु रथ पर आरूढ़
ही हमारे अभिमुख आइये । और आकर हे हविरूप अन्नके पात्र
इन्द्र । इस देवयागमें सोमपानसे प्रसन्न होजिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अर्वाञ्च त्वाँ सुखे रथे बहतामिन्द्र केशिनी ।
घृतस्नू बहिःसदे ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चम् । त्वाँ । सुखे । रथे । बहताम् । इन्द्र । केशिनी ।
घृतस्नू इति घृतस्नू । बहिः । आसदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वाँ सुखे शरीरापीडनेन सुखकरं रथे केशिनी
केशवन्ती सन्वयप्रदेशे लम्बमानकेशयुक्ता घृतस्नू अर्मेजनि तस्व-
दादकस्त्रात्रिणावरवाँ आसदे आसदनीयं बहिः अर्वाञ्चम् अभि-
मुखं बहताम् मापयताम् । छि घृतस्नू इति । घृतशब्दात् । सु-
प्रसवणे इत्यस्मान् संपदाविलक्षणः निवेप । घृतस्य रसु सवेर्वा

[हर्षमें भरनेके दो प्रयोजन हैं; १-हर्षमें भरे हुए इन्द्रके शरीरकी अभिवृद्धि और २-हविःप्रदानों यज्ञभागकी धनकी प्राप्ति] और सुभक्त स्त्रोताकी दूसरेकी निन्दामें न लगाइये ॥ ६ ॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरांमहे ॥
उत त्वमस्मयुवसो ॥ ७ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वायवः । हविष्मन्तः । जरांमहे ।
उत । त्वम् । अस्मयुः । युवसो इति ॥

हे इन्द्र त्वायवः त्वां कामयमाना वयः हविष्मन्तः । हिसितं न सोमलक्षणं हविषा तद्वन्तः सन्तो जरांमहे त्वां स्तुमः । ॐ त्वायव इति । इच्छामि वयं हि मयिष्मन्तस्य त्वादेशे "वयास्त्वन्दसि" इति उपत्यये त्वयव इति माता । "युष्मदस्मदोरनादेशे" इति अविभक्तावपि हलादौ व्यत्ययेन आत्वम् । मन्ययस्त्वेरः ॐ । उत अपि च हे नमो सर्वस्य वासके इन्द्र त्वम् अस्मयुः अभिमतप्रदानाय अस्मान् कामयितां भव ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कामना करत हुए हम, दी जाने वाली सोमरूपी हविसे सम्पन्न होकर आपकी स्तुति करते हैं । और हे वासक इन्द्रदेव ! आपकी हमें अभिमत फल देना चाहिये ॥

मार् अस्मद् वि सुमुवो हरिमिश्राद् याहि ।
इन्द्र स्वभावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

मार् । आरे । अस्मद् । वि । सुमुवः । हरिः । मिश्रा । याहि ।
इन्द्र स्वभावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

इन्द्र । स्वधाऽवः । मत्स्व । इह ॥ ८ ॥

हे हरिमिय । इसी एतन्नामानावश्वौ मियौ यस्य स तथोक्तः । तस्य संबोधनम् । अस्मत् अस्मत्तः-आरे दूरे मा वि मुमुचः । हरिमियेत्युक्तत्वाद् रथयुक्तावश्वौ मा विमोचय किं तु रथारुह एव अर्वाह् अस्मद्भिमुखं याहि आगच्छ । आगत्य च हे स्वधावः दृविर्लक्षणान्नेम तर्द्धमिन्द्र इह अस्मिन् देवयजने मत्स्व सोमपानेन हृष्टो भव । छिमदिस्तुनीत्यादि । अस्य लोटि "बहुलं हन्दसि" इति विकरणीस्य लुक् । आमन्त्रितस्य अविद्यमानवत्त्वाद् अनिषातः ॥

हे हरि नामक अवश्वौ मिये समीक्षने बाले इन्द्र । आप अपने रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको दूर पर मत छोड़िये, किंतु रथ पर आरुह ही हमारे अभिमुख आइये । और आकर हे दृविरूप अन्नके पात्र इन्द्र । इस देवयागमें सोमपानसे मीसन्न हजिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अर्वाञ्च त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।

धृतस्तु ब्रहिंसदे ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चम् । त्वा । सुखे । रथे । वहताम् । इन्द्र । केशिना ।

धृतस्तु इति धृतस्तु । ब्रहिंसः । आसदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां सुखे शरीरापीडनेन सुखकरे रथे केशिना केशवन्तौ स्वल्पदेशे लम्बमानकेशयुक्ता धृतस्तु अपननितम्ब-दोदकसाविणावश्वौ आमदे आसदनीयं ब्रहिंसः अर्वाञ्चम् अभिमुखं वहताम् मापयताम् । छि धृतस्तु इति । धृतगन्धान् शुभ्रसवणे इत्यम्मान् संपदादिलक्षणः विवप् । धृतस्य रसु सवर्त्त

ययोस्ताविति बहुव्रीहौ पूर्वपदमकृतिस्वरेण मध्योदात्तः । आसदे ।
कृत्यार्थे केन मत्त

“हे इन्द्रदेव ! शरीरको सुख देने वाले रथमें विराजमान आप
को लम्बे अयाल वाले, श्रमकी वृद्धोंको बहाने वाले घोड़े, बैठने
योग्य कुशासन पर हमारे अभिमुख लावे ॥ ६ ॥

“उप नः सुतमा गहि” इति सूक्तस्य । अनिरात्रं एव मध्यमे
रात्रिपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिभ्यस्तु विनियोगः उक्तः ॥ १० ॥

“उप नः सुतमा गहि” इस सूक्तका अनिरात्रमें ही मध्यम रात्रि-
पर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिभ्यस्तु विनियोग उक्त है ॥ १० ॥

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥

उप । नः । सुतम् । आ । गहि । सोमम् । इन्द्र । गोऽश्वाशिरम् ।
हरिऽभ्याम् । यः । ते । अस्मयुः ॥ १ ॥

हे इन्द्र नः अस्मदीयं सुतम् अभिपुत गवाशिरम् गव्यं ययः
आश्रयणसाधनं यस्य तम् । आङ्पूर्वात् श्रीणातेः क्विप्
“अपस्पृश्याम् आनृचुः” इत्यादिना शिर इत्यादेशः । बहुव्रीहौ
पूर्वपदस्वरः । ते सोमं मेति उपो गहि समीपे आगच्छ । यतः
हरिभ्याम् अश्वोभ्यां युक्तः तौ तान रथः अस्मयुः अस्मान् काम-
यमानो वर्तते ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे अभिपुत गवाशिरः (गौके-दधमेः आदि-
हुए) सोमके समीप आइये, क्योंकि-हरिनामक अश्वोंसे जुता
हुआ आपका रथ हमारी कामना कर रहा है ॥ १० ॥

द्वितीया ॥

तमिन्द्रमदमा गहि वहिष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।

कुविन्नुस्य तृणवः ॥ २ ॥

तम् । इन्द्र । मदम् । आ । गहि । वहिः । अस्याम् । ग्रावः । अभिः । सुतम् ।

कुवित् । नु । अस्य । तृणवः ॥ २ ॥

हे इन्द्र तं प्रसिद्धं मदम् पदकरं वहिष्ठाम् वहिषि स्थितं ग्रावभिः
पापाणैः सुतम् अभिषुतं सोमम् अभिलक्ष्य आ गहि आगच्छ ।
नु क्षिप्रम् अस्य सोमस्य पानेन कुवित् । बहुनामैतत् । प्रभूतं
यथा भवति तथा तृणवः तृणो भवः । ॐ त्वं प्रीणने इत्यस्य
लेटि अडागमः । व्यत्ययेन श्नुविकरणः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप कुशाओं पर स्थित, पदकारी, पापाणोंसे
अभिषुत सोमको लक्ष्यमें रख कर आइये और शीघ्र ही इस
सोमके पानसे अतिवृत्त हजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रमित्था गिरौ भमाञ्छागुरिषिता इतः ।

आश्रुते सोमं पीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् । इत्था । गिरः । भम । अञ्छ । अगुः । इषिताः । इतः ।

आश्रुते । सोमं पीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् अञ्छ इन्द्रम् अभिलक्ष्य यम गिरः स्तुतिरूपा वाचः
इषिताः अस्माभिः मेरिताः सत्पः इतः अस्माद् देवयजनसञ्जा-
शब्दं इत्या इत्यम् उच्चार्यमाणप्रकारेण अगुः माताः । ॐ इदम्-
शब्दात् “या हेतौ च चञ्चन्दसि” इति व्यत्ययेन धाप्रत्ययः । इदम्

“एतेतौ रथोः” इति इत् इत्यादेशः । मत्स्यस्वरः ॐ । किमर्थम् ।
आवृते आवर्तनाय अस्मद्यज्ञं प्रति आगमनाय । ॐ वृत्तं अने ।
अस्य संपदाविलक्षणः विषयः । मादिसमाप्तः । कुदुचरपदमकृति-
स्वरः ॐ । आवृत्तिरपि किमर्थेति तत्राह । सोमपीतये सोमपानाय ॥

इन्द्रको लक्ष्यमें रथ, कर, हमसे प्रेरित हुई, इस देवयज्ञस्थलसे
उच्चारण की हुई स्तुतिरूपा वालिये हमारे यज्ञमें लामेके लिये
और सोमपानके लिये इन्द्रको प्राप्त होती है ॥३॥ ॥ ॥ ॥

सोमपानके लिये इन्द्रको प्राप्त होती है ॥३॥ ॥ ॥ ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमिहि हवामहे ।

उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । सोमस्य । पीतये । स्तोमः । इह । हवामहे ॥ ४ ॥

उक्थेभिः । कुवित् । आगमत् ॥ ४ ॥

इन्द्रं देवं सोमस्य पीतये पाताम् इष्ट अस्मिन् यज्ञे स्तोमः वि-
ष्टम् अथ दशादिस्तोमसाध्याः स्तोत्रैः उक्थेभिः उक्थैः आज्यमउगा-
दिशस्त्रसाध्याभिः स्तुतिभिश्च हवामहे आहवामः । स च आहूत
इन्द्रः कुवित् बहुवारम् आगमत् अस्मद्यज्ञं प्रति आगच्छतु । ॐ गमे-
ल्लेष्टि अदागमः । कुविद्योगाद् अनिघातः । “आगमा अनुदात्ताः”
इति अतोनुदात्तत्वाद् धातुस्वरः । “तिष्ठ चोदात्तवति” इति गत-
निघातः ॥

हम इन्द्रदेवको सोमपानके लिये इस यज्ञमें विष्ट पञ्चदश आदि
स्तोममाप्य स्तोमोंसे और आज्य, मउगादि शस्त्रसाध्य स्तुतियों
से भी आह्वान करते हैं । बहु-बुलाये हुए इन्द्रदेव, हमारे यज्ञमें
बहुत बार आवें ॥ ४ ॥

इन्द्र सोमांसुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ॥ १ ॥

जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥

इन्द्र । सोमांसुता । इमे । तान् । दधिष्व । शतक्रतो इति शतक्रतो ।
जठरे । वाजिनीवसो इति वाजिनीवसो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र इमे ग्रहचमससंस्थिताः सोमाः सुताः त्वदर्थम् अभिप-
वादिना संस्कृताः इति शतक्रतो बहुकर्मन् हे वाजिनीवसो अन्नघने ।
यदा वाजः अन्नं फलरूपम् आस्विति वाजिन्यः क्रियास्तासां
वासक इन्द्र । वाजशब्दान्मत्वर्थयिष्यति । अन्नघ्नः इति
कीप् ॥ तासां वसो ॥ संयुदौ च ॥ इति शृणु ॥ तान्
त्वदर्थम् अभिषुतान् सोमान् जठरे दधिष्व धारय ॥

हे इन्द्र । ये ग्रह चमस आदिमं स्थितं सोमं अभिष्व आदि-
से आपके लिपे संस्कृतं क्रिये गण ई, हे अन्नघने इन्द्र । अन्नको
आप अपने, त्वदर्थं धारय क्रिये ॥ ५ ॥

विद्वा हि त्वां धनंजय वाजेषु दृष्टं कवे ।
अथा ते सुममामहे ॥ ६ ॥

विद्वा हि । त्वां । धनंजयम् । वाजेषु । दृष्टम् । कवे ।
अथा । ते । सुममामहे ॥ ६ ॥

हे कवे कान्तमह इन्द्र त्वां त्वां वाजेषु संग्रामेषु दृष्टम् अतिशयेन
शत्रुघर्षकं धनंजयम् शत्रुघ्नस्य जितारं विद्वा जानीमः । अथ अतः
कारणात् ते तव सुमम् सुखं सुखकरं धनं वा इमहे याचामहे ।

ॐ धनंजयम् इति । जि जये इत्यस्माद् धन उपपदे "संज्ञायां भृ-
तवृजिं०" इति खच् । "अरुद्विपदजन्तस्य०" इतिः सुम् आगमः ।
दधुपम् इति । धृपेर्धलुगन्तात्पचाद्यचि "यङोऽचि च" इति यङो
लुक् । लघूपधगुणे प्राप्ते "न धातुलोपे०" इति तस्य प्रातिपदः ॥

हे मुदिमान् इंद्र ! आपको हम संग्रामों में शत्रुओं को दबाने
वाला और शत्रुओं के धन को जीतने वाला जानते हैं । इस कारण
हम आपके सुखकर धन की याचना करते हैं ॥ ६ ॥

नानी ॥ १५४ ॥ सप्तमी ॥ आपका इंद्र मि ॥ ६ ॥

इममिन्द्र गवांशिरं यवांशिरं च नः पिब ॥
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

इयम् । इन्द्र ! गोऽंशिरम् । यवऽंशिरम् । च नः । पिब ।
आगत्या । वृषभिः । सुतम् ॥ ७ ॥

हे इंद्र ! गवांशिरम् । विकारे मकृतिशब्दः । गव्याख्या-
शीर्द्रव्योपेतं तथा यवांशिरं च यिवेलक्षणमिश्रणद्रव्योपेतं वृषभिः
वर्षकैर्ग्रावभिः सुतं नः अस्मदीयम् इमं सोमम् आगत्य अस्मदभि-
मुखं प्राप्य पिब पानं कुरु । गवांशिरं यवांशिरम् इत्युभयत्र
आहू पूर्वस्य श्रीणानेः क्वपि "अपस्पृधेयाम् आतृचुः०" इत्या-
दिना शिर् इत्यादेशः । यद्व्योहो पूर्वपदमकृतिस्वरः ॥

हे इंद्र ! आप गव्य और जौ मिले हुए, वर्षक प्रत्यरोंसे तिलोहे
हुए इस सोमको आकर पीजिये ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥ १५५ ॥ सप्तमी ॥ आपका इंद्र मि ॥ ७ ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्तेः सोमं चोदामि पीतये ॥
एष सारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

तुभ्य । इत् । इन्द्र । स्वे । ओक्वे । सोमम् । चोदामि । पीतये ।
एषः । ररन्तु । ते । हृदि ॥ ८ ॥

हे इन्द्र तुभ्य इत् तुभ्यमेव । ॐ "सुषो सुलुक्" इति सुषो
लुक् ॐ । पीतये पानार्थं स्वे स्वीये ओक्वे ओकसि स्थाने जठरे ।
ॐ वस्वादित्वात् स्वार्थिको यत् ॐ । सोमं पीतये पानाय चोदामि
प्रेरयामि । स एष पीतः सोमः ते तव हृदि हृदये ररन्तु अत्यर्थं
रसताम् । ॐ रसु क्रीडायां इत्यस्य यङ्लुकि लोटि सर्वविधीनां
छन्दसि विकल्पितत्वाद् अभ्यासस्य नुगभावः । संहितायाम्
"अन्येषामपि दृश्यते" इति अभ्यासस्य दीर्घः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव । मैं आपको ही पान करनेके लिये अपने जठररूप
स्थानमें सोमकी धारण करनेके लिये प्रेरणा करता हूँ, वह पिया
हुआ सोम आपके हृदयमें धारम्भार-रण करता रहे ॥ ८ ॥

नवमी ॥ । ओक्वे

त्वां सुतस्य पीतये मत्नमिन्द्र हवामहे ।
कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥

त्वाम् । सुतस्य । पीतये । मत्नम् । इन्द्र । हवामहे ।

कुशिकासः । अवस्यवः ॥ ९ ॥

हे इन्द्र मत्नम् पुरातनं त्वां सुतस्य अभिषुतस्य सोमस्य पीतये
पानाय कुशिकासः कुशिकगोत्रोत्पन्ना वयम् अवस्यवः रत्ताकामाः
सन्तो हवामहे आह्वयामः । ॐ कुशिकासो अवस्यव इत्यत्र संहि-
तायाम् "अव्यादवद्यादवक्रमुरत्रतायमवत्वंवस्तेषु च" इति एङः
प्रकृतिभावः ॐ ॥ । इन्द्राभिषुतस्य सोमस्य पीतये
पानाय त्वम् इति तृतीयेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥ १५५ ॥

॥ इन्द्रदेवः ॥ कुशिकगोत्रं मे उत्पन्नं ॥ इष्टं रक्षाः प्रादते ॥ इष्टं म
आप प्राचीन देवताको अभिपूत, सोमका पान करनेके लिये आह्वान
करते हैं ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकम् समम् सुक्तं समातः (१५७)
अरवावति प्रथमः इति सूक्तस्य अतिरात्रि कृतो मन्थमे

स्तवोतिभिः । ॥ ३ ॥

तमित् पृणक्षि वसुना भवोयसा सिन्धुर्मापो यथाभितो
विचेतसः ॥ १ ॥ ३ ॥

अरवावति । प्रथमः । गोपुत्र गच्छति । सिन्धुर्मापो यथाभितो ।

मर्त्यः । तव । ऊतिभिः ॥ ३ ॥

तम् । इत् पृणक्षि वसुना भवोयसा सिन्धुम् । आपः ।

माम् । तव । गोपुत्र गच्छति । सिन्धुर्मापो यथाभितो ।

मर्त्यः । तव । ऊतिभिः ॥ ३ ॥

तम् । इत् पृणक्षि वसुना भवोयसा सिन्धुम् । आपः ।

माम् । तव । गोपुत्र गच्छति । सिन्धुर्मापो यथाभितो ।

मुख्यो भवति। सयां गोषु शोभन्तु प्रथमो गच्छति। बहुपशुको
भवतीत्यर्थः। स्वमपि भवीयसा बहुतेरेण भवितुमेन वा। बहु-
भावं प्राप्नुवता। ॥ भवितुशब्दात् "दुरद्वन्दसि" इति ईयसुन्।
"दुरिष्टेयेयसु" इति वृत्तोपः। धर्मेना धनेन अभितः तमिह
तेमेव पुरुषं पृणति संपृक्तं करोषि। ॥ पूर्वीः संपर्कः। रीया-
दिकः। तत्र दृष्टान्तः। यथा विचेवसः विशिष्टज्ञानसाधना
आपः यथा अभितः सिन्धुम् समुद्रं पूरयन्ति तद्वत् ॥
हिन्दुः। जो पुरुष आपकी रक्षाओंसे भली प्रकार रक्षित
होता है, वह पुरुष बहुतसे अरबों वाले युद्धमें वा बहुतसे घुड़-
सवारोंमें मुख्य होजाता है। तथा गाँवों वालोंमें भी मुख्य होता
है अर्थात् बहुतसे पशुओं वाला होता है, और विशिष्ट ज्ञानके
साधन जल चारों ओरसे समुद्रको भरते हैं, इसी प्रकार आप भी
बहुतसे रूपोंको प्राप्त होनेवाले धनसे उसी पुरुषको सम्पन्न बनाते हैं
किन्तु आप विद्वान् होना चाहिये ॥

आपो न देवीरूपं यन्ति होत्रियं भवः पश्यन्ति विततं
यथा रजः। ॥ प्राचेदेवासः प्र एयन्ति देवयु ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा
इव ॥ २ ॥

आपः न देवीरूपं यन्ति होत्रियम्। भवः पश्यन्ति।
विततम्। यथा। रजः।
प्राचेः देवासि। प्र एयन्ति देवयुम्। ब्रह्मप्रियम्। जोषयन्ते।
वराः इव ॥ २ ॥

(१५८) अथर्ववेदसंहिता समाप्ता-वापानुवादसहितः ॥ ०८॥

॥ हे इन्द्र होशिमम् होशार्ह त्वाम् आपो न देवीः द्योतमाना आपो
यथा उपपन्ति उपगच्छन्ति तिस्रं मदेशः समुद्रादिकं वा एवम्
उपपन्ति त्वाम् उपगच्छन्ति । सामध्यात् स्तुतयः स्तोतारो वेति
ब्रूम्यते । तथा सवः पश्यन्ति अयः अवस्तात् परयन्ति । तत्र
स्वरूपे द्रष्टुम् अशक्ता इत्यर्थः । तेन दृष्टान्तः । यथा विततम् विस्तृतं
रजः । ॐ उपोती रज उक्ष्यत इति निरुक्तम् [४-१६] ॥
सर्वतो व्याप्तं सावित्रं तेजो यथा द्रष्टुम् अशक्ता अवस्तात् पश्य-
न्ति तद्वत् किं स देवाभः स्तोतार आत्विजः स्वा माचैः माचीनं
म एणयन्ति वेद्यभिमुखं गमयन्ति । यद्वा त्वदर्घ्यं सोमम् अग्निं च
माश्च म एणयन्ति । यद्यपि यम् । बल परिष्ठं स्तोत्रं कर्म वा । तत्
मियं यस्य स तादृशं स्वा वरा इव यथा वराः कन्या जोषयन्ते
एवम् आत्विजो जोषयन्ते सेवन्ति । ॥ २ ॥
हे इन्द्रदेव ! दमकते हुए जल जैसे निम्नस्थलमेंको चा समुद्र
मेंको जाते हैं, इसी प्रकार स्तुतियों, होशार्ह आपको ही प्राप्त होती
हैं। जैसे विस्तृत सूर्यके मुकुटकी देखनेमें असमर्थ हुए, पुरुष
नीचेको देखने लगते हैं, इसी प्रकार आपके स्वरूपसे चौपाये
हुए पुरुष भी नीचेको देखने लगते हैं । और स्तुति करने वाले
आत्विज आप माचीनको वेदीके अभिमुख भेजते हैं, जैसे वर
कन्याओंका सेवन करते हैं इसी प्रकार आत्विज आपको सेवन
करते हैं ॥ २ ॥

ਰੁਖੀਧਾ ॥

अधि द्वयोरदधौ उक्थ्यैव चो यत्सुचौ मिथुनाया
संपर्यतः ।

4:57 1:57 1:57 2:57

असंयत्ता व्रते तं चेति सुष्यति भिक्षा शक्तिर्यजमानः
 नाय सुन्वते ॥ ३ ॥

11 5 4 752:1357

अधि द्वयोः । अर्धयोः । उक्थ्यम् । वचः । यतः सुचा । मियुना ।

या । सपर्यतः ।

असंयत्तः । वने । ते । क्षेति । पुण्यति । भद्रो । शक्तिः । यशः । मानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मणाच्छंसिन् द्वयोर्हविर्धानयोरहदिप्मतोरधि-उपरि उक्थ्यं उक्थं स्तोत्रं तद्योग्यं वचः “युजेर्धा व्रज” [१८. ३. ३६] इत्यादि रूपम् उभयोर्मध्यवर्ति तृतीयच्छदिःस्यानीयं वचः वचनम् अध्य-दधाः निहितवान् असि । उभे हविर्धाने विशेष्येते । यतः सुचा यताः संबद्धाः सूचः ग्रहचमसादिलक्षणा यज्ञसाधनानि पात्राणि ययोस्ते तादृशे मियुना युगलरूपेण वर्तमाने, या ये हविर्धाने । सर्वत्र “सुपा सुलुक्”-इति विभक्तेराकारः । तादृशं हविर्धाने सपर्यतः इन्द्रं पूजयतः । सोमपानोचितपात्रधारणद्वारेणेति भाषः । तयो-पीति, पूर्वश्रान्वयः ॥ किं, हे इन्द्र ते, व्रते तव कर्मणि त्वदुद्देश्ये यागे यजमानः असंयत्तः व्यापान्तरेष्वसंबद्धः सन् क्षेति निवसति पुण्यति आत्मानं मजापरवादिना । सुन्वते त्वदर्थम् अभिपरं कुर्वते यजमानाय । पृष्ठयर्षे, चतुर्थी । तस्य भद्रा कन्याणी शक्तिः बलम् अस्तु । त्वदनुग्रहाद् इति शेषः ॥ अयं मन्त्र एतरेयब्राह्मणे व्याख्यातः । “अधि द्वयोरर्धयोः उक्थ्यं वच इति । द्वयोर्होतृ तृतीयं छदिर्धुनिधीयते ॥ उक्थ्यं वच, इति यदाह यज्ञियं वै कर्मोक्थ्यं वचो यज्ञमेवैतेन समर्थयति ॥ यतः सुचा मियुना या स-पर्यतः ॥ असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुण्यतीति । यदेवादः पूर्वं यत्-तत् पदम् आह तदेवैतेन शान्त्या गमयति ॥ भद्रा शक्तिर्यजमा-नाय सुन्वते इत्याशिषम् आशास्ते” इति [ऐ० ब्रा० १. २६] ॥

हे ब्राह्मणाच्छंसिन् ! जिनये ग्रह चमस आदि आदिक यज्ञके

मायन सात्रः स्वेष्टुष और जो युगलरूपमें वर्तमान दोनों ब्रह्म-
र्षीन सोमपानके योग्य पात्रधारणके द्वारा इन्द्रकी पूजा करते हैं
उनके ऊपर स्तोत्रके योग्य आपने ("युजे वां ब्रह्म" १८. १. ३६
आदिक) तृतीयचहृदिस्थानीय उक्त्युक्त वचन स्थापित किया
है । और हे इन्द्रदेव ! आपके उद्देशसे किये जाने वाले यागमें
अनन्यभावसे लगा हुआ यह यजमान अपनेको ममा पशु आदिसे
पुष्ट करे और आपके अनुग्रहसे इसकी कल्याणी शक्ति प्राप्त हो ३

आदितिराः प्रथमं दधिरे वयं इन्द्रानयः शम्या ये सु-
कृत्यया ।

सर्वं पणः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्त गोमन्तमा-
पशुं नरः ॥ ३७ ॥

आत् अदितिराः । प्रथमम् । दधिरे वयः । इन्द्रानयः । शम्या ।
सुकृत्यया ।

सर्वम् । पणः । सम् । अविन्दन्त । भोजनम् । अश्ववन्तम् ।
गोमन्तम् । आपशुम् । नरः ॥ ३७ ॥

हे इन्द्र अदितिराः अदितिसंज्ञा ॥ ३७ ॥ "सुषोः सुलुक्" इत्या-
दिनां प्रसाधुः ॥ प्रथमम् । अग्रतो वयः । अविन्दन्तम् । अश्वम्
आत् अनन्तरमेव यदा पण्यभिर्गावोऽपहृतास्तदानीमेवं दधिरे अवा-
रयन् स्वदेयं संपादितवन्तः । पीदशा अदितिरसः । ये सुकृत्यया
कृतिः करणं उपाहारः शोभनं वयोपाशेनेन शम्या प्रकर्मनामितम् ।
कर्मणाः समिष्टोमादिलघणेन निमित्तेन इन्द्रानयः प्रवृत्तिताश्च-

नीपाद्यग्निमन्तस्ते नरः नेतारः अङ्गिरसः पणोः । एतन्नामकस्या-
सुरस्य सर्पम् ययद् अपहृतम् आसीत् तत् सर्वं भोजनम् घनं सम-
विन्दन्त समलमन्त । भोजनं विशिनष्टि । अश्वावन्तम् बहुभिर-
श्वैर्घुक्तं गोमन्तम् चङ्गीभिर्गोभिर्घुक्तम् । आ इति चार्थः । पशुम् आ-
सक्तं श्वगोव्यतिरिक्तम् अजाव्यादि अन्यत् पशुजातं च समविन्दन्त
। -दे इन्द्र ! अगिरा गोत्रं वालोने जव पणियोने गौं छीनी थी
सप्त समय पहिले ही आपके लिये हवीरूप अन्नको सम्पादन
किया था । ये अगिरावंशी अग्निष्टोम आदि शोभन कर्मोंसे
आहवनीय अग्निको मज्जलित रखते हैं और इन नेता अग्नि-
रसोंने पणि नामक असुरका छीना हुआ बहुतसे अरवोंवाला और
गौओंवाला तथा भेड़ बकरी आदिवाला घन पाया था ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ पञ्चमी ॥ । .

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो ब्रतपा वेन आजनि
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातम्-
मृतं यजामहे ॥ ५ ॥

यज्ञै । अथर्वा । प्रथमः । पथः । तते । ततः । सूर्यः । ब्रतपाः ।
। वेन । आ । आजनि ।

आ । गाः । आजत् । दुशना । काव्यः । सचा । यमस्य । जातम् ।
मृतम् । यजामहे ॥ ५ ॥ । .

अथर्वा एतन्नामा महर्षिः यज्ञैः इन्द्रम् वहिश्य क्रियमाणैर्यागैः
साधनैः प्रथमः सूर्यादिभ्यः पूर्वभूतः सन् पथः अपहृतानां गवां
पार्श्वान् तते विस्तारितवान् । ज्ञातवान् इत्यर्थः । ततः अनन्तरं
वेनः कान्तः सूर्यो ब्रतपाः गवानयनकर्मणः पालयित्वा आजनि

मादुरभूत् । अन्धकाराविष्टानां गवां प्रकाशकोभृद् इत्यर्थः । अ-
नन्तरं काव्यः कवेः पुत्र उशना मृगः सुवा इन्द्रसहायभूतः स-
गाः आजत् अभिमुख्येन मामीत् । यमस्य सर्वनियन्तुः । सूर्यस्य
मयोजनाय जातम् मादुरभूत् अथ वा यमस्य यमात् नियन्तुरीश-
रात् जातम् अमृतम् अमरणधर्माणम् इन्द्रं यजामहे पूजयामः ॥
१॥ अथवा नामकं महर्षिने इन्द्रके निमित्तं किये हुए पागोंसे सूर्य
आदिकसे पहिले होकर सुराई हुई गौओंके मार्गको जान लिया
था । तदनन्तरं गवांयन कर्मके पालयिता कमनीय सूर्यदेव मादु-
र्भूत हुए थे अर्थात् उन्होंने अन्धकारसे आहत गौओंको प्रकाशित
किया था । तदनन्तरं कविके पुत्र उशनाने इन्द्रकी सहायता पाकर
गौओंको अभिमुख होकर पाया था, नियन्ता ईश्वरसे प्रकट हुए
अमरणधर्मी इन्द्रदेवकी हम पूजा करते हैं ॥ ५ ॥

वर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेर्को वा श्लोकमाधोपते दिवि
ग्रावा यत्र वदति कारुक्थ्यं सस्येदिन्द्रो अभिपि-
त्रेषु रणयति ॥ ६ ॥

वर्हिः । वा । यत् । सुऽअपत्याय । वृज्यते । अर्कोः । वा । श्लोकम् ।

आऽधोपते । दिवि ।

ग्रावा । यत्र । वदति । कारुः । उक्थ्यः । सस्य । इत् । इन्द्रः ।

अभिऽपित्रेषु । रणयति ॥ ६ ॥

यत् यस्य यदस्य संबन्धिं वर्हिः स्वपत्याय शोभनापत्याय
कलाय यद्वपत्राणां शोभनापतनाय वा वृज्यते दियते । आस्ती-
र्यत इत्यर्थः । ॐ यच्छब्दयोगाद् अनिमातः ॐ । अर्को वा अर्च-

नसाधनमन्त्रोपेनो होता च श्लोकम् । वाङ्मामैतत् । वागात्मकं
शस्त्रादिकं यत् यत्र दिवि द्योतमाने यज्ञे आघोषते उच्चारयति ।
ॐ अत्रापि यच्छब्दोऽनुवर्तते । यद्योगाद् अनिघातः ॐ । यत्र
च यज्ञे ग्रावा अभिषवसाधनः पापाणः कारुक्थ्यः । लुप्तोपमम्
एतत् । उक्थाईः स्तोतेन वदति शब्दं करोति । तस्येत् तादृशस्यैव
यज्ञस्य अभिषित्वेषु समीपदेशेषु इन्द्रो देवः रययति रमते । उक्त
लक्षणो यागः अस्मदर्थं भविष्यतीति हर्षशब्दं करोति वा ॐ रमु
क्रोडायाम् । व्यत्ययेन रयन् परस्मैपदं च । अन्त्यविकाररक्षा
म्दसः । यद्वा रण शब्दार्थः । व्यत्ययेन रयन् ॐ ॥

- जो यज्ञकी कुशा शोमन सन्तानरूप फलको पानेके लिये
विछाई जाती है, पूजाके साधनसे सम्पन्न होता भी जिस वागात्मक
शस्त्र आदिका द्योतमान, यज्ञमें उच्चारण करता है और जिस
यज्ञमें अभिषवका साधन पापाण उक्थाह स्तोताकी समान शब्द
करता है, उस यज्ञके समीपके स्थानोंमें इन्द्र रमण करते हैं ६

सप्तमी ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्णं इयमिं सत्यां प्रथे सुतस्य । हर्यश्च
तुभ्यम् ।

इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व । धीमिर्विश्वाभिः । शच्या
गृणानः ॥ ७ ॥

म । प्रग्राम् । पीतिम् । वृष्णे । इयमिं । सत्याम् । प्रथे । सुतस्य ।
हरिऽश्च । तुभ्यम् ।

इन्द्र । धेनाभिः । इह । मादयस्व । धीभिः । विश्वाभिः । शच्या ।
गृणानः ॥ ७ ॥

हे हर्यश्वं हरिनामकांश्चोपेतं इन्द्रं दृष्ट्वा अभिमतं फलवपि प्रेमये
गच्छेत्तु गमनाय तुभ्यं सुतस्य अभिपुनस्य सोमरसस्य उग्राम् उद-
गूर्णचलां सत्पाम् अचित्तमसामध्या पीतिम् पानं मेयमि मेरयामि
हे इन्द्रस्त्वं च इह अस्मिन् यज्ञे धेनाभिः मीलयित्रीभिः विश्वाभिः
सर्वाभिः धीभिः स्तुतिभिस्तदात्मकैः कर्मभिः । यद्वा धेनेति वाद-
नाम । धीपूर्विकाभिः स्तुतिभिः शक्या । कर्मणामेतत् । कर्मणा
योगेन निमित्तेन चलेन वा गृणानः स्तूयमानो मादयस्व हृष्टो मव ॥
इति तृतीयेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! 'अभिलपित' फलकी वर्षा
करने वाले और श्रेष्ठ गमन वाले आपके लिये मैं अभिपुत सोम-
रसकी उदगूर्ण बलशालिनी पीति (पान) को मेरित करता
हूँ । और हे इन्द्रदेव ! आप भी इस यज्ञमें मसन्न करने वाली
सकल स्तुतियोंसे और कर्मसे स्तुति पाते हुए मसन्न होजिये ७
इति तृतीय अनुवाकमें अष्टम सूक्त समाप्त (६३१) ॥

“योगेयोगे तवस्तरम्” इति चत्वारि सूक्तानि अतिरात्रे क्रतौ
तृतीये रात्रिपर्याये ब्राह्मणशस्त्रे विनियुक्तानि । तत्र आशी
तृतीया स्तोत्रियानुरूपी । “उत्तम आरोहोसि” इत्यारभ्य सूत्रितं
वैताने । “योगेयोगे तवस्तरम् [२०. २६. १] युज्जन्ति मध्वम-
रुपम् [२०. २६. ४.]” इति स्तोत्रियानुरूपी । अथाः पूर्व्याम्
[२०. ३२. ३] इति परिधानीया । ऊर्ती शचीवः [२०. ३३. ३]
इति याज्या” इति [वै० ४. २] ॥

“अत्रापि ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पञ्चदश पर्यासः”
इति [वै० ४. २] सूत्रितत्वाद् “यदिन्द्राहम्” इत्युत्तरपां त्रयाणां
सूक्तानाम् अत्रैव तृतीयपर्याये ब्राह्मणशस्त्रे विनियोग उपपन्नः । अत-
एवं “म ते महे” इति सूक्तस्य अन्तिमा “अथाः पूर्व्याम् [२०.
३२. ३] इत्येता अहं परिधानीया” इति सूत्रितम् [वै० ४. २] ॥

“योगे योगे तवस्तरम्” ये चार सूक्त अतिरात्र ऋतुके तृतीय रात्रिपर्यायमें - ब्राह्मणाच्छसिशस्त्रमें विनियुक्त होते हैं। इनमें पहिले दो वृष स्तोत्रियानुरूप हैं। “उत्तम आरोहोऽसि” का आरम्भ करके वैतानसूत्रमें सूचित किया है, कि-“योगे योगे तवस्तरम् (२० । २६ । १) युञ्जन्ति घ्नन्मरुपम् (२० । २६ । ४) इति स्तोत्रियानुरूपौ । अपाः पूर्वेषां (२० । ३२ । ३) इति परिधानीया । ऊती शचीवः (२० । ३३ । ३) इति याव्या” (वैतानसूत्र ४ । २) ॥

यहाँ भी “ऊर्वै सर्वान् ग्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः” इस प्रकार वैतानसूत्र ४ । २ में सूत्रित होनेसे “यदिन्द्राहम्” आदि अगले तीन सूक्तोंका यहाँ ही तृतीयपर्यायके ब्राह्मणशस्त्रमें विनियोग उपपन्न है। अत एव “म ते महे” सूक्तकी अन्तिम ऋचा परिधानीया है “अपाः पूर्वेषां (२० । ३२ । ३) इत्येषा ऋक् परिधानीया” वैतानसूत्र ४ । २

तत्र मधमा ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमृतये ॥ १ ॥

योगेयोगे । तव स्तरम् । वाजेवाजे । हवामहे ।

सखायः । इन्द्रम् । मृतये ॥ १ ॥

योगेयोगे शत्रुसेनादेः संगमेसंगमे सति सत्तथागर्क्यणः संप्राप्ता मर्त्या वा । ॐ युजिर् योगे । ‘हलश्च’ इति घञ् । “चजोः कु घिएण्यतो” इति वुत्त्वम् । आधुदात्तत्वम् । “नित्यवीप्सयो” इति वीप्सायां द्विभावे सति आध्नेडितानुदात्तत्वम् ॐ । तवस्तरम् अतिशयेन चलवन्तम् इन्द्रम् । ॐ तवम्शब्दाद् “अस्मायामेधा०”

इति मत्वर्णीयो विनिः । तस्य छान्दसो लोपः ॐ । संखायः सखि-
भूता ययम् ऊतये रक्षाणाम् इवामहे आह्वयामः । तथा वाजेवाजे
अन्नेऽन्ने यदायदा अन्नं लब्धव्यं भवति तदातदा उक्तमहिमो-
पेतम् इन्द्रं इवामहे ॥

शत्रुसेना आदिका योग होने पर वा प्रत्येक यागकर्मकी प्राप्ति
होने पर मिश्रभूत हम वली इन्द्रका आवाहन करते हैं तथा जब २
अन्नप्राप्तिका अवसर आता है तब हम २ इन्द्रनेवका आवाहन
किया करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ घा गमत् यदि श्रवत्सहस्रिणीभिस्त्वितिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥

आ । घ । गमत् । यदि । श्रवत् । सहस्रिणीभिः । कृतिभिः ।
वाजेभिः । उप । नः । हवम् ॥ २ ॥

स इन्द्रः यदि नो हवम् आवाहनं श्रवत् शृणुयात् । ॐ शृणो-
तेल्लेख्यडागमः ॐ । तर्हि सहस्रिणीभिः सहस्रसंख्यायुक्ताभिः
कृतिभिः वाजेभ्य रक्षाभिः वाजैरन्नैश्च सह घेति प्रसिद्धी । उपा
गमत् उपागच्छेदेव । ॐ गमेल्लेख्यडागमः । “इत्थं लोपः” इति
इकारलोपः । यद्वा छान्दसे लुङि “पुपादिद्युताद्यलृदितः पर-
स्मैपदेषु” इति च्लेः अङ् आदेशः । “बहुलं छन्दस्यमाङ्गयोगेपि”
इति अङ्भावः ॐ ॥

वह इन्द्रदेव यदि आवाहनको सुने तो सहस्रों रक्षाओं और
अन्नोंके साथ सभीपरम अवश्य आवें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम् ।

यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥

अनु । मत्नस्य । ओकसः । हुवे । सुविप्रतिम् । नरम् ।

पम् । ते । पूर्वम् । पिता । हुवे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र मत्नस्य पुरातनस्य ओकसः स्वर्गाख्यस्य स्थानस्य अधिपतिं सुविप्रतिम् बहूनां योद्धृणां प्रतिनिधिभूतं नरम् नेतां त्वाम् अनु आनुलोम्येन हुवे आह्वयामि । यं ते त्वां पूर्वम् पूर्वकाले पिता मदीयस्नातः स्वाभिमनसिद्धये हुवे आहूतवान् । तम् इन्द्रं हुवे इति पूर्वत्र संबन्धः । हे ओ लिटि “बहुलं-द्वन्द्वसि” इति संप्रसारणपरपूर्वत्वे । द्विवचनप्रकरणे “द्वन्द्वसि षेति षक्त्यम्” इति द्विवचनाभावः । यद्वृत्तचयोगाद् अनिघातः । प्रत्ययस्वरः । पूर्वस्य तु पादादित्वाद् अनिघातः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव । पुरातन स्वर्ग नामक स्थानके अधिपति और बहुतसे योद्धाओंके प्रतिनिधिरूप आपका मैं आह्वान करता हूँ । पूर्वकालमें मेरे पिताने अभिमनसिद्धिके लिये आपका आह्वान किया था, ऐसे आपको ही मैं बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

युञ्जन्ति ब्रह्ममरुपं चरन्तं परितस्थुषः ।

रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥

युञ्जन्ति । ब्रह्मम् । अरुपम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ।

रोचन्ते । रोचना । दिवि ॥ ४ ॥

ब्रह्मम् महान्तम् । महन्तापैतत् । अरुपम् आरोचमानं तस्थुषः स्थावरान् परि । एतज्जहमानाम् अपि एतल्लक्षणम् । स्थावरज-

मानाम् उपरि चरन्तम् स्वर्गाविस्थान् । सूर्यात्मना वा परिचरन्तम्
 एवं महानुभावम् इन्द्रं युञ्जन्ति रथे योजयन्ति । अत्र सामर्थ्यात्
 हरिनामकान् अश्वान् इति गम्यते । रोचना रोचनानि रथयुक्ता-
 नाम् अश्वानां रथस्य च रश्मयो दिवि । रोचन्ते दीप्यन्ते ॥ अयं
 मन्त्रः उत्तरमन्त्रे “युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी” इति हर्षो रथयोज-
 नाभिधानात् तदनुसारेण केवलेन्द्रपरतया व्याख्यातः । तदनन्तर-
 मन्त्रे “केतुं कृण्वन्तकेतवे” इति केतूपाधिकस्य इन्द्रस्याभिधानात्
 तदनुसारेण सूर्यात्मकेन्द्रपरतयापि व्याख्येयः । ब्रध्नशब्दः
 सूर्यपरायः । बध्नाति नियमयति सर्वं जगद् इति ब्रध्नः सूर्यः ।
 ते रथे युञ्जन्ति हरितोऽश्वः । अरुपं चरन्तं परितस्थुप इत्येतत्
 समानम् । तस्य रोचना रोचनानि रश्मिजालानि दिवि रोचन्त
 इति ॥ अयं मन्त्रो ब्राह्मणे

। आग्रवा अरुपः ।

वायुर्वा चरन् । वायु-

मवास्मै युनाक्त । पारितस्थुप इत्याह । इमं वै लोकाः परितस्थुपः ।

इमान् एवास्मै लोकान् युनक्ति । रोचन्ते रोचना दिवीत्याह ।

नक्षत्राणि यै रोचना दिवि । नक्षत्राण्येवास्मै रोचयति” इति

[तै० ब्रा० ३. ६. ४. २] ॥

महान्, दमकते हुप और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विच-

रण करते हुप इन्द्रके रथमें हरिनामक अश्व जुतते हैं और वह

दमकते हुप अश्व, द्यलोकमें दमकते हैं । [तैत्तिरीयब्राह्मण-३-

६ । ४ । २ में इस मंत्रकी आदित्य अग्नि वायु और लोकपरक

व्याख्या भी की है] ॥ ४ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।

शोणा धृष्ण नृवाहसा ॥ ५७ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विस्पत्तसा । रथे ।

शोणा धृष्ण इति । नृवाहसा ॥ ५७ ॥

अस्य उक्तलक्षणस्य रथे हरी एतन्नामानावश्वौ युञ्जन्ति

रथे योजयन्ति सारथयः । कीदृशौ । काम्या काम्यो कामुपितृव्यौ

विपत्तसम्बन्धिषे पत्तसी स्त्रीये रथसंबन्धिनी वा ययोस्ती तादृशौ ।

रथोभयपार्श्वस्थितानित्यर्थः । शोणा रक्तवर्णौ धृष्ण धर्षकौ नृवा-

हसा नृणां सारथिमधृतीनां बोधारी ॥ ५७ ॥

इन ईदृशे रथे सारथी हरी नाम वाले अश्वोंको जोतते

हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करबटोंमें रहते

हैं, रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्योंकी

सवारी देने वाले हैं ॥ ५७ ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशा मर्या अपेशसे ।

समुपक्षिर्जायथाः ॥ ५८ ॥

केतुम् कृण्वन् अकेतवे पेशा मर्या अपेशसे ।

समुपक्षिर्जायथाः ॥ ५८ ॥

तेति शेषः । अकेतवे प्रज्ञानरहिताय जनाय केतुम् महान् कृण्वन्

कुर्वन् तथा अपेशसे अन्यकारावृत्तत्वेन रूपरहिताय पदार्थाय पेशः

रूपं कृण्वन् उपक्षिः ओपकै रश्मिभिः लोभिर्वा सह सम् अजा-

(१७०) अथर्ववेदसंहिता सभाष्ये भाषानुवादसरितः ८८५

यथाः । ॐ व्यत्ययेन मध्यमः ॥ १ ॥ समन्तायतः संभूताः ॥ १ ॥ एवं
सूर्यात्मना संभूतम् हे मर्गाः पश्यतेत्यर्थः ॥

इति तृतीयेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥ १ ॥

हे मरणधर्मी मनुष्याः । मन्वातरहितपुरुषको ज्ञान देने वाले
और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप
प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी
किरणोंके साथ मरत हुए हैं ॥ ६ ॥

तृतीये अनुवाकमे नवमं सूक्तं समाप्तं ॥ १ ॥

“यदिन्द्राहम्” इति सूक्तस्य अतिरात्रे तृतीये पर्याये ब्राह्मण-
च्छंसिनः शस्त्रे विनियोगोक्तः ॥

“यदिन्द्राहम्” सूक्तका अतिरात्रके तृतीयपर्यायमें ब्राह्मण-
च्छंसिके शस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र मयमा ॥

यदिन्द्राह यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ॥

स्तोता मे गोपत्वा स्यात् ॥ १ ॥

यत् । इन्द्र । अहम् । यथा । त्वम् । ईशीय । वस्वः । एकः । इत् ।

स्तोता । मे । गोपत्वा । स्यात् ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त यथा त्वम् एक इत् दिवानां मध्य एक

एव वस्वः वासुकृत्पुत्रस्य ईशिपे तथा सत् यदि अहमपि एक

एव वस्वः वसुनो पुत्रस्य ईशीय ईश्वरः स्याम् तर्हि यथा त्वं

स्तोता गोपत्वा स्यात् एवं मे मम स्तोतापि गोपत्वा स्यात् ।

पक्षीनां गवां वृत्तामी भवेत् । त्वत्तत्त्वम् एतत् । सर्वैश्वर्ययुक्तो
भवतीत्यर्थः । तस्मात् त्वं स्तोतारं मां हवत्सहो कुर्वित्यभिप्रायः ।
ॐ गोपत्वेत्यत्रः सुपामादित्वात् परस्मै । दासीमारोदित्वात् पूर्व-
पदमकृतिस्वरेण आनुदात्तः ॥ १ ॥

हे परमेश्वर्यसम्पन्न इन्द्र । जैसे आप देवताओं में धन के अनु-
पम स्वामी हैं, इसी प्रकार मैं भी धन का एक ही ईश्वर रहूँ ।
जैसे आपका स्तोत्र गौओं का सखा होता है । इसी प्रकार मेरा
स्तोत्र गौ आदि सब वस्तुओं का स्वामी होवे । तात्पर्य यह है-
कि-मुक्त स्तोत्रा को भी आप अपनी समान कर लीजिये ॥१॥

शिक्षेयम् अस्मै दिक्षेयम् शचीपते मनीषिणे ।

यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

शिक्षेयम् । अस्मै । दिक्षेयम् । शचीपते । मनीषिणे ।

यत् । अहम् । गोपतिः । स्याम् ॥ २ ॥

हे शचीपते इन्द्र । अस्मै मनीषिणे मनस ईशिवे स्तोत्रे दिक्षे-
यम् दानानि दातुम् इच्छेयम् । छिदा दाने । सन् । “सनि
मीमा०” इत्यादिनाऽसम्भावः । “अत्र लोपोभ्यासस्य” इति
अभ्यासलोपः । वाक्यभेदाद् अनिघातः “सस्यार्धधातुके” इति
संस्कारस्वत्वम् । “स्वरि च” इति त्वत्वम् । तथा शिक्षेयमपि
प्रार्थितं धनं दयां च । शिस्ततिर्दीनकर्म । कर्तव्यं स्याम्
इति तत्राह । यत् यदा अहं तव स्तोत्रोत्सदनुग्रहाद् गोपतिः स्यां
तदा दिक्षेयं शिक्षेयं च । तस्मान्मां तादृक्सामर्थ्यं कुरित्ति भावः ॥

हे शचीपते इन्द्र । मैं स्तोत्रा जब आपके अनुग्रहसे गोपति हो
जाऊँ तब इस विद्वान् स्तोत्रा को धन देना चाहूँ और प्रार्थित
धन दे भी सकूँ । तात्पर्य यह है कि इस लिये आप मुझमें ऐसी
शक्ति दीजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥ गोपतिः । यजमानाय सुन्वते ।

गोमश्वं पिप्युषीं दुहे ॥ ३ ॥
 घेनुः । ते । इन्द्र । सुवता । यजमानाय । सुन्वते ।
 गोमश्वं । पिप्युषीं । दुहे ॥ ३ ॥
 '॥ हे इन्द्रं सुवतां । वाहनामैतत् । अस्मदीयां मियं सत्यां । त्मिक्वा वाक् ।
 ते तर घेनुः दोग्ध्री गीर्भत्वा गोवत् । मीणयित्री भूत्वा सुन्वते सोमा-
 भिपवं कुर्वन् यजमानाय पिप्युषी नमेव यजमानं वर्ध्यायित्री सती गोम-
 श्वं च । उरलक्षणम् एतत् । गवाश्वादिकं सर्वम् अभिलषितं
 दुगे दुग्धे । ॐ ह्यन्दसे लिटि द्विर्वचनमकरणे "इन्द्रसि" वेति
 वक्तव्यम्" इति । वचनाद् द्विर्वचनाभावः । पिप्युषी । स्फापी
 ओण्यापी वृद्धौ । अस्मात्लिटि । "प्यायः पी" । "लिङ्घद्वेष" इति
 परत्वेन द्विर्वचनात् पूर्वमेव पीभावः । पुनः प्रसङ्गविज्ञानाद्
 द्विर्वचनम् अस्यास्ये ह्यन्वः । "ववमुश्च" इति लिटि ववमुश्चा-
 देशः । "अगितश्च" इति ङीप् कृते "विसोः" सम्प्रसारणम् । इति
 सम्प्रसारणम् । "आदेशमत्यययोः" इति परत्वम् । मित्ययस्वरस्य
 मयोदात्तः ॥ ३ ॥
 '॥ हे इन्द्रदेव । हमारी सत्य और मियं बाणी आपको गोमश्व
 सुमान उत्तं करती हुई सोमाभिपवा करने वाले यजमानके लिये
 बहोतगी करनी हुई सब गो और घोड़े आदि अभिलषित पदार्थों
 को दुहनी है ॥ ३ ॥
 न । ते । वता । अस्ति । राधसः । इन्द्रः । देवाः । न । मत्यः ।
 यद् दित्संसि स्तुतो भवम् ॥ ४ ॥
 न । ते । वता । अस्ति । राधसः । इन्द्रः । देवाः । न । मत्यः ।
 यद् दित्संसि स्तुतो भवम् ॥ ४ ॥

हे इन्द्रा ते तव राशेसः धनस्य वर्ता निवारको नानोस्त्येव ।
निवारणनिषेधस्य उपयोगसिद्धये निषेधान् संभावितान् निर्दि-
शति देवो न मर्त्य इति । वर्ता देवो नास्ति । वर्ता मर्त्यो मनु-
ष्योपि नास्ति । अतः यदि स्तुतः अस्मीभिः स्तुतिमाप्तः प्रख्या-
पितगुणः सन् मेघम् मंहीयं धनं दत्तसि दातुम् इच्छसि । तर्हि
वर्ता न कोप्यस्ति ॥

हे इन्द्र ! आपके धनका, निवारक कोई नहीं है । देवता आप
के धनको नहीं हटा सकते, मनुष्य भी आपके धनको नष्ट नहीं
कर सकते, यदि आप हमसे स्तुति पाकर मशसनीय धनको देना
चाहे तो उस धनको हटाने वाला कोई नहीं होसकेगा ॥ ४ ॥

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्यद् भूमिं च्यवर्तयन्तः ।
चक्राण ओपश दिवि ॥ ५ ॥

यज्ञः । इन्द्रम् । अवर्धयत् । यत् । भूमिम् । चि । च्यवर्तयत् ।
चक्राणः । ओपशम् । दिवि ॥ ५ ॥

यज्ञः अस्माभिरनुप्रीयमानः इन्द्रं देवम् अवर्धयत् । हविषा
स्तुत्या वा अभिवृद्धम् अकरोत् । कृद्वेत्युच्यते । यत् यदा दिवि
अन्तरिक्षे मेघम् ओपशम् सर्वतः उपशयानं चक्राणः कुर्वन् भूमिं
अपवर्तयत् । वृष्टौ वृष्टयद्रकेन उच्छूनाम् अकरोत् । वृष्टिद्वारा
सस्यादिसमृद्ध्या भूमिं पुष्टाम् अकरोत् तदिति संबन्धः । ओ-
पशम् इति आङ्गपूर्वात् शीङः “अन्येष्वपि दृश्यते” इति डः ॥

जब अन्तरिक्षमें इन्द्र मेघको चारों ओर लेटने वाला और
पृथ्वीको वृष्टिजलसे फूलने वाली करते हैं अर्थात् वृष्टिके द्वारा

धान्यसमृद्धिसे भूमि को पुष्टि करते हैं, उस समय हमारा अनुष्ठित
यज्ञ इति वा स्तुतिसे इन्द्र को बढ़ाता है ॥ ५ ॥
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ॥
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

ववृधानस्य । ते । वयम् । विश्वा । धनानि । जिग्युषः ।
ऊतिम् । इन्द्र । आ । वृणीमहे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ववृधानस्य वर्धमानस्य स्तुत्या वर्धमानस्य विश्वा वि-
श्वानि धनानि शत्रुसंबन्धीनि जिग्युषः जितवतः । जि जये ।
लिट् द्विर्वचने । “सन्लिटोर्जेः” इति कृत्वम् । लिट्ः ववसुरादेशः ।
भसंज्ञायां “वसोः संपसारणम्” इति संपसारणम् । “एकानु-
बन्धकग्रहणे न अनुबन्धकस्य” इति न्यायात् । ववसोः संपसार-
णम् इति चेद् उकारोच्चारणसामर्थ्याद् यथा ववृग्रहणं सिद्धं
तथैव वसोरपि ग्रहणम् इष्यते । मध्ययस्वरेण मध्योदात्तः ।
तादृशस्य ते तव ऊतिम् रक्षां आ वृणीमहे आभिमुख्येन संभ-
जामहे ॥

हे इन्द्रदेव । स्तुतिसे बढ़ते हुए, शत्रुसम्बन्धी सकल धनो को
जीते हुए आपकी रक्षा का हम अभिमुख होकर वरण करते हैं दि-
ससमी ॥

व्यंश्नन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।

इन्द्रो यदभिन्दु वेलम् ॥ १ ॥

वि । अन्तरिक्षम् । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना ।

इन्द्रः । यत् । अभिनत् । बलम् ॥ ११ ॥

इन्द्रो देवः रोचनां रोचमानं दीप्यमानम् अन्तरिक्षं व्यतिरत् व्यर्थयत् । वृष्ट्यदकेन अभिवृद्धम् अकरोत् । कस्मिन् सहाये सतीति उच्यते । सोमस्य सोमरसस्य पानेन मदे संजाते सति । कदेत्युच्यते । यत् यदा इन्द्रो बलम् सर्वम् आवृत्य वर्तमानम् एत-
आमकम् असुरम् उक्तलक्षणं मेघं वा अभिनत् सोमपानजनितेन मदेन व्यदारयत् । तदेत्यन्वयः ॥ ॥

सोमरसके पानसे मद होने पर जब बल नामक असुरको वा मेघको विदीर्ण किया तब इन्द्रदेवने दमकते हुए अन्तरिक्षको वृष्टिके जलसे बढ़ा दिया था ॥ १ ॥

उद्गा । आजदङ्गिरोभ्यः आविष्कृतवन् गुहा सतीः । अर्वाञ्च नुनुदे बलम् ॥ १२ ॥

उत् । गाः । आजत् । अङ्गिरः । भ्यः । आविः । कृतवन् । गुहा । सतीः । अर्वाञ्चम् । नुनुदे । बलम् ॥ २ ॥

इन्द्रो देवः अङ्गिरोभ्यः तेषाम् अर्वाञ्चं गुहा गुहायां सतीः अमकाशं विद्यमानाः । "गुहेः कन्" इति कन् मत्पयः । "गुहां सुलुकं" इत्यादिना डराकारः । सतीरिति । अस्तेलटः शत्रादेशः । "अमोरलोपः" इत्यकारलोपः । "उगितश्च" इति डीपः । "वा लुक्" इति लुक् । "नयनादी" इति

स्वरः । गाः । गमयद् बहिर्देशं प्रापयत् । तदर्थं गेवाम् अपहर्तारं बलम् असुरम् अर्वाञ्चम् अवाङ्मुखं नुनुदे अपातयत् ॥

इन्द्रदेवेने अंगिरा गोत्र वाले महर्षियोंके लिये, गृहामे ऋषी
हई अत एव अमकाशित गौओंको मकाशित किया था और फिर
उनको बाहर ले आए थे और उन्होंने गौओंको अपहरण करने
वाले असुरको भी अग्नि मुख करके गिरा दिया था ॥ २ ॥

अत एव अमकाशित गौओंको मकाशित किया था और फिर
उनको बाहर ले आए थे और उन्होंने गौओंको अपहरण करने
वाले असुरको भी अग्नि मुख करके गिरा दिया था ॥ २ ॥
इन्द्रेण रोचनादिवो दृहानि दृहितानि च स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥
इन्द्रेण॥ रोचना॥ दिवः॥ दृहानि॥ दृहितानि॥ च॥ स्थिराणि॥ न॥ पराणुदे॥ ॥ ३ ॥

इन्द्रेण देवेन दिवः संबन्धीनि रोचना रोचमानानि ग्रहनक्षत्रा-
दीनि दृहानि दृहावयवानि बलवन्ति कृतानि तथा दृहितानि च
दृढीकृतानि । पूर्वतः स्थान्यम् अपरत्र बलवत्त्वम् इति विवेकः ।
अत एव स्थिराणि तानि न पराणुदे परानोदनीयानि भवन्ति ।
न केनापि मर्त्यावयितुं शक्यानीत्यर्थः ॥ परत्युपसर्गपूर्वति
णुः प्रेरणे इत्यस्मात् कृत्यार्थे केन मर्त्ययः । "उपसर्गादुः असमा-
मेति णोपदेशस्य" इति शतत्वम् । अस्य णोपदेशस्य कथम् इति
चेत् "सर्वे णादयो णोपदेशाः नृतिनन्दिनदिनविकनादिनाथ-
नाघनवनेम" इति वचनात् णोपदेशस्य सिद्धम् । मर्त्ययस्य
नित्वात् कृत्स्नपदमकृतिस्वरूपेण उत्तरपदाद्यदात्तत्वम् ॥

इन्द्रदेवेने आकाशके दमकने हुए ग्रह नक्षत्र आदिको स्थूल
किया है और दृढ किया है, अत एव स्थिर होनेके कारण उनको
कोई इष्ट नही कर सकता ॥ ३ ॥

अपामृभिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
दशमी ॥

वि ते मदां अराजिषुः ॥ ४ ॥

अपाम् । ऊर्मिः । मदन् इव । स्तोमः । इन्द्र । अजिराज्यते ।

वि । ते । मदाः । अराजिषुः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते स्तोमः त्वद्विषयं स्तोत्रम् अपाम् । अप्शब्देन तदा-
श्रयभूताः समुद्रादयो लक्ष्यन्ते । तासां मदन्निव दृष्ट्युदकेन हृष्य-
न्निव । ऊर्मि रसः । स इव अजिरायते । अजिरः क्षिप्रगामी ।
स इवाचरति । त्वरया त्वां प्रति मुखान्निर्गच्छतीत्यर्थः । यद्वा
अपामूर्धिरित्येतावदेव दृष्टान्वचनं लुप्तेवशब्दकम् मदन्निव स्तोमो-
जिरायते इति दार्ष्टान्तिकाभिधानम् । ॐ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षण-
कान्तिगतिषु । अजिरशिशिरेत्यादिना [८० १. ५३] किर-
च्यत्ययान्तो निपातितः । स इवाचरतीत्यर्थे “कर्तुं क्यङ् सलो-
पश्च” इति क्यङ् । सनादित्वाद् घातुसंज्ञायां लडादि कार्यम् ।
“अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः” इति अकारस्य दीर्घः ॐ । ते तव
मदाः सोमपानजनिता व्यराजिषुः विशेषेण राजन्ते दीप्यन्ते ॥

इति एकादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका स्तोत्र समुद्र आदिको दृष्टिजलसे दर्पसा
देता हुआ और रसकी समान क्षिप्रतासे आपके लिये मुखसे
निकलता है । आपके सोमपानजनित मद विशेषरूपसे दमकते हैं

एकादश सूक्त समाप्त (६४४)

“त्वं हि स्तोमवर्धनः” इति सूक्तस्य अनिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसि-
स्तृतीयपर्याये विनियोगोभिहितः ॥

“त्वं हि स्तोमवर्धनः” सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसीके
तृतीयपर्यायमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ॥ १ ॥

स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥

त्वम् । हि । स्तोमवर्धनः । इन्द्र । असि । उक्थवर्धनः ।

स्तोतृणाम् । उत । भद्रकृत् ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वं खलु स्तोमवर्धनः स्तोमैस्त्रिवृदादिभिर्वर्धनीयोसि
तथा उक्थवर्धनः उक्थैर्वर्धनीयश्चासि । ॐ स्तोमशब्दोपपदाद्
उक्थशब्दोपपदाच्च वर्धते: “कृत्यन्वुटो बहुलम्” इति अर्ह्ये
न्वुट् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण लिच्वाद् आद्युदात्तत्वम् ॐ । उत
अपि च त्वं स्तोतृणां भद्रकृत् भद्रस्य कन्याणस्य कर्तासि ॥

हे इन्द्रदेव ! आप त्रिवृत् आदि स्तोत्रोंसे और उक्थ आदि
स्तोत्रोंसे वर्धनीय हैं । और आप स्तोताओंका भी कन्याण करने
वाले हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रमित् केशिना हरीं सोमपेयाय वक्षतः ।

उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥

इन्द्रम् । इत् । केशिना । हरी इति । सोमपेयाय । वक्षतः ।

उप । यज्ञम् । सुराधसम् ॥ २ ॥

केशिना स्कन्धप्रदेशस्थितकेशी हरी पतन्नामानावर्षा सुरा-
धसम् शोभन्धनफलोपेतम् अस्मद्यज्ञं प्रति सोमपेयाय सोमपानाय
इन्द्रमित् इन्द्रमेव उप वक्षतः उपवहतः । यद्वा यज्ञं सुराधसम् इत्ये-
तद् द्वयम् इन्द्रविशेषणतया योज्यम् । यज्ञम् यष्टव्यं सुराधसम्

शोभनेन धनेन दातव्येन तद्वन्तम् इति तयोरर्थः । तादृशम् इन्द्रं
वक्षतः वदताम् । ॐ वह धारणे । लेट् । “सिञ्चद्दुलं लेटि” इति
सिप् । “होदः” इति ढत्वम् । “पढोः कः सि” इति कत्वम् ।
“आदेशमत्ययोः” इति षत्वम् । निघातः ॐ ॥

अयाल चाले हरी नामक अश्वशोभन धनरूपी फलसे सम्पन्न
हमारे यज्ञके प्रति सोमपानके लिये इन्द्रको अवश्य लावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिरं इन्द्रोदवर्तयः ।

विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ३ ॥

अपाम् । फेनेन । नमुचेः । शिरः । इन्द्र । उव् । अवर्तयः ।

विश्वाः । यत् । अजयः । स्पृधः ॥ ३ ॥

पुरा किलेन्द्रः असुरान् जित्वा नमुचिम् असुरं ग्रहीतुं न
शशाक । स चेन्द्रो युद्धे तेनासुरेण गृहीतो भूत् । स चासुरः इन्द्रम्
एवम् उवाच । त्वां विमृजामि । त्वं मां रात्रावहनि च कालेशुष्केण
आर्द्रेण च साधनेन मा हिंसोरिति । एवं समयं कृत्वा इन्द्रं विस-
सर्ज । स च विमृष्टः सन् अहोरात्रयोः संधौ शुष्कार्द्रविलक्षणो
अपां फेनेन नमुचेः शिरंश्चिच्छेद । अयम् अर्थः अध्वयुर्ब्राह्मणे
प्रपञ्चितः । “इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाव्य नमुचिम् आसु-
रम् नालभत” [तै० ब्रा० १. ७. १. ६] इत्यादिना । सौर्यः
अनेन मन्त्रेणाभिधीयते । हे इन्द्र त्वम् अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचेः
एतन्नामकस्यासुरस्य । ॐ न मुञ्चतीति नमुचिः । “नभ्राएन-
पात्” इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ॐ । शिरः उदवर्तयः शरी-
राद् बद्धनम् अकार्षीः । अच्छेत्सीरित्यर्थः । वदैवम् इत्युच्यते ।
यत् यदा विश्वाः सर्वाः स्पृधः स्पर्धमानां असुरसेनां अजयः

जिनवान् अस्ति । ॐ स्पर्धन्त इति स्पृघः । “अन्येभ्योपि हरयते इति किरप्” । दक्षिप्रदणान् संपसारणम् । पृषोदरादित्वाद् रेफस्य ऋकारः अकारलोपश्च । घातुस्वरेण आघृदात्तः ॐ ॥

[पहिले इन्द्रने असुरोंको जीत लिया, परन्तु नमृचि नामक असुरको न पकड़ सके, परन्तु उस असुरने ही युद्धमें इन्द्रको पकड़ लिया । वह असुर फिर इन्द्रसे इस प्रकार कहने लगा, कि-मैं आपको इस प्रतिज्ञा पर छोड़ना है, कि-आप मुझको दिनमें, रातमें, मूखे वा गीले साधनसे भी न मारें । इस प्रकार प्रतिज्ञा कराके उसने इन्द्रको छोड़ दिया । वह इन्द्रदेवने छूटकर दिन और रात्रिकी संधिमें मूखे और गीलेसे चित्तज्ञ जलके फेनसे नमृचिके शिरको काट डाला । इस वानको अध्वर्यु ब्राह्मण में कहा है, कि-“इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाष्य नमृचि आसुरम् नालमत” (तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ७ । १ । ६) वही कथा इस मन्त्रमें है, कि-] हे इन्द्रदेव ! वज्र हुए जलके फेनसे नमृचि नामक असुरके शिरको आपने शरीरसे उतार लिया था (कव) जब सकल स्पर्धा करती हुई सेनाओंको आपने जीत लिया था ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

मायाभिरुत्तिमृप्सत इन्द्र आमास्कृद्धतः ।

अव दस्यूरधूनुयाः ॥ ४ ॥

मायाभिः । उत्तिमृप्सतः । इन्द्र । आम् । आस्कृद्धतः ।

अव । दस्यून् । अधूनुयाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त्वं मायाभिः आत्मीयाभिर्वज्रनाभिः उत्तिमृप्सतः उत्तिमृगच्छन् उद्गमनेच्छन् असुरान् । ॐ मृष्यु गता । इच्छार्थे,

सन् । “सन्यङ्गोः” इति द्विर्वचनम् । उरदत्त्वम् । “सन्यता” इति
इत्त्वम् । सन्नन्ताद्वा । तस्य शत्रादेशः । कुदुत्तरपदमकृतिस्वरैण
“अभ्यस्तानाम् आदिः” इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । तान् उत्ति-
सृष्ट्वान् धाम् आरुरुक्षतः आरुरुक्षंश्च दस्युन् हे इन्द्र त्वम् अवाधू-
न्रथाः अवाधूमुखम् अपातयः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी मायाओंसे उद्दमन करना चाहने
वाले और धूलों पर चढ़ना चाहने वाले असुरोंको आँधा मुख
करके नीचेको गिरादेते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

असुन्वामिन्द्र संसदं विष्वीं व्यनाशयः ।

सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

असुन्वाम् । इन्द्र । सम्सदम् । विष्वीम् । वि । अनाशयः ।

सोमपाः । उत्तरः । भवन् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र सोमपाः सोमस्य पाता त्वम् उत्तरो भवन् सोमपानज-
नितवलेन उत्तरः उत्कृष्टतरो भवन् असुन्वाम् सोमाभिपवहीनां
संसदम् अयष्टसभां विष्वीम् विष्वगञ्चनां कृत्वा व्यनाशयः विशे-
षेण नष्टाम् अकरोः । ॐ असुन्वाम् इति । पुञ् अभिपवे । लटः
शानच् । स्वादिभ्यः श्नुः । ततष्ठाप् । अमि कृते नकारलोपश्चा-
न्दसः । नञ्समासे बहुव्रीही “नञ्सुभ्याम्” इति उत्तरपदान्तो-
दात्तत्वम् । अथ वा अस्मादेव घातोः सुवः कित् [उ० ३. ३५]
इति नुमत्ययः कित्वावश्च । न विद्यते सुनुः अभिपवो यस्याः
सेति असुनुः । “सुपां सुपो भवन्ति” इति अमो छिरादेशः ।
“ङिति ह्रस्वश्च” इति विकल्पेन नदीसंज्ञायां छेरामादेशः ।
आडागमादि । पूर्वोक्त एव स्वरः ॐ ॥

इति तृतीयेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमपानसे बली होकर सोमाभिषेकसे हीन
अंयग्री सभाको चारों ओर बखेर कर विशेषरूपसे नष्ट कर डालते हैं
नृनीय अनुयायकमें एकादश सूक्त समाप्त (६४५)

“प्र ते महे विदधे” इति मृक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसि-
स्तृतीयपर्यायशस्त्रे विनियोगोपहितः । अस्यान्तिमा “अपाः
पूर्वपाम्” [१३] इत्येषा ऋक् परिधानीया ॥

“प्र ते महे विदधे” मृक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसीके तृतीय-
पर्यायशस्त्रमें विनियोग कहा है । इसकी अन्तकी “अपाः पूर्व-
पाम्” यह तेरहवीं ऋचा परिधानीया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

प्र ते महे विदधे शंसिपं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं
मदम् ।

घृतं न यो हरिभिश्चारुसेचत आत्वा विशन्तु हरि-
वर्षसं गिरः ॥ १ ॥

प्र । ते । महे । विदधे । शंसिपम् । हरी इति । प्र । ते । वन्वे ।
वनुषः । हर्यतम् । मदम् ।

घृतम् । न । यः । हरिभिः । चारु । सेचते । आ । त्वा ।
विशन्तु । हरिष्वर्षसम् । गिरः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! महे महति विदधे । विद्यते कर्तव्यनया ज्ञायत इति
विदधो यज्ञः । नस्मिन् ते नव हरी एतन्नामानावर्षा तव शीघ्रा-
गमनाय प्र शंसिपम् प्रास्ताविपम् । ॐ शंसु स्तुता । लुहि-“च्छे-
मिच्” । अदभावरद्वान्दसः ॐ । तथा वनुषः शत्रुहंसकस्य याच्य-

मानस्य वा ते तव हर्यतम् कम्पनीयं मदम् सोमपानजनितं न वन्वे
प्रदाचे । अस्मदभिमतम् इति शेषः । ॐ वन्दु याचने । तनादि-
त्वाद् उभयपक्षः ॐ । य इन्द्रो घृतं न घृतं यथा अग्नौ होमार्थं
सिञ्चन्ति एवं हरिभिः हरितवर्णैररवैः सदागम्य चारु रमणीयं धनं
सेवने वर्पयति । तं तादृशं हरिवर्षम् । वर्ष इति रूपनाम । हरित-
वर्षं त्वा त्वां गिरः अस्मदीयाः स्तुतिवाचः आ विशन्तु मविशन्तु
तव बुद्धौ संगता भवन्तु ॥

हे इन्द्र ! विशाल यज्ञमें आपके हरि नामक अरवोंकी मैश्रात्र
आगमनके लिये प्रशंसा करता हूँ । तथा रात्रादिसक आपके कम्-
पनीय सोमपानमदजनित मदमें अपने अमितपित फलकी याचना
करता हूँ, जो इन्द्रदेव, जैसे घृतको अग्निमें होमके लिये सींचने हैं
तिस प्रकार, हरित वर्ण वाले अरवोंके साथ आकर रमणीय धन
की वर्षा करते हैं उन हरितवर्ण वाले आपको हमारी स्तुति
मात्र होवे ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं
यथा सदः ।

आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शृणं हरिन्त-
मर्चत ॥ २ ॥

हरिम् । हि । योनिम् । अभि । ये । सम् । अस्वरन् । हिन्वन्तः ।

हरी इति । दिव्यम् । यथा । सदः ।

आ । यम् । पृणन्ति । हरिभिः । न । धेनवः । इन्द्राय । शृणम् ।

हरिञ्चन्तम् । अर्चतः ॥ २ ॥

ये पूर्वमहर्षयो हरिम् हरणशीलं हरिवर्षसम् इत्युक्तत्वात् हरित-
वर्णं वा योनिम् सर्वेषां मूलकारणम् इन्द्रं समस्वरन् हि समस्तु-
वन् खलु । ॐ स्रु शब्दोपतापयोः । “हि च” इति निघातप्रति-
पेधः ॐ । किं कुर्वन्तः । दिव्यम् देवसंघन्धि सदः सीदन्त्यत्र
देवा इति सदो यागगृहम् । तद् यथा येन प्रकारेण इन्द्रो गच्छति
तथा हरी एतन्नामानावरवौ हिन्वन्तः मेरयन्तः रथे योजयन्तः । यं
च इन्द्रं न धेनवः । अत्र पुरस्तादुपाचारोपि नशब्द उपमायाः ।
धेनवो नवममूतिका गावो यया स्वस्वामिनं क्षीरादिभिः पूणन्ति
पूरयन्ति एवं हरिभिः हरितवर्णैः सोमरसे आ पूणन्ति पूरयन्ति
यजमानास्तस्मै इन्द्राय । ॐ द्वितीयार्थे चतुर्थो ॐ । तम् इन्द्रं
शुभम् शत्रुशोषणसाधनबलोपेतं हरिवन्तम् हरिभिस्तद्वन्तम् अर्चते
पूजयत । हे अश्विज इति शेषः । यद्वा इन्द्राय इन्द्रस्य हरिवन्तं
शुभम् शीणनसाधनं बलम् अर्चतेति व्याख्येयम् । ॐ शुभिः शीण-
नार्थ इति माधवः ॐ ॥

दिव्य यज्ञगृहमें बैठे हुए प्राचीन महर्षियोंने इन्द्र जिस प्रकार
शीघ्रतासे यागागृहमें आये, इस लिये हरि नामक अरवोंको रथ
में जुतनेके लिये मेरित किया और हरितवर्ण वाले सधके मूल-
कारण इन्द्रकी स्तुति की थी । जिस प्रकार नवीन व्याई हुई
गाँवें क्षीर आदिसे अपने स्वामीको पूर्ण करती हैं इसी प्रकार
हरितवर्णके सोमोंमें यजमान इन्द्रदेवको पूर्ण करते हैं ऐसे शत्रुओं
को मूलाने वाले बलसे संपन्न हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्रदेवकी
हे अश्विजों ! तुम पूजा करो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

सो अस्व वज्रो हरितो यथायसो हग्निकांमो हरिसा-
गमस्त्योः ।

धुम्नी सुशिश्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे निरूपा हरिता
मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

सः । अस्य । वज्रः । हरितः । यः । आयसः । हरिः । निष्कामः ।

हरिः । आ । गभस्त्योः ।

धुम्नी । सुशिश्रः । हरिमन्युसायकः । इन्द्रे । नि । रूपा ।

हरिता । मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

य आयसः अयोविकारो लोहमयो यो वज्रोस्ति अस्य इन्द्रस्य
स वज्रः हरितः हरितवर्णः । लोहमयत्वादेव । स निष्कामः नितरां
कमनीयः । इन्द्रोऽपि हरिः हरितवर्णः । स हरिः उक्तरूप इन्द्रः
गभस्त्योः । गभस्तिर्हस्तः । हस्तयोस्तं हरितं वज्रम् । आ दत्त
इति शेषः । धारयतीत्यर्थः । किं च इन्द्रः धुम्नी धुम्नवान् अन्न-
वान् धनवान् वा । सुशिश्रः । ॐ शिश्रे हनू नासिके वेति निरु-
क्तम् [नि० ६. १७] ॐ । शोभनहनुः शोभननासिको वा ।
स इन्द्रः हरिमन्युसायकः हरणशीलमन्युलक्षणसायकोपेतः हरित-
वर्णमननीयवाणोपेतो वा । हरयो मन्यवः सायकाश्च यस्येति वा
व्याख्येयम् । किं बहुना । यानियानि रूपा रूपाणि निरूपणी-
यानि आभरणादीनि सन्ति तानि सर्वाण्यपि हरिता हरितानि
हरितवर्णान्येव नि मिमिक्षिरे नियोजयितुम् इष्टानि बभूवुः । ॐ
मिहेः सन्नन्तात् कर्मणि लिटि रूपम् ॥

जो इन इन्द्रदेवका लोहेका वज्र है वह भी हरितवर्णका है
और यह परम कमनीय इन्द्रदेव भी हरितवर्ण है। ऐसे हरि इन्द्र
अपने हाथोंमें हरित वज्रको आरण करते हैं। और यह धनवान्
इन्द्र सुन्दर ठोड़ी वाले हैं और इनके पास हरित वर्णका मान-

नीय बाण रहना है अधिक यथा इनके जो कुछ भी आभरण
आदिक हैं वे सब ही हरित वर्णके ही इष्ट दृष्ट हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

दिवि न केतुरधि धायि ह्यतो विव्यचद्र वज्रो हरितो
न रंशा ।

तुददहि हरिशिषो य आयसः सहस्रशोका अभवद्ध-
रिभरः ॥ ४ ॥

दिवि । न । केतुः । अधि । धायि । ह्यतो । विव्यचत् । वज्रः ।
हरितः । न । रंशा ।

तुदत् । अहिम् । हरिश्शिषः । यः । आयसः । सहस्रशोकाः ।
अभवत् । हरिम्भरः ॥ ४ ॥

वज्रः इन्द्रसंबन्धी दिवि अन्तरिक्षे केतुर्न केतुरिव महापक
आदित्य इव वा ह्यतो कान्तः सन् अधि धायि अध्यधायि निहित
आसीत् । ॐ दधातेः कर्मणि तुद् । चिणि युगागमा । अहमा-
वदद्धान्सः ॐ । किं च स वज्रः हरितो न हरितवर्णो आदि-
त्यारवा इव ते यथा रंशा रंशणीयानि मति । अथ वा रंशा वेगेन
व्याप्नुवन्ति तद्द्र विव्यचत् विशेषेण व्यप्नोति सर्वम् । यद्वा नेति
कार्ये । रंशाणि स्थानानि मति हरितः हरितवर्णो वज्रः विव्यचत्
व्याप्नोति च । अपि च य आयसो हरितवर्णो वज्रोस्ति तेन वज्रेण
हरिशिषः सोमशानेन हरितवर्णशिष इन्द्रः अहिम् दृष्टं तुदत् अतु-
दत् व्यथितम् अकरोत् । किं च हरिभरः द्यौरश्चोर्भर्ता । ॐ हरि-
शंभोपापदाद् भूयः “संज्ञायां भृतृवृत्तिः” इत्यादिना खच् । दृष्टं
आगमः ॐ । इन्द्रः तेन वज्रेण साधनेन सहस्रशोकाः सहस्र-

शोकः सहस्रसंख्याकानां शत्रूणां शोचयिता अभवत् । यद्वा अप-
रिमितदीप्तिरभवत् ॥

इन्द्रदेवका वज्र अन्तरक्षिमें मद्गापक आदित्यकी समान स्थित
है, और वज्र जैसे सूर्यके घोड़े बेगसे गन्तव्योंको प्राप्त होते हैं,
तिस मकार व्याप्त होजाते हैं । और जो हरितवर्णका वज्र है उस
वज्रके द्वारा सोमपानसे हरितवर्ण वाले हुए इन्द्रने वृत्रासुरको
व्याधित किया था । और हरि नामक अश्वोंका भरण करनेवाले
इन्द्र उस वज्ररूपी साधनसे सहस्रों, शत्रुओंको शोक पहुँचाने
वाले हुए हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

त्वंत्वंमहर्षथा उपस्तुतः पूर्वभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यं मसामि राधो हरिजात
हर्षतम् ॥ ५ ॥

त्वम्स्तुतम् । अहर्षथाः । उपस्तुतः । पूर्वभिः । इन्द्र । हरिःकेश ।
यज्वभिः ।

त्वम् । हर्यसि । तव । विश्वम् । उक्थ्यम् । असामि । राधः ।
हरिःजात । हर्षतम् ॥ ५ ॥

हे हरिकेश हरिद्वर्णकेशोपेत उक्तवर्णकेशोपेतैरश्वैरुपेत वा हे
इन्द्र त्वंत्वम् न्वमेव यत्रयत्र सोमादि इविरस्ति तत्र सर्वत्र त्वमेव ।
☉ "नित्यवीप्सयोः" इति कृदन्तत्वाद् वीप्सायां द्विर्वचनम् ।
आग्नेहितस्य अनुदात्तत्वाद् आद्युदात्तः ☉ । पूर्वभिः पूर्वमनैः
यज्वभिः यजमानैः उपस्तुतः सन् अहर्षथाः अकामयथाः । साम-

धर्मान् सोमादिकम् इति गम्यते । तथा इदानीमपित्वम् त्वमेव हर्यसि
कामयसे हवींषि । अनः हे हरिजात हरिभ्याम् अरवाम्या सह
यत्रे मादुर्मूत हरितवर्णत्वेन मादुर्मूत वा विरवम् सर्व सोमादिकम्
वक्ष्यम् प्रशस्यम् अस्मि अनन्तं हर्यतम् कमनीयं राघः अन्नम्
सोमादिरूपं तव नवैव ॥

हे हरे वर्ण वाले केजोंसे सम्पन्न इन्द्र ! जहाँ २ सोम आदि
हवि होती हैं तहाँ सर्वत्र आप ही हैं । आप माचीन यजमानोंसे
स्तुति पाकर सोम आदि हविकी कामना किया करते हैं । तथा
इम समय भी आप ही हवि आदिकी कामना कर रहे हैं । अतः
एव हे हरि नामक अरवोंके साथ यज्ञस्थलमें मादुर्मूत होने वाले
इन्द्र ! सब सोम आदि, प्रशसनीय वक्ष्य और कमनीय अन्न
आपका ही है ॥ ४ ॥

पृष्ठी ॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता
हरीं ।

पुरुषं सैः सवनानि हर्यते इन्द्राय सोमा हरयो दध-
न्विरे ॥ १ ॥

ता । वज्रिणम् । मन्दिनम् । स्तोम्यम् । मदे । इन्द्रम् । रथे ।
वहनः । हर्यता । हरी इति ।

पुरुषि । अस्मै । सवनानि । हर्यते । इन्द्राय । सोमा । हरयोः ।
दधन्विरे ॥ १ ॥

हर्यता हर्यता गन्तारी कमनीया वा ता नो मसिद्धा हरी एत-
न्नामकावर्त्ता वज्रिणम् वज्रोपेतं मन्दिनम् मोक्षमानं हृष्यमाणं

स्तोम्यम् स्तोमार्हं स्तुत्यम् एवं महानुभावम् इन्द्रं मदे सोमपान-
जनिताय मदाय रथे वहतः धारयतः अस्मदीयं यज्ञं प्रापयतः ।
इर्यते कान्ताय अस्मै इन्द्राय पुरुणि बहूनि त्रीण्यपि सवनानि
प्रातरादीनि हरयः हरितवर्णाः सोमा दधन्विरे अधारयन् धारयन्ति
कमनीय हरी नामक घोड़े, प्रसन्न होते हुए स्तुतिके पात्र
वज्रधारी इन्द्रको सोमपानसे होने वाले मदके लिये हमारे यज्ञमें
लारहे हैं । इन कमनीय इन्द्रदेवके लिये प्रातःसवन आदि तीनों
सवनोको हरित वर्ण वाले सोम धारण करते हैं ॥ १ ॥

सप्तमी ॥

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो
हरी तुरा ।

अर्वद्विष्यो हरिभिर्जोषभीयते सो अम्य कामं हरि-
वन्तमानशे ॥ २ ॥

अरम् । कामाय । हरयः । दधन्विरे । स्थिराय । हिन्वन् । हरयः ।
हरी इति । तुरा ।

अर्वत्सभिः । यः । हरिऽभिः । जोषम् । ईर्यते । सः । अस्य ।

कामम् । हरिऽवन्तम् । आनशे ॥ २ ॥

कामाय कमनीयाय स्थिराय संग्रामे अविचलिताय इन्द्राय
अरम् अलम् अत्यर्थं हरयः हरितवर्णाः सोमा दधन्विरे सवनानि
धारयन्ति । त एव हरयः हरितवर्णाः सोमाः तुरा तुरी त्वरमाणौ
हरी अरवौ हिन्वन् अहिन्वन् प्रेरयन्ति यज्ञं प्रति प्रेरयन्ति । यः
य इन्द्रः अर्वद्विः अरणवद्विर्वेगवद्विः हरिभिः अरवैः वाजम् यज्ञम्

ईयते गच्छति स इन्द्रः अस्य यज्ञस्य कामम् कामयितव्यं हरिवन्तम् सोमवन्तं यजमानम् आनशे व्याप्नोति । यद्वा यो रथः अर्वाङ्गि-
हरिभिः वाजम् ईयते स रथः अस्येन्द्रस्य स्वभूतं कामं हरिवन्तम् आनशे इन्द्रं धारयित्वा प्राप्नोति ॥

इन संग्राममें अविचल रहने वाले कमनीय इन्द्रदेवके लिये हरितवर्ण सोम सवर्णोंको धारण करते हैं । और वे ही हरितवर्ण वाले सोम त्वरा करने वाले हरि नामक अश्वोंको यज्ञकी ओर प्रेरणा करते हैं । जो इन्द्रदेव वेगवान् घोड़ोंके द्वारा यज्ञमें आते हैं । वह इन्द्र इस यज्ञके कमनीय सोमवान् यजमानको प्राप्त होते हैं २
अष्टमी ॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत
अर्वाङ्गियो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता
पारिपद्धरी ॥ ३ ॥

हरिऽश्मशारुः । हरिऽकेशः । आयसः । तुरऽपेये । यः । हरिऽपाः ।
अवर्धत ।

अर्वाङ्गिभिः । यः । हरिऽभिः । वाजिनीवसुः । अति । विश्वा ।
दुःइता । पारिपत् । हरी इति ॥ ३ ॥

हरिश्मशारुः हरितवर्णश्मश्रुक्तः हरिकेशः हरितवर्णकेशोपेतः
आयसः अयोधिकारभुनः । अयःसारवत्कठिनहृदय इत्यर्थः । क
एवमात्मक इति तम् आह । यः यः मसिद्ध इन्द्रः तुरस्पेये तूर्ण
पातक्ये सोमे निष्पन्ने सति हरिपाः हरिद्वर्णस्य सोमस्य पाता
सन् अवर्धन वर्धते । यश्च वाजिनीवसुः वाजः अन्नं हविर्लक्षणं
सोऽस्यां क्रियायां विद्यते सा वाजिनी । सैव वसु धनं यस्य

तयोक्तः । अथ वा वाजिनमेव वाजिनी सैव वसु धनं यस्य स
 नादश इन्द्रः अर्बुद्विः अरणकुशलैः शीघ्रगामिभिः हरिभिः अश्वैः
 सोमपानाय आगच्छति तैर्वाजिनीवसुर्भवतीति वा योज्यम् । स
 तादश इन्द्रः हरी अश्वौ रथे योजगित्वा आगत्य अस्माकं विश्वा
 विश्वानि सर्वाणि दुरिता दुरितानि पारिपन् पारयतु । नाशय-
 त्वित्यर्थः । अस्मान् दुरितानि विश्वानि पारिपन् पारयतु तारय-
 त्विति वा योज्यम् । ॐ पू पूरणे । चुरादिः । अत्र हिंसा-
 कर्मा । यपन्नान् पञ्चमलकारः । “सिन्वहुलं लेटि” इति सिप् ।
 निघातः ॐ ।

हरित वर्णकी डाढ़ी मूँछ वाले, हरितवर्णके केशों वाले,
 लोहेकी समान कड़े हृदय वाले जो इन्द्रदेव हैं वह शीघ्रतासे पीने
 योग्य सोमके निष्यन्न (तयार) होने पर सोमको पीते हुए बढ़ते
 हैं । हवि-रूपा क्रिया ही जिनका धन है वह इन्द्र शीघ्रगामी
 अश्वोंके द्वारा सोमपान करनेके लिये आते हैं । वह इन्द्र हरि
 नामक अश्वोंको रथमें जोत आकर हमारे सब पापोंको नष्ट कर
 डालें ॥ ३ ॥

नवमी ॥

सुवेवं यस्य हरिणी विपेनतुः शिमे वाजाय हरिणी
 दविध्वतः ।

प्रं यत् कुते चंभसे मर्मजुद्धरीं पीत्वा मदस्य हर्यत-
 स्यान्धंसः ॥ ४ ॥

सुवाग्मन् । यस्य । हरिणी इति । विपेनतुः । शिमे इति । वाजाय ।
 हरिणी इति । दविध्वतः ।

(१६२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसरित

म । यन् । कुने । चमसे । मर्मृजत् । हरी इति । पीत्वा । मदस्य ।
हर्यनस्य । अन्धसः ॥ ४ ॥

यस्य इन्द्रस्य हरिणी हरितवर्णे शिमे हन् सूवेच सूवाचिव ते
यथा यज्ञे संचरतः एवं सोमपानाय विपेततुः विपततः । चलत
इत्यर्थः । यस्य च वाजाय अन्नाय सोमलक्षणाय तत्पानाय हरिणी
हरितवर्णे शिमे दविध्वतः कम्पयतः पुरतः स्थितस्य पानाय
चलतः । ॐ “दाघति०” इत्यादिना निपातितोपम् । यद्वद्वृत्तपो-
गाद् अनिघातः । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ।
तथा यत् यदा चमसे पात्रे कुने संस्कृते सोमेन पूर्णं सति मदस्य
मदकरस्य हर्यनस्य कपनीयस्य अन्धमः सोमलक्षणस्यान्नस्य अंशं
पीत्वा हरी म मर्मृजत् हरितवर्णावश्वो ममाष्टि । स इन्द्रस्तदानीं
स्तुतः इत्यर्थः । अथ वा । ॐ कर्मणि षष्ठ्यन्ता एते ॐ । मदं
हर्यनम् अन्धः पीत्वा शिमे दविध्वत इति योज्यम् ॥

जिन इन्द्रदेवकी हरितवर्णकी ठोड़ी. सूवे जैसे यज्ञमें चलते हैं,
निम प्रकार सोमपानके लिये चलती हैं । तथा जब चमसपात्रके
सोममे पूर्ण होने पर, कपनीय मदकर सोमरूपी अन्नके अंशको
पीकर इन्द्र हरित वर्ण वाले अश्वोंका ममार्जन करते हैं तब उन
की ठोड़ी फड़कती है ॥ ४ ॥

दशमी ॥

उत स्म सदा हर्यतस्य पस्त्योऽस्त्यो न वाजं हरिवां
अचिकदत् ।

मद्दी चिद्धि धिपणाहर्यदोजंसा बृहद् वयो दधिपे
हर्यतश्चिदा ॥ ५ ॥

उत स्म । सद्य । हर्यतस्य । पस्त्योः । अत्यः । न । वाजम् ।

हरिऽवान् । अचिक्रदत् ।

मही । चित् । हि । धिषणा । अहर्यत् । ओजसा । बृहत् । वयः ।

दधिपे । हर्षतः । चित् । आ ॥ ५ ॥

उत स्म । स्मेति पूरणः । अपि च हर्यतस्य गन्तव्यस्य कमनीयस्य वा इन्द्रस्य सद्य सदनं पस्त्योः द्यावापृथिव्योः संबन्धि भवति । स इन्द्रः अत्यो न वाजम् । अत्य इति अरवनाम । अरवः संग्राममिव हरिवान् हरिभिषु क्तः सन् अचिक्रदत् यज्ञगृहं प्रति गच्छति । ॐ कदि कदि वैक्रव्ये । अत्र गत्यर्थः । छान्दसो लुङ् । श्लेशादि णिलोपः । सन्वद्वावाडु इत्त्वम् । निघातः ॐ । किं च मही चित् महती धिषणा अस्मदीया स्तुतिरपि ओजसा बलेन युक्तम् इन्द्रम् अहर्यत् कामपते । अतः हे इन्द्र हर्यतश्चित् कामयमानस्य यजमानस्यापि तदर्थम् आ आगत्य बृहत् महत् प्रभूतं वयः अन्नं दधिपे धारयसि प्रयच्छसि ॥

इन कमनीय इन्द्रका भवन द्यावापृथिवीमें रहता है, जैसे घोड़ा संग्राममें जाता है, तैमे यह इन्द्र हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न होकर यज्ञगृहकी ओर जाते हैं । और हमारी स्तुति भी बलसे सम्पन्न इन्द्रदेवकी कामना करती है । और हे इन्द्र ! आप भी कामना करते हुए यजमानके लिये आकर उसको विशाल परिमाणमें अन्न प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

एकादशी ॥

आ रोदंसी हर्षमाणो महित्वा नव्यं नव्यं हर्षसि
मन्म नु प्रियम् ।

प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय १

आ । रोदसी इति । हर्यमाणः । महिऽत्वा । नव्यमनव्यम् ।

हर्यसि । मन्म । नु । मियम् ।

प्र । पस्त्यम् । असुर । हर्यतम् । गोः । आविः । कृधि ।

हरये । सूर्याय ॥ १ ॥

हे इन्द्र हर्यमाणः कामयमानस्त्वं महित्वा महस्वेन रोदसी ।
 सकारान्तपक्षे द्विवचनान्तम् एतत् । ईकारान्तपक्षे रोदसी रोद-
 स्यावित्यर्थः । “वा छन्दसि” इति पूर्वसवर्णदीर्घः । आवा-
 पृथिवी आ । उासर्गश्रुनेर्योग्यक्रियाभ्याहारः । पूरयसि ।
 तथा हे इन्द्र नव्यमनव्यम् नवतरनवतरम् असकृच्छतेपि सर्वदा
 नूतनम् अत एव मियम् हृदयंगमं मन्म मननीयं स्तोत्रं नु क्षिप्रं
 हर्यसि कामयसे । हे असुर असवः प्राणास्तद्वन् प्रकृष्टबलवन्निन्द्र
 हर्यतम् स्पृहणीयं गोः । जातावेकवचनम् । गवाम् आवा-
 सभूतं पस्त्यम् । गृहनामैतत् । गृहं पणिभिरपहतानां गवां निवा-
 सस्थानं हरये हरणशीलाय हरिद्वर्णाय वा सूर्याय तदर्थं स
 यथा गाः प्रत्यर्पयति स्तोत्रभ्यः तथा आविष्कृधि प्रकटीकुरु ।
 अयं वा गोशब्दः उदकवाची । गवाम् उदकानां पस्त्यम् स्थानं
 हरये सूर्याय आविष्कृधि स यथा वृष्टिं प्रयच्छति तथा कुरु । आदि-
 त्याज्जायते वृष्टिरिति स्मृतेः [म० स्मृ० ३. ७६] ॥

हे कामना करने योग्य इन्द्र ! आप अपने महत्वसे आवा-
 पृथिवीको व्याप्त कर लेने हैं और हे इन्द्र ! बारम्बार सुनने पर
 भी सदा नवीन ही प्रतीत होने वाले अत एव मिय हृदयंगम
 स्तोत्रकी आप सदा कामना करते हैं । हे उत्कृष्ट प्राणवत्त्वसे
 सम्पन्न इन्द्र ! पणियोंसे हरी हुई गीओंके स्पृहणीय, स्थानको

आप सूर्यदेवको प्रदान करते हैं, और वह जैसे स्तोताओंके लिये
उनको प्रदान करें, तिस प्रकार करिये ॥ १ ॥

द्वादशी ॥

आ त्वां हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिंशि-
प्रमिन्द्र ।

पिवा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे
दशोणिम् ॥ २ ॥

आ । त्वा । हर्यन्तम् । प्रयुजः । जनानाम् । रथे । वहन्तु । हरि-
। शिमम् । इन्द्र ।

पिब । यथा । प्रतिभृतस्य । मध्वः । हर्यन् । यज्ञम् । सधमादे ।
दशोणिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र हरिशिमम् सोमपानेन हरितवर्णाभ्यां हनुभ्यां युक्तं
त्वा त्वाम् । भाविगर्त्येवमुक्तः । आगतस्य सोमपाने सति शिम-
योर्हरिद्वर्णत्वसंभवात् । तादृशं हर्यन्तम् सोमपानं कामयमानं त्वा
त्वां जनानाम् यजमानानाम् अर्थाय प्रयुजः प्रकर्षेण परस्परं
संयुक्ता अश्वाः रथे आ वहन्तु प्रापयन्तु । हे इन्द्र प्रतिभृतस्य
संभृतस्य ग्रहचमसेषु घृतस्य मध्वः मधुवत्प्रियभृतस्य सोमस्य ।
❀ कर्मणि षष्ठ्यां ❀ । प्रतिभृतं मधु हर्यन् कामयमानो यज्ञम्
यज्ञसाधनभूतं दशोणिम् । ओणयः अङ्गुलयः । दशभिरङ्गुलि-
भिर्निष्पीडितंसोमं सधमादे । सह माघन्त्यत्रेति सधमादो यज्ञः ।
तस्मिन् यथा पिब यथा पिबसि । तथा त्वां रथे वहन्तु इत्यर्थः ॥

हे इन्द्र ! सोमपानसे हरितवर्णकी हनुओंसे सम्पन्न होने वाले,
सोमपानकी कामना करने वाले आपको यजमानके लिये परस्पर

संयुक्त हुए अरब लाखें । हे इन्द्र ! ग्रह चमस आदिमें भरे हुए मधुकी समान मियभूत सोमके मधुकी कामना करते हुए पशुके साधन दश अंगुलियोंसे निचोड़े हुए सोमके घर यज्ञमें तुम जिस प्रकार पान कर सको तिस प्रकार छोड़े आपको लाखें ॥ २ ॥

अथोदशी ॥

अथाः पूर्वेणाम् हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ
वृषस्व ॥ ३ ॥

अथाः । पूर्वेणाम् । हरिवः । सुतानाम् । अथो इति । इदम् ।
सवनम् । केवलम् । ते ।

ममद्धि । सोमम् । मधुमन्तम् । इन्द्र । सत्रा । वृषन् । जठर ।
आ । वृषस्व ॥ ३ ॥

हे हरिवः हरिवन् हरिभ्यां तद्वन् इन्द्र त्वं सुतानाम् अभिपु-
तानो पूर्वेणाम् मानःसवनसंसादितानो सोमानाम् । माध्यंदिनसव-
नापेक्षया पूर्वत्वम् एषाम् । ॐ कर्मणि षष्ठ्यावेते ॐ । अभिपु-
तान् प्रातःसवनिकान् सोमान् अथाः पीतवान् असि । अथो अपि
च इदं माध्यंदिनं सवनं केवलम् असाधारणं ते तथैव । “माध्यं-
दिनं सवनं केवलं ते” इति हि [ऋ० ४. ३५. ७] मन्त्रान्तरम् ।
अतो माध्यंदिने सवने मधुमन्तम् माधुर्योपितं सोमं ममद्धि । मद-
वाचिना मदिधातुना पानम् अन्तरेण मदाभावात् पानम् आक्षि-
प्यते । अतः पिबेत्पर्यः । ॐ मदि स्तुत्यादी । “बहुलं छन्दसि”
इति शपः रलुः । पादादिरवाद् अनिघातः । हेरपित्वात् प्रत्यय-

स्वरः ॐ । हे वृषन् वर्षक इन्द्र सत्रा साकम् एकधैव जठरे उदरे
आ वृषस्व आसिञ्च । यथा कुक्षेः पूर्तिर्भवति तथा पिबेत्यर्थः ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप अभिषुत, मातःसवन
में सम्पादित सोमोंका पान कर चुके हैं और यह माध्यन्दिनका
सवन भी आपका ही है । अतः आप माध्यन्दिन सवनमें इस
सोमका पान करके मदमें भरिये । हे वर्षक इन्द्र ! आप इसको
एक साथ जठरमें भर लीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्दशी ॥

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्मद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः १

अप्सु । धूतस्य । हरिवः । पिबे । इह । नृभिः । सुतस्य ।
जठरम् । पृणस्व ।

मिमिक्षुः । घम् । मद्रयः । इन्द्र । तुभ्यम् । तेभिः । वर्धस्व ।
मदम् । उक्थवाहः ॥ १ ॥

हे हरिवः हरिवन् इन्द्र अप्सु उदकेषु सोमाभिपचार्येषु धूतस्य
कम्पितस्य मिश्रितस्य । ॐ कर्मणि षष्ठी ॐ । अप्सु धूतं नृभिः
नेतृभिः अश्वयुग्मभृतिभिः सुतस्य सुतम् अभिषुतं सोमम् इह
अस्मिन् यज्ञे पिब पानं कुरु पीत्वा जठरं पृणस्व च पूरय । जठ-
रपूर्तिपर्यन्तं पिबेत्यर्थः । ॐ “चादिलोपे विभाषा” इति प्रथमा
तिङ्ङिभक्तिर्न निह्न्यते । पृणस्वेत्येषा द्वितीया तु निह्न्यत एव ॐ ।
हे इन्द्र तुभ्यं स्वर्ग्यं यं सोमम् मद्रयः अभिषवसाधना प्रावाणो
मिमिक्षुः सेक्तुम् अभिषवं कर्तुम् ऐन्दवन् । त्रेभिस्तैरभिषुतैः सोम-

रसैः हे उवथवाहः उवथैः शस्त्रैरुद्यमान इन्द्र तव मदं वर्धस्व अभि-
ष्टदं कुरु । मत्तो भवेत्पर्यः ॥

हे हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न इन्द्र ! सोमाभिपवके जलोंमें
मिलाये हुए, अध्वर्यु आदिसे अभिपुत सोमका इस यज्ञमें आप
पान करिये । और पेट भर कर पीजिये । हे इन्द्र ! आपके लिये
जिस सोमको अभिपवके साधन पत्थर अभिपवकर चुके हैं उन
अभिपुत सोमरसोंसे हे शस्त्रोंसे उद्यमान इन्द्र ! अपने मदको वर्धा-
इये-मत्त हजिये ॥ १ ॥

पञ्चदशी ॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्णं इयमि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व
तुभ्यम् ।

इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्यां
गृणानः ॥ २ ॥

म । उग्राम् । पीतिम् । वृष्णे । इयमि । सत्याम् । प्रयै । सुतस्य ।
हरिऽअश्व । तुभ्यम् ।

इन्द्र । धेनाभिः । इह । मादयस्व । धीभिः । विश्वाभिः । शच्याः ।
गृणानः ॥ २ ॥

हे हर्यश्व हरिनामकाश्वोपेत इन्द्र वृष्णे अभिमतफलावर्पकाय
तुभ्यं प्रयै मकर्षेण गन्तुम् । ॐ मपूर्वाद् या मापणे इत्यस्मात्
“प्रयै रोहिष्यै अग्नयिष्यै” इति छन्दसि तुमर्थे कैमत्ययान्तो
निपातितः । मत्पयस्वरेण अन्तोदात्तः ॐ । तदर्थं सुतस्य अभि-
पुतस्य सोमस्य उग्राम् उद्गूर्णपलां सत्याम् अवितयमदलक्षण-

फलोपेतां पीनिम् पानं प्रेयमिं प्रेरयामि । किं च हे इन्द्र शच्या ।
कर्मनामैतत् । यागेन निमित्तेन विरवाभिः सर्वाभिः धीभिः स्तु-
तिभिः गृणानः स्तूयमानः सन् धेनाभिः प्रीणयित्रीभिः स्तुति-
भिर्वाग्भिः इह अस्मिन् यज्ञे मादयस्व तृप्तो भव । ॐ मद वृत्ति-
योगे । चुरादिः । आत्मनेपदी ॐ ॥

हे हरि नामक अश्वों वाले इन्द्र ! अभीष्ट फलकी वर्षा करने-
वाले आपको प्राप्त होनेके लिये अभिपुत सोमके प्रचण्ड बलप्रद
वास्त्वमें मदरूपी फल वाले पानको प्रेरित करता हूँ । हे इन्द्र-
देव ! यागरूपी कर्मसे और सकल स्तुतियोंसे प्रशंसा पाते हुए
आप प्रशंसिका स्तुतियोंसे इस यज्ञमें तृप्त हूजिये ॥ २ ॥

षोडशी ॥

ऊ॒ती श॒चीव॒स्तव॑ वी॒र्ये॒ण व॒यो द॒धाना॑ उ॒शिजं॑ ऋ॒तज्ञाः॑
प्र॒जाव॑दिन्द्र॒ मनु॒षो दुरो॑णे त॒स्थुर्गृ॑णन्तः स॒धमा॒द्यांसः॑ ३
ऊ॒ती । श॒ची॒वः । तव॑ । वी॒र्ये॒ण । व॒यः । द॒धानाः । उ॒शिजः ।
ऋ॒त॒ज्ञाः ।

प्र॒जा॒व॒त् । इन्द्र॑ । मनु॒षः । दुरो॑णे । त॒स्थुः । गृ॒णन्तः । स॒ध॒मा॒-
द्यांसः ॥ ३ ॥

हे शचीवः शक्तिमन् इन्द्र ऊती ऊत्या रक्षणेन तव वीर्येण
सामर्थ्येन च प्रजावत् पुत्रादिरूपाभिः प्रजाभिरुपेतं वयः अन्नं
दधानाः धारयन्तः उशिजः त्वां कामयमाना ऋतज्ञाः सत्यभूतफल
साधनं यज्ञं जानन्तः । पष्ठस्थाहः प्रयोगस्य अतिगहनत्वाद् ऋतज्ञां
इत्युक्तम् । सत्रे ये यजमानास्ते ऋत्विज इति शास्त्रेण सर्वेषां यज-
मानभूतानाम् ऋत्विजां फलसाधारण्यात् प्रजावद् वयो दधानां

इति फलसंबन्धवचनं युक्तम् । एवंभूता अत्विजो मनुषः मनुष्यस्य यजमानस्य दुरोणे यागगृहे । ॐ दुरोण इति गृहनाम । दुरवा भवन्ति दुस्तर्पा इति यास्कः [नि० ४. ५] ॐ । सप्तस्य बहु-
कर्तृकत्वेऽपि केन चिद् यजमानेन अवश्यंभावाद् मनुषो दुरोण इत्युक्तम् । सधमाधासः सह मदनीयाः सन्तो गृणन्तः त्वां स्तु-
वन्तः तस्युः तिष्ठन्ति ॥

तृतीयेनुवाके त्रयोदश सूक्तम् ॥

समाप्तश्च तृतीयोऽनुवाकः ॥

हे शक्तिसम्पन्न इन्द्र ! आपकी रक्तक शक्तिसे पुत्रादिरूप मजाओं वाले ऋन्नको धारण करते हुए और आपकी कामना करते हुए सत्यफलसाधन यज्ञको जानते हुए अत्विज, मनुष्य यजमानके यागगृहमें आपकी स्तुति करते हुए विद्यमान हैं ॥३॥

तृतीय अनुवाकमें त्रयोदश सूक्तसमाप्त (६४६)

तृतीय अनुवाक समाप्त

चतुर्थेऽनुवाके चत्वारि सूक्तानि । तत्र “यो जात एव” इति प्रथमं सूक्तं सामसूक्तम् इति व्यवहियते । “अस्मा इदु प्र तवसे” इति द्वितीयं सूक्तम् अहीनसूक्तम् इति व्यवहियते । द्वादशाष्टादौ वैराजपृष्ठे विश्वजिति “यो जातः” इति सूक्तं ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तम् । सूत्रितं हि वैताने । “नवरात्रेभिजिह्विषुवात् विश्वजिह्वतुर्विशवत्” इत्युपक्रम्य “विश्वजिति वैराजपृष्ठे ‘यद् याव इन्द्र ते शनम्’ [२०. ८१. १] ‘यद् इन्द्र यावतस्वम्’ [२०. ८२. १] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो यार्हती उक्ते योनी । ‘इन्द्र ऋतुं न आ भर’ [२०. ७६. १] इति तृतीयाम् । ‘इन्द्र भिषातु शरणम्’ [२०. ८३. १] इति सामप्रगायः । सुक्रीति-
वृषाकपी ‘यो जात एव प्रथमो मनस्वान्’ [२०. ३४.] इति सामसूक्तम् “अहीनसूक्तम् आचरेते” इति [वै०. ६. ३] ॥

तथा अस्योर्गामिण क्रतावपि माध्यंदिनसन्ने अस्य सूक्तस्य
ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोगः । “अस्योर्गामिण गर्भकारं शंसति”
इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “सुकीर्तिं वृषाभं पि सापसूक्तम् अहीनसू-
क्तम् आवपते” इति [वै० ४. ३] ॥

एतत्सूक्तविषय इतिहासो बृहदेवतानुक्रमणायाम् उक्तः ॥

संयुज्यतपसात्मानम् ऐन्द्रं विभ्रन्महद् वपुः ।
अदृश्यत मुहूर्तेन दिवि च व्योम्नि चेह च ॥
तम् इन्द्र इति मत्वा तु दैत्यौ भीमपराक्रमौ ।
धुनिश्च चुमुरिश्चोभौ सायुधावभिपेततुः ॥
विदित्वा स तयोर्भावम् ऋषिः पापं चिकीर्षतोः ।
यो जात इति सूक्तेन कर्माण्यैन्द्राण्यकीर्तयत् ॥

अपरे त्वन्यथा वर्णयन्ति ॥

पुरा किल महेन्द्राद्या वैन्ययज्ञं समामताः ।
ऋषिर्गृत्समदस्तत्र वैन्यस्य सदसि स्थितः ॥
असुराश्च समाजग्मुः शीघ्रम् इन्द्रजिघांसया ।
तान् दृष्ट्वा निर्जगामेन्द्रो यज्ञाद् गृत्समदाकृतिः ॥
निरगात् सोपि तद्यज्ञाद् ऋषिर्वैन्येन पूजितः ।
तं दृष्ट्वा चेन्द्र एवायम् इति ते जग्मुहुः किल ॥
नाहम् इन्द्रोस्मि किं त्वेवंशुणोपेतः स इत्यृषिः ।
यो जात इति सूक्तेन निराचक्रे वधोद्यतान् ॥ इति ॥

केचित् तु अत्र सूक्ते “यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उते-
माहुर्नैपो अस्तीत्येनम्” इति [५] इन्द्रस्य नास्तित्ववचनाद्
अन्यत्रापि “नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ई ददर्श” इति
[अ० ८. १००. ३] इन्द्रस्याभावश्रवणाच्च तत्सद्भावं निरा-
कुवाणान् प्रति अस्मिन् सूक्ते इन्द्रस्य असाधारणमाहात्म्यकथनै-
स्तदस्तित्वम् अवागमयद् इति केचिद् आहुः ॥

चौथे अनुवाकमें चार सूक्त हैं । इनमें “यो जात एव” यह प्रथम सूक्त सामसूक्त कहलाता है । “अस्मा इदु म तवसे” यह द्वितीय सूक्त अहीनसूक्त कहलाता है । द्वादशाह आदिमें वैराज-पृष्ठके विश्वजित्में “यो जाता” सूक्त ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होता है । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, “नवरात्रेऽभिजिद् विषुवान् विश्वजिच्चतुर्विंशवत्” का आरंभ करके “विश्वजिति वैराजपृष्ठे ‘षट् धाव इन्द्र तेषातम्’ (२० । ८१ । १) ‘यदिद् यावतस्त्वम्’ (२० । ८२ । १) इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपी चार्हता उक्ते धोनी । ‘इन्द्रं क्रतु न आ भर’ (२० । ७६ । १) इति तृतीयाम् । ‘इन्द्र त्रिधातु शरणम्’ (२० । ८३ । १) इति सामप्रगाथः । सुकीर्तिवृषाकपी ‘यो जात एव प्रथमो मनस्वान्’ (२० । ३४) इति सामसूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा अतोर्षापके क्रतुर्मे भी माध्यन्दिनसवनमें इस सूक्तका ब्राह्मणाच्छंसीशस्त्रमें विनियोग है । “अतोर्षाम्णि गर्भकारं शंसनि” का प्रक्रम करके वैतानसूत्र ४ । ३ में कहा है, कि-“सुकीर्तिवृषाकपि सामसूक्तं अहीनसूक्तं आवपते” ॥

इस सूक्तसे संयन्ध रखने वाला इतिहास बृहद्देवतानुक्रमणिका में कहा है । उसका अर्थ यह है, कि-“यत्समद अपिने तप करके इन्द्रके प्रशंसनीय रूपको धारण कर लिया और वह मुहूर्त भ्रममें यलोकमें भूलोकमें और अन्तरिक्षमें दौखने लगे । धुनि और धुमुरि नामक दो मयङ्गुर पराक्रमी दैत्य थे वे यत्समद अपिको इन्द्र समझ उन पर आयुध लेकर दृष्ट पड़े । जग पाप करना चाहने वालोंके भावको जान कर अपि ‘यो जात एव’ सूक्तसे इन्द्रके कर्मोंका कीर्तन करने लगे ।” दूसरे इसका भिन्नरूपमें वर्णन करते हैं, कि-पहिले “महेन्द्र आदि वैश्यके यज्ञमें आए थे

तहाँ वेनपुत्रकी सभामें गृत्समद ऋषि भी बैठे हुए थे । इधर अमुर भी इन्द्रको मारनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक आगए । उन को देख इन्द्र गृत्समद ऋषिका रूप धारण करके यज्ञसे बाहर निकलगए । और वैश्यसे सत्कार पाकर ऋषि भी उस यज्ञसे चलने लगे । उनको इन्द्र मान कर ऋषिको उन अमुरोंने पकड़ लिया । तब ऋषिने कहा, 'कि-मैं इन्द्र नहीं हूँ किन्तु इन्द्र सा हूँ, और "यो जातः" सूक्तसे वध करनेके लिये उद्यत अमुरोंको दूर कर दिया" ॥ कोई कहतेहैं कि—"यंस्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरं उत्तेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्" इस पाँचवीं ऋचामें इन्द्रके नास्तित्व वचनसे, अन्यत्र भी "नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईम् ददर्श" ऋग्वेदसंहिता ८ । १०० । ३ में इन्द्रके अभावके श्रवण होनेसे उनके सद्भावका निराकरण करने वालोंके मति इस सूक्तमें इन्द्रका असाधारण माहात्म्य कह कर इन्द्रका अस्तित्व मतिपादन किया है ।

तत्र मयमा ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् ऋतुना
पर्यभूषत् ।

यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृगणस्य महा स
जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

यः । जातः । एव । मयमा । मनस्वान् । देवः । देवान् । ऋतुना ।
परिऽअभूषत् ।

यस्य । शुष्माद् । रोदसी इति । अभ्यसेताम् । नृगणस्य । महा ।
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १ ॥

य इन्द्रो देवः जात एव मादुर्भूतमात्रः सन् मथमः प्रकृष्टतमो
 सुख्यः सन् । ॐ प्रथम इति मुख्यनाम प्रथमो भवतीति निरुक्तम्
 [नि० २. २२] ॐ । मनस्वान् प्रकृष्टेन अनुग्राहकेण मनसा
 युक्तो देवान् इतरान् क्रतुना कर्मणा असाधारणेन व्यापारणे
 पर्यभूयत् परिभाषयाचकार । स्वाधीनान् अकरोत् । रक्ष्यत्वेन
 पर्यगृह्णाद् वा । यस्य इन्द्रस्य शुष्मात् शोपकाद् बलाद् रोदसी
 व्यावापृथिव्या अभ्यसेताम् भीते अभूयताम् । शुष्मात् इत्यनेन
 शारीरं बलम् अभिधाय सेनालक्षणं बलं भयसाधनतया अभि-
 धत्ते नृम्णस्य महति । नन् शत्रुजनान् प्रति अभिभावुकं मनो
 यस्य स तादृशः उक्तलक्षणान् नन् नमयतीति वा नृम्णं सेनादि-
 लक्षणं यत्नम् । तस्य मह्ना महत्त्वेन च अभ्यसेताम् इति पूर्ववा-
 न्वयः । हे जनासः अमुरजनाः स इन्द्रो नाहम् इति अपि
 आत्मन इन्द्रत्वं पर्यहरत् ॥ अस्य सूक्तस्य इन्द्रसद्भायमतिपादन-
 परस्परक्षेपे हे जनासः इन्द्रो नास्तीति मन्यमाना जनाः उक्तगुणो-
 पेताः स इन्द्रोऽस्त्येवेति व्याख्येयम् । ॐ अत्र निरुक्तम् । यो जात
 एव मथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना कर्मणा पर्यभूयत् पर्य-
 गृह्णात् पर्यरक्षद् अत्यक्रामद् इति वा । यस्य बलाद् व्यावापृथि-
 व्याप्यधिभीता नृम्णस्य मह्ना बलस्य महत्त्वेन । जनास इन्द्र
 इत्युपेष्टार्थस्य प्रीतिर्मवत्याग्यानसंयुक्तेति [नि० १०. १०] ।
 पर्यभूयत् इति । भवनेर्लुब्धि व्यत्ययेन स्तोः वसः । “अथ कः
 किति” इति इट्प्रतिषेधः । “यद्वृत्तान्नित्यम्” इति निघातप्रति-
 षेधः । “तिष्ठि चोदाचवति” इति गतेर्निघातः ॥

जिन इन्द्रदेवने प्रकट होते ही मुख्य वन कर अपने अनुग्रह
 करने वाले मनसे अन्य देवताओंको अपने असाधारण व्यापार
 से रक्ष्य-रूपमें ग्रहण कर लिया है । जिन इन्द्रके शोपक शारी-
 रक बलसे व्यावा पृथिवी भयभीत होते हैं और जिनके सैनिक-

बलसे और महत्त्वसे व्यापारपृथिवी भयभीत रहते हैं हे सुमंजस जनों !
[मैं वह इन्द्र नहीं हूँ, इस प्रकार अग्नि अपना इन्द्रत्व हटाया
और इन्द्रके सद्भावके प्रतिपादन करनेके पक्षमें "पूर्वोक्त गुणों
वाले इन्द्रदेव हैं" यह व्याख्या करनी चाहिये] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यः पृथिवी व्यथमानामदृहद् यः पर्वतान् प्रकुपितो
अरम्णात् ।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तम्भनात् स
जनाम् इन्द्रः ॥ २ ॥

यः । पृथिवीम् । व्यथमानाम् । अदृहद् । यः । पर्वतान् । प्रकु-
पितान् । अरम्णात् ।

यः । अन्तरिक्षम् । विममे । वरीयः । यः । द्याम् । अस्तम्भनात् ।
सः । जनाम् । इन्द्रः ॥ २ ॥

हे जनामः जनाः य इन्द्रः व्यथमानाम् चलन्ती पृथिवीम् अदृ-
हद् शर्करादिभिर्दृढाम् अकरोत् । यश्च प्रकुपितान् प्ररोपं प्राम्नाम्
परस्परं युद्धाय इतस्ततश्चलतः पर्वतान् गिरीन् पक्षपुक्तान् अर-
म्णात् पक्षच्छेदेन नियमितवान् । यथा उत्प्लुत्योऽप्लुत्य प्राणि-
पीडां न कुर्वन्ति तथा स्वस्थाने स्थापितवान् इत्यर्थः । ॐ गमु
क्रीडायाम् । अस्य अन्तर्भावितव्यस्य । श्रामत्ययः । अस्य अदृ-
हद् इत्यस्य च यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः । अडागमस्वरः ॐ ।
यथ इन्द्रः अन्तरिक्षम् । अन्तरा ज्ञान्तं भवति सर्वम् इत्यन्तरि-
क्षम् । क्रीडशम् । वरीयः उरुतरम् इयत्ताशुन्यं विममे विमानम्

अकरोत् । ॐ माद् माने इत्यस्य ॐ । यश्च ग्राम् दिवम् अस्त-
 भ्नात्निरुद्धाम् अकरोत् स इन्द्रः इतीन्द्रस्य सद्भावं मुनिरुपादिक्षत्
 हे असुरो ! जिन्होंने इस विचलित होती हुई पृथिवीको शर्करा
 आदिसे दृढ़ कर दिया है । और जिन्होंने क्रोधमें भर कर इषर
 उधर युद्धके लिये विचरण करने वाले पक्ष वाले पर्वतोंको पर
 काट कर नियमित कर दिया है और जिन्होंने विशाल अन्तरिक्ष
 को परिमाण शून्य कर दिया है और जिन्होंने धुलोकको स्तंभित
 कर दिया है वह इन्द्रदेव हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजन्दपथा
 वलस्य ।

यो अश्वमनोरन्तरग्निं जजानं संवृक् समत्सु स जनास
 इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । नः । गाः ।
 उत्स्रजत् । अगधा । वलस्य ।

यः । अश्वमनोः । अन्तः । अग्निम् । जजानः । सम्पृक् । समत्सु ।
 सः । जनासः । इन्द्रः ॥ २ ॥

यः इन्द्रः अहिम् अन्तरिक्षे गन्तारं मेघं हत्वा विदार्य सप्त
 सर्पणशीलान् सिन्धून् । नदीरित्यर्थः । सप्तसंख्याका गङ्गापद्मा
 ज्ञादिनदीर्वा अरिणात् मारयत् । ॐ री गतिरेवणयोः । क्रयादिः ॐ ।
 यश्च वलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य गाः असुरेणापहृता बिले स्वा-
 पिता गाः अगधा । अथ कुत्सितं धीयत इत्यपधा पिधानम् ।

तस्माद् उदाजत् उदगमयत् । ॐ अपपूर्वाद् दधाते: “आतथोप-
सर्गे” इति अङ् । “सुपां सुलुक्” इति पञ्चम्या आकारः ॐ ।
यश्च अरुमनोः व्यासुपोर्मधयोरन्तः अग्निं जजान उदपादयत् ।
मेघयोः संघर्षेण वैद्युतोन्मिर्जायत इति मसिद्धम् एतत् । अन्धार-
कत्वेन अतिशीतत्वात् तत्र आग्न्युत्पादनम् इन्द्रस्य असाधारणं सा-
मर्थ्यम् । यश्च समस्तु संग्रामेषु संवृक् शत्रुसंवर्जको भवति । स
इन्द्र इत्यसाधारणैः कर्मभिः एवम् इन्द्रं ज्ञापयामास ॥

जिन इन्द्रदेवने अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले मेघको विदीर्ण
करके सरकनेके स्वभाव वाली गंगा यमुना आदि नदियोंको
मेरित किया है और जिन्होंने बल नामक असुरकी हरी हुई
गौओंको बिलसे प्रकट किया है । और जो दो मेघोंमें भरे हुए
पत्थरोंसे वैद्युताग्निको प्रकट करते हैं [जलधारक होनेसे अति-
शीतत्वमें भी अग्निका उत्पन्न करना इन्द्रकी असाधारण शक्ति
है] जो संग्रामोंमें शत्रुओंको नष्ट कर डालते हैं वह इन्द्र हैं मैं
तो भाई अग्नि हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनेमा विश्वा व्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं
गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिङ्गीवां लक्ष्मामददर्यः पुष्टानि स जनास
इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन । इमा । विश्वा । व्यवना । कृतानि । यः । दासम् । वर्णम् ।
अधरम् । गुहा । अकस्मिन् ।

अकरोत् । ॐ मादु माने इत्यस्य ॐ । यश्च धाम् दिवम् अस्त-
 भ्नात् निरुद्धाम् अकरोत् स इन्द्रः इतीन्द्रस्य सद्भावं मुनिरुपादिक्षत्
 हे अगुरो ! जिन्होंने इस विचलित होती हुई पृथिवीको शर्करा
 आदिसे दृढ़ कर दिया है । और जिन्होंने क्रोधमें भर कर इषर
 उधर युद्धके लिये विचरण करने वाले पक्ष वाले पर्वतोंको पर
 काट कर नियमित कर दिया है और जिन्होंने विशाल अन्तरिक्ष
 को परिमाण शून्य कर दिया है और जिन्होंने घुलोकको स्तम्भित
 कर दिया है वह इन्द्रदेव हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो हत्वा हिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजन्दपथा
 वलस्य ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजानं संवृक् समत्सु स जनास
 इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । नः । गाः ।
 उद्भाजत् । अपथा । वलस्य ।

यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजानः । सम्वृक् । समत्सु ।
 सः । जनासः । इन्द्रः ॥ २ ॥

यः इन्द्रः अहिम् अन्तरिक्षे गन्तारं मेघं हत्वा विदार्य सप्त
 सर्पणशीलान् सिन्धून् । नदीरित्यर्थः । सप्तसंख्याका गङ्गापद्-
 मादिनदीर्वा अरिणात् प्रेरयत् । ॐ री गतिरेषणयोः । ऋयादिः ॐ ।
 यश्च वलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य गाः असुरेणापहृता बिले स्वा-
 पिता गाः अपथा । अप कुत्सितं धीयत इत्यपथा पिधानम् ।

तस्माद् उदाजत् उदगमयत् । ॐ अपपूर्वाद् दधाते: “आतश्चोप-
सर्गे” इति अङ् । “सुपां सुलुक्” इति पञ्चम्या आकारः । ॐ ।
यश्च अरपतोः व्याप्तयोर्मध्योरन्तः अग्निं जजान उदपादयत् ।
मेघयोः संघर्षेण वैद्युतोभिर्जायत इति प्रसिद्धम् एतत् । अव्यार-
कत्वेन अतिशीतत्वात् तत्र अग्न्युत्पादनम् इन्द्रस्य असाधारणं सा-
मर्थ्यम् । यश्च समस्तु संग्रामेषु संवृक् शत्रुसंवर्जको भवति । स
इन्द्र इत्यसाधारणैः कर्मभिः एवम् इन्द्रं ज्ञापयामास ॥

जिन इन्द्रदेवने अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले मेघको विदीर्ण
करके सरकनेके स्वभाव वाली गंगा यमुना आदि नदियोंको
मोहित किया है और जिन्होंने बल नामक असुरकी हरी हुई
गोंओंको बिलसे प्रकट किया है । और जो दो मेघोंमें भरे हुए
पत्थरोंसे वैद्युताग्निको प्रकट करते हैं [जलधारक होनेसे अति-
शीतत्वमें भी अग्निका उत्पन्न करना इन्द्रकी असाधारण शक्ति
है] जो संग्रामोंमें शत्रुओंको नष्ट कर डालते हैं वह इन्द्र हैं मैं
तो भाई अधि हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनेमा विश्वा व्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं
गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्ष्माददर्यः पुष्टानि स जनास
इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन । इमा । विश्वा । व्यवना । कृतानि । यः । दासम् । वर्णम् ।
अधरम् । गुहा । अकुरित्यकः ।

रवन्नीऽइव । यः । जिगीवान् । लक्षम् । आदत् । अर्यः । पुष्टानि ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन इन्द्रेण इमा इमानि परिदृश्यमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि च्यवना च्यवनानि स्वेन च्यावपितव्यानि कृतानि । यद्वा च्यवनानि कृतानि । दृढीकृतानीत्यर्थः । ॐ स्पुङ् प्लुङ् गतौ । “कृत्यन्स्पुङो बहुलम्” इति स्पुङ् । “शेखन्दसि बहुलम्” इति शेखुक् ॐ । यश्च इन्द्रः दासम् उपक्षपयितारम् असुरं वर्णम् नीच-वर्णम् अथरम् निकृष्टं कृत्वा गुहा गुहायाम् अकः अकार्पात् । किं च लक्षम् लक्षं योयः प्रकाशभूतः शत्रुरस्ति ततं जिगीवान् जिन-वान् । ॐ जि जने वासो “सल्लिटीर्जेः” इत्यभ्यासाद् लक्ष-रस्य कुन्वम् । द्वान्दसो दीर्घः ॐ । तादृशो यः अर्यः अरेः पुष्टानि समृद्धानि धनानि आदत् स्वीकरोति । तत्र दृष्टान्तः । श्वघ्नीव श्वभिः साधनैः मृगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याधः स यथा जिगी-वान् सन् लक्ष्यमाणं मृगं स्वीकरोति तद्वत् । हे जनाः स इन्द्र इत्यपि र्व्रते ॥

हे असुरों ! जिन्होंने इन दीखते हुए सब भुवनोंको दृढ़ किया है, और जो हानि पहुँचाने वाले नीच वर्णके असुरको निकृष्ट करके गुहामें डाल चुके हैं और जिन्होंने प्रकट शत्रुओंको जीत लिया है और जो शिकारीकी समान शत्रुके धनको हर लेते हैं, वह इन्द्र हैं, मैं इन्द्र नहीं हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यं स्मां पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुत्तेमाहुर्नपो अस्ती-
त्येनम् ।

सो अर्यः पुष्टीर्विजं इवा मिनाति श्रदस्मै घत्त स
जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥

यम् । स्म । पृच्छन्ति । कुह । सः । इति । घोरम् । उत । ईम् ।

आहुः । न । एषः । अस्ति । इति । एनम् ।

स । अर्यः । पुष्टीः । विजः इव । आ । मिनाति । अत् । अस्मै ।

घत्त । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ५ ॥

घोरम् शत्रूणां हन्तारं भयङ्करं यम् इन्द्रं जनाः पृच्छन्ति स्म
प्रश्नं कुर्वन्ति । ॐ “निपातस्य च” इति स्मेत्यस्य संहितायां
दीर्घः ॐ । किमिति । इन्द्र इन्द्र इति सर्वे जना ब्रूवते स कुह
कुत्र वर्तते इति । उत अपि च ईम् एनम् इन्द्रम् आहुः । के चन
ब्रूवते । किमिति । एष इन्द्रो नास्तीति अस्ति चेत् दृष्टिपथं माप्नु-
यात् । न तथास्ति अत एष नास्तीति ब्रूवते । तथाच मन्त्रान्त-
रम् । “नेन्द्रो अस्तीति नेष उ त्व आह क ई ददर्श” [ऋ०
८, १००, ३] इति । एवं संशयो न कार्यः । स त्विन्द्रः अर्यः
अरेः पुष्टीः पोषिकाः सेनाः विज इव । इवशब्दः एवार्थे । उद्दे-
जक एव सन् । अथ वा विजो भयहेतुः व्याघ्रादिदुष्टमृगः । स
इव आ सर्वतो मिनाति दिनस्ति । ॐ सेति इत्यत्र “सोचिलोपे
चेत् पादपूरणम्” इति सोलोपे गुणः ॐ । अस्मा इन्द्राय इन्द्र-
विषये हे नराः श्रद्धा । अत् इति सत्यनाम । विश्वासं कुरुत ।
इन्द्रोस्ति चेत् कुत्र तिष्ठतीति स नास्त्येवेति वा अविश्वासं मा
कुरुत । स नास्ति चेत् वृत्रादिशत्रुसेनास्तदन्यः को जयेत् । अतो
र्यः शत्रुसेनानां जेतास्ति हे जनासः जनाः स इन्द्र इति ॥

शत्रुओंका इनन करने वाले जिन इन्द्रदेवके विषयमें मनुष्य

मक्ष करते हैं,—इन्द्र कहाँ हैं, इन्द्र कहाँ हैं ? वह इन्द्र कहाँ हैं ? कोई कहते हैं, कि—यह इन्द्र हैं ही नहीं, यदि होते तो दीखते, यह नहीं दीखते, अत एव नहीं हैं । (ऐसा संशय नहीं करना चाहिये, क्योंकि—) वह इन्द्र शत्रुओंको पुष्ट करने वाली सेनाओंको उद्देजक व्याघ्र आदिकी समान पूर्णरीतिसे नष्ट कर डालते हैं, ऐसे इन्द्रदेवके विषयमें हे नरों ! श्रद्धा करो, विश्वास करो, इन्द्र हैं तो वह कहाँ रहते हैं ? वह नहीं हैं इतना अविश्वास न करो, यदि वह नहीं होते तो वृष आदि शत्रुसेनाओंको उनके अतिरिक्त और कौन जीत लेता, अतः हे जनों ! जो शत्रु-सेनाओंके जेता हैं, वही इन्द्र हैं ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

यो रधस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमा-
नस्य कीरेः ।

युक्तग्राणो योविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास
इन्द्रः ॥ ६ ॥

यः । रधस्य । चोदिता । यः । कृशस्य । यः । ब्रह्मणः । नाध-
मानस्य । कीरेः ।

युक्तऽग्राणः । यः । अविता । सुऽशिप्रः । सुतऽसोमस्य । सः ।
जनासः । इन्द्रः ॥ ६ ॥

य इन्द्रो रधस्य संरादस्य समृद्धस्यापि । ॐ रधेरीणादिको रक्
मत्पयः ॐ । वोदिता अभिमतकलमेरयिता समृद्धस्य राजादेर्यः
शत्रुः तस्य चोदिता अपगमयिता वा । यद्य कृशस्य घनादिराहि-

त्येन क्षीणस्यापि चोदिता तदभीष्टधनस्य मेरयिता । यद्य कीरेः ।
स्तोतृनामैनम् । स्तोत्रकर्तुः जायमानस्य अभिमतं फलं याचमानस्य
ब्रह्मणः ब्राह्मणस्यापि चोदिता । यद्य सुशिमः शोभनइन्दुरिन्द्रः
सुक्तग्रावणः अभिपवाय प्रयुक्ताश्मनः सुतसोमस्य अभिपवादिना
संस्कृतसोमस्य यजमानस्य अविता रक्षिता एवं महानुभावो योस्ति
हे जनासः जनाः स इन्द्र इति ॥

जो इन्द्र समृद्ध राजा आदिके शत्रुओंको भी दूर करने वाले
हैं जो धनशून्य होनेसे क्षीण हुए पुरुष पर भी अभीष्ट धनको
मेरित करने वाले हैं, जो स्तुति और प्रार्थना करते हुए ब्राह्मण
को अभीष्ट फल देने वाले हैं । जिनकी ठोड़ी सुन्दर है जो अभि-
पवके लिये पत्थरोंको उपयोगमें लाने वाले सोमको संस्कृत करने
वाले यजमानकी रक्षा करने वाले हैं, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ६

सप्तमी ॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य
विश्वे रथासः ।

यः सूर्यं य उपसंजजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः

यस्य । अश्वासः । प्रदिशि । यस्य । गावः । यस्य । ग्रामाः ।

यस्य । विश्वे । रथासः ।

यः । सूर्यम् । यः । उपसम् । जजान । यः । अपाम् । नेता ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ७ ॥

पूर्वमन्त्रे घनिनो निर्धनस्य स्तोतुर्यष्टुश्च अभिमतप्रदाने यः
समर्थः स इन्द्र इत्युक्तम् । अत्र प्राणिनाम् अपेक्षिता अश्वगोरय-

(२१२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

प्रकाशवृष्टिलक्षणा ये अर्थाः सन्ति तेषां सर्वेषां प्रदाने यः समर्थः
स इन्द्र इत्यभिधीयते । यस्य इन्द्रस्य प्रदिशि प्रदेशने अनुशासने
संविधा वा । ॐ प्रपूर्वाद् दिश अतिसर्जने इत्यस्मात् क्विप् ॐ ।
अग्निभ्यो दातव्या अश्वासः अश्वाः । सन्तीति शेषः । यस्य च
गाना तदग्निभ्यो दातव्या बह्व्यो गानः । यस्य च ग्रामलाभका-
मेभ्यो दित्सिता ग्रामाः । यस्य च निरवे सर्वे रथासः रथाः ।
गजोष्ठयानादीनां पग्निग्राय निरव इति विशोपितम् । यश्च इन्द्रो
गमनादिसर्वव्यवहारोपयोगिमकाशाय सूर्यं जजान । तथा य उपसं
च जजान उत्पादितवान् । यश्च अपाम् वृष्ट्युदकानां नेताः माप-
यिता देवोस्ति हे जनाः स इन्द्र इति ॥

[पूर्वमन्त्रमें “धनी निर्धन स्तोता और यष्टाथो अभिमत फल
देनेमें जो समर्थ हैं वह इन्द्र हैं” यह बात कही थी । अब यह बात
कही है, कि—] “माणियोंके अपेक्षित, अश्व गाँ रथ प्रकाश वृष्टि
आदि जो अर्थ हैं, उन सबका प्रदान करनेमें जो समर्थ हैं वह
इन्द्र हैं ।” जिन इन्द्रदेवके अनुशासन और प्रशासनमें याचकोंको
देनेके घोड़े हैं और याचकोंके लिये बहुतसी गाँएँ हैं और जिन
की आज्ञामें ग्रामप्राप्तिकी अभिलाषा वालोंको लिये ग्राम हैं,
जिनके पास रथ गज उष्ट्रयान आदि सब हैं और जिन इन्द्रदेवने
गमन आदि सब व्यवहारोपयोगी प्रकाशके लिये सूर्यदेवको प्रकट
किया है और जिन्होंने उपाको उत्पन्न किया है और जो वृष्टिके
जलको लाने वाले देवता हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

यं क्रन्दंसी संयती विह्वयेते परेवर उभयां अमित्राः
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नानां हवेते स जनासु
इन्द्रः ॥ ८ ॥

यम् । क्रन्दसी इति । संयती इति सम्प्यती । विह्वयेते इति वि-
ह्वयेते । परे । अवरे । उभयाः । अमित्राः ।

समानम् । चित् । रथम् । आतस्थिवांसा । नाना । ह्वेते इति ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ८ ॥

संयती परस्परं संगच्छमाने क्रन्दसी शब्दं कुर्वन्ते । द्यावापृ-
थिव्यावित्यर्थः । स्वाश्रितानां प्राणिनां दृष्ट्यर्थं पृथिवी द्यौश्च दृवि-
रर्थम् इत्युभयोः क्रन्दनम् । अथ वा संयती परस्परं संगते क्रन्दसी
प्रतिभटान् प्रनियुद्धाय आह्वयन्त्यौ उभे शत्रु सेने विह्वयेते इन्द्रं
विनिधम् आह्वयतः । स्वस्वसहायायेति शेषः । ॐ क्रदि आह्वाने
रोदने च । अमुन् । “उगिनश्च” इति ङीप् ॐ । उक्तमेवार्थं प्रका-
रान्तरेण स्पष्टम् आह । परे उत्कृष्टा अवरे निकृष्टाश्च । परस्परं
जयपराजयापेक्षया परत्वम् अवरत्वं च द्रष्टव्यम् । एवम् उभया
अमित्राः प्रतिद्वन्द्विसेनयोर्वर्तमानाः शत्रवः स्वस्वजयार्थं साहाय-
काय विह्वयन्ते । इत्थं सेनाद्वयान्तःस्थितानाम् इन्द्राह्वानम् अभि-
धाय अथ सेनास्वामिनोः परस्परप्रतिद्वन्द्विनोरिन्द्राह्वानम् अभि-
धत्ते । समानं चित् अश्वमारथ्यादिभिः समानम् परस्परमदृशं
रथम् आतस्थिवांसा अधिष्ठितवन्तौ । ॐ तिष्ठतेलिङ् ववत्तुः ।
“शर्पूर्वा खयः” इति खयः शेषः । अभ्यासस्य ह्रस्वत्वे “वभ्वे-
काजाद्वयमाम्” इति इडागमः । मत्पयस्वरः ॐ । तौ यं नाना
पृथक्पृथक् ह्वेते आह्वयतः । गतम् अन्यत् ॥

परस्पर मिले हुए शब्द करते हुए च लोक और पृथिवीलोक
इन्द्रका विविध प्रकारसे आह्वान करते हैं । अपने आश्रित प्राणियों
के कारण दृष्टिके लिये पृथिवी और द्रविके लिये चलोक जिन
इन्द्रका विविध प्रकारसे आह्वान करने हैं । अथवा-परस्पर दृष्टी

हुई, सामनेके घोधाओंको लड़नेके लिये बुलाती हुई दोनों सेनाएँ अनेक प्रकारसे इन्द्रदेवका आह्वान करती हैं [इसी बात को दूसरी रीतिसे कहते हैं, कि-] उत्कृष्ट और निकृष्ट प्रतिद्वंद्वी सेनाओंमें वर्तमान दोनों शत्रु अपनी २ विजयके लिये इन्द्रका आह्वान करते हैं [इस प्रकार दोनों ओरके सैनिकोंके इन्द्राह्वानको कह कर अब परस्परके प्रतिद्वंद्वी सेनास्वामियोंके आह्वान का वर्णन करते हैं, कि-] अश्व सारथी आदिसे समान रथमें विराजमान सेनापति जिनको अलग २ बुलाते हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवेसे
हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स
जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

यस्मात् । न । ऋते । विजयन्ते । जनासः । यम् । युध्यमानाः ।
अवेसे । हवन्ते ।

यः । विश्वस्य । प्रतिमानम् । बभूव । यः । अच्युतच्युत् । सः ।
जनासः । इन्द्रः ॥ ९ ॥

यस्माद् इन्द्रात् अलमदातुर्ऋते इन्द्रसहायम् अनपेक्ष्य जनासः
जनाः अप्रत्या दुर्धलाश्च सर्वे जयार्थिनो न विजयन्ते शत्रून् न परा-
भावयन्ति । अतश्च यम् इन्द्रं युध्यमानाः युद्धं कुर्वाणा अवसे
स्वस्वरक्षाय हवन्ते आहवन्ति । किं च यश्च इन्द्रो विश्वस्य

सर्वस्यापि वृत्रादिशत्रुजातस्य प्रतिमानम् । प्रतिमीयत इति प्रति-
मानं प्रतिनिधिर्बभूव । अथ वा “रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य
रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते” इति [अ०
६. ४७. १८] मन्त्रवर्णात् सर्वस्यापि माणिजातस्य तत्तत्पुण्य-
पापप्रत्यवेक्षणाय प्रतिविम्बं बभूव । यश्च अच्युतच्युत । अच्युतस्य
केनापि अच्यावयितव्यस्य वृत्रादेः च्युतिरहितस्य स्थावरस्य पर्व-
तादेर्वा च्यावयिता स जमास इन्द्र इति ॥

जिन बलमदाता इन्द्रकी सहायताके बिना दुर्बल वा मज्जला
सब बिनयामिलापी माणी शत्रुओंका पराभव नहीं कर सकते
अत एव युद्ध करते समय वे अपनी २ रक्षाके लिये इन्द्रका
आह्वान करते हैं । जो इन्द्रदेव सब माणियोंके पुण्य पापका
दर्शन करनेके लिये प्रतिबिम्ब + होजाते हैं और जो किसीसे भी
न हटाये जासकने वाले पर्वत आदिको च्युत करने वाले हैं, हे
जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ६ ॥

दशमी ॥

यः शश्वतो महेना दधानानमन्यमानांश्चर्वा जघान
यः शर्धते नानुददाति श्रुध्या यो दस्योर्हन्ता स जनास
इन्द्रः ॥ १० ॥

यः । शश्वतः । महि । एनः । दधानान् । अमन्यमानान् । शर्वा ।
जघान ।

† अग्वेदसंहिता ६ । ४७ । १८ में कहा है, कि-“रूपं रूपं
प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरु-
रूप ईयते ।-इन्द्र प्रत्येक आकृतिके अनुसार प्रत्येक रूपको धारण
करते हैं उनका वह रूप देखनेके लिये होता है, इन्द्र अपनी
मायाओंसे बहुतसे रूपोंको प्राप्त होजाते हैं” ॥

यः । शर्धते । न । अनुददाति । मृध्याम् । यः । दस्योः ।

इन्ता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १० ॥

य इन्द्रो महि महत् अत्यधिकम् एनः पापं ब्रह्महत्यादिरूपं दधानान् धारयतः शरवतः । बहुनामैतत् । बहून् जनान् । जघानेति संबन्धः । के ते महापातकिन इति तान् आह । अमन्यमानान् इन्द्रम् उक्तमहिमोपेतं परदेवतेति मतिम् अकुर्वाणान् । स्तुत्या हविषा च इन्द्रम् अपूजयत इत्यर्थः । तादृशान् शर्वा हिंसक इन्द्रः । अथ वा शरुर्वज्रः । तेन वज्रेण जघान हिनस्ति । अथ वा अमन्यमानान् स्वान्मानं ब्रह्मतया अकुम्भमानान् । आत्मघातकान् इत्यर्थः । “असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तम् एनं ततो विदुः” इति [तै० आ० ८.६] श्रुतेः । अनात्मविदः पापिष्ठत्वं स्मर्यते ।

किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ।

इति । तादृशानाम् इन्द्रकृतशिक्षा च श्रूयते । “अरुर्मुखान् यतीन् सल्लाहकेभ्यः प्रापच्छत्” इति [कौ० उ० ३. १] । “इन्द्रो यतीन्सल्लाहकेभ्यः प्रापच्छत्” इति च [तै० सं० ६. २. ७. ५] । यश्च शर्धते इन्द्रनैरपेक्ष्येण शत्रुषु बलम् उत्साहं वा कुर्वते पुरुषाय मृध्याम् बलसाधनं कर्म नानुददाति आनुकूल्येन न प्रयच्छति । ॐ हुदाञ् दाने । जीहोत्यादिकः । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः । “विहि चोदात्तवति” इति गतेर्निघातः ॐ । यश्च दस्योः वृषादेर्इन्ता घातकः स जनास इन्द्र इति ॥

जो इन्द्रदेव ब्रह्महत्या आदि महापापोंको धारण करने वाले, इन्द्रको परदेवता न मानने वालोंको हिंसक होकर मार डालते हैं [अथवा-अपनेको ब्रह्मस्वरूप समझने वाले आत्मघातियों को जो मार डालते हैं, तैत्तिरीय आरण्यक ८. ६ में कहा भी

है, कि—“असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तं एनं ततो विदुः ।—जो ब्रह्मको असत् समझता है वह असत् ही होता है जो ब्रह्मको सत् समझता है उसको सत् कहते हैं” अनात्मवेत्ताका पापिष्ठत्व भी कहा है, कि—“किं तेन न कृतं पापं चौरैणात्मापहारिणा ।—जो आत्मस्वरूपको नहीं समझता उस आत्मापहारी चोरने क्या २ पाप नहीं किया” और ऐसे पुरुषोंको इन्द्रका दण्ड देना भी सुना जाता है, कि “अरु-
मुखां यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्” (कौषीतकि उपनिषत् ३ । १) “इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्” (तैत्तिरीयसंहिता ६ । २ । ७ । ५) ॥] और जो इन्द्रकी अपेक्षा न रख कर बल दिखानेका उत्साह करने वालोंको बलसाधन कर्ममें अनुकूलता प्रदान नहीं करते हैं । जो वृत्र आदिदस्युओंके घातक हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १० ॥

एकादशी ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्विन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनासु
इन्द्रः ॥ ११ ॥

यः । शम्बरम् । पर्वतेषु । क्षियन्तम् । चत्वारिंश्याम् । शरदि ।
अनुभवविन्दत् ।

ओजायमानम् । यः । अहिम् । जघान । दानुम् । शयानम् । सः ।
जनासु । इन्द्रः ॥ ११ ॥

य इन्द्रः पर्वतेषु गिरिषु इन्द्रभीत्या क्षियन्तम् निवसन्तम् ।

पर्वतेष्विति बहुवचनेन इन्द्राद् भीतस्य शम्बरस्य एकजानवस्यानं
 मृचितं भवति । एवं गिरिगह्वरेष्वाद्भ्यन्नं शम्बरम् एतन्नामकम्
 अमुरं चत्वारिंश्याम् । चत्वारिंशत्संख्यापूरणी चत्वारिंशी । तस्या
 शरदि तस्मिन् संवत्सरे अन्वविन्दत् अन्विष्य लब्धवान् । लब्ध्वा
 शयनाशयद् इत्यर्थः । किं च य इन्द्रः शोजायमानम् ओजो बलम् ।
 तद्गृह्णाचरन्तम् । अतिशयितबलम् इत्यर्थः । ॐ “कर्तुः ययद्
 सलोपश्च” । “ओजसोऽसरसो नित्यम्” इति सकारलोपः ॐ ।
 ज्ञादशम् अहिम् । आगत्य हन्तीत्यहिर्द्वयः । पुनः कीदृशम् । दानुम्
 दानवं शयातम् शयनं कुर्वाणं जघान घातयामास । उक्तम् अन्यत् ॥

जिन इन्द्रदेवने पर्वतोंमें डर कर घूमने हुए शम्बरको चालीस
 वर्ष तक बैठ कर मार डाला था और जिन इन्द्रदेवने बल दिखाने
 माले शयन करते हुए दानव वृत्रासुरको मार डाला था, हे जनो !
 वह इन्द्र है ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

यः शम्बरं पर्यतरत् कसींभिर्यो चारुकास्नापिवत् सुतस्य
 अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्ध्वत् स जनास
 इन्द्रः ॥ १२ ॥

य इन्द्रः कशीभिः दीप्तैर्वजायायुधैः स्वतेजोभिर्वा शम्बरम् अमुरं
 पर्यतरत् पर्यतारयत् । गिरिनदीसमुद्रादिकान् सर्वानपि आत्यक्राम-
 यद् इत्यर्थः । स्वयं वा तम् अमुरं पर्यतरत् । पर्यभवद् इत्यर्थः ।
 यश्च अचारुकास्ना अरमणीयेन आस्येन सुतम् अभिपुतं सोमम्
 अपालाष्टलादिस्थितम् अपिवत् पानम् अकार्षात् । “इमं जम्भसृतं
 पिब धानावन्तं करम्मिणम्” इति हि मन्त्रवर्णः [ऋ० ८. ६१.
 २] । यस्मिन्नान्द्रे हन्तव्ये सति अन्तर्गिरौ पर्वतस्य मध्ये शुद्धे
 देवयजनप्रदेशे यजमानम् सामयागं कुर्वाणं गृत्समदं बहुं जनम्

अध्वर्युप्रभृतिं सदास्थितं जनसंघातं चामूर्ध्वत् आवर्त्रे । चुमुरिधु-
निप्रभृतिकोऽसुरसंघात इति शेषः । स जनास इन्द्र इति पूर्ववत् ॥

जो मदीस वज्र आयुध आदिसे शम्बगसुरका तिरस्कार कर
चुके हैं और जो पाले रहित पात्रमें निचोड़े हुए सोमका पान
कर चुके हैं, जिन इन्द्रदेवके मारनेके लिये, सोमयाग करते हुए
अध्वर्यु आदि जनसमूहको, चुमुरि धुनि आदि असुरोंने घेर
लिया था, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १२ ॥

त्रयोदशी ॥

यः सप्तसरिर्मर्षभस्तुविष्मान्वासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रवाहुर्ग्रामारोहन्तं स जनास
इन्द्रः ॥ १३ ॥

यः । सप्तसरिभः । मर्षभः । तुविष्मान् । असृजत् । सर्तवे ।
सप्त । सिन्धून् ।

यः । रौहिणम् । अस्फुरद् । वज्रवाहुः । ग्राम् । आरोहन्तम् ।
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १३ ॥

य इन्द्रः सप्तसरिभः सप्तमंख्योकाः पर्जन्या एव रश्मयो यस्य
स तादृशः । अथ वा सप्तसरिमरादित्यः । तदात्मक इत्यर्थः । मर्षभः
वर्षिता कामानाम् अपां वा । तुविष्मान् बलवान् सर्तवे सरणाय
प्रवहणाय सप्तसर्पणशीलान् सिन्धून् स्पन्दमानान्पुद्गलानिअवा-
सृजत् । अवाग् यथा भवति तथा निर्मितवान् । यद्वा सप्तसिन्धून्
सप्तसरयाक् गङ्गाया नदीरयासृजत् । यश्च वज्रवाहुः वज्रहस्तः
सन् ग्राम् दिवम् आरोहन्तं रौहिणम् एतन्नामकन असुरम् आ-
सृजत् जघान ॐ स्फुरस्फुलसंचलने । तौदादिकः ॐ । अन्यद्गतम्

जो इन्द्र सप्तरश्मि सूर्यरूप हैं, कायनाशोंकी और जलोंकी वर्षा करने वाले हैं और जिन बली इन्द्रदेवने बहनेके लिये गंगा आदि सात नदियोंको प्रकट किया है, जिन इन्द्रने हाथमें वज्र धारण कर चलोकमें चढ़ते हुए राहिल नामक अश्वुरको मार डाला था, वह इन्द्र हैं ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

द्यावां चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माञ्चिदस्य पर्वता
भयन्ते ।

यः सोमपा निचितो वज्रबाहुयो वज्रहस्तः स जनास
इन्द्रः ॥ १४ ॥

द्यावा । चित् । अस्मै । पृथिवी इति । नमेते इति । शुष्मात् ।

चित् । अस्य । पर्वताः । भयन्ते ।

यः । सोमपाः । निचितः । वज्रबाहुः । यः । वज्रहस्तः ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १४ ॥

अस्मै इन्द्राय द्यावा द्यावा पृथिवी पृथिव्या । परस्परापेक्षया द्विवचनम् । चित् अप्यर्थे । नमेते इन्द्रस्य महिम्ना स्वयमेव महीभवतः । अस्य इन्द्रस्य शुष्मात् बलात् पर्वताश्चित् पर्वता अपि भयन्ते । पक्ष्मद्येदाद् विभ्यति । ॐ जिभी भये । “बहुलं चन्दसि” इति शप् ॐ । यश्च इन्द्रः सोमपाः सोमस्य पाता सन् निचितः प्रज्ञातः । यद्वा नितरां चितो निचितः । ददाह इत्यर्थः । वज्रबाहुः वज्रवत् सारभूताभ्यां बाहुभ्याम् उपेतः यश्च वज्रहस्तः वज्रं हस्ते धारयन् भवति स जनास इन्द्र इति ॥

इन इन्द्रके लिये घावापृथिवी नमती हैं अर्थात् इन्द्रकी महिमा से स्वयं ही महिन होजाती हैं, जिन इन्द्रदेवके घलसे पर्वत भी ढरते हैं, सोमपान कर जो इन्द्र दृढ़ झंगों वाले हो गए हैं, जिन की भुजाएँ वज्रकी समान दृढ़ हैं, और जो हाथमें वज्रको धारण किये रहते हैं वह इन्द्र हैं ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शश-
मानमृती

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राघः स जनास
इन्द्रः ॥ १५ ॥

यः । सुन्वन्तम् । अवति । यः । पचन्तम् । यः । शंसन्तम् । यः ।
शशमानम् । कृती ।

यस्य । ब्रह्म । वर्धनम् । यस्य । सोमः । यस्य । इदम् । राघः ।
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १५ ॥

यः सुन्वन्तम् सोमाभिपत्रं कुर्वन्तं यजमानम् अवति रक्षति ।
यथ पुरोडाशादीनि हवींषि पचन्तं यथ कृती कृत्या रक्षणेन
निमित्तेन शंसन्तं स्तुवन्तं यथ शशमानम् सामभिः स्तोत्रं कुर्वाणं
रक्षति । ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं यस्य वर्धनम् वृद्धिकरं भवति । तथा
यस्य सोमो वृद्धिहेतुर्भवति । यस्य च इदम् अस्मदीयं राघः पुरो-
डाशादिलक्षणम् अन्नं वृद्धिकरं भवति । स इन्द्र इत्यादि गतम् ॥

जो सोमाभिपत्र करने वाले यजमानकी रक्षा करते हैं, जो
पुरोडाश आदि हवियोंका पाक करने वालेकी रक्षा करते हैं जो

रत्नाके कारण स्तुति करते हुए और सामसे स्तोत्रपाठ करते हुए
की रत्ना करते हैं, दृढ़ स्तोत्र जिनकी वृद्धि करने वाला है और
सोम जिसकी वृद्धिका हेतु है और हमारा पुरोडाश आदिरूप
अन्न जिसकी वृद्धि करने वाला है, हे जनों ! वह इन्द्र हैं १५
पोडशी ॥

जातो व्युख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितु परस्य
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास
इन्द्रः ॥ १६ ॥

य इन्द्रो जातः मादुर्मतमात्र एव सन् पित्रोः द्यावापृथिव्योः
उपस्थे उत्सङ्गे तयोर्मध्ये व्युख्यत् विख्यातवान् मकाशितोभूत् ।
यश्च इन्द्रः भुवः भुवं मातृभूतां न वेद न जानाति । तथा परस्य
उत्कृष्टस्य जनितुः उत्पादयितुं परम् उत्पादकं पितृस्थानीयं धु-
लोकमपि न वेद न जानाति । तयोर्वस्तुतः स्वजननं प्रति अका-
रणत्वाद् इत्यभिप्रायः । यद्वा भुवो जनितुः भूम्या उत्पादकस्य
परस्य अन्यस्य स्वरूपं भुवो जनितारं परम् अन्यम् इति वा व्या-
ख्येयम् । न वेद जानाति । स्वातिरेकेणेति शेषः । स्वस्यैव सर्व-
कारणत्वाद् इत्यभिप्रायः । किं च अस्मद् अस्मत्तः अस्माभिः
कविष्यमाणः स्तविष्यमाणः स्तूयमानश्च सन् । नशब्दः चार्थः ।
देवानां व्रता व्रतानि कर्माणि देवार्थान् आ ॥ ॐ उपसर्गभृतयोः
ग्निक्रियाध्याहारः ॥ ॐ ॥ आ पूरयति ॥ स इन्द्र इति ॥

जो इन्द्रदेव मादुर्मत होते ही द्यावापृथिवीके मध्यमें मकाशित
होंगा ये, जो इन्द्र मातृभूता पृथिवीको नहीं जानते हैं तथा उत्कृष्ट
वस्तुके उत्पादकः पितृस्थानीयः धुलोकको भी नहीं जानते हैं
[क्योंकि वे वास्तवमें अपने जननके प्रति अकारण हैं] अथवा
वह भूमिके उत्पादक अन्यके स्वरूपको—भूमिका उत्पन्न करने

वाला कोई और है इस बातको नहीं जानते हैं, क्योंकि—वह अपने आप ही सबके कारण हैं ।] और हमसे स्तुति पाते हुए वह इन्द्र देवताओंको पूरित करते हैं । हे जनों ! वह इन्द्र हैं १६ सप्तदशी ॥

यः सोमंकामो हर्षेश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वां ।

यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

य इन्द्रः सोमकामः सोमं कामयमानः सन् हर्षेश्वमूरिः हर्षारूपानाम् अरवानां सुष्ठु ईरयिता प्रेरयिता भवति । यागप्रदेश-स्यागमनायेति शेषः । अथ वा यः सोमकामः यश्च हर्षेश्वः सूरि-विद्वांश्च । किं च यस्माद् इन्द्राद् विश्वा विश्वानि भुवना भुवनानि भूतजातानि रेजन्ते विभ्यति । य इन्द्रः शम्बरम् असुरं जघान-यश्च शुष्णम् असुरं जघान घातयामास । यश्च एवं विधेयुं असाधारणेषु व्यापारेषु एकवीरः असाधारणः शूरो भवति स जनास इन्द्र इति उक्तार्थः ॥

सोमको चाहते हुए जो, हरि नामक अरवोंको भली प्रकार चलाते हैं । और जिनसे सब भूत डरते हैं, जिन्होंने शम्बरासुर का संहार किया है, जिन्होंने शुष्ण असुरको मार डाला है, जो ऐसे असाधारण व्यापारोंमें असाधारण शूर होते हैं, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १७ ॥

अष्टादशी ॥

य सुन्वते पचते दुध आ चिद् वाजं दर्दपि स किलांसि सत्यः ।

वयं तं इन्द्र विश्वं ह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वेदेम
यः । सुन्वते । पचते । दुधः । आ । चित् । वाजम् । दर्दपि ।

सः । किल । असि । सत्यः ।

वयम् । ते । इन्द्र । विश्वं ह । प्रियासः । सुवीरासः । विदथम् ।

आ । वदेम ॥ १८ ॥

अत्र ऋषिः इन्द्रस्य अविद्यमानतां शङ्कमानानाम् अज्ञानितां
विश्वासं जनयन् इन्द्रं प्रत्यक्षीकृत्य ब्रूते । हे इन्द्र, यस्त्वं दुर्ध्वश्च
वस्तुनो दुर्धर्षोऽपि सुन्वते सोमाभिपचं कुर्वते यजमानाय तथा पचते
पशुपुरोडाशादिहविःपाकं कुर्वते च यजमानाय वाजम् तदभिमतम्
अन्नम् आ दर्दपि सर्वतो भृशं प्रयच्छसि । ॐ ह गतो । अस्मात्
क्रियासमभिहारे यत् । अभ्यासरस्य लोपः । अभ्यासस्य “रुग्रिको
च लुकि” इति रुगागमः । यद्योगाद् अनिघातः । “अभ्यस्ता-
नाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ॐ । स तादृशस्त्वं सत्यः किलासि ।
मन्त्रद्रष्टुर्धर्षः प्रत्यक्षत्वेऽपि इदानीं तनानां कथं प्रत्यक्षतेति शङ्कायां
यष्ट्याम् अभिमतान्नलक्षणफलस्य सत्यदृष्टत्वाद् इन्द्रोऽपि सत्य
एवेत्यभिप्रायेण स किलासि सत्य इति ब्रूते । वयं विश्वं विश्वे-
ष्वपि अहःसु सर्वदा । ॐ “सुषां सुलुक्” इत्यादिना सप्तमी-
बहुवचनस्य लुक् । शकन्वादित्वात् पररूपत्वम् । कटुचरपद-
प्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । हे इन्द्र ते तव प्रियासः प्रियाः
सन्तः सुवीरासः शोभनपुत्रादिपुक्ताश्च सन्तः विदथम् वेदसाधनं
स्तोत्रम् आ वदेम ब्रूयाम ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके मथनं सूक्तम् ॥

[इस ऋचामें ऋषि इन्द्रकी अविद्यमानताकी शङ्का करतेहुए
अज्ञानियोंको, विश्वास कराते हुए इन्द्रकी प्रत्यक्ष करके कहते

हैं, कि—] हे-इन्द्र ! आप वास्तवमें दुर्घर्ष होते हुए भी सोमाभि-
षव करने वाले यजमानके लिये और पुरोडाश आदिका पाक
करते हुए यजमानके लिये अभिमत अन्नको सब ओरसे प्रदान
करते हैं, ऐसे आप अवश्य सत्य हैं । [मन्त्रद्रष्टा महर्षिका प्रत्यक्ष-
त्व होने पर भी आधुनिक प्राणियोंके लिये उनका प्रत्यक्षत्व
कैसे हैं, ऐसी शंका होने पर कहते हैं, कि—यष्टाओंकी अभिमत
अन्नफलके सत्य देखनेसे इन्द्र भी सत्य हैं] हम सब दिनोंमें
आपके भिय रहते हुए और शोभन पुत्र आदिसे सम्पन्न रहते
हुए आपके स्तोत्रका उच्चारण करते रहें ॥ १८ ॥

चतुर्थं अनुवाकमे प्रथमं सूक्तं समाप्तं (६५०)

चतुर्विंशोऽभिजिति विपुवति विश्वजिनि महाव्रते च ब्राह्मणा-
च्छंसिशस्त्रे “अस्मा इदु म तवसे तुराय” इति अहीनसूक्तसंज्ञकं
विनियुक्तम् । “चतुर्विंश ‘इन्द्रमिद्रायिनो बृहद्’ [२०. ३८. ४]
इत्याज्यस्तोत्रियः” इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “अभि म चः सुरायसम्
[२०. ५१. १] म सु श्रुतं सुरायसम् [२०. ५१. ३] इति पृष्ठ-
स्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ । मा चिदन्यद् वि शंसत [२०.
८५. १] यच्चिदि त्वा जना इमे [२०. ८५. ३] इति वा ।
अस्मा इदु म तवसे तुराय [२०. ३५] इत्यहीनसूक्तम् आव-
पते” इति [वै० ६. १] ॥

तथा अतोर्पाम्णि माध्यंदिनसवने तच्छस्त्र एव विनियुक्तम् ।
सूत्रितं हि । “अतोर्पाम्णि गर्भकारं शंसति” इति प्रक्रम्य सूक्तीति
वृषाकपि सामसूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते” इति [वै० ४. ३] ॥

“चतुर्विंश अभिजित्में, विपुवत्में, विश्वजित्में, महाव्रतमें और
ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें “अस्मा इदु म तवसे तुराय” यह अहीन-
नामक सूक्त विनियुक्त होता है । “चतुर्विंश ‘इन्द्रमिद्रायिनो बृहद्’
(२० । ३८ । ४) इत्याज्यस्तोत्रियः” का प्रक्रम करके सूत्रमें

(२२६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहितः ।

कदा है, कि-“अभि म वः सुराधसम् (२० । ५१ । १) म सु
श्रुतं सुराधसम् (२० । ५१ । ३) इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ माहिता
मगायो । मा चिदन्यद् वि शंसत (२० । ८५ । १) यच्चिदि
त्वा जना इमे (२० । ८५ । ३) इति वा । अस्मा इदु म तवसे
तुराय (२० । ३५ इति अहीनमृक्तं आवपते ” (वैतानमृत् ६ । १)

तथा अतोर्गामके मध्यन्दिनसवनमें और उस शस्त्रमें भी विनि-
युक्त होता है । इस विषयमें वैतानमृत् ४ । ३ का प्रमाण है,
कि-“अतोर्गाम्णि गर्भकारं शंसति” इति प्रक्रम्य सुकीर्तिं वृषा-
कपिं साममृक्तं अहीनमृक्तं आवपते” ॥

तत्र प्रथमा ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय
ऋचीपमायाधिंगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ?

अस्मै । इत् । ऊं इति । म । तवसे । तुराय । प्रयः । न । हर्मि ।
स्तोमम् । माहिनाय ।

ऋचीपमाय । अधिंगवे । ओहम् । इन्द्राय । ब्रह्माणि । राततमा
अस्मा इदु । इदु उ इति निपातद्वयं पादपूरणम् । ॐ अयापि
पदपूरणाः कमीमिद्वितीति यास्कोक्ते [नि० १. ८] ॐ । अव-
धारणार्थं वा निपातद्वयम् । अस्मा एव इन्द्राय ओहम् बहनीयं
मापणीयं स्तोमम् स्तोत्रं प्र हर्मि प्रकर्षेण हरामि । प्रकरोमीत्यर्थः ।
कीदृशायेंद्राय । तवसे मृच्छाय बलवते वा तुराय सोमपानार्थं
त्वरमाणां शत्रु हिंसकाय वा माहिनाय । महन्नामैतत् । गुणैर्बहते
ऋचीपमाय ऋचा स्तुतिसाधनया समाय । ऋग् यादृग्रूपं प्रति-
पादयति तादृग्रूप एव तत्र संमिनो भवतीत्युचीपम इत्यर्थः । अथवा

ऋक् स्तुतिः तथा समाय । वस्तुतः, अपरिमेयगुणत्वेऽपि ऋचा परि-
मीयत परिच्छिद्यते इत्युचीपमत्वाभिधानम् । अग्निगवे अघृतगमन-
कर्मणे अमतिहतगमनाय इन्द्राय । स्तोत्रमेरणे दृष्टान्तम् आह ।
मयो नेति । मय इत्यन्ननाम । यथा क्षुधितस्य अन्नं मेरयति तद्वत्
स्तुतिकामाय स्तोमं महर्मात्यर्थः । न केवलं स्तोत्रम् अपि तु रात-
तमा राततमानि पूर्वैर्यजमानैरत्यर्थं दत्तानि ब्रह्माणि प्रवृद्धानि
सोमादिर्हवींष्यपि प्र हर्मानि । ॐ अग्निगव इत्यत्र अघृतः अन्ये-
नानिवारितः गौर्गमनम् अस्येति तस्यावयवार्थः । “गोस्त्रिचोरुप-
सर्जनस्य” इति ह्रस्वत्वम् । पृषोदरादित्वाद् अघृतशब्दस्य अग्नि-
भावः । ओहम् इति । बहतेः कर्मणि घञि ह्यान्दसं संप्रसारणम् ॥

मैं इन इन्द्रदेवके लिये ही प्रापणीय स्तोत्रको उत्कृष्टरूपसे
उच्चारण करता हूँ । यह इन्द्रदेव बलवान् हैं, सोमपानके लिये
त्वरा करते रहते हैं, गुणोंमें महान् हैं, ऋचा इनके जैसे रूपका
प्रतिपादन करती है यह तैये ही रूप पर सम्मन होजाते हैं तात्पर्य
यह है, कि-वास्तवमें अपरिमेय गुणों वाले होने पर भी ऋचा
से इनका परिच्छेद होना है अत एव यह ऋचीपम हैं । और
इनका गमन अमतिहत है । ऐसे इन्द्रदेवके लिये, जिस प्रकार
भूखेके पास अन्नको मेरित करते हैं, तिस प्रकार स्तुतिको मेरित
करता हूँ । केवल स्तोत्रको ही मेरित नहीं करता हूँ, किन्तु पूर्व
यजमानोंके द्वारा विशाल परिमाणमें दी हुई हवि आदिको भी
मेरित करना हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अस्मा इदु प्रयं इव प्रयांसि भरांम्यद्गुणं वाधे सुवृत्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रवाय पत्ये धियो मर्जयन्त

अस्मै । इत् । ऊं इति । मयःऽइव । म । यंसि । भरामि । आहू-
पम् । वाधे । सुवृक्ति ।

इन्द्राय । हृदा । मनसा । मनीषा । मन्त्राय । पत्ये । धिये । मर्जयन्त

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय मय इव अन्नमिव म यंसि मय-
च्छामि । ॐ यम उपरमे । अस्माह्वति पुरुषग्यत्ययः । “बहुलं
छन्दसि” इति शपो लुक् ॐ । सामान्येनोक्तं विश्विनष्टि भरापी-
त्यादिना । वाधे शत्रूणां बाधनाय सुवृक्ति सुष्ठु आवर्जकम् आहू-
पम् स्तोत्ररूपम् आघोषम् । ॐ आहू प स्तोम आघोष इति यास्कः
[नि० ५. ११] ॐ । भरामि संपादयामि । किं च मन्त्राय पुरा-
णाय पत्ये सर्वस्य स्वाभिने इन्द्राय अन्येपि अतिवजो हृदा हृदयेन
मनसा हृदयान्तवर्तिना अन्तःकरणेन मनीषा मनीषया बुद्ध्या
धियः स्तुतीः मर्जयन्त मार्जयन्ति संस्कुर्वन्ति ॥

इन इन्द्रदेवके लिये अन्नकी समान में स्तोत्रको भेजता है ।
शत्रुओंको बाधा देनेके लिये आवर्जक स्तोत्ररूप घोषका सम्पा-
दन करता है, और माचीन सर्वस्वामी इन्द्रके लिये अन्य अतिवज
भी हृदयसे मनसे और बुद्धिसे स्तुतियोंको संस्कृत करते हैं २
तृतीया ॥

अस्मा इदु त्वमुपमं स्वर्षा भराभ्याह्वयमास्प्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरि वावृधध्यं
अस्मै । इत् । ऊं इति । त्वम् । उपपम् । स्वःसाम् । भरामि ।
आहूयम् । आस्प्येन ।

मंहिष्ठम् । अच्छोक्तिभिः । मनीनाम् । सुवृक्तिभिः । सूरिम् ।

वृद्धयर्थे ॥ ३ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय स्यं तं प्रसिद्धम् उपमम् । उप-
मीयते अनेनेत्युपमः । उपमास्थानभूतम् । ॐ “ध्वर्ये कविषा-
नम्” इति करणे कप्त्ययः । “आतो लोप इटि च” इत्याकार
लोपः ॐ । स्वर्गाम् सुष्ठु अरणीयस्य धनस्य दातारं स्वर्गस्य
प्रापकं वा एवंलक्षणम् आङ्गपम् स्तोत्रलक्षणम् आघोपम् आस्येन
मुखेन भरापि संपादयामि । किमर्थम् मंहिष्ठम् अतिशयेन धन-
वन्तम् अतिशयेन प्रवृद्धं वा सूरिम् सुष्ठु धनस्य ईरयितारं वि-
पश्चितं वा उक्तलक्षणम् इन्द्रं वृथर्ह्यै वर्धयितुं मतीनाम् स्तुतीनां
संबन्धिभिः । कैः साधनैः । सुवृत्तिभिः सुष्ठु आवर्जकैः अच्छो-
क्तिभिः स्वच्छवचनैः । आङ्गपं भरामीति संबन्धः ॥

मैं इन ही इन्द्रदेवके लिये, उपमाके योग्य, सुन्दरतापूर्वक धन
प्रदान करने वाले स्तोत्ररूपी घोपका मुखसे सम्पादन करता हूँ ।
परमधनी धनको भली प्रकार प्रेरित करने वाले इन्द्रको स्तुतियों
से बढ़ानेके लिये स्वच्छ वचनोंसे मैं इन्द्रके स्तोत्रका सम्पादन
करना हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अस्मा इदु स्तोमं सं हिंनोमि स्यं न तष्टेव तत्सिन्नाय
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृत्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ४
अस्मै । इत् । ऊं इति । स्तोमम् । सम् । हिंनोमि । स्यम् । न ।

तष्टाऽव । तत्सिन्नाय ।

गिरः । च । गिर्वाहसे । सुवृत्ति । इन्द्राय । विश्वम् । इन्वम् ।

मेधिराय ॥ ४ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय तत्सिन्नायै तदेव सिनं सोमादि-

लक्षणम् अन्नं यस्य तादृशाय इन्द्राय अथ वा तत्तिनाय रयसा-
ध्यान्नवते स्वामिने तष्टा शिन्पी रयं न यथा रयं संहिनोति तद्वत्
स्तोमं सं हिनोमीति । किं च गिर्वाहसें गीर्भिः प्रापणीयाय मेधि-
राय । मेधो यज्ञः । यज्ञार्हाय मेधाविने वा इन्द्राय सुवृक्ति सुष्ठु
आवर्जकं विश्वमिन्वम् विश्वैः सर्वैः प्राप्तव्यं विश्वैः सर्वैर्यजमानैः
प्रापणीयं वा सोमादिलक्षणं इविः गिरथस्तुत्यर्थानि वचांसि च ।
सं हिनोमीत्यनुपङ्गः । यद्वा सुवृक्ति विश्वमिन्वम् इति पदद्वयं फल-
परतया व्याख्येयम् । सुष्ठु आवर्जनीयं विश्वैर्वन्ध्वादिभिः प्राप्त-
व्यम् उपभोक्तव्यम् अन्नम् । लब्धुम् इत्यध्याहारः ॥

मैं इन ही सोमादिरूप अन्न वाले इन्द्रदेवके लिये शिन्पीके
रथको बनानेकी समान अन्नको बनाता हूँ—मेरित करता हूँ ।
यह इन्द्रदेव स्तुतियोंसे प्रापणीय है, यज्ञार्ह है, सब यजमानोंसे
प्राप्तव्य हैं, ऐसे इन्द्रदेवके लिये मैं इवि और स्तुतिके वचनोंको मेरित
करता हूँ-॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायाकं जुहावे समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दर्ध्यं पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥

अस्मै । इत् । ऊं इति । सप्तिम्श्रव । श्रवस्या । इन्द्राय । अर्कम् ।
जुहा । सम् । अञ्जे ।

वीरम् । दानौकसम् । वन्दर्ध्यं । पुराम् । गूर्तश्रवसम् । दर्मा-
णम् ॥ ५ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय श्रवस्या श्रवस्यया । श्रव इत्य-
न्ननाम । अन्नेच्छया । अन्नलाभायेत्यर्थः । ॐ श्रवःशब्दात्

“सुप आत्मनः कथञ्” । तदन्ताद्धातोर्भावे “अ प्रत्ययात्” इत्य-
कारप्रत्ययः । ततष्ठाप् । सुपां सुलुक्०” इति तृतीयाया ङादेशः ।
उदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्योदात्तत्वम् ॐ । अर्कम् अर्चनीयम् अन्नं
हविलक्षणम् अन्नं जुहा आज्यपूर्णया समञ्जे समक्तं करोमि ।
ॐ व्यत्ययेनात्मनेपदम् ॐ । यद्वा अर्कं स्तुतिसाधनं मन्त्रम् । ॐ
अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्तीति यास्कः [नि० ५. ४] ॐ । जुहा
जुह्वद् अञ्जनमाधनया जिहया समग्रे संयोजयामि । तत्र दृष्टान्तः ।
सप्तिमिव अश्वमिव । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । अश्वान् यथा
श्रवस्यया रथे समक्तान् संगतान् करोति तद्वत् । किं च वीरम्
शत्रूणां विविधम् ईरयितारं दानौकसम् दानानाम् ओकः सन्न-
स्थानीयं पुराम् अमुरनगराणां दर्माणम् दारकं गूर्तश्वसम् । श्व
इत्यन्ननाम । प्रशस्यान्नं प्रशस्यकीर्तिं वा उक्तलक्षणम् इन्द्रं वन्दध्यै
वन्दितुम् । आहयामीति शेषः ॥

मैं इन इन्द्रदेवके लिये अन्नकी इच्छासे पूजनीय हविरूप अन्नको
घृतपूर्ण स्रवेसे संयुक्त करता हूँ । अथवा जुहूकी समान अञ्जन-
साधन मन्त्रसे संयुक्त करता हूँ । जैसे घोड़ोंको रथमें संयुक्त करते
हैं तिस प्रकार संयुक्त करता हूँ । और शत्रुओंको अनेक प्रकार
से खदेड़ने वाले, दानोंके भवनरूप, अमुरोंके नगरोंको विदीर्ण
करने वाले और उक्तलक्षण कीर्ति वाले इन्द्रदेवकी वन्दना करनेके
किये मैं उनका आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

अस्मा इदु त्वष्टां तद्दु वज्रं स्वपंस्तमं स्वयं१ रणांय
वृत्रस्यं चिद् विददयेन मर्मं तुजन्नीशानस्तुजुता
किंयेधाः ॥ ६ ॥

अस्मै । इत् । ऊँ इति । स्वष्टा । तक्षत् । वज्रम् । स्वपःस्तमम् ।

स्वर्गम् । रणाय ।

वृषस्य । चित् । विदत् । येन । मर्म । तुजन् । ईशानः । तुजता ।

क्रियेषाः ॥ ६ ॥

अस्मा इदु अस्मा एवेन्द्राय स्वष्टा सकलजगन्निर्माता विर-
कर्मा वज्रम् एतन्नामकम् आयुधं तक्षत् अतक्षत् निर्मितवान् ।
कीदृशम् । स्वपस्तमम् अतिशयेन शोभनकर्माणं स्वर्गम् स्वायत्त-
वीर्यं स्तुत्यं वा । किमर्थम् । रणाय युद्धाय । तुजता हिंसता येन
वज्रेण क्रियेषाः । किं परिमाणं यस्य शत्रुबलस्य तादृग् बलं धार-
यतीति क्रियेषाः । यद्वा क्रममाणान् शत्रून् धारयतीति निगृह्णा-
तीति क्रियेषाः । परैरपरिच्छेद्यबल इत्यर्थः । ॐ क्रियेषाः कियद्वा
इति वा क्रममाणधा इति वेति यास्कः [नि० ६, २०] । पृषो-
दरादित्वाद् पूर्वपदस्य क्रियेभावः । दधातेर्विष् मत्स्यः ॐ ।
ईशानः सर्वस्य स्वामी भवन् इन्द्रः वृषस्य चित् सर्वावरकस्य म-
बलस्य वृषस्याप्यमुरस्य मर्म । यस्मिन् स्थाने विदः सद्यो त्रिपठं
तद् मर्म । तत् तुजन् हिंसन् व्यमयन् विदत् अविदत् लब्धवान् ।
लब्ध्वा माहारीदु इत्यर्थः । ॐ विदत् लाभे । लुङि लुदित्वात्
प्लेः अह् आदेशः । “बहुलं छन्दस्यमारूपोणेपि” इत्यहभावः ।
यद्सयोगाद् अनिघातः ॐ ॥

इन इन्द्रदेवके लिये ही सकल जगत्का निर्माण करने वाले
विराजकर्माने स्वष्टा नामक आयुधको बनाया है । वह आयुध
शोभन कर्म करने वाला है, स्तुत्य है, वह रणके लिये बनाया
गया है और वह क्रममाण शत्रुओंका निग्रह करने वाला है ।
सबके स्वामी इन्द्रदेवने सर्वावरक मबल वृषामुरके मर्मको भी
खोज कर उस पर प्रहार किया था ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अस्येदुं मातुः सवनेषु सद्योः महः पितुं पपिवां चार्वन्नां
मुपायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो
अद्रिमस्तां ॥ ७ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । मातुः । सवनेषु । सद्यः । महः । पितुम् ।
पपिञ्चान् । चारु । अन्ना ।

मुपायत् । विष्णुः । पचतम् । सहीयान् । विध्यत् । वराहम् ।
तिरः । अद्रिम् । अस्तां ॥ ७ ॥

अस्येदु अस्यैवेन्द्रस्य मातुः सर्वस्य निर्मातुः महः महतः मा-
हात्म्यवतः एवंभूतस्य इन्द्रस्य । असाधारणं कर्म उच्यते इति
शेषः । यदा उक्तलक्षणस्य यज्ञस्येति व्याख्येयम् । किं तद् कर्म इति
उच्यते । अयम् इन्द्रः सवनेषु सोमयागसंबन्धिषु प्रातरादिषु त्रिषु
सवनेषु सद्यः तदानीमेव होमसमय एव पितुम् । अन्ननामैतद् ।
पातव्यं सोमं पपिचान् पीतवान् । किं च चारु चारुणि । ❀
“मुपां मुलुरूं” इति विभक्त्युक् । ❀ । अन्ना अन्नानि सव-
नीयपुरोडाशघानाकरम्भादीनि । भक्षितवान् इति शेषः । किं च
विष्णुः सवनत्रयव्यापी इन्द्रः सहीयान् अतिशयेन शत्रूणाम् अभि-
भविता । सोमपानादिजनितेन वृत्तेनेति भावः । पचतम् परिपक्वम्
अपहारयोग्यभूतं शत्रूणां धनं मुपायत् अपाहरत् । ❀ कयजन्ता-
ल्लिङ्गि “बहुलं छन्दस्यमाद्योगेपि” इत्यल्लभावः । ❀ । तथा अद्रिम्
अस्ता अद्रेर्वज्रस्य क्षेपकः मयोक्तां स इन्द्रः वराहम् । ❀ वराहो
मेयो भवति वराहार इति निरुक्तम् [५. ४] ❀ । वराहारम्

उत्कृष्टस्योदकस्य आहर्तारं धारकं मेघं तिरःप्राप्ता सन् । ॐ तिरः
सत इति मासस्येति यास्कः [नि० ३, २०] ॐ । विध्यत् अवि-
ध्यत् वृष्टिलाभार्थं कण्ठदारयन् ॥

इन सबका निर्माण करने वाले, माहात्म्यसम्पन्न इन्द्रका
असाधारण कर्म कहा जाता है, कि-यह इन्द्रदेव सोमयागसंबंधी
मातरादि तीनों सबनोंमें होमके समय ही सोमरूपी अन्नको
पीगए और सबनीय पुरोडाश घाना करंभ आदि चार अन्नो
को खागए, और यह सबनत्रयव्यापी इन्द्र सोमपानजनित बल
के कारण शत्रुओंको बड़े दवानेवाले हैं और यह अपहारके योग्य
शत्रुओंके धनको छीन लेते हैं और वज्रका प्रयोग करने वाले
इन इन्द्रने, श्रेष्ठ जलका आहरण करने वाले मेघको वृष्टिके लिये
विदीर्ण कर डाला था ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अस्मा इदु आश्विद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्यं ऊवुः ।
परि घावां पृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परिष्टः
अस्मी ॥ इत् ॥ ऊं इति । घाः । चित् । देवपत्नीः ॥ इन्द्राय ॥

अर्कम् । अहिहत्ये । ऊवुरित्युवुः ।

परि ॥ घावां पृथिवी इति । जभ्रे । उर्वी इति । न । अस्य । ते इति ।
महिमानम् । परि । स्त इति स्तः ॥ ८ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय अहिहत्ये ॥ अहिष्टवः । तस्य
इनने निमित्तभूते सति देवपत्नीः देवानों पालयित्री गायत्रीयाः
गनाश्चित् गमनस्वभावा अपि अर्कम् अर्चनसाधनं स्तोत्रम् ऊवुः
अतन्वत । मद्वा अस्मा इन्द्राय गनाश्चित् । ॐ मेना गना इति स्त्री-

णाम् इति निरुक्तम् [३. २१] । ग्रा गच्छन्त्येना इति तत्रत्यं
निर्वचनम् ॐ । स्वस्वपतिभिरभिगन्तव्याः स्त्रियः । ता विशि-
नष्टि । देवपत्नीरिति । देवा इन्द्राद्याः पतयो यासां ता देवपत्न्यः ।
ताथ, “उत ग्रा व्यन्तु देवपत्नीः” इति [ऋ० ५. ४६, ८]
मन्त्रोक्ता इन्द्राण्यग्रायश्विन्याद्याः । ता देवपत्न्यः अकेम् अर्चन-
साधनं हविः ऊयुः स्वात्मनि अतन्वत । ॐ वेब् तन्तुसंताने ।
लिटि “वेवो वयिः” । लिटः कित्वाद् यजादित्वेन संप्रसारणे
यकारस्य “लिटि वयो यः” इति प्रतिषेधाद् वकारस्य संप्रसार-
णम् । परपूर्वत्वे द्विर्वचनादि । “वशास्यान्यतरस्या किति” इति
यकारस्य वकारादेशः ॐ । स चेन्द्रः उर्वी विस्तृते द्यावापृथिवी
द्यावापृथिव्या परि जभ्रे स्वतेजसा परिजहार । अतिचक्रामेत्यर्थः ।
अस्य इन्द्रस्य महिमानम् महत्त्वं ते द्यावापृथिव्यौ न परि पृः न
पराभवतः । महत्त्वसंकोचं कर्तुं शक्ते नाभूताम् इत्यर्थः ॥

। इन इन्द्रदेवके लिये ही वृत्रहननका अवसर आने पर देवताओं
का पालन करने वाली (देवपत्नियें) गायत्री आदिने गमन
स्वभाव वाली होने पर भी अर्चनसाधन स्तोत्रको विस्तृत किया
था । अथवा—देवताओंकी पत्नी इन्द्राणी आदिने अर्चनसाधन
हविषो अपनेमें विस्तृत किया था । और इन इन्द्रदेवने विस्तृत
द्यावापृथिवीको अपने तेजसे अतिक्रमण किया था । इन इन्द्रके
महत्त्वका द्यावापृथिवी पराभव नहीं कर सकी थी अर्थात् इनके
महत्त्वका संकोच नहीं कर सकी थी ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्
स्वरालिन्द्रो दम आ विश्वगूर्नः स्वरिरमन्त्रो ववच्चे
रणांय ॥ ६ ॥

अस्य । इत् । एवं । म । रिरिचे । महिज्त्वम् । दिवः । पृथिव्याः ।

परि । अन्तरिक्षात् ।

स्वराट् । इन्द्रः । दमे । आ । विश्वगूर्तः । सुअरिः । अमत्र ।

वनेसे । रणाय ॥ ६ ॥

अस्येदेव अस्यैवेन्द्रस्य महित्वम् महत्त्वं माहात्म्यं दिवः द्युलो-
कात् परि उपरि म रिरिचे । ॐ अत्र मेषुपसर्गो धात्वर्थं बाधते ।
मस्मरणं मस्थानम् इति यत् ॐ । अधिकं भवतीत्यर्थः । तथा
पृथिव्याः परि भूलोकादप्युपरि म रिरिचे । एवम् अन्तरिक्षात्
धावापृथिव्योऽन्तरालवर्तिनो यक्षगन्धर्वाप्सरःप्रभृतीनाम् आश्रय-
भूताद् अन्तरिक्षलोकादपि म रिरिचे । ॐ रिचिर् विरेचने ।
“छन्दसि लुङ्लङ्लिटः” इति वर्तमाने लिट् ॐ । किं च अयम्
इन्द्रो दमे दमयितव्ये शत्रुजने स्वराट् स्वेनैव तेजसा राजमानः ।
विश्वगूर्तः विश्वस्मिन् सर्वस्मिन्नपि कार्ये उद्गूर्णवत् । स्वरिः
सुष्ठु अभिगन्ता । यद्वा स्वरिः शोभनः इन्द्रव्यतिरिक्तेनान्येन
पराभवितुम् अशक्यः शत्रुः सुशब्देन उच्यते । तादृशेन अरिणा
उपेतः । अमत्र युद्धार्थं गमनकुशलः । ॐ अम गत्यादिषु ।
अमिनक्षिपजिषधि० [उ० ३. १०५] इत्यादिना अत्रन् प्रत्ययः ॐ ।
एवं महानुभाव इन्द्रो रणाय रमणीयाय संग्रामाय आ वनेसे आ-
वहति वृष्ट्यर्थं मेघान् मापयति । ॐ चहेल्लेटि “सिञ्चद्दुलं लेटि”
इति सिप् । “बहुलं छन्दसि” इति शपः रलुः । कृत्वकृत्वपत्वानि ।
“लोपस्त आत्मनेपदेषु” इति तलोपः ॐ ॥

इन ही इन्द्रदेवका माहात्म्य द्युलोकके भी ऊपर फैला हुआ है अर्थात् द्युलोकसे भी अधिक है । पृथ्वीलोकके ऊपर भी फैला हुआ है और धावापृथिवीके मध्यके लोक-गन्धर्व अप्सरा आदि

के आश्रय-अन्तरिक्षके ऊपर भी फैला हुआ है । और यह इन्द्रदेव दमन करने योग्य शत्रुओं पर अपने ही तेजसे दमकते रहते हैं । सब कार्योंमें इनका बल प्रचण्ड रहता है । यह भली प्रकार अभिगमन करने वाले हैं, युद्धके लिये गमन करनेमें कुशल हैं ऐसे महानुभाव इन्द्र रणके लिये वृष्ट्यर्थ मेषोंको लाते हैं ६

दशमी ॥

अस्येदेव शवसा शुपन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः
गा न ब्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः

अस्य । इत् । एव । शवसा । शुपन्तम् । वि । वृश्चत् । वज्रेण ।

वृत्रम् । इन्द्रः ।

गाः । न । ब्राणाः । अवनीः । अमुञ्चत् । अभि । श्रवः । दावने ।

सञ्चेताः ॥ १० ॥

अस्येदेव अस्यैव इन्द्रस्य शवसा बलेन तेजसा शुपन्तम् शुपन्तम् । ॐ शुप शोपणे । रयनि प्राप्ते व्यत्ययेन शः । ऋदुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे विकरणस्वर एव शिष्यते ॐ । उक्तरूपं वृत्रम् इन्द्रो देवः वज्रेण आयुधेन वि वृश्चत् व्यन्धिनत् । तथा गा न पणिभिरपहृता गा यथा अमुञ्चत् मोचितवान् एवं ब्राणाः वृत्रेण आवृता अपः । ॐ वृश् वरणे । कर्मणि लिट् । शानचि “बहुलं ध्वन्दसि” इति यको लुक् । शानचो ङित्वाद् गुणामावे यण् आदेशः ॐ । कीदृशीरपः । अवनीः अवित्रीः सकलमालि-रक्षणहेतुभूता अमुञ्चत् मेषं भित्त्वा अवर्षात् । तथा कृत्वा दावने हविर्दात्रे यजमानाय श्रवः सर्वैः श्रयमाणं विख्यातम् अन्नं सचेताः यजमानेन समानचित्तः सन् अभि । ॐ उपसर्गश्रुतयो-

अक्रियाध्याहारः ॐ । अम्यगमयत् । अथ वा आभिमुख्येन ।
 प्रापच्छद् इति शेषः ॥

इन ही इन्द्रदेवके तेजसे शुष्क होने हुए वृत्रासुरको इन्द्रदेवने
 अपने आयुधसे काट डाला था, और पाणियोंकी हरा हुई गोमों
 को जिम प्रकार छुड़ाया था इसी प्रकार वृत्रासुरसे घेरे हुए,
 सकल पाणियोंको रक्षाके हेतु जलोंकी मेघोंको विदीर्ण करके
 बरसा दिया । इस प्रकार करके हविर्दाता यजमानके लिये सधर्म
 प्रसिद्ध अन्नको समान वित्त होकर दिया ॥ १० ॥

एकादशी ॥

अस्येदु त्वेपसां रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीम-
 यच्छत् ।

ईशानकृद् दाशुपे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः
 अस्य । इत् । ऊं इति । त्वेपसा । रन्त । सिन्धवः । परि । यद् ।
 वज्रेण । सीम् । अयच्छत् ।

ईशानकृत् । दाशुपे । दशस्यन् । तुर्वीतये । गाधम् । तुर्वणिः ।
 करितिः कः ॥ ११ ॥

अस्येदु अस्येवेन्द्रस्य त्वेपसा दीप्तेन बलान् सिन्धवः स्यन्दन-
 शीला नद्यो रन्त अरन्त स्वस्त्रे स्थाने रमन्ते । यद् यस्मात् कार-
 णाद् अयम् इन्द्रो वज्रेण सीम् सर्वतः पनान् सिन्धून् वज्रेण पर्य-
 यच्छत् परितो नियमितवान् । तस्माद् रमन्त इति पूर्वत्र संबन्धः ।
 किं च ईशानकृत् शत्रून् ईन्द्रो आत्मानं स्वामिनं कुर्वन् अथ वा
 दुरिद्रस्य ईशानकर्ता दाशुपे हविर्दातारम् यजमानाय दशस्यन्तुर्वी-

भिमतं भयच्छन् इन्द्रः तुर्वीतये एतत्संज्ञकाय अगाधे जले निमग्नाय
तुर्वणिः तूर्णवनिः शीघ्रं संमक्ता सन् गाधम् प्रतिष्ठा कः अकः
अर्कापीत् । ॐ करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेलुक् ।
गुणः । "हल्ढधा०" इत्यादिना तलोपः ॐ ॥

इन ही इन्द्रके दीप्त बलसे स्यन्दनशील नदियें अपने २
स्वानमें रमण करती हैं, क्योंकि—इन इन्द्रदेवने वज्रके द्वारा इन
नदियोंको चारों ओरसे नियमित कर दिया है, अत एव यह
नदियें रमण करती हैं । और यह इन्द्रदेव यजमानको ईश बनाने
वाले हैं और हविर्दाता यजमानको अभिलषित फल देने वाले
हैं और अगाध जलमें निमग्न तुर्वीतिके लिये शीघ्र ही प्रतिष्ठाको
देने वाले हैं ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

अस्मा इदु प्र भंरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः
क्रियेधाः ।

गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेप्यन्नर्णस्यपां चरर्ध्व १२

अस्मै । इत् । ऊं इति । म । भ्र । तूतुजानः । वृत्राय । वज्रम् ।
ईशानः । क्रियेधाः ।

गोः । न । पर्व । वि । रदा । तिरश्चा । इप्यन् । अर्णसि । अपाम् ।
चरर्ध्व ॥ १२ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव वृत्राय अस्य वृत्रस्य वधार्थं तूतुजानः
अत्यर्थं त्वरमाणः अत्यर्थं चक्षायमानौ वा ईशानः सर्वस्य स्वामी
क्रियेधाः कियद् इदं शत्रुबलम् इति तुच्छीकृत्य तस्य बलस्य धारकः ।

अथ वा क्रममाणः सन् शत्रु धारकः वज्रं म भर महर मयोजय ।
न केवलं महस्मात्रं किं नु सकलीकुर्वित्याह । गोर्न पर्व यथा मां
सार्थिनो गोर्वाभादेः पशोः पर्व-पर्वणि प्रतिपर्वं द्विन्दन्ति तद्वत् ।
अर्थासि उदकावि इप्सन् इच्छन् अपां चरर्धे चरणाय भूमौ प्रवा-
हाय तिरश्चा तिर्यगञ्जनैन-वज्रेण वि रद विशेषेण वृत्रं विलेखय ।
विविधं द्विन्दीत्यर्थः ॥ ॐ अत्र निरुक्तम् । अस्मै महर तूर्णं तत्
माणो वृत्राय वज्रम् ईशानः । कियेधाः । कियद्वा इति वा क्रम-
माणया इति वा । गोरिव पर्वणि वि रद मेघस्येव्यन्नर्णस्यपां
चरणायेति [नि० ६. २०] ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस वृत्रके वधके लिये अत्यन्त त्वरा करते हुए
सबके स्वामी आप आगे बढ़ शत्रु को दावते हुए वज्रका महा
करिये । (केवल महार ही न करिये, किंतु खण्ड २ कर डालिये)
जैसे मांसार्थी पुरुष पशुके खण्ड २ करते हैं, इसी प्रकार आप
जल चाह कर जलको भूमि पर बहानेके लिये तिरछे वज्रसे वृत्र
(मेघ) को विदीर्ण करिये ॥ १२ ॥

त्रयोदशी ॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृधायमाणो निरिणाति
शत्रून् ॥ १३ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । प्र । ब्रूहि । पूर्व्याणि । तुरस्ये । कर्माणि ।
नव्यः । उक्थैः ।

युधे । यत् । इष्णानः । आयुधानि । अरुधायमाणः । निरिणाति ।
शत्रून् ॥ १३ ॥

उक्त्यैः । उक्तं स्तुतिम् अर्हन्तीति उच्यते शस्त्राणि । तैः
नव्यः स्तुत्यो य इन्द्रः अस्मेदु अस्मैव तुरस्य युद्धार्थं त्वरमाण-
स्वेन्द्रस्य पूर्वाणि पुराणानि कर्माणि एतत्कृतानि बलकर्माणि
हे स्तोतः न ब्रूहि प्रशंस । यत् यदा युधे घोषनाय आपुधानि
वज्रादीनि इष्टानः आभीक्ष्ण्येन प्रेरयन् । ॐ इष आभीक्ष्ण्ये ।
क्रैयादिकः । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । शानचश्चिच्चाद् अन्तोदा-
त्तत्वम् ॐ । शत्रून् ऋधायमाणः हिंसश्च इन्द्रः निरिणाति अभि-
मुखं गच्छति । तदानीं न ब्रूहीति पूर्वेण संबन्धः । ॐ निरि-
णाति । रीगतिरेपणयोः । “क्रयादिभ्यः आ” । “वादीनां ह्रस्वः”
इति ह्रस्वत्वम् । तिपः पिच्चाद् अनुदात्तत्वे विकरणस्वरः शिष्यते
“तिङि चोदात्तवति” इति गतेर्निघातः । यद्भुतयोगात् “तिङ्-
तिङः” इति निघाताभावः ॐ ॥

शस्त्रोंके द्वारा स्तुति करने योग्य जो इन्द्र है उन ही युद्धके
लिये त्वरा करने वाले इन्द्रके प्राचीन बलमय कर्मोंको हे स्तोतः !
आप गाइये, जब युद्ध करनेके लिये वज्र आदिको चारोंवार
प्रेरित करते हुए और शत्रुओंका संहार करते हुए इन्द्र अभि-
मुख होकर चढ़ाई करें, उस समय गाइये ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

अस्मेदुं भिया गिरयश्च दृहा द्यावां च भूमां जनुपंस्तुजेते
उपो वेनस्य जोगुवान ओणि सद्यो भुवद् वीर्याय
नोधाः ॥ १४ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । भिया । गिरयः । च । दृहाः । द्यावा ।

भूमा । जनुपः । तुजेते इति ।

उपो इति । वेनस्य । जोगुवानः । ओणिम् । सद्यः । भुवत् ।
वीर्याय । नोधाः ॥ १४ ॥

अस्यैव इन्द्रस्य जनुषः जन्मतः मादुर्भूत एव । यद्वा जनुषः
उत्कृष्टजन्मवतोस्येति व्याख्येयम् । भिया पक्षब्धेदनभयेन गिर-
यश्च पर्वता अपि दृढा दृढानि अप्रचयावितानि अभूवन् । पर्वत-
द्रव्यसामान्यापेक्षया नपुंसकलिङ्गता । किं च अस्य भिया घावा
च भूमा च घावापृथिव्यावपि तुजेते । ॐ तुजिर्हिसार्धोपि अत्र
कम्पने वर्तते ॐ । कम्पेते इत्यर्थः । ॐ अत्र मध्ये चशब्दस्य
पाठरञ्जानन्दसः । “दिवो घावा” इति दिग्शब्दस्य घावादेशः ।
“सुपां सुलुक्” इति टादेशः । “देवताद्वन्द्वे च” इत्युभयपद-
मकृतिस्वरत्वम् । पदद्वयमसिद्धिरपि साम्प्रदायिकी ॐ । किं च
वेनस्य कान्तस्य ओणिम् दुःखस्यापेनोदकं रक्षणम् । ॐ ओण
अपनयने इत्यस्माद् ओणादिक इत्ययः ॐ । जोगुवानः अनेकैः
सूक्तैः शब्दयन् नोधाः नवनस्य स्तवस्य धारयिता एतन्नामा
महर्षिः वीर्याय सामर्थ्याय सद्यः तदानीमेव उपो उपैव समीप
एव भुवत् भवेत् अभवत् । वीर्यवान् अभवद् इत्यर्थः ॥

इन इन्द्रके मादुर्भूत होते ही पंख काटे जानेके डरसे पर्वत दृढ़
चन गए थे और इनके भयसे घावापृथिवी भी काँपते हैं । और
इन कमनीय दुःख दूर करने वालेकी अनेक सूक्तोंसे प्रशंसा
करते हुए नोधा महर्षि शीघ्र ही वीर्यवान् होगए थे ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

अस्मा इदु त्यदनुं दार्येषामेको यद् वंने भूरेरीशानः ।
प्रेतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्ये सुष्विमावदिन्द्रः १५

अस्मै । इत् । ऊं इति । त्यत् । अनु । दायि । एषाम् । एकः ।
यत् । वन्ने । भूरेः । ईशानः ।

म । एतशम् । सूर्ये । पस्पृधानम् । सौवश्ये । सुष्टिम् । आवत् ।
इन्द्रः ॥ १५ ॥

अस्मा इत् अस्मा एवेन्द्राय त्यत् तत् मसिद्धं स्तोत्रं सोम-
लक्षणम् अन्नं वा अनु आनुलोभ्येन दायि अदायि दीयते ।
अस्मा एवेत्युक्तं तत्र कारणम् आह । यत् यस्मात् कारणाद्
भूरेः प्रभूतस्य धनस्य हविषः स्तोत्रस्य वा ईशानः स्वामी इन्द्रः
एकः स्तोत्रादिविषये केवलः असाधारणः सन् वन्ने । असाधा-
रण्यं याचितवान् इत्यर्थः । किं च अयम् इन्द्रः सौवश्ये स्वश्व-
स्यापत्ये एतन्नामके राजनि रक्षणीयत्वेन निमित्तभूते सति सूर्ये
देवे पस्पृधानम् सौवश्यसहायत्वेन पुनःपुनः स्पर्धमानम् । ॐ स्पर्ध
संवर्षे । अस्माल्लिङः कानच् । द्विर्वचने “शर्षूर्वाः स्वयः” इति
एकारः शिष्यते । भात्वकारस्य लोपो रेफस्य संप्तसारणं च
पृषोदरादित्वात् । चित्वाद् अन्तोदात्तत्वम् ॐ । एतशम् एतन्ना-
मानं महर्षिं सुष्टिम् सुष्टु इन्द्रार्थं सोमाभिषवं कुर्वाणं आवत् मरु-
र्षेण रक्षितवान् । यद्वा सौवश्ये स्वश्वस्यापत्ये सूर्ये इति व्या-
ख्येयम् । सूर्यः स्वश्वस्य तपसा वृष्टः सन् तस्य पुत्रो भूद् इत्ययम्
अर्थः आख्यायिकासुखेनावगन्तव्यः । शिष्टं पूर्ववत् ॥

इन इन्द्रदेवके लिये ही स्तोत्र वा सोमरूपी अन्न अनुलोम-
रीतिसँ दिया जाता है, क्योंकि—प्रभूत धन हवि वा स्तोत्रके
स्वामी इन्द्रने स्तोत्र आदिके विषयमें असाधारणकी याचना की
थी । और इन इन्द्रदेवने सौवश्य नामक राजाकी रक्षाके अव-
सर पर सूर्यदेवसे बारम्बार स्पर्धा करते हुए एतश नामक
महर्षिकी सोमाभिषवके कारण रक्षा की थी ॥ १५ ॥

षोडशी ॥

एवा ते हारियोजना सुवृत्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो
अक्रन् ।

एषु विश्वेषंशसं धियं धाः प्रातर्भक्ष धियावसुर्ज-
गम्यात् ॥ १६ ॥

एव । ते । हारि॒योज॒न । सु॒वृ॒त्ति । इन्द्र । ब्रह्माणि । गोत॒मा॒सः । अ॒क्रन् ।

धा । ए॒षु । वि॒श्व॒र्ष॒शस॒म् । धि॒यम् । धाः । प्रा॒तः । म॒क्षु ।
धि॒या॒व॒सुः । ज॒ग॒म्या॒त् ॥ १६ ॥

हर्योरश्वयोर्योजनम् अस्मिन् रये स तथोक्तः । तस्य स्वादि-
त्वेन संवन्धी हारियोजनः । हे हारियोजन इन्द्र गोतमासः गोत-
मगोत्रोत्पन्ना मर्षयः सुवृत्ति सुष्टु आर्वर्जकानि अमिष्टुती-
करणकृशालानि ब्रह्माणि स्तुतिरूपाणि मन्त्रजातानि ते तत्रैव एव
एवंप्रकारेण अक्रन् अकृतवत् । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे यस०”
इत्यादिना च्लेर्लुक् । अन्तादेशः । तस्य छित्वात्र गुणमावे-
यणादेशः । “इतश्च” इति इकारलोपे संयोगान्तलोपे च अडा-
गमः ॐ । एषु स्तोत्रेषु विश्वेषंशसम् बहुविवरूपयुक्तं धियम् ।
धिया लभ्यत्वाद् धीर्धनम् उच्यते । यद्वा धीशब्दः कर्मवचनः ।
पर्यादिबहुविवरूपं धनं अपिष्टोमादि बहुविवरूपं कर्म वा आ-
धाः आचेष्टि स्यादप्य । प्रातः इदानीमिव परेशुरपि प्रातःकाले
धियावसुः बुद्ध्या कर्मणा वा मासवन इन्द्रो मक्षु शीघ्रं जगम्यात्
अस्मत्प्रज्ञापयम् आगच्छतु ॥

इति चतुर्गेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ोंको अपने रथमें जोतने वाले इन्द्र ! गौतम गोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि अभिमुख करनेमें कुशल मन्त्रात्मक स्तोत्रोंको आपक लिये ही करते हैं, इन स्तोत्राओंमें आप अनेक प्रकारके रुशोंमें युक्त पशु आदि धन वा अग्निष्टोम आदि अनेक प्रकारका कर्प स्थापित करिये । इस समयकी समान दूसरे दिन भी प्रातःकाल बुद्धिसे धनको प्राप्त करने वाले इन्द्रदेव हमारे रक्षाके लिये शीघ्र आवें ॥ १६ ॥

चतुर्थं अनुवाचं द्वितीयं सूक्तं समाप्तं (६५१)

आभिसविके युग्माहनि माग्यं दिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे
“य एक इद्धव्यः” इति सूक्तं संपातसंज्ञया विनियुक्तम् । सूत्रितं
हि । “युग्मेष्विन्द्रः पूर्भिदातिरदासमर्कैः [२०. ११] य एक
इद्धव्यश्चर्पणीनाम् [२०. ३६] यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः
[२०. ३७] इति संपातानाम् एकैकम् अहरहरावपते पृष्ठये
छन्दोमेषु दशमे च” इति [वै० ६. १] ॥

आभिसविक युग्माहन् माग्यं दिनसवनके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रम्
“य एक इद्धव्यः” सूक्तं संपातं नामसै विनियुक्तं हुआ है । इस
विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“युग्मेष्विन्द्रः पूर्भिदातिरद्
दासमर्कैः (२० । ११) य एक इद्धव्यश्चर्पणीनाम् (२० । ३६)
यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः (२० । ३७) इति संपातानां
एकैकं अहरहरावपते पृष्ठये छन्दोमेषु दशमे च” (वैतानसूत्र ६।१) ॥

तं प्रथमा ॥

य एक इद्धव्यश्चर्पणीनामिन्द्रं तं गोभिरभ्यर्चि आभिः ।
यः पत्यन्ते वृषभो वृषण्यावान्त्सुतयः सत्वां पुरुमायः
सहस्वान् ॥ १ ॥

यः । एकः । इत् । हव्यः । चर्पणीनाम् । इन्द्रम् । तम् ।
गीऽभिः । अभि । अर्चे । आभिः ।

यः । पत्यते । वृषभः । वृष्यस्वान् । सत्यः । सत्वा । पुरुऽमायः ।
सहस्वान् ॥ १ ॥

चर्पणीनाम् । मनुष्यनामैतत् । मनुष्याणां यजमानानां यः
इन्द्रः एक इत् एक एव हव्यः माधान्येन यज्ञे दातव्यः । यद्वा
जयकामानां राजादीनां स्वसहायत्वेन एक एव हव्यः । तं दात-
व्यम् इन्द्रम् आभिः क्रियमाणप्रकाराभिगीर्भिः स्तुतिवाग्भिः
अभि अर्चे । अर्चतिः स्तुतिकर्मा । अभिष्टौमि । किं च यो वक्ष्य-
माणगुणविशिष्ट इन्द्रः पत्यते सर्वस्येश्वरो भवति । इन्द्रं विशि-
नष्टि । वृषभः कामानां वर्पिता वृष्यस्वान् वृष्यं वर्षणयोग्यं
बलम् तद् अस्यास्तीति वृष्यस्वान् । ❀ “मादुपधायाः” इति
मत्तुपो वक्ष्यम् । “अन्येषामपि दृश्यते” इति दीर्घः । मत्तुपः
पित्राद् अनुदात्तत्वे “यतोऽनावः” इत्याद्युदात्तत्वम् ❀ । सत्यः
सत्यफलः सत्वा बलस्य सादयिता पुरुमायः बहुकर्मा सहस्वान्
बलवान् एवम् उक्तगुणोपेतो य इन्द्रः पत्यते । तं गीर्गिरभ्यर्चे
इति संबन्धः ॥

जो इन्द्रदेव यजमान मनुष्योंके एक ही आवाहन करने योग्य
हैं उन आवाहन करने योग्य इन्द्रका मैं इन स्तुतिवाणियोंसे पूजन
करता हूँ । यह इन्द्रदेव सबके ईश्वर होते हैं, कामनाओंकी पूर्ति
करने वाले हैं, वर्षण योग्य बलसे सम्पन्न हैं, सत्यफल हैं, बल
को प्राप्त कराने वाले हैं, बहुतसे कर्मोंको करने वाले हैं, ऐसे
इन्द्रकी मैं स्तुतियोंसे पूजा करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

तमुं नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासोऽभि
वाजयन्तः ।

नक्षत्राभं तत्तुरिपर्वतेऽष्टामद्रोऽवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥

तम् । ऊं इति । नः । पूर्वे । पितरः । नवग्वाः । सप्त । विमानः ।

अभि । वाजयन्तः ।

नक्षत्राभम् । तत्तुरिम् । पर्वतेऽस्याम् । अद्रोऽवाचम् । मति-
भिः । शविष्ठम् ॥ २ ॥

तमुं तमेवेदं नः अस्माकं संबन्धिनः पूर्वे पुरातनाः पितरः
कर्मणा पितृलोकं प्राप्ताः पालयितारो नवग्वाः नवभिर्मासैर्लब्ध-
फलाः सन्तः सन्नाह ये उन्मितास्ते नवग्वाः नवभिर्मासैराप्तगो-
फला वा । सप्त सप्तमंख्याका विमानः मेराचिनः वाजयन्तः
वाजम् अन्नं इविर्लक्षणम् इन्द्राय उच्यन्तः वाजिनं बलिनं कुर्वन्तो
वा मतिभिः स्तुतिभिः इन्द्रम् अभि । ॐ उपसर्गश्रुतेष्वेव क्रिया-
ध्याहारः ॐ । अभितुष्टुबुस्तिर्यः । कीदृशम् इन्द्रम् । नक्षत्राभम् ।
नक्षत्राभं तत्तुरिपर्वतेऽष्टामद्रोऽवाचं मतिभिः शविष्ठम् ।
दुर्गेमात् तारकं पर्वतेऽष्टाम् पर्वते मेरे अवस्थितम् अद्रोऽवाचम्
अद्रोऽग्न्या अनतिक्रमणीया वाचो यस्य सः अद्रोऽवाक् तम्
अद्रोऽवाचं शविष्ठम् अनिशयेन बलवन्तम् ॥

नव मानसं मिद्धि पाने बाले, इविरूप अन्नको इन्द्रके तिये
चारते हुए, विद्वान् कर्मने पितृलोकको प्राप्त हुए हमारे सात
पूर्व पुरुषोंने इन्द्रकी स्तुति की थी । यह इन्द्रदेव शत्रुओंकी

हिंसा करने वाले हैं, दुर्गमसे तारने वाले हैं, पर्वतमें स्थित रहते हैं, इनकी बाणियोंका अतिक्रम नहीं होता है और परमवली हैं २
तृतीया ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुषीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो माद-
यध्यैः ॥ ३ ॥

तम् । ईमहे । इन्द्रम् । अस्य । रायः । पुरुषीरस्य । नृवतः ।
पुरुक्षोः ।

यः । अस्कृधोयुः । अजरः । स्वःऽवान् । तम् । आ । भर ।
हरिऽवः । मादयध्यै ॥ ३ ॥

तं मसिद्धम् इन्द्रम् ईमहे याचामहे । याचनाविषयं दर्शयति ।
अस्य रायः । रयिरिति धननाम । एतद् धनम् । वीदृशं तत् ।
पुरुषीरस्य वीराः पुत्रादयः बहुभिर्वीरैरुपभोक्तव्यम् । नृवतः नरो
मर्त्याः सेवकाः तैः सहितम् । पुरुक्षोः क्षुरित्यन्ननाम । वदन्नम् ।
उक्तविशेषणविशिष्टं धनम् ईमहे इति संबन्धः । किं च यो रयिः
अस्कृधोयुः अचिद्धन्नः अजरः जरारहितः स्वर्वान् स्वः स्वर्गः
सुखं वा तद्दान् तम् उक्तगुणविशिष्टं रयिम् हे हरिवः हर्षाख्या-
स्ववन्निद्र मादयध्यै अस्मान् मादयितुम् आ भर आहर ।
⊗ यदि स्तुत्यादा । “हेतुमति च” इति णिच् । तुमर्पे अध्यय-
त्प्रयः । प्रत्ययस्वरेण तृतीयस्य उदात्तत्वम् ⊗ ॥

हम इन इन्द्रसे पुत्र आदि बहुतसे वीरोंसे युक्त, सेवकोंसे
सम्पन्न विशाल अन्नपरिमाण वाले धनकी याचना करते हैं ।

जो घन अच्छिन्न है, जरारहित है, सुखमद है, हे इरि नामक
घोड़ोंसे सम्पन्न इन्द्र ! ऐसे घनको आप हमें प्रदान करिये ३
चतुर्थी ॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिञ्जस्तितारं आनशु
सुम्नमिन्द्र ।

कस्ते भागः किं वयो दुध खिदः पुरुहूत पुरुवसो-
सुरग्नः ॥ ४ ॥

तत् । नः । वि । वोचः । यदि । ते । पुरा । चित् । अस्तितारः ।
आनशुः । सुम्नम् । इन्द्र ।

कः । ते । भागः । किम् । वयः । दुध । खिदः । पुरुहूत ।
पुरुवसो इति पुरुवसो । असुरग्नः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र पुरा चित् पूर्वमपि ते तव जरितारः स्तोतारः सुम्नम्
सुखं यदि आनशुः त्वत्तः सकाशात् प्राप्ताः तर्हि तत् सुम्नम्
सुखं नः स्तोतृणाम् अस्माकमपि वि वोचः प्रब्रूहि । प्रयच्छेति
भावः । तस्य सुम्नस्य उत्कोचभूतः असुरग्नः शत्रूणां हन्तुस्ते तव
भागो यज्ञे निर्दिष्टः कः । किं वयः किं हविर्लक्षणम् अन्नं तव
दातव्यम् । तं स्तोत्रादिरूपं भागं सोमादिहविर्लक्षणम् अन्नं च हे
दुध दुर्धर हे खिदः शत्रूणां खेदयितः हे पुरुहूत बहुभिराहूत हे
पुरुवसो बहुघन एवमुक्तैर्गुरोरूपेण इन्द्र नः अस्माकं ब्रूहि प्रब्रूहि ।
❀ खिद इति । खिद दैन्ये इत्यस्मात् एयन्तात् लिटः ववसुरा-
देशः । “वस्वेकाजाइवसाम्” इति नियमाद् इडभावः । द्विर्वचन-
प्रकरणे “द्वन्द्वसि वा” इति रिक्छपाद् अन्वयात् । “मनुवसो
रुः संवुर्दा द्वन्द्वसि” इति रुक्त्वम् । आमन्त्रितनिघातः ❀ ॥

हे इन्द्र ! आपके प्राचीन स्तोता यदि आपसे सुखको पाचुके हैं, तो उस सुखको हम स्तोताओंको भी प्रदान करिये । उस सुखकी रिरवतरूप असुरोंको संहार करने वाला आपका जो भाग यज्ञमें निर्दिष्ट है वह कौनसा है और आपको हविरूप कौनसा अन्न देना चाहिये । उस स्तोत्र आदि रूप भागको और सोम आदि हविरूप अन्नको भी हे दुर्धर ! हे शत्रुओंको खेदमें डालनेवाले ! हे पुरुहूत ! हे बहुधन ! आप हमसे कहिये ४ पञ्चमी ॥

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्टामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य
नू गीः ।

तुविग्राभं तुविकृमिं रभोदां गातुमिपे नक्षते तुम्रमच्छं
तम् । पृच्छन्ती । वज्रहस्तम् । रथेऽस्थाम् । इन्द्रम् । वेपी ।

वक्वरी । यस्य । नु । गीः ।

तुविग्राभम् । तुविकृमिम् । रभःऽदाम् । गातुम् । इपे ।

नक्षते । तुम्रम् । अच्छं ॥ ५ ॥

यस्य स्तोतुर्यजमानस्य वेपी । वेप इति कर्मनाम । यागादि-
लक्षणकर्मवती वक्वरी गुणानां प्रवचनशीला गीः वाग् वज्र-
हस्तम् वज्रं हस्ते धारयन्तं रथेष्टाम् रथे अवस्थितं तं प्रसिद्धम्
इन्द्रं पृच्छन्ती मरुतं कुर्वती । अभिगच्छति स्तौति वेति शेषः ।
तुविग्राभम् वह्नीं ग्राहकं तुविकृमिम् बहुकर्माणं रभोदाम् रभसो
पलस्य दातारम् उक्तलक्षणम् इन्द्रं स यजमानो गातुम् सुखम्
इपे इच्छति । नु इति पूरणः । किं चतुम्रम् अभिगन्तारं स्वरयितारं
वा शत्रुम् अच्छं अभिमुख्येन नक्षते गच्छति ॥

जिस स्तोता यजमानकी याग आदि रूप कर्म वाली, गुणों का प्रवचन करने वाली बाणी वज्रधारी रथमें स्थित इन्द्रसे प्रश्न करती हुई इन्द्रको प्राप्त होती है । बहुतोंका ग्रहण करने वाले, बहुतसे कर्मों वाले, बलप्रद इन्द्रसे यजमान सुखकी इच्छा करता है । और त्वरा करने वाले शत्रुको अभिमुख होकर प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

अ॒या ह॒ त्वं मा॒यया॑ वा॒वृ॒धानं॑ म॒नोजु॑वां स्वतवः॒
पर्व॑तेन ।

अ॒च्यु॒ता चिद् बी॒लि॒ता स्वो॑जो रु॒जो वि दृ॒हा धृ॑प॒ता
वि॒र॒प्शिन् ॥ ६ ॥

अ॒या । ह॒ । त्वम् । मा॒यया॑ । वा॒वृ॒धानम् । म॒नः॒ऽजु॒वा । स्व॒तवः॒ ।
पर्व॑तेन ।

अ॒च्यु॒ता । चि॒त् । बी॒लि॒ता । मु॒ऽओ॒जः । रु॒जः । वि । दृ॒हा ।
धृ॑प॒ता । वि॒र॒प्शिन् ॥ ६ ॥

हे स्वतवः स्वापचक्षल इन्द्र त्वं मनोजुवा मनोवत् शीघ्रं गच्छता पर्वतेन पर्वतना वज्रेण अया अनया प्रसिद्धया मायया शक्त्या ववृधानम् भृशं वर्धमानं त्वम् तं प्रसिद्धं वृत्रं वि रुजः व्यरुजः विशेषेण अभाङ्क्षीः । तथा हे स्वोजः शोभनबल हे विरप्शिन् । विरप्शोति महन्नाम । हे महन् इन्द्र त्वम् अच्युता चिद् अच्युतानि अन्यैरच्यावयितव्यान्यपि बीलिता बीलिनानि दृढानि अशिथिलीकृतानि दृढा दृढानि शत्रुनगराणि धृपता धर्षकेण वज्रेण वि रुजः विदारितवान् असि ॥

हे स्वायत्तबल इन्द्र ! आप मनकी समान शीघ्र चलने वाले पर्व चाले वज्रसे मायाके द्वारा बद्धते हुए प्रसिद्ध वृत्रासुरको विशेषरूपसे नष्ट कर चुके हैं । तथा हे शोभन बलसे सम्पन्न महत्त्वमय इन्द्र ! आपने दूसरोंसे च्युत करनेके अयोग्य दृढ शत्रु-नगरोंको भी धर्पक वज्रसे विदारण कर डाला था ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रतं प्रत्नवत् परितंसयध्यै
स नो वक्षदनिमानः सुवह्नेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि
तम् । वः । धिया । नव्यस्या । शविष्ठम् । प्रत्नम् । प्रत्नवत् ।
परितंसयध्यै ।

सः । नः । वक्षत् । अनिमानः । सुवह्ना । इन्द्रः । विश्वानि ।
अति । दुर्गहानि ॥ ७ ॥

हे यजमानाः वः युष्मदर्थं शविष्ठम् । शवइति बलनाम । अति शयितबलं प्रत्नम् पुरातनं तं प्रसिद्धम् इन्द्रं नव्यस्या नवतरया धिया स्तुत्या प्रत्नवत् पुराणा महर्षयो यथा एवं परितंसयध्यै अलं-कर्तुम् । प्रवृत्तोस्मीति शेषः । तसि अलंकारे । इदित्वान्नुम् । तुमर्थे अध्येमत्ययः । मत्ययस्वरेण उपान्त्योदात्तः । अनिमानः निमानरहितः इषत्ताश्न्यः । महान् इत्यर्थः । सुवह्ना शोभनं वक्ष वहनं यस्य स सुवह्ना शोभनवहनः स उक्तलक्षण इन्द्रः नः अस्मान् विश्वानि सर्वाणि दुर्गहाणि दुर्गपनानि भानियानि दुस्तराणि सर्वाण्यपि अति वक्षत् अतिवदतु ॥

हे यजमानों ! आपके लिये परमबली प्राचीन इन्द्रको नवीन स्तुतिसे प्राचीन महर्षियोंकी समान में अलंकृत करनेके लिये

प्रवृत्त होगया हूँ । परिमाणशून्य और शोभन वाहनो वाले इंद्र
हमें सब दुस्तर विषयोके पार पहुँचावें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

आजनायद्रुहणे पार्थिवानि दिव्यानि दीप्योन्तरिक्षा
तपं वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विपं शोचय
क्षामपश्च ॥ ८ ॥

आ । जनाय । द्रुहणे । पार्थिवानि । दिव्यानि । दीपयः । अन्तरिक्षा ।
तपं । वृषन् । विश्वतः । शोचिषा । तान् । ब्रह्मद्विपे । शोचय ।
क्षाम् । अपः । च ॥ ८ ॥

हे इन्द्र त्वं द्रुहणे साधुजनानां द्वेष्टुः जनाय जनस्य राक्षसादेः
पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि दिव्यानि दिवि भवानि अन्तरिक्षा
अन्तरिक्षाणि अन्तरिक्षे भवानि च स्थानानि आ दीपयः आ सम-
न्तात् तापय । हे वृषन् कामानां वर्पितः इन्द्र त्वं विश्वतः सर्वतो
विद्यमानान् तान् राक्षसादीन् शोचिषा त्वदीयया दीप्त्या तप दह ।
किं च ब्रह्मद्विपे ब्राह्मणद्वेष्ट्रे राक्षसादये । ब्रह्मद्विपं दुग्धम् इत्यर्थः ।
क्षाम् पृथिवीम् अपश्च अन्तरिक्षं शोचय दीपय । ॐ क्षाम् इति ।
क्षि निवासगत्योः । तौदादिकः । “अन्येष्वपि दृश्यते” इति
सोपसर्जनो विधीयमानो ढप्रत्ययः “अपिशब्दः सर्वोपाधि-
व्यभिचारार्थः” इत्युक्तेर्निरूपपदेभ्योपि भवति । क्षियन्ति निव-
सन्त्यस्यां प्राणिन इति क्षा वसुंधरा । प्रत्ययस्वरः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सज्जनोंसे द्वेष करने वाले राक्षस आदिके
पृथिवीलोकके, धुलोकके और अन्तरिक्ष लोकके स्थानोंको चारों
ओरसे सन्तप्त करिये । हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले इन्द्र !

आप चारों ओर विद्यमान राक्षस आदिको अपनी दीप्तिसे भस्म कर डालिये । और ब्राह्मणोंसे द्वेष करने वाले राक्षस आदिको भस्म करनेके लिये पृथिवीको और धुलोकको भी दीप्त करिये—
नवमी ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगत् त्वेष संदृक्
धिष्ण्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे
वि मायाः ॥ ६ ॥

भुवः । जनस्य । दिव्यस्य । राजा । पार्थिवस्य । जगत् । त्वेष-
संदृक् ।

धिष्ण्व । वज्रम् । दक्षिणे । इन्द्र । हस्ते । विश्वाः । अजुर्य ।
दयसे । वि । मायाः ॥ ६ ॥

हे त्वेषसंदृक् दीप्तसंदर्शन इन्द्र दिव्यस्य दिवि भवस्य जनस्य राजा ईश्वरः भुवः भवसि । जगत् जङ्गमस्य पार्थिवस्य च राजा भवसि । दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्ण्व निधेहि । तेन निहितेन वज्रेण विश्वाः सर्वा माया आसुरीः वि दयसे विबाधसे । ॐ दय दान-
रक्षणगतिर्हिंसादानेष्विति धातुः ॐ । हे अजुर्य जरयितुम् अशक्य इन्द्र त्वम् इति ॥

हे दीप्तसंदर्शन इन्द्र ! आप धुलोकमें रहने वाले जनोंके राजा हैं, दक्षिण हाथमें वज्रको धारण करिये और उस वज्रसे सब आसुरी मायाओंको बाधित करिये । हे जीर्ण करनेके अयोग्य इन्द्र ! आप आसुरी मायाओंको बाधित करिये ॥ ६ ॥

दशमी ॥

आ संयतामिन्द्र एः स्वस्ति शंभुतूर्याय बृहतीममृधाम् ।

यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्सुतुका नाहु-
पाणि ॥ १० ॥

आ । सम्पद्यतम् । इन्द्र । नः । स्वस्तिम् । शत्रुऽतूर्याय । बृह-
तीम् । अमृधाम् ।

यया । दासानि । आर्याणि । वृत्रा । करः । वज्रिन् । सुतुका ।
नाहुपाणि ॥ १० ॥

शत्रुतूर्याय शत्रूणां तारणाय बृहतीम् महतीम् अमृधाम् अहि-
सितां संपतम् संपतीं संगच्छमानां स्वस्तिम् क्षेमलक्षणां संपदम्
हे इन्द्र त्वं नः अस्मभ्यम् आ हर । हे इन्द्र वज्रिन् वज्रवन् यया
स्वस्त्या दासानि कर्मणा आत्मानम् उपक्षपयितुं हीनानि वृत्रा
वृत्राणि शत्रुभूतानि नाहुपाणि नहुपा मनुष्याः तत्संबन्धीनि
मनुष्यजातानि आर्याणि अरणीयानि श्रेष्ठानि तथा सुतुका सुतु-
कानि शोभनापत्यभूतानि पुत्रस्थानीयानि करः अकरोः ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! जिस क्षेम करने वाली सम्पत्तिसे आप
दासोंको और शत्रुभूत मनुष्योंको श्रेष्ठ और पुत्रस्थानीय बना
देते हैं, शत्रुओंको तरनेके लिये उस महती अहिसिता, प्राप्त
होती हुई सम्पत्तिको आप हमारे लिये लाइये ॥ १० ॥

एकादशी ॥

स नो न्युज्जिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गंहि
प्रयज्यो ।

न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्रय-
द्रिक् ॥ ११ ॥

सः । नः । नियुत्सभिः । पुरुहूत । वेधः । विश्वञ्चाराभिः । आ ।

गहि । प्रयज्यो इति प्रयज्यो ।

न । याः । अदेवः । वरते । न । देवः । आ । आभिः । याहि ।

तूयम् । आ । मदद्यद्रिक् ॥ ११ ॥

हे पुरुहूत बहुभिर्यजमानैराहूत हे वेधः सर्वस्य विधातः हे प्रयज्यो प्रकर्षेण ईदृश प्रकृष्टगमन वा स तादृशस्त्वं विश्वचाराभिः व्याप्तवालाभिर्विश्वेषां वारयित्रीभिर्वरणीयाभिर्वा नियुद्भिः अश्वैः नः अस्मान् आ गहि आगच्छ । या नियुतस्तवागमनसाधनाः अदेवः देवविलक्षणः असुरो न वरते न वारयति तथा देवोपि न वरते । आभिः कैरपि अनिवार्याभिर्नियुद्भिः मदद्यद्रिक् मदभिमुखदृष्टिः अस्मदभिमुखः सन् तूयम् तूर्णम् आ याहि आगच्छ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे यजमानोसे आहूत ! हे सबके विधातः ! हे अधिकता से पूज्य आप अयालों वाले अश्वोंके द्वारा हमारे पास आइये । आपके आगमनके साधन जिन अश्वोंको असुर नहीं रोकते और न देवता रोक सकते हैं, उन अश्वोंके द्वारा आप शीघ्रतापूर्वक मेरे अभिमुख होते हुए आइये ॥ ११ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (६५२)

आभिसविके तृतीयेहनि पष्ठे च “यस्तिग्मभृङ्गः” इति संपातसंज्ञकं सूक्तं माध्यन्दिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियुक्तम् । स्र्गं तु पूर्वसूक्तेन सह उदाहृतम् ॥

आभिसविक तीसरे दिनमें और छठे दिनमें भी “यस्तिग्मभृङ्गः” यह संपातसंज्ञक सूक्त माध्यन्दिन सवनके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियुक्त होता है ॥ इसका सूत्र पहिले सूक्तके साथ कह दिया है ।

तत्र मयमा ॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यवयति
प्र विश्वाः ।

यः शश्वतो अदाशुपो गयस्य प्रयन्तासि सुष्ट्वितराय
वेदः ॥ १ ॥

यः । तिग्मशृङ्गः । वृषभः । न । भीमः । एकः । कृष्टीः । च्य-
वयति । प्र । विश्वाः ।

यः । शश्वतः । अदाशुपः । गयस्य । प्रयन्ता । असि । सुष्ट्वि-
तराय । वेदः ॥ १ ॥

हे इन्द्र यस्त्वं तिग्मशृङ्गः तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्याम् उपेतो वृषभो
न भीमः वृषभ इव भयजनकः । तथा त्वम् एकः असहायस्त्वं विश्वाः
सर्वाः कृष्टीः । मनुष्यनामैतत् । सर्वान् अस्माकं शत्रुजनान् प्र
च्यावयसि प्रकर्षेण अपगमयसि । यत्र त्वं शश्वतः । बहुनामै-
तत् । वधोः अदाशुपः हविरदचवतः अयजमानस्य गयस्य ।
गयम् इति गृहनाम । गृहसदृशस्य यथा कोशगृहं धनपूर्णं वर्तते
एवम् अमदानेन धनपूर्णगृहसदृशस्य लुण्ठकस्य वेदः धनं सुष्ट्वि-
तराय । सुष्टु सोमाभिपववान् सुष्ट्वी । अतिशयेन सुष्ट्वी सुष्ट्वि-
तरः । तादृशापयजमानाय प्रयन्तासि प्रकर्षेण नियमयिता मदाता
भवसि ॥

हे इन्द्र ! जो आप तीखे सींगों वाले वृषभकी समान भयजनक
हैं, तथा वह आप एक ही हमारे सब शत्रुओंको दूर भगा देते
हैं और आप अपनेको प्रायः हवि न देने वाले अयजमानके धन-

पूर्ण घरके धनको, सोमका अधिकतासे अभिषव करने वाले यजमानको अधिकतासे देते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय
शिञ्जन् ॥ २ ॥

त्वम् । ह । त्यत् । इन्द्र । कुत्सम् । आवः । शुश्रूषमाणः । तन्वा ।
समर्ये ।

दासम् । यत् । शुष्णम् । कुयवम् । नि । अस्मै । अरन्धयः ।
आर्जुनेयाय । शिञ्जन् ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वं ह त्वं खलु त्यत् तत् तदा कुत्सम् एतन्नामानं
समर्ये मर्यैर्मर्त्यैर्योद्विष्टभिः सहितः संग्रामः समर्यं तस्मिन् । अथ
वा मर्यैश्च त्विग्भिः सहिते यज्ञ तन्वा शरीरेण शुश्रूषमाणः उप-
चरन् आवः अरत्तः । यत् यदा अस्मै आर्जुनेयाय अर्जुन्याः पुत्राय
कुत्साय दासम् एतत्संग्रहम् असुरं शुष्णम् असुरं कुयवं च असुरं
शिञ्जन् तेषां धनं कुत्साय प्रयच्छन् नि अरन्धयः नितरां वशम्
अनैषीः ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने अर्जुनीके पुत्र कुत्सके लिये शुष्ण
नामक असुरको और कुयव नामक असुरको दण्ड देकर उनका
धन देकर उनको बड़े वशमें कर लिया था, उस समय यज्ञमें
कुत्सकी शरीरसे उपचार करके रक्षा की थी ॥ २ ॥

तृतीया ॥

त्वं घृष्णो घृपता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरुतिभिः
सुदासम् ।

प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पुरुम्
त्वम् । घृष्णो इति । घृपता । वीतहव्यम् । प्र । आवः । विश्वाभिः ।
ऊतिभिः । सुदासम् ।

प्र । पौरुकुत्सिम् । त्रसदस्युम् । आवः । क्षेत्रसाता । वृत्रहत्येषु ।
पुरुम् ॥ ३ ॥

हे घृष्णो शत्रुणां धर्षक इन्द्र त्वं घृपता शत्रुधर्षकेण वज्रेण
वीतहव्यम् दत्तहविष्कं सुदासम् शोभनदानम् एतन्नामकं राजा-
नम् अथ वा वीतहव्यं सुदासं च विश्वाभिः सर्वाभिः ऊतिभिः
रक्षणाभिः प्रावः मारुतः । किं च वृत्रहत्येषु संग्रामेषु क्षेत्रसाता
क्षेत्रसाता भूमिदाने निमित्तभूते सति पौरुकुत्सिम् पुरुकुत्सपुत्रं
त्रसदस्युं राजानं पुरुं च आवः ॥

हे शत्रुघ्नो को दवाने वाले इन्द्र ! आपने शत्रुघ्नो को दवाने वाले
वज्रके द्वारा, वीतहव्य और सुदास नामक राजाकी सकल रक्षक
शक्तियोंके द्वारा बड़ी रक्षा की थी । और आप संग्रामोंके अव-
सर पर और भूमिदानके अवसर पर पुरुकुत्सके पुत्र राजा त्रस-
दस्युकी और पुरुकी रक्षा कर चुके हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि
त्वं नि दस्युं चुमुर्नि धुनि चास्वापयो दभीतये सुहन्तु

त्वम् । नृऽभिः । नृऽमनः । देवऽवीर्ता । भूरीणि । वृत्रा । हरिऽअरव ।
हंसि ।

त्वम् । नि । दस्युम् । चुम्भुरिम् । धुनिम् । च । अस्वापयः ।
दभीतये । सुऽहन्तु ॥ ४ ॥

हे नृमणः नृभिर्नेतृभिः स्तोतृभिर्मननीय नृषु यजमानेषु अनु-
ग्रहमनोयुक्तं वा हे हर्यश्व हरिनामकारवोपेत इन्द्र त्वं देववीर्ता ।
देवा वियन्ति आगच्छन्ति भक्षयन्त्यत्रेति वा देववीतिर्यज्ञः । अथ
वा देवा युद्धार्थं गच्छन्त्यत्रेति देववीतिर्देवसंग्रामः । तस्मिन्नि-
मित्तभूते सति नृभिः नेतृभिर्गोदृष्टभिर्मरुद्भिः सहितः सन् भूरीणि
वहूनि वृत्रा वृत्राणि आवरकाणि रक्षांसि पापानि च हंसि हननं
करोषि । किं च हे इन्द्र त्वं दभीतये दभीतिनामकाय राजर्षये
तदर्थं सुहन्तु । अविमक्तिकोयं निर्देशः । सुहन्तुः शोभनहनन-
साधनवज्रोपेतः सन् दस्युं चुम्भुरिं धुनिं च नि अस्वापयः व्यनाशयः ॥

हे मनुष्य यजमानों पर मनमें अनुग्रह करने वाले नृमणः ।
और हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप यज्ञ वा संग्रामके
अवसर पर योधा मरुतोंके साथ बहुतसे आवरक राक्षस और
पापोंका संहार कर डालते हैं । और हे इन्द्र ! आपने दभीति
नामक राजर्षिके लिये, हननके शोभन साधन वज्रको लेकर
दस्यु चुम्भुरि और धुनिको भी नष्ट कर डाला था ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

तव ज्योत्स्नानि वज्रहस्तानि नव यत् पुरां नवति
च सद्यः ।

निवेशने शततमाविषेपीरहं च वृत्रे नमुंचिमुताहन् ५

तव । च्यौत्नानि । वज्रहस्त । तानि । नव । यत् । पुरः । नव-
तिम् । च । सद्यः ।

निऽवेशने । शतऽतमा । अविवेपीः । अहन् । च । वृत्रम् । नमु-
चिम् । वृत्र । अहन् ॥ ५ ॥

हे वज्रहस्त इन्द्र तव तानि प्रसिद्धानि बलानि च्यौत्नानि
अतिदृढानि परैरनभिभाव्यानि यत् यस्मात् कारणात् च्यौत्नै-
स्तैर्वलैः सहितः सन् नव नवतिं च पुरः एकोनशतसंख्याकानि
पुराणि अमुरसंबन्धीनि सद्यस्तदानीमेव घाटीमुखेनैव । व्यना-
शय इति शेषः । निवेशने निवेशनाय शततमा शततमो पुरो च
अविवेपीः व्यामोः । ॐ विप्लु व्याप्तौ । यद्वलुगन्ताद् अस्मात्
लुह् । अभ्यासगुणाभावश्चान्दसः ॐ । वृत्रं च अहन् नमुचिं
नामामुरं च अहन् हतवान् असि ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपके प्रसिद्ध बल अनिदृढ़ हैं, क्योंकि-
उन बलोंसे सम्पन्न रह कर आपने अमुरोंके निन्यानवे पुरोंको
नष्ट कर डाला था और निवेशनके लिये सौर्वी पुरीमें व्याप्त
होगए थे और आपने वृत्र तथा नमुचि नामक अमुरको भी मार
डाला था ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुपे सुदासे
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुषाक
वाजम् ॥ ६ ॥

सना । ता । ते । इन्द्र । भोजनानि । रातऽहव्याय । दाशुपे ।
सुदासे ।

(२६२) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

वृष्णे । ते । हरी इति । वृषणां । युनजिम । व्यन्तु । ब्रह्माणि ।

पुरुऽशाक । वाजम् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ते तव रातहव्याय दत्तहव्याय दाशुपे यजमानाय
सुदासे ता तानि त्वया दत्तानि भोजनानि भोग्यानि धनानि
सना सनानि सनातनानि । यभूवुरिति शेषः । हे पुरुशाक बहु-
कर्मन् इन्द्र वृष्णे कामानां वर्षित्रे ते तुभ्यम् । त्वाम् आनेतुम्
इत्यर्थः । वृषणा वृषणां हरी अश्वौ युनजिम रथे योजयामि । ब्रह्माणि
अस्मदीयानि स्तोत्राणि वाजम् बलिनं त्वां व्यन्तु गच्छन्तु ॥

हे इन्द्र ! आपको हवि देने वाले यजमान सुदासके लिये आप
के दिये हुए भोग्य धन सनातन होगए थे । हे बहुकर्मन् इन्द्र !
कामनाओंकी वर्षा करने वाले आपको लानेके लिये वृषण हरि
नामक अश्वोंको मैं रथमें नियुक्त करता हूँ । हमारे स्तोत्र बली
घने हुए आपको प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघायं भूम हरिवः परादै
त्रायंस्व नोवृकेभिर्वरुथैस्तव प्रियासः सूरिपु स्याम ७

मा । ते । अस्याम् । सहसावन् । परिष्टी । अघायं । भूम ।
हरिऽवः । पराऽदै ।

त्रायंस्व । नः । अवृकेभिः । वरुथैः । तव । प्रियासः । सूरिपु ।
स्याम ॥ ७ ॥

हे सहसावन् बलवन् इन्द्र । ॐ मध्ये वृतीयाविभक्तिरब्धा-
ॐ । अथ वा सह एव सहसं तदन् । ॐ मतुपि "अन्ये-

धामपि दृश्यते" इति दीर्घः ॐ । हे हरिवः हरितवर्णोपेताश्व इन्द्र
ते तव अस्यां क्रियमाणायां परिष्टौ पर्येषणायां परादै परादानाय
परित्यागाय एवंलक्षणाय अघाय पापाय वयं मा भूम । किं च
हे इन्द्र नः अस्मान् अट्टकेभिः अट्टकैरहिंसितव्यै वरूयैः । वार-
यन्त्युपद्रवान् इति वरूयानि रक्षणानि । तैर्नः अस्मान् प्रायस्व
पाहि । वयं च सूरिषु स्तोत्रेषु विद्वत्सु मन्ये तव प्रियासः प्रियाः
स्याम भवेम ॥

हे बलवान् इन्द्र ! हे हरित वर्ण वाले अश्वोंसे सम्पन्न इन्द्र !
इस आपकी की जाती हुई परिष्टिमें हम त्यागने योग्य पापके
लिये न होवें । और हे इन्द्रदेव ! हमको आप अहिंसितव्य रक्षा-
साधनोंसे पालिये और हम भी स्तोता तथा विद्वानोंमें आपके
प्रिय होवें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः
नि तुर्वशं नि यादं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करि-
ष्यन् ॥ ८ ॥

प्रियासः । इत् । ते । मघवन् । अभिष्टौ । नरः । मदेम । शरणे ।
सखायः ।

नि । तुर्वशम् । नि । यादम् । शिशीहि । अतिथिग्वाय । शंस्यम् ।
करिष्यन् ॥ ८ ॥

हे मघवन् धनवन्निन्द्र ते तव अभिष्टौ अभ्येषणायाम् अधि-
गमनेच्छायां नरः हविषा नेतारो यजमाना वयं सखायस्तव सखि-

भूताः समानख्यानाः अत एव मियास इत् मिया एव सन्तः
शरणे । गृहनामैतत् । मदीय एव गृहे मदेम हृष्टा भवेम । किं च
अतिथिग्राय अतिथ्यर्था गावो यस्य सः । अतिथिग्वः । अथ वा
सत्कारार्थम् अतिथीन् गच्छतीत्यतिथिग्वः । तस्मै राज्ञे शंस्यम्
शंसनीयं मख्यापनीयं सुखं करिष्यन् कुर्येस्त्वं तुर्वशम् एतन्नामकं
राजानं नि शिशीहि निशितं कुरु । तथा याद्वम् यदुकुलोत्पन्नं
राजानं च नि शिशीहि ॥

हे धनवान् इन्द्र ! आपकी अभिगमनकी इच्छामें हविके नेता
मित्ररूप हुए हम यजमान मिय होते हुए ही अपने घरमें मसन्न
रहें । आप अतिथिगु राजाके लिये मशंसनीय सुख देते हुए तुर्वश
नामक राजाको भी तीक्ष्ण करिये । और यदुकुलोत्पन्न राजाको
भी तीक्ष्ण करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशासं
उक्था ।

ये ते हवेभिर्वि पणीरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय
तस्मै ॥ ९ ॥

सद्यः । चित् । जु । ते । मघवन् । अभिष्टौ । नरः । शंसन्ति ।
उक्थशासः । उक्था ।

ये । ते । हवेभिः । वि । पणीन् । अदाशन् । अस्मान् । वृणीष्व ।
युज्याय । तस्मै ॥ ९ ॥

हे मघवन्निन्द्र ते तव अभिष्टौ अभ्येषणायाम् अभिगत्या सत्यां

तव अभिगमने सनि नरः स्तुतिनेतार ऋत्विजः उक्थशासः उक्थानां
 शस्त्राणां शंसितारः सद्यश्चिन्तु तवाभिगमनसमय एव उक्था
 उक्थानि शस्त्राणि शंसन्ति कुर्वन्ति । ते इत्युक्तं के त इति तान्
 विशिनष्टि । ये नरः नेतार ऋत्विजः ते तव हवेभिः हवैः आहानैः
 पत्नीन वणिग्भूतान् लुब्धकान् अयजतो नरान् व्यदाशन् । दाश-
 निर्वधकर्मा । विशेषेण द्विसितवन्तः । ते शंसन्तीति पूर्वत्र संबन्धः ।
 यस्माद् एवं तस्माद् उक्थानां शंसितान् अस्मान् तस्मै प्रसिद्धाय
 युज्याय योजयितव्याय फलाय यागाय वा वृणीष्व वरणं कुरु
 स्वीकुरु ॥

हे मयान् इन्द्र ! आपका अभिगमन होने पर स्तुति करने वाले
 और शस्त्रोंको कहने वाले ऋत्विज आपके अभिगमनके समय
 ही शस्त्रोंका उच्चारण करते हैं । जो नेता ऋत्विज आपके आहानों
 से वणिग्भूत लोभी यजन न करने वाले मनुष्योंको मारते हैं वे
 ऋत्विज आपके अभिगमनके समय शस्त्रोंका उच्चारण करते हैं ।
 इस कारण हम उक्थोंका शंसन करने वालोंको योजयितव्य फल
 यागके लिये वरण कीजिये ॥ ६ ॥

दशमी ॥

एते स्तोमा नरां नृतम् तुभ्यमस्मद्रघुश्चो ददन्तो मघानि
 तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूराविता च
 नृणाम् ॥ १० ॥

एते । स्तोमाः । नरां । नृतम् । तुभ्यम् । अस्मद्रघुश्चो । ददन्तः ।
 मघानि ।

तेषाम् । इन्द्र । वृत्रहृत्ये । शिवः । भूः । सखा । च । शूरः ।
अविना । च । नृणाम् ॥ १० ॥

नराम् नेतृणां मध्ये हे नृप अतिशयेन नेतः इन्द्र अस्मद्वयञ्च
अस्मान् अञ्चन्तः अस्मदभिमुखाः मयानि मंहनीयानि धनानि
हविल्लक्षणानि ददतः प्रयच्छन्तः सन्तः एते इदानीं कृपकारा
स्तोमाः स्तवाः तुभ्यं त्वदर्थम् । कृता इति शेषः । यद्वा मयानि ददतः
प्रयच्छतः । ॐ चतुर्थ्यर्थे पठ्यी ॐ । प्रयच्छते तुभ्यम् इति व्याख्ये
यम् । हे इन्द्र तेषाम् एतेषाम् अस्माभिः कृतानां स्तोमानाम् ।
यद्वा तेषां स्तोमसंपादकानाम् अस्माकम् इति व्याख्येयम् । वृत्र-
हृत्ये वृत्रस्य आवरकस्य पापस्य वा हृत्ये हनने निमित्तभूते सति
शिवः सुखयिता भूः भव । किं च नृणाम् हविषां स्तुतीनां वा
नेतृणाम् अस्माकं शूरस्त्वं सखा च भूः सखिवन्मित्रभृतो भव
अविता च रक्षिता च भूः भव ॥

हे नेताओंमें भी परम नेता इन्द्र ! हमारे अभिमुख होकर श्रेष्ठ
धनोंको मदान करने वाले आपके लिये ये स्तोत्र हैं । हे इन्द्र !
इन हम स्तोत्र करने वालोंके पापनिवारणके अवसर पर आप
सुख देने वाले हों और हवि पहुँचाने वाले हमारे लिये आप
मित्रकी समान होजावें और हमारे रक्षक भी बनें ॥ १० ॥

एकादशी ॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् शूयं पात स्वस्तिभिः
सदा नः ॥ ११ ॥

नू । इन्द्र । शूर । स्तवमानः । ऊती । ब्रह्मजूतः । तन्वा । वावृधस्व ।

उप । नः । वाजान् । मिमीहि । उप । स्तीन् । यूयम् । पात ।

स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ११ ॥

हे शूर शौर्योपेत इन्द्र ऊनी ऊत्पा रक्षणया निमित्तभृतया स्तव-
मानः । ॐ कर्मणि कर्तृमत्ययः ॐ । अस्माभिः स्तूयमानः तथा
ब्रह्मजूनः ब्रह्मणा हविषा जूनः प्रापितश्च सन् तन्वा स्वकीयेन शरी-
रेण बृहद्वस्व अत्यर्थं प्रवृद्धो भव । ततो नः अस्मभ्यं वाजान्
अन्नानि उप मिमीहि । उप प्रयच्छेत्यर्थः । तथा स्तीन् स्त्यायन्ति
समर्पयन्ति कुलम् इति स्तयः पुत्राद्याः । तानपि उप मिमीहि ।
हे अन्ये अग्न्यादयो देवाः यूयमपि स्वस्तिभिः । सु अस्तीति स्वस्ति
क्षेमः । तैः सदा नः अस्मान् पात रक्षत ॥

इति चतुर्योनुवाकः ॥

हे शूरनासम्पन्न इन्द्र ! रक्षाके कारण हमसे स्तुति पाते हुए
तथा मन्त्रके द्वारा हवि पाते हुए आप अपने शरीरसे बढ़िये ।
फिर हमारे लिये घन प्रदान करिये और पुत्र आदिको प्रदान
करिये । और हे अन्य अग्नि आदि देवताओं ! आप भी क्षेम
करके हमारी रक्षा करते रहिये ॥ ११ ॥

श्रीसर्वे काण्डक चतुर्थ अनुवाकम् चतुर्थं सूक्तं समाप्त (६५३)

चतुर्थं अनुवाकं समाप्त

अभिसवे पठहे “आ याहि सुपुमा हि ते” इत्यादयो यथाक्रमे
पठ् आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “अभिसव आ
याहि सुपुमा हि न इति पठ् आज्यस्तोत्रिया आरम्भणीयापर्या-
सवर्जम्” इति [वै० ६. १] ॥ पाठक्रमात् “इन्द्रं वो विश्वत-
सरि [२०. ३६. १] “न्यन्तरिक्षमनिरत्” [२०. ३६. २]
इत्येतायोः प्रयोगे प्राप्ते मनिपेयार्थम् आरम्भणीयापर्यासवर्जमित्यु-
क्तम् । तेन “आ याहि सुपुमा हि ते” [२०. ३८. १-३]

“इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद्” [२०. ३८. ४-६] “इन्द्रेण सं हि हत्तसे” [२०. ४०. १-३] “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” [२०. ४१. १-३] “वाचमष्टापदीमहम्” [२०. ४२. १-३] “भिन्धि विरवा अप द्विपः” [२०. ४३. १-३] इति षट् स्तोत्रियाः ॥

तथा गवामयनस्य चतुर्विंशे “इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद्” [२०. ३८. ४-६] इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । “चतुर्विंश इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इत्याज्यस्तोत्रियः” [वै० ६. १] इति सूत्रितत्वात् ॥

तथा स्वरसामाख्येषु त्रिष्वहःसु यथाक्रमम् “आ याहि” इत्यादयं आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “स्वरसामस्वा याहि सुपुमा हि त इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इन्द्रेण सं हि हत्तसे इति” इति [वै० ६. ३] ॥

अभिप्लव षडहमे “आ याहि सुपुमा हि ते” आदिक यथाक्रम छः आज्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अभिप्लव आ याहि सुपुमा हि त इति षट् आज्यस्तोत्रिया आरम्भणीयापर्यासवर्जम्” (वैतानसूत्र ६। १) । पाठक्रम के अनुसार “इन्द्रं वो विरवतस्परि” (२०। ३६। १) “व्यन्तरिक्षमतिरत्” (२०। ३६। २) इनके प्रयोगकी माप्ति होने पर इनके प्रतिषेधके लिये आरम्भणीयापर्यासवर्जम् कहा है ॥ इस कारण “आ याहि सुपुमा हि ते” (२०। ३८। १-३) “इन्द्रमिद् गाथिने बृहद्” (२०। ३८। ४-६) “इन्द्रेण सं हि हत्तसे” (२०। ४०। १-३) “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” (२०। ४१। १-३) “वाचमष्टापदीमहम्” (२०। ४२। १-३) “भिन्धि विरवा अप द्विपः” (२०। ४३। १-३) ये छः स्तोत्रिय हैं ।

तथा गवामयनके चतुर्विंशमें “इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद्” (२०। ३८। ४-६) यह आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बात

को वैतानमूत्र ६ । १ में कहा है, कि—“चतुर्विंश इन्द्रमिह गायिनो
बृहद् इत्याज्यस्तोत्रियः” ॥

तथा स्वरसाम नामक तीन दिनोंमें यथाक्रम “आ याहि”
इत्यादिक आज्यस्तोत्रिय होते हैं। इसी घातको वैतानमूत्र ६ । ३
में कहा है, कि—“स्वरसामस्वा याहि सुपुमा हि त इन्द्रमिह गा-
यिनो बृहद् इन्द्रेण सं हि दक्षसे” ॥

आ याहि सुपुमा हि त इन्द्र सोमं पिवा इमम् ।
एदं वहिः सदो मम ॥ १ ॥

आ । याहि । सुपुम । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिवा । इमम् ॥

आ । इन्द्रम् । वहिः । सदः । मम ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषव कर
लिया है । इस अभिषुत सोमका आप पान करिये । इन बिछी
हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ १ ॥

आ त्वां ब्रह्मयुजा हरी वहन्तामिन्द्र केशिना । उप
ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मयुजा । हरी इति । वहन्ताम् । इन्द्र । केशिना ॥

उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले, अभीष्ट स्थान
को ले जाने वाले, बड़े बड़े अयालों वाले हरी नामक घोड़े आप
को (हमारे यज्ञमें) लावें, आप आकर हमारे आह्वान सुनिये २
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपा मिन्द्र सोमिनः । सुता-
वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमऽपाम् । इन्द्र । सोमिनः ॥

सुतऽवन्तः । हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले सोमयाग कर चुके हैं और अभिषेक किया हुआ सोम हमारे पास है, ऐसे हम सोमपान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रभिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रवाणी-
रनूपत ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । इत् । गाथिनः । बृहत् । इन्द्रम् । अर्केभिः । अर्किणः ॥

इन्द्रम् । वाणीः । अनूपत ॥ ४ ॥

गायामान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही मशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा इन्द्रका ही विशाल पूजन करते हैं, और वाणी भी इन्द्रकी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

इन्द्र इन्द्रयोः सचा समिंश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो
वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । इत् । इयोः । सचा । समिंश्लः । आ । वचुऽयुजा ॥

इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रममें संपुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली प्रकार प्राप्त होते हैं, इन्द्रदेव ही दिन रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयद् दिवि । वि
गोभिरदिमैर्यत् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयत् । दिवि ॥ वि ।

गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्रने दीर्घ दर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ाया है और और मर्यात्मक इन्द्रने किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण किया है ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६५४)

गवामयनादौ संवत्सरे मातःसवने अनुरूपाद् अनन्तरम् “इन्द्रं वो विश्वतस्परि” [२०. ३६. १] इति ऋग् आरम्भणीया । तत्रैव “व्यन्तरिक्षम् अतिरत्” [२०. ३६. २] इति पर्याप्तो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रं वो विश्वतस्परित्यारम्भणीया । व्यन्तरिक्षमतिरदिति पर्याप्तः” इति [वै० ६. ५] ॥ आरभ्यते उच्यमुत्तम् इत्यारम्भणीया । पर्यस्यते परिसमाप्यते अनेन शस्त्रमिति पर्याप्तः ॥

तथा गोसवविषयवैश्यस्तोमेषु त्रिषु एकादेषु “इन्द्रं वो विश्वतस्परि” [२०. ३६] “आ नो विश्वासु हव्यः” [२०. १०४. २] एतौ आज्यदृष्टन्तोत्रिषो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “गोसवविषयवैश्यस्तोमेष्विन्द्रं वो विश्वतस्पर्याणो विश्वासु हव्य इति” इति [वै० ८. १] ॥

गवामयन आदिमें सम्बत्सरके मातःसवनमें अनुरूपके अनन्तर “इन्द्रं वो विश्वतस्परि” (२० । ३६ । १) की ऋचा आरंभणीया है, तहाँ ही “व्यन्तरिक्षम् अतिरत्” (२० । ३६ । २) यह पर्याप्त होना है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि— “इन्द्रं वो विश्वतस्परित्यारम्भणीया । व्यन्तरिक्षमतिरदिति पर्याप्तः” ॥

तथा गोसव विषय वैश्यस्तोमोंके तीन एकादोंमें “इन्द्रं वो

विश्वतस्परि" (२० । ३६) "आ नो विश्वासु हव्यः" (२० । १०४ । ३) यह आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतान-मूत्रमें कहा है, कि—“गोसवविषयवैश्यस्तोमेष्विन्द्रं वो विश्व-तस्पर्माणो विश्वासु हव्य इति” (वैतानमूत्र ८ । १) ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु
केवलः ॥ १ ॥

इन्द्रम् । वा । विश्वतः । परि । हवामहे । जनेभ्यः ॥ अस्माकम् ।
अस्तु । केवलः ॥ १ ॥

हम चारों ओरके प्राणियोंकी ओरसे (हटा कर) इन्द्रका
आहान करते हैं, वह केवल हमारे ही हों ॥ १ ॥

व्यंश्नन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यद-
भिनद् वलम् ॥ २ ॥

वि । अन्तरिक्षम् । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना ॥ इन्द्रः ।
यत् । अभिनत् । वलम् ॥ २ ॥

इन्द्रदेवने दमकते हुए अन्तरिक्षको वृष्टिके जलसे बढ़ाया था
(किसकी सहायतासे बढ़ाया था इसके उत्तरमें कहते हैं, कि—)
सोमरसके पातसे मद् होजाने पर बढ़ाया था (कव) जब इन्द्र
ने बलामुर वा मेघको विदीर्ण किया था ॥ २ ॥

उद् गा आंजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहां सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥

उत् । गाः । आजत् । अद्विरऽभ्यः । आविः । कृण्वन् । गुहा ।
सतीः ॥ अर्वाश्वम् । नुनुदे । बलम् ॥ ३ ॥

इन्द्रदेवने अंगिरा गोत्र वालोंके लिये, गुहामें पड़ी हुई अत
एव अमकाशित गौओंको मकाशित कर दिया था और फिर उन
को बाहर ले आए थे और उन्होंने गौओंका अपहरण करनेवाले
बल नामक असुरको भी आँधे मुख करके गिरा दिया था ॥ ३ ॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृल्हानि दंहितानि च । स्थि-
राणि न पराणुदे ॥ ४ ॥

इन्द्रेण । रोचना । दिवः । दृल्हानि । दंहितानि । च ॥ स्थि-
राणि । न । पराणुदे ॥ ४ ॥

इन्द्रदेवने आकाशमें दमकते हुए ग्रह नक्षत्र आदिको स्थूल
किया है और दृढ़ किया है अत एव स्थिर होनेके कारण उनको
कोई च्युत नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

अपामूर्मिमदंनिव स्तोमं इन्द्राजिरायते । वि ते मदां
अराजिपुः ॥ ५ ॥

अपाम् । ऊर्मिः । मदन्श्च । स्तोमः । इन्द्र । अजिरायते ॥ वि ।
ते । मदाः । अराजिपुः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥
हे इन्द्रदेव । आपका स्तोत्र समुद्र आदिको वृष्टिजलसे हर्षना
देना हुआ रसकी समान शीघ्रतासे आपके मुखसे निकलता है
आपके सोमरानजनिव मदं विशेषरूपसे दमकते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुव क्रमं द्वितीयं सूक्तं समाप्तम् (६५५)

“इन्द्रेण सं हि दत्तसे” इत्यस्य “आ याहि सुपुमा हि ते” [२०. ३८] इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

तथा पृष्ठयस्य तृतीयेदनि “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” [२०. ४०] “वयं घ त्वा सुतावन्तः” [२०. ५२] “त्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] इत्येते आज्यपृष्ठोक्तस्तोत्रिणा भवन्ति । तद्वचनं चैताने । “तृतीय इन्द्रेण सं हि दत्तसे वयं घ त्वा सुतावन्तस्त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै०. ८. ४] ॥

“इन्द्रेण सं हि दत्तसे” इसका “आ याहि सुपुमा हि ते” (२० । ३८) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा पृष्ठयके तृतीय दिनमें “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” (२०।४०) “वयं घ त्वा सुतावन्तः” (२० । ५२) “त्वं न इन्द्रा भर” (२०.। १०८) ये आज्यपृष्ठके उक्तस्तोत्रिण होते हैं । इसी बात को चैतानमूत्र ८ । ४ में कहा है, कि—“तृतीय इन्द्रेण सं हि दत्तसे वयं घ त्वा सुतावन्तस्त्वं न इन्द्रा भरेति” ॥

इन्द्रेण सं हि दत्तसे संजग्मानो अविंभ्युपा । मन्दु
समानवर्चसा ॥ १ ॥

इन्द्रेण । सम् । हि । दत्तसे । सम्जग्मानः । अविंभ्युपा ॥ मन्दु
इति । समानवर्चसा ॥ १ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! आप अभयवान् मरुद्गणसे मिलते हुए
नित्य ही देखे जाते हैं मरुद्गण और आप दोनों एकत्र मिल
कर नित्य प्रमुदित रहते हैं और आप दोनों की दीप्ति समान है ।
अनवधैरभिर्भुभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य
कार्थैः ॥ २ ॥

अनवद्यैः । अभिद्युऽभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति ॥ गणैः ।

इन्द्रस्य । काम्यैः ॥ २ ॥

निष्पाप और दमरुते हुए इन्द्रके काम्यगणोंसे यज्ञ बलपूर्वक शोभा पाता है ॥ २ ॥

आदहं स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

आत् । अहं । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भस्त्वम् । आर्इरिरे ॥

दधानाः । नाम । यज्ञियम् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर यह स्वधा देने पर गर्भत्वको प्राप्त होनाते हैं और यज्ञिय नामको धारण करते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६५६)

“इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” इत्यस्य “आ याहि सुपुमा हि ते” [२०. ३८] इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

तथा पृष्ठयपदहस्य एकविंशस्तोमके चतुर्थेहनि एकाईकीभूते “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” इत्यादयः आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं चैताने । “पृष्ठयस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिः [२०. ४१] विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् [२०. ५४] एवा हसि वीरयुः [२०. ६०] इति” इति [वै०८. २] ॥

“इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” सूक्तका “आ याहि सुपुमा हि ते” (२० । ३८) में विनियोग कह दिया है ।

तथा पृष्ठयपदहके एकविंश स्तोमक चतुर्थ दिनके एकाईकी-भूतमें “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” इत्यादिक आज्यपृष्ठोक्थस्तो-

त्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयस्यै-
कविंश इन्द्रो दधीचो अस्यभिः (२० । ४१) विरवाः पृतना
अभिभूतरं नरम् (२० । ५४) एवा ह्यसि वीरयुः (२० । ६०)”
(वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्रायप्रतिष्कृतः । जघान
नवतीर्नव ॥ १ ॥

इन्द्रः । दधीचः । अस्थभिः । वृत्राणि । अप्रतिष्कृतः ॥
जघान । नवतीः । नव ॥ १ ॥

संग्रामोंमें मुख न मोड़ने वाले इन्द्रदेवने वृत्रासुरके निन्यानवे
पुत्तोंको नष्ट कर दिया है ॥ १ ॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरःपर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विद-
च्छर्यणावति ॥ २ ॥

इच्छन् । अश्वस्य । यत् । शिरः । पर्वतेषु । अपश्रितम् ॥ तद् ।
विदत् । शर्यणावति ॥ २ ॥

पर्वतोंमें अपश्रित अश्वके शिरकी इच्छा करते २ इन्होंने
उसको शर्यणावत्में पाया था ॥ २ ॥

अत्राह गोमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्या चन्द्र-
मसो गृहे ॥ ३ ॥

अत्र । अह । गोः । अमन्वत । नाम । त्वष्टुः । अपीच्यम् ॥
इत्या । चन्द्रमसः । गृहे ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

इस चन्द्रमण्डलरूपी धरमं सूर्यान्मक इन्द्रदेवकी ही एक किरण गई हुई है, इस बातको दूसरी सूर्य किरणें जानती हैं ॥३॥

पञ्चम अनुवाकम चतुर्थं सूक्त समाप्त (६५७)

“वाचमष्टापदीमहम्” इत्यस्य विनियोगः “आ याहि सुषुमा हि ते” [२०. ३८] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अश्वमेधस्य ज्यहस्य द्वितीयेऽहनि “वाचमष्टापदीमहम्” [२०. ४२] “स्वादोरित्था विपूवतः” [२०. १०६] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। “अश्वमेधस्य वाचमष्टापदीमहं स्वादोरित्था विपूवत इति” इति [वै० ८. ३] ॥

“वाचमष्टापदीमहम्” का विनियोग “आ याहि सुषुमा हि ते” (२०। ३८) के साथ कह दिया है।

तथा अश्वमेध ज्यहके दूसरे दिन “वाचमष्टापदीमहम्” (२०। ४२) “स्वादोरित्था विपूवतः (२०। १०६) ये दोनों आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “अश्वमेधस्य वाचमष्टापदीमहम् स्वादोरित्था विपूवतः” (वैतानसूत्र ८। ३) ॥

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि
तन्वममे ॥ १ ॥

वाचम् । अष्टापदीम् । महम् । नवस्रक्तिम् । मृतस्पृशम् ॥

इन्द्रात् । परि । तन्वम् । ममे ॥ १ ॥

मैं इन्द्रदेवसे अष्टापदी, नवस्रक्ति, सत्यका स्पर्श करने वाली बाणीको अपने शरीरमें स्थापित कर चुका हूँ ॥ १ ॥

अनु त्वा रोदसी उभे कक्षमाणमकूपेताम् । इन्द्र यद्
दस्युहाभवः ॥ २ ॥

(२७८) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अनु । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । क्रक्षमाणम् । अकृपेताम् ॥

इन्द्र । यत् । दस्युऽहा । अमवः ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! जय आप दस्युओंका संहार कर रहे थे, तब दुर्वत पड़ते हुए आप पर धावा पृथिवीने कृपा की थी-शक्ति मदान की थी ; उत्तिष्ठन्नोजंसा सह पीत्वी शिमे अवेपयः । सोमं मिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

उत्तिष्ठन् । ओजंसा । सह । पीत्वी । शिमे इति । अवेपयः ॥

सोमम् । इन्द्र । चमू इति । सुतम् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप उठ कर अभिषवणके फलकोंसे निचोड़े हुए सोमका पान करके बलपूर्वक उठ कर अपनी ठोढ़ियोंको संचालित करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६५८)

“भिन्धि विश्वा अप द्विपः” इत्यस्य विनियोगः “आ याहि” [२० ३८] इत्यत्र उक्तः ॥

तथा असौर्धामिण क्रतौ उपरिष्ठान्माध्यंदिनवचनात् प्रातःसवने “भिन्धि विश्वा अप द्विपः” [२०. ४३] इत्यनुरूपम् अभितः “आ नो याहि” [२०. ४] इत्यनुरूपो भवति । तद् उक्तं वैताने । “भिन्धि विश्वा अप द्विप इत्यनुरूपमभित आ नो याहीति” इति [वै० ४. ३] ॥

“भिन्धि विश्वा अप द्विपः” इसका विनियोग (२० । ३८) में कहा दिया है ।

तथा असौर्धामिके क्रतुमें माध्यन्दिनके अनन्तर प्रातःसवनमें

“भिन्धि विश्वा अप द्विपः” (२० । ४३) इस अनुरूपके अनंतर चारों ओर “आ नो याहि” (२० । ४) यह अनुरूप होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“भिन्धि विश्वा अप द्विप इत्यनुरूपमभित आ नो याहीति” (वैतानसूत्र ४ । ३)

भिन्धि विश्वा अप द्विपः परि बाधो जही मृधः ।

वसुं स्पार्ह तदा भर ॥ १ ॥

भिन्धि । विश्वाः । अप । द्विपः । परि । बाधः । जहि । मृधः ॥

वसु । स्पार्हम् । तत् । आ । भर ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओंको आप भेदिये, युद्धकी सब बाधाओंको नष्ट कर दीजिये, तदनन्तर स्पृहणीय धनको हममें पुष्ट करिये यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिर यत् पर्शानि पराभृतम् ।

वसुं स्पार्ह तदा भर ॥ २ ॥

यत् । वीला । इन्द्र । यत् । स्थिर । यत् । पर्शानि । पराभृतम् ॥

जो धन दृढ़ पुरुषमें रहता है, जो स्थिर पुरुषमें रहता है और जो धन पारवोंमें भरा जाता है, उस स्पृहणीय धनको हे इन्द्र ! हमें प्रदान करिये ॥ २ ॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेदत्तस्य वेदति । वसुं स्पार्ह तदा भर ॥ ३ ॥

यस्य । ते । विश्वमानुषः । भूरेः । दत्तस्य । वेदति ॥ वसु । स्पार्हम् । तत् । आ । भर ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुशाके षष्ठं सूक्तम् ॥

(२८०) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

जिस आपके दिये हुए विशाल धनको सब मनुष्य पाते हैं,
उस स्पृहणीय धनको हमें प्रदान करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (६५६)

प्र सम्राजं चर्पणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं
नृपाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

प्र । सम् । राजम् । चर्पणीनाम् । इन्द्रम् । स्तोता । नव्यम् । गीः । भिः ॥
नरम् । नृ । सहम् । मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

मैं पूजनीय, सदा नवीन ही रहने वाले, नेता, नृसाह और
मनुष्योंके राजा इन्द्रकी स्तुतियोंसे स्तुति करूँगा ॥ १ ॥

यस्मिन्नुक्थानि रणयन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो नः समुद्रे ॥ २ ॥

यस्मिन् । उक्थानि । रणयन्ति । विश्वानि । च । श्रवस्या ॥
अपाम् । अवः । नः । समुद्रे ॥ २ ॥

जैसे निम्नस्थलमेंको जाने वाला जलोंका समूह समुद्रमेंको
जाता है, इसी प्रकार जिसमें समस्त उक्थ (स्तोत्र) और अन्न
की इच्छासे किये जाने वाले यज्ञ रमण करते हैं ॥ २ ॥

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं
सनिभ्यः ॥ ३ ॥

तम् । सु । स्तुत्या । आ । विवासे । ज्येष्ठराजम् । भरे । कृत्नुम् ॥
महः । वाजिनम् । सनिभ्यः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तमः सूक्तम् ॥

उनको मैं सुन्दर स्तुतिके द्वारा प्रकाशित करता हूँ, उन शत्रुओं का वर्णन करनेके स्वभाव वाले, बड़े दमकने वाले और स्तोताओंको यश तथा अन्न प्रदान करने वालेको मैं (हविसे) पुष्ट करता हूँ ॥ ३ ॥

पञ्चम अध्यायस्य सप्तम सूक्तसमाप्त (६६०)

तीव्रमुदुपशदोपहव्यख्येषु त्रिषु एकादेषु “अयमु ते समतसि” [२०.४५] “इमा उ त्वा पुरुवसो” [२०.१०४] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः ॥

तथा व्युष्टिग्रहे एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः ॥

तद् उक्तं वैताने । “तीव्रमुदुपशदोपहव्येष्वप्यमु ते समनसीमा उ त्वा पुरुवसो इति । व्युष्टिग्रहे च” इति [वै० ८. १] ॥

तथा संसर्पचतुर्वीरयोश्चतुरहयोः सर्वेष्वहःसु एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “संसर्पचतुर्वीरयोरप्यमु ते समनसीमा उ त्वा पुरुवसो इति” इति [वै० ८. ३] ॥

तीव्र मुदुप शदोपहव्य नामक तीन एकादशोंमें “अयमु ते समतसि” (२० । ४५) “इमा उ त्वा पुरुवसो” (२० । १०४) ये क्रमशः आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं ।

इसी वानको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रमुदुपशदोपहव्येष्वप्यमु ते समनसीमा उ त्वा पुरुवसो इति । व्युष्टिग्रहे च” (वैतानमूत्र ८ । १) ॥

तथा चार दिनमें होने वाले संसर्प और चतुर्वीरके सब दिनों में ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं ।

इसी वानको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“संसर्पचतुर्वीरयोरप्यमु ते समनसीमा उ त्वा पुरुवसो इति” (वैतानमूत्र ८ । ३) ॥

अयमु ते संगतसि कपोतं इव गर्भधिम । वचरतच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

अयम् । ऊँ इति । ते । सम् । अतसि । कपोतः ऽव । गर्भः ऽधिम् ॥

वचः । तत् । चित् । नः । ओहसे ॥ १ ॥

जिस हमारे वचनकी आप तर्कना करते हैं, उस हमारे वचन को कपोत जैसे गर्भधारण करने वाली गर्भधि (कपोती) को प्राप्त होता है तिस प्रकार आप प्राप्त होवें अर्थात् हमारे वचनका सेवन करें ॥ १ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूति-
रस्तु सूनृता ॥ २ ॥

स्तोत्रम् । राधानाम् । पते । गिर्वाहः । वीर । यस्य । ते ॥ वि-
भूतिः । अस्तु । सूनृता ॥ २ ॥

हे धनोंके स्वामी ! स्तुतियें आपको प्राप्तकराने वाली हैं,
हे वीर ! ऐसे आपकी विभूति सूनृता हो ॥ २ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु
ब्रवावहे ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वः । तिष्ठ । नः । ऊतये । अस्मिन् । वाजे । शतक्रतो इति
शतः ऽक्रतो ॥ सम् । अन्येषु । ब्रवावहे ॥ ३ ॥

इति पञ्चमैजुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! इस युद्धमें वा यज्ञमें आप हमारी रक्षाके
लिये ऊँचे खड़े हजिये । हम अन्य पुरुषोंकी स्पर्धा करते हुए
अपने लिये भली प्रकार मार्पना कर रहे हैं ॥ ३ ॥

स्वरसामाख्येषु त्रिष्वहःसु अभिसवे च “सं चोदय चित्रम-
र्वाक्” [२०. ७१. ११] “मणेतारं वस्यो अच्छा” [२०. ४६]
एतां आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ पर्यायेण भवतः । तद् उक्तं वैताने ।
“स्वरसामसु संचोदय चित्रमर्वाक् मणेतारं वस्यो अच्छेति पर्या-
येण । अभिसवे च” इति [वै० ८. ४] ॥

स्वरसाम नामक तीन दिनोंमें और अभिसवमें भी “संचोदय
चित्रमर्वाक्” (२० । ७१ । ११) “मणेतारं वस्यो अच्छा”
(२० । ४६) ये पर्यायसे आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी
वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“स्वरसामसु संचोदय चित्र-
मर्वाक् मणेतारं वस्यो अच्छेति पर्यायेण । अभिसवे च” (वैतान-
सूत्र = १४) ॥

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासहसं युधामित्रान् ॥ १ ॥

प्रणेतारम् । वस्यः । अच्छ । कर्तारम् । ज्योतिः । समत्सु ॥
सासहसम् । युधा । मित्रान् ॥ १ ॥

भली प्रकार मसन्न करने वाले यागोंमें उन्कट्ट ज्योतिको
करने वाले, नेता, और युद्ध करके शत्रुओंको दवाने वाले (इंद्र
का मैं आह्वान करता हूँ) ॥ १ ॥

स नः प्रीतिं पारयाति स्वस्ति नावा पुंरुहूतः । इन्द्रो
विश्वा अति द्विपः ॥ २ ॥

सः । नः । प्रीतिः । पारयाति । स्वस्ति । नावा । पुंरुहूतः ॥
इन्द्रः । विश्वाः । अति । द्विपः ॥ २ ॥

वह पुरुहुत पालक इन्द्रदेव हमको स्वस्तिमयी गीकासे पार
लगावे, वह इन्द्रदेव सब शत्रुओंसे हमें अधिक रखे ॥ २ ॥
स त्वं न इन्द्रं वाजेभिर्दशस्या च गांतुयां च । अन्धो
च नः सुम्न नेपि ॥ ३ ॥

सं । त्वम् । नः । इन्द्र । वाजेभिः । दशस्य । च । गांतुयां ।
च ॥ अन्ध । च । नः । सुम्नम् । नेपि ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! वह आप हमको अग्नेसे; और गमन करने वाली
दश अंगुलियोंसे हमारे अभिमुख मुखको लाते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकम् नवम सूक्तं समाप्त (६६२)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्तयेषु "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२. ६७]
"महौ इन्द्रो य ओजसा" [२०. १३८] इत्येतौ स्तोत्रियानुरूपौ
भवतः । तद् उक्तं वैताने । "तमिन्द्रं वाजयामसि महौ इन्द्रो य
ओजसेति स्तोत्रियानुरूपौ" इति [वै० ४. ३] ॥

तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वङःसु मीतः सवने "इन्द्रो याहि चित्र-
भानो" [२०. ८४] "तमिन्द्रं वाजयामसि" [२०. ४७]
"महौ इन्द्रो य ओजसा" [२०. १३८] इत्येते यथाक्रमम् आज्य-
स्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "छन्दोमेष्विन्द्रो याहि
चित्रभानो तमिन्द्रं वाजयामसि महौ इन्द्रो य ओजसेत्याज्यस्तो-
त्रियाः" इति [वै० ६. ३] ॥

तथा वैश्वदेवादीनां त्र्यङ्गणं द्वितीयेष्वङःसु यथासंभवम्
"तमिन्द्रं वाजयामसि" [२०. ४७] "अस्ताविं मन्म पूर्व्यम्"
[२०. ११६] "तं ते मद्रं गृणीमसि" [२०. ६१] एते आज्य-
पुष्टोक्त्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । "द्वितीयेषु तमिन्द्रं

वाजयामस्यस्तावि मन्म पूर्यं ते ते मदं गृणीमसीति" इति।
[वै० ८. ३] ॥

तथा साकमेघज्यहस्य तृतीयेऽहनि "तमिन्द्रं वाजयामसि"
[२०. ४७] "आयन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] इत्येती
आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "साकमेघस्य
तमिन्द्रं वाजयामसि आयन्त इव सूर्यमिति" इति [वै० ८. ३] ॥
अतिरात्रके अतिरिक्तोऽर्थोऽयम् "तमिन्द्रं वाजयामसि महौ इन्द्रो
य ओजसेति स्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंके मातः सवनमें "इन्द्रा याहि
चित्रभानो" (२० । ८४) "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७)
"महौ इन्द्रो य ओजसा" (२० । १३८) ये यथाक्रम आज्य-
स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—
"छन्दोमेघिन्द्रा याहि चित्रभानो तमिन्द्रं वाजयामसि महौ इन्द्रो
य ओजसेत्याज्यस्तोत्रियाः" (वैतानसूत्र ६ । ३)

तथा वैश्वदेव आदि ज्यहोंके द्वितीय दिनोंमें यथासंभव
"तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७) "अस्तावि मन्म पूर्यम्"
(२० । ११६) "तं ते मदं गृणीमसि" (२० । ६१) ये आज्य-
पृष्ठ उक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । "द्वितीयेषु तमिन्द्रं वाजयामस्यस्तावि
मन्म पूर्यं तं ते मदं गृणीमसि" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा साकमेघ ज्यहके तृतीय दिनमें "तमिन्द्रं वाजयामसि"
(२० । ४७) "आयन्त इव सूर्यम्" (२० । ५८) ये दोनों
आज्य पृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,
कि—"साकमेघस्य तमिन्द्रं वाजयामसि आयन्त इव सूर्यम्"
(वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषां वृषभो
भुवत् ॥ १ ॥

तम् । इन्द्रम् । वाजयामसि । महे । वृत्राय । हन्तवे ॥ सः । वृषा ।
वृषभः । ध्रुवत् ॥ १ ॥

हम विशाल वृत्रासुर (वा मेघ) का संहार करनेके लिये
उन इन्द्रको पुष्ट करते हैं, कामनाओंकी वर्षा करने वाले वह
इन्द्र सबमें श्रेष्ठ होवें ॥ १ ॥

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । धुम्नी
श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

इन्द्रः । सः । दामने । कृतः । ओजिष्ठः । सः । मदे । हितः ।
धुम्नी । श्लोकी । सः । सोम्यः ॥ २ ॥

वह बली इन्द्र (पापियोंका निग्रह करनेके लिये) रज्जुके
रूपमें किये गए हैं, वह प्रसन्नता करने वाले यज्ञमें आहित
होते हैं । वह इन्द्रदेव दमकने वाले हैं, प्रशंसनीय हैं और
सौम्य हैं ॥ २ ॥

गिरा वज्रो न संभृतः सवलो अनपच्युतः । ववत्
ऋध्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥

गिरा । वज्रः । न । सम्भृतः । सवलः । अनपच्युतः ॥
ववत् । ऋध्वः । अस्तृतः ॥ ३ ॥

अच्युत बलवान् इन्द्र पर्वतसे मिलने वाले वज्रकी समान
बलसे भरे हुए हैं । यह अहिंसित श्रेष्ठ पुरुष (शत्रुओंके धनोंको
भजमानों पर) पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमकंभिरकिणः । इन्द्रं
वाणीरनूपत ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । इत् । गा॒यि॒नः । बृ॒हत् । इन्द्रम् । अ॒र्केभिः । अ॒र्किणः ॥

इन्द्रम् । वा॒णीः । अ॒नू॒प॒त ॥ ४ ॥

गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा इन्द्रका ही विशाल पूजन करते हैं और वाणी भी इन्द्रकी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

इन्द्र इ॒न्द्र्योः स॒चा स॒मि॒श्र आ व॒चो॒युजा॑ । इन्द्रो
व॒ज्री हि॒र॒ण्य॒यः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । इत् । इ॒न्द्र्योः । स॒चा । स॒मि॒श्रः । आ । व॒चः॒ऽयुजा॑ ॥

इन्द्रः । व॒ज्री । हि॒र॒ण्य॒यः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथमें संयुक्त होने वाले घोड़ासे भली प्रकार मात्त हाते हैं, इन्द्रदेव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो दी॒र्घाय॑ च॒क्ष॒स आ सूर्य॑ रो॒हय॑द् दि॒वि । वि
गोभि॑रि॒न्द्रि॒मैर॑यत् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । दी॒र्घाय॑ । च॒क्ष॒से । आ । सूर्य॑म् । रो॒हय॑त् । दि॒वि ॥ वि ।

गोभिः । अ॒द्रिम् । ऐ॒र॑यत् ॥ ६ ॥

इन्द्रने दीर्घदर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ा दिया है और सूर्यात्मक इन्द्र किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण करते हैं ॥ ६ ॥

आ या॒हि सु॒पु॒मा हि त॒ इन्द्र॑ सोमं पि॒त्रां इ॒मम् । ए॒दं
व॒हिः स॒दो म॒म ॥ ७ ॥

(२८८) अथर्ववेदसंहिता समाप्य-भाषानुवादसहित

आ । याहि । सुसुम् । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिव । इमम् ॥

आ । इदम् । बहिः । सदः । मम ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषव कर लिया है, इस अभिषुत सोमका आप पान करिये, इन बिड़ी हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ ७ ॥

आः त्वां ब्रह्मयुजाः हरी वहतामिन्द्र केशिनाः । उप
ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मयुजा । हरी इति । वहताम् । इन्द्र । केशिनाः ॥
उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले अभीष्ट स्थान को लेजाने वाले, बड़े २ अयालों वाले हरी नामक घोड़े आपको (हमारे यज्ञमें) लावे, आप आकर हमारे आवाहनको सुनिसे ८ ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमयामिन्द्र सोमिनः । सुता-
वन्तो हवामहे ॥ ९ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमयाम् । इन्द्र । सोमिनः ॥
सुतवन्तः । हवामहे । ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले सोमयाग कर चुके हैं और अभिषव किया हुआ सोम हमारे पास है, ऐसे हम सोमपान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ९ ॥

युञ्जन्ति अन्नमरुपं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते
रोचना दिवि ॥ १० ॥

युञ्जन्ति । व्रजन् । अरुपम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ॥ रोचन्ते ।
रोचना । दिवि ॥ १० ॥

महान् दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विचरण करते हुए, इन्द्रके रथमें हरिनामक अश्व जुतते हैं और वह दमकते हुए अश्व धुलोकमें दमकते हैं ॥ १० ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपञ्चसा रथे । शोणा धृष्णू
नृवाहसा ॥ ११ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विपञ्चसा । रथे ॥
शोणा । धृष्णू इति । नृवाहसा ॥ ११ ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरिनामक अश्वोंको जोतते हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करबोंमें रहते हैं रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्योंको सवारी देने वाले हैं ॥ ११ ॥

केतुं कृणवन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुपद्भि-
रजायथाः ॥ १२ ॥

केतुम् । कृणवन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे ॥ सम् ।
उपद्भिः । अजायथाः ॥ १२ ॥

हे मरणधर्मी मनुष्यों ! महानरहित पुरुषको ज्ञान देने वाले और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ १२ ॥

उदुत्सं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय
सूर्यम् ॥ १३ ॥

उत् । ऊं इति । त्वम् । जातऽवेदसम् । देवम् । वहन्ति । केतवः ॥
दृशे । विश्वाय । सूर्यम् ॥ १३ ॥

किरणों वा अश्व, सब उत्पन्न होने वालोंको जानने वाले
सूर्यात्मक इन्द्रदेवको सबको दिखानेके लिये ऊपरको लाती हैं ॥ १३ ॥
अप त्वे तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूर्याय
विश्ववक्षसे ॥ १४ ॥

अप । त्वे । तायवः । यथा । नक्षत्रा । यन्ति । अक्तुभिः ।
सूर्याय । विश्वऽवक्षसे ॥ १४ ॥

जैसे चोर रातके साथ ही साथ भाग जाते हैं ऐसे ही सबके
द्रष्टा सूर्यके कारण नक्षत्र रातके साथ भाग जाते हैं ॥ १४ ॥
अदृशन्नस्य केनवो विश्वमयो जनां अनु । भ्राजन्तो
अग्नयो यथा ॥ १५ ॥

अदृशन् । अस्य । केतवः । वि । रश्मयः । जनान् । अनु ॥
भ्राजन्तः । अग्नयः । यथा ॥ १५ ॥

अग्निकी समान दमकती हुई इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवकी ज्ञानदाता
किरणों मत्त्येक पुरुषोंके पीछे दीखती हैं ॥ १५ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा
भांसि रोचन ॥ १६ ॥

तरणिः । विश्वऽदर्शतः । ज्योतिःऽकृत् । अ॒सि । सूर्य॑ । विश्व॑म् ।
आ । भा॒सि । रो॒चन॑ ॥ १६ ॥

हे सूर्यात्मक कमनीय इन्द्रदेव ! आप (संसारसागरवी)
नौकारूप हैं आप सबको देखने वाले और ज्योति देने वाले हैं
आप सबको प्रकाशित करते हैं ॥ १६ ॥

प्र॒त्यङ् दे॒वानां॑ वि॒शः प्र॒त्यङ् दु॒दे॒पि मा॒नु॒षीः । प्र॒त्यङ्
वि॒श्वं स्व॒र्दृ॒शे ॥ १७ ॥

प्र॒त्यङ् । दे॒वाना॑म् । वि॒शः । प्र॒त्यङ् । उ॒त् । ए॒पि । मा॒नु॒षीः ॥
प्र॒त्यङ् । वि॒श्वम् । स्व॒र्दृ॒शे ॥ १७ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! आप प्रत्येक मानुषी और दैवी प्रजाको
सामने रख कर उनके सामने उदित होते हैं, प्रत्येक पुरुषको
देखनेके लिये उसको सामने लाकर उदित होते हैं ॥ १७ ॥

येनां॑ पा॒वक॑ च॒क्षसा॑ भु॒र॒ए॒यन्तं॑ ज॒नाँ अ॒नु । त्वं
व॒रु॒ण प॒श्य॑सि ॥ १८ ॥

येनां॑ । पा॒वक॑ । च॒क्षसा॑ । भु॒र॒ए॒यन्तं॑ । ज॒नान् । अ॒नु ॥ त्वम् ।
व॒रु॒ण । प॒श्य॑सि ॥ १८ ॥

हे पवित्र करने वाले पापनिवारक इन्द्र ! पूर्णके पुण्यात्मा
पुरुषोंसे आचरित मार्गमें शीघ्रतासे जाते हुए पुण्यात्मा पुरुषको
आप जिस अनुग्रहदृष्टिसे देखते हैं (उस दृष्टिकी हम स्तुति करते हैं)
वि धामोंमें रजस्पृश्वहर्मिमानो अक्षुभिः । पश्यं
जन्मानि सूर्य ॥ १९ ॥

(२६२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

वि । द्याम् । ए॒नि । रजः । पृ॒थु । अ॒हः । मि॒मानः । अ॒क्तुऽभिः॥

पर॑यन् । जन्मा॑नि । सूर्य॑ ॥ १६ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप उत्पन्न हुए सब प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिये उनको देखते हुए, तथा रात्रियों सहित दिनका निर्माण करते हुए युक्तोक्त भूलोक और विशाल अन्तरिक्षलोकमें अनेक प्रकारसे विचरण करते हैं ॥ १६ ॥

स॒प्त त्वां ह॒रितो॑ रथे॒ वह॑न्ति दे॒व सूर्य॑ । शोचि॑ष्केशं
विच॑त्तणम् ॥ २० ॥

स॒प्त । त्वा । ह॒रितः॑ । रथे॑ । वह॑न्ति । दे॒व । सूर्य॑ । शोचिः॑ष्केशम् ।
विच॑त्तणम् ॥ २० ॥

हे देव ! दमकती हुई किरणों वाले सूक्ष्मद्रष्टा आपको रथमें सात घोड़े सवारी देते हैं ॥ २० ॥

अ॒यु॒क्त स॒प्त शु॒न्ध्यु॒वः सूर॑ो रथ॑स्य न॒प्त्यः । ताभि॑र्याति
स्वयु॑क्तिभिः ॥ २१ ॥

अ॒यु॒क्त । स॒प्त । शु॒न्ध्यु॒वः । सूरः॑ । रथ॑स्य । न॒प्त्यः॑ ॥ ताभिः॑ ।

याति॑ । स्वयु॑क्तिभिः ॥ २१ ॥

इति पञ्चमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

सूर्यात्मक इन्द्रदेवने सात पवित्र रत्नक घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ लिया है और वह उनसे अपनी युक्तियोंके द्वारा चल रहे हैं २१

पञ्चम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (६६३)

विष्णुवति सौर्यपृष्ठे-“अभि त्वा वर्चसा गिरः” इति चतुर्थः स्तोत्रियः ॥

विपुत्रत् सौर्गपृष्ठम् "अभि त्वा वर्चसा गिरः" यह चतुर्थ स्तोत्रिय है ॥

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरणयवः । अभि
वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥

ता अर्पन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं
जात्रीर्यथा हृदा ॥ २ ॥

वज्राणवसाध्यः कीर्तिम्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं
पयः ॥ ३ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च
प्रयन्तस्वः ॥ ४ ॥

आ । अयम् । गौः । पृश्निः । अक्रमीत् । असदत् । मातरम् ।
पुरः ॥ पितरम् । च । प्रयत् । स्वः ॥ ४ ॥

जैसे विवरण करने वाली गौएँ बछड़ेके अभिमुख जाती हैं,
इसी प्रकार बाणियों वर्चसे आपका सिञ्चन करती हुई आपके
अभिमुख जाती हैं ॥ १ ॥

जैसे उत्पन्न हुएकी रक्षा करने वाली उत्पन्न हुए शिशुको
हृदयसे लगाती हैं, इसी प्रकार शुभ्र स्तुतियों वर्चसे इन्द्रको संयुक्त
करती हैं ॥ २ ॥

यह वज्राणवसाधी हैं, यह मुक्त त्रियमाणको कीर्ति आयु
घृत और पयः प्राप्त करावें ॥ ३ ॥

यह तेजसे व्याप्त गगनशील सूर्यात्मक इन्द्र उदयाचल पर आगए हैं और इन्होंने उदयाचल पर चढ़ पूर्वदिशामें दीखकर सब माणियोंकी जननी भूमिको अपनी किरणोंसे ढक दिया है, तदनन्तर इन्होंने चल कर वृषिरूप वीर्यको सींचनेसे सब जगत्के उत्पादक पिता स्वर्लोक और अन्तरिक्षलोकको व्याप्त कर लिया है । यही वृष्टिजलरूप अमृतका दोहन करनेसे गौ कहलाते है ॥ ४ ॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिपः स्वः ॥ ५ ॥

अन्तः । चरति । रोचना । अस्य । प्राणात् । अपानतः ॥ वि । व्यख्यत् । महिपः । स्वः ॥ ५ ॥

प्राणन व्यापारके अनन्तर अपानन व्यापारको करने वाले इन माणियोंके शरीरके मध्यमें मुख्य प्राणरूपसे दमकती हुई सूर्यकी मभा विचरती रहती है । अधिभूतरूपसे वर्तमान महान् सूर्यदेव स्वर्ग आदि ऊपरके समस्त लोकोंको प्रकाशित करते हैं ५
त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्नियत् ।
प्रति वस्तोरहर्दुभिः ॥ ६ ॥

त्रिंशत् । धाम । वि । राजति । वाक् । पतङ्गः । अशिश्नियत् ॥
प्रति । वस्तोः । अहः । दुर्भिः ॥ ६ ॥

इनि पञ्चमेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

दिन और रात्रिके अवयवभूत तीस मुहूर्तरूप अंश इन सूर्यदेवकी किरणोंसे ही प्रतिक्षण विशेषरूपसे दमकते रहते हैं तथा

वेदत्रयीरूप वाणी पक्षीकी समान शीघ्रगामी सूर्यका आश्रय लेकर रहती है ॥ ६ ॥

पञ्चमम अनुवाक में पञ्चादश सूक्त समाप्त (६६१)

विषुवति सौर्यपृष्ठे “यच्छक्रा वाचमारुहन्” इति पष्ठः स्तोत्रियः ॥

विषुवत् सौर्यपृष्ठमें “यच्छक्रा वाचमारुहन्” यह छठा स्तोत्रिय है ।

यच्छक्रा वाचमारुहन् नन्तरि च सिपासथः । सं देवा
अमदन् वृषा ॥ १ ॥

शक्रो वाचमधृष्टा योरुवाचो अधृष्टा हि । मंहिष्ठ आ
मन्दर्दिवि ॥ २ ॥

शक्रो वाचमधृष्टा हि धामधर्मन् विराजति । विमदन्
वहिरासरन् ॥ ३ ॥

तं वो दस्ममृतीपहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वरसं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ४

तम् । नः । दस्मम् । अतिऽसहम् । वसोः । मन्दानम् । अन्धसः ।

अभि । वरसम् । न । स्वसरेषु । धेनवः । इन्द्रम् । गीर्भिः ।

नवामहे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जब अन्तरिक्ष की देवी चाहते हुए स्तोत्र वाणी पर आरुढ़ होते हैं, तब देवता हर्षको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

शक्र अधृष्ट पुरुष पर अपनी वाणी की और विशाल वाणी की धर्षणा न करें, — उसमें बटोर वचन न कहें शत्रुग्रह भरें वचन कहें । हे मंहिष्ठ ! आप धूलोक्रमें मदमें भरिये ॥ २ ॥

हे शक्र ! आप वाणीका कठोरभावसे उच्चारण न करें, विशेष-
रूपसे मदमें भरते हुए और कुशाओं पर आते हुए धामधर्म
विराज रहे हैं ॥ ३ ॥

हे यजमानों ! हम तुम्हारे यागकी पूर्णताके लिये वा तुम्हारे
अभिमत फलके लिये इन्द्रदेवकी स्तुतिप्रकाशिका वाणियोंसे स्तुति
करते हैं । यह इन्द्रदेव दर्शनीय हैं अर्थात् फलाभिलाषियोंको इन
का दर्शन अवश्य करना चाहिये । यह आर्तिका नाश करने वाले
हैं और यह वासक सोमरूपी अन्नके पानसे आनन्दमें भरे रहते
हैं । जैसे सूर्य जिन दिनोंको करता है, उन दिनोंके आने जाने
के समय धेनुएँ हंभा २ करती हुई घड़ड़ोंकी ओरको दूध पिलाने
लिये दौड़ती हैं, इसी प्रकार हम भी (सोम पिलानेके लिये)
इन्द्रकी ओर स्तुतिवाणियोंसे दौड़ते हैं ॥ ४ ॥

सु॒क्तं सु॒दानुं॑ तवि॒षीभि॒रावृ॑तं गि॒रिं न पुं॒रुभो॑जसम् ।

क्षु॒मन्तं॑ वा॒जं श॒तिनं॑ सह॒स्रिणं॑ म॒धू गो॑मन्तमी॒महे ५

यु॒क्तम् । सु॒दानुम् । तवि॒षीभिः । आ॒वृ॒तम् । गि॒रिम् । न ।

पुं॒रु॒भो॒ज॒स॒म् ।

क्षु॒मन्तम् । वा॒जम् । श॒ति॒नम् । सह॒स्रि॒णम् । म॒धू । गो॑मन्तम् ।

ई॒महे ॥ ५ ॥

दीप्तिमय, सुन्दरतासे दान करने योग्य बलवत्, स्तुतिके पात्र,
सैकड़ों और सहस्रों मजाओंका पोषण करने वाले और बहुतसी
गाँवोंसे युक्त धनकी हम इस प्रकार प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार
दुर्मित्तमें मजाएँ जीवनके लिये बहुतसे फन्द मूल आदि अन्तों
से सम्पन्न पर्वतकी प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

तत् त्वां यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविंथ

तत् । त्वा । यामि । सुवीर्यम् । तत् । ब्रह्म । पूर्वचित्तये ।

येन । यतिभ्यः । भृगवे । धने । हिते । येन । प्रस्कण्वम् ।

आविष ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपसे सुन्दर वीर्य सम्पन्न हृद् अन्नकी याचना करता हूँ, उस अन्नकी पूर्वप्रज्ञानके लिये याचना करता हूँ । जिस धनके देने पर नियम वालोंको और भृगु ऋषिको शांति प्राप्त हुई थी और जिस धनसे आपने कण्व नामक ऋषिके पुत्र प्रस्कण्व ऋषिकी रक्षा की थी । उस धनकी इस याचना करते हैं ६

येनां समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णिं ते शवः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीस्तुचक्रदे

येन । समुद्रम् । असृजः । महीः । अपः । तत् । इन्द्र । वृष्णि ।

ते । शवः ।

सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । समुन्नशे । यम् । क्षोणीः ।

अनुचक्रदे ॥ ७ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस बलसे आपने समुद्रके निमित्त सृष्टिकी आदि में समुद्रको पूर्णरूपसे मरनेवाले जलोंकी सृष्टि की है । वह बल सबको अभिलषित फल प्रदान करता है । जलोंसे समुद्रपृथि आदि

इनकी महिमाको बहुतसे शत्रु नहीं पा सकते । इनकी महिमाका पृथ्वीवासी वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥

गङ्गाय अन्वाकमे द्वादश सूक्त समाप्त (६६५)

वाजपेय क्रतु "कन्नव्यो अतसीनाम्" इति सामभगायो भवति । तद् उक्तं वैताने । "कन्नव्यो अतसीनामिति सामभगायः" इति [वै० ४. ३] ॥

तथा गवामपनादी संवत्सरे माध्यन्दिने सवने "कन्नव्यो अतसीनाम्" इति कद्दान् सामभगायो भवति । तद् उक्तं वैताने । माध्यन्दिने कन्नव्यो अतसीनामिति कद्दान् सामभगायः" इति [वै० ६. ५] ॥

वाजपेय क्रतु "कन्नव्यो अतसीनाम्" यह सामभगाय होता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि-कन्नव्यो अतसीनामिति सामभगायः" (वैतानमूत्र ४ । ३) ॥

तथा गवामपनादि संवत्सरमें और माध्यन्दिन सवने "कन्नव्यो अतसीनाम्" यह कद्दान् सामभगाय होता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि-"माध्यन्दिने कन्नव्यो अतसीनामिति कद्दान् सामभगायः" (वैतानमूत्र-६ । ५) ॥

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।

नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गुणन्त आनशुः ।

कन् । नव्यः । अतसीनाम् । तुरः । गृणीत । मर्त्यः ।

नहि । नु । न्वस्य । महिमानम् । इन्द्रियम् । स्वर्गः । गृणन्तः । आनशुः ।

जो जीण न होने वाले दिन रात्रोंमें नहीं हो रहते हैं, बलवान् है किसी कारणसे मर्त्यके आकारको धारण कर लेते हैं; उनको हे स्त्रोवाओं ! तुम स्तुति करो, इनकी ऐश्वर्यसम्पन्न महिमा

का पूर्णरूपसे गान न कर सकने पर भी योड़ासा भी गान करते हुए पुरुष स्वर्गको प्राप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

कदु स्तुवन्तं ऋतयन्त देवता ऋषिः को विप्रं ओहते ।

कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः

कत् । ऊं इति । स्तुवन्तः । ऋतयन्त । देवता । ऋषिः । कः ।

विपः । ओहते ।

कदा । इवम् । मघवन् । इन्द्र । सुन्वतः । कत् । ऊं इति । स्तु-
वतः । आ । गमः ॥ २ ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रयोदशं सूक्तम् ॥

हे घनवान् इन्द्र ! किस कारणसे सत्यकी इच्छा करते हुए देवता आपकी स्तुति करते हैं, कौनसा विप्र ऋषि आपके विषय में गर्वना करता है । और किस कारणसे कब आप अभिषव करने वाले स्तोताके आह्वान पर आते हैं ॥ २ ॥

यजुसम अनुशास्त्रमें प्रयोदश सूक्त समाप्त (६६३)

चतुर्विंशो माध्यंदिने सवने "अभि म वः सुरापसम्" [२०. ५१]
"म सु श्रुतं सुरापसम्" [२०. ५१, २] इति पृष्ठस्तोत्रियानु-
रूपौ बार्हतो मगार्यौ भवनः । तद् उक्तं वैताने । "अभि म वः सुरा-
पसं म सु श्रुतं सुरापसमिति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ मगार्यौ"
इति [वै० ६. १] ॥

तथा अभिसवे युग्मेष्वहःसु द्वितीयां चतुर्थपष्ठेषु "अभि म वः
सुरापसम्" "म सु श्रुतं सुरापसम्" इति बार्हतौ मगार्यौ पृष्ठस्तो-
त्रियानुरूपौ भवनः । तद् उक्तं वैताने । "अभि म वः सुरापस-
मिति युग्मेषु" इति [वै० ६. १] ॥

तथा विपुवति अनुरूपादनन्तरम् “तं वो दस्ममृतीपहम्” [२०. ४६. ४] “अभि म वः सुराधसम्” [२०. ५१] इति नौधसश्येतयोनी इच्छया शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अनुरूपात् तं वो दस्ममृतीपहम् अभि म वः सुराधसम् इति नौधसश्येतयोनी कामम्” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा उपहाणां तृतीयेष्वहःसु यथासंभवम् “महो इन्द्रो य ओजसा” [२०. १३८] “अभि म वः सुराधसम्” [२०. ५१] ‘एवा ह्यसि वीरयुः’ [२०. ६०] इति आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिषा भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । तृतीयेषु महो इन्द्रो य ओजसाभि म वः सुराधसम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” इति [वै० ८. ३]

चतुर्विंशके माध्यन्दिन सवनमें “अभि म वः सुराधसम्” (२० । ५१) “म सु श्रुतं सुराधसम्” (२० । ५१ । ३) ये पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बर्हित मंगाय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“अभि म वः सुराधसमिति युग्मेषु” (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तथा विपुवतुमें अनुरूपके, अनन्तर “तं वो दस्ममृतीपहम्” २० । ४६ । ४) अभि म वः सुराधसम् (२० । ५१) इनको नौधसश्येतयोनी इच्छासे कहता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“अनुरूपात् तं वो दस्ममृतीपहम् अभि म वः सुराधसम् इति नौधसश्येतयोनीकामम्” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा उपहोके तृतीय दिनोमें यथासंभव ‘महो इन्द्रो य ओजसा’ (२० । १३८) “अभि म वः सुराधसम्” (२० । ५१) “एवा ह्यसि वीरयुः” (२० । ६०) ये आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“तृतीयेषु महो इन्द्रो य ओजसाभि म वः सुराधसम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

अभि प्र वः सुराधंसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुषसुः सहस्रेणैव शिञ्जति ?

अभि । प्र । वः । सुराधंसम् । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे ।

यः । जरितृभ्यः । मघवा । पुरुषसुः । सहस्रेणैव । शिञ्जति

हे स्तोताओं ! जो विशाल धन वाले मघवा इन्द्र स्तुति करने वालोंको सहस्र संख्यासे दान देते हैं, उन सुन्दरतासे अन्न प्रदान करने वाले इन्द्रको मैं जिस प्रकार मातृ कर सकूँ, तिस प्रकार तुम उसका पूजन करो ॥ १ ॥

शतानीकैव प्र जिगाति घृण्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे

गिरेरिव प्र रसां अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः

शतानीकाऽऽव । प्र । जिगाति । घृण्णुया । हन्ति । वृत्राणि । दाशुषे

गिरेःऽव । प्र । रसाः । अस्य । पिन्विरे । दत्राणि । पुरुभोजमः

जो इन्द्रदेव हवि देने वाले यजमानके लिये सैकड़ों सेनाओं की समान अपने घर्षक बलसे आवरक शत्रुओंको जीत लेते हैं और मार डालते हैं, इन बहुत उपभोग्यके योग्य इन्द्रदेवके सुवर्ण पर्वतसे जलोंके निकलनेकी समान हविर्दान करने वाले यजमानके लिये सिञ्चित होते हैं ॥ २ ॥

प्र सु श्रुतं सुराधंसमर्चा शक्रमभिष्टये ।

यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणैव मंहते ॥ ३ ॥

प्र । सु । श्रुतम् । सुराधंसम् । अर्च । शक्रम् । अभिष्टये ।

यः । सुन्वते । स्तुवते । काम्यम् । वसु । सहस्रेणश्व । गंहते ३

जो इन्द्रदेव सोमाभिषव करने वाले और स्तुति करने वाले यजमानको अभिलषित धन सहस्रों करके देते हैं, उन सुन्दर हविरूप अन्नके पात्र, पाचकोंकी प्रार्थनाकी भली प्रकार सुनने वाले इन्द्रदेवकी तुम पूजा करो ॥ ३ ॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिपो महीः

गिरिर्न भुज्मा मधवत्सु पिन्वते यदा सुता अमन्दिपुः

शतश्वानीकाः । हेतयः । अस्य । दुष्टराः । इन्द्रस्य । समुद्रपः ।

महीः ।

गिरिः । न । भुज्मा । मधवत्सु । पिन्वते । यत् । ईम् । सुताः ।

अमन्दिपुः ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवके आयुध सैकड़ों सेनाओंकी समान बल रखने हैं, असत् पुरुष उनको तर नहीं सकने, यदि अभिषव किये हुए सोम इनकी हर्ममें भर देते हैं तो भोगमद पर्वत जैसे धनवानोंकी अपने पदार्थोंसे सींचता है, तिस प्रकार, इन इन्द्रके विशाल अन्न यजमानका सेचन करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (६६७)

“वयं य त्वा सुतावन्तः” इत्यस्य विनियोगः “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” [२०. ४०] इत्यप्रोक्तः ॥

नथा पृष्ठस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमपष्ठानां चतुर्णामिदम् “वयं य त्वा सुतावन्तः” इत्यादीनामपठानां वृत्तानां द्वौ द्वौ यथाक्रमं स्तोत्रियानुरूपो भवतः । तत्र “वयं य त्वा” [२०. ५२] “क ई

वेद" [२०. ५३] इति तृतीयेऽहि स्तोत्रियानुरूपौ भवतः ।
 "विश्वाः पृथनाः" [२०. ५४] "तमिन्द्रम्" [२०. ५५] इति
 चतुर्थे । "इन्द्रो मदाय" [२०. ५६] "मदे मदे हि" [२०. ५६.
 ४] इति पञ्चमे । "सुखाकृन्तुम्" [२०. ५७] "शुष्मिन्तमं नः"
 [२०. ५७. ४] इति षष्ठे । तद्व उक्तं वैताने । "तृतीया-
 दीनां वयं यत्वा सुतावन्त इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" इति [वै० ६. २]
 . तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वहःसु "वयं यत्वा सुतावन्तः" "क
 ई वेद सुते सत्वा" इति प्रथमेऽहनि मास्यंदिने स्तोत्रियानुरूपौ
 भवतः । "क ई वेद सुते सत्वा" "वयं यत्वा सुतावन्तः" इति
 द्वितीये । "श्रायन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] "वयमहौ असि सूर्य"
 [२०. ५८. ३] इति तृतीये । तद्व उक्तं वैताने । "वयं यत्वा
 सुतावन्तः इत्यादि वयमहौ असि सूर्येत्यन्ताः पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः"
 इति [वै० ६. ३] ॥

"वयं यत्वा सुतावन्तः" इसका विनियोग "इन्द्रेण सं हि
 दत्तसे" (२० । ४०) में कह दिया है ।

तथा पृष्ठयुक्ते तृतीय चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ इन चार दिनोंमें
 "वयं यत्वा सुतावन्तः" इन आठ वृत्तोंसे दो दो यथाक्रम स्तो-
 त्रियानुरूप होते हैं । इनमेंसे "वयं यत्वा" (२० । ५२) "क
 ई वेद" (२० । ५३) ये तृतीय दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं ।
 "विश्वाः पृथनाः" (२० । ५४) "तमिन्द्रम्" (२० । ५५)
 ये चतुर्थदिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं । "इन्द्रो मदाय" (२० । ५६)
 "मदे मदे हि" (२० । ५६ । ४) ये पञ्चम दिनमें स्तोत्रियानु-
 रूप होते हैं । "सुखाकृन्तुम्" (२० । ५७) "शुष्मिन्तमं नः"
 (२० । ५७ । ४) ये छठे दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं । इसी
 बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि— "तृतीयादीनां वयं यत्वा सुता
 वन्त इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" (वैतानमूत्र ६ । २)

तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंमें “वयं घ त्वा सुतावन्तः” “क ई वेद सुते सचा” ये प्रथम दिनके माध्यन्दिनमें स्तोत्रिया-
नुरूप होते हैं । “क ई वेद सुते सचा” “वयं घ त्वा सुतावन्तः”
ये द्वितीय दिनमें, “आयन्त इव सूर्यम्” (२० । ५८) “वयमर्हो
असि सूर्य” (२० । ५८ । ३) यह तृतीय दिनमें स्तोत्रियानु-
रूप होते हैं । इसी घातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि-“वयं घ त्वा
सुतावन्त इत्यादि षण्मर्हो असि सूर्येत्मन्ताः पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः”
(वैतानमूत्र ६ । ३) ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तवर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतारं आसते ।
वयम् । घ । त्वा । सुतावन्तः । आपः । न । वृक्तवर्हिषः ।
पवित्रस्य । प्रस्रवणेषु । वृत्रहन् । परि । स्तोतारः । आसते ।

हे इन्द्र ! जलकी समान अभिषव करके पतले किये हुए
अभिषुत सोमसे सम्पन्न हम अतिवज, पवित्रसे प्रस्रवणके समय
आपकी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥ १ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुते तृपाण ओक आ गम इन्द्र स्वव्दीव वंसंगः २
स्वरन्ति । त्वा । सुते । नरो । वसो इति । निरेक । उक्थिनः ।
कदा । सुतम् । तृपाणः । ओकः । आ । गमः । इन्द्र । स्वव्दी-
व । वंसंगः ॥ २ ॥

हे वासयिनः इन्द्र ! सोमका अभिषव होजाने पर बहुत उक्थ-
नः ।

गान करने वाले मनुष्य अतिव्रत आपका स्वरोसे आहान कर रहे हैं, कि—कव आप वननीयगति स्वर्ची वृषभकी समान वृषभ पर कर यागगृहमें अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आवेंगे २ कसेवंभिर्घृष्णवा धृषद् वाजं दर्पिं सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्पणे मन्तू गोमन्तमीमहे ३
कएवेभिः । घृष्णो इति । आ । धृषत् । वाजम् । दर्पि । सह-
स्रिणम् ।

पिशङ्गरूपम् । मघवन् । विचर्पणे । मन्तू । गोमन्तम् । ईमहे ३
इति पञ्चमेनुवाके पंचदशं सूक्तम् ॥

हे घर्षक इन्द्रदेव ! आप धनको दवा लेते हैं, सहस्रों शक्तियों से सम्पन्न व्यक्तिको भी विदीर्ण कर ढालते हैं । हे विद्वान् इन्द्र ! हम गौओंसे सम्पन्न पिशंग रूप वाले धनकी आपसे शीघ्रतापूर्वक याचना करते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चदश सूक्त समाप्त (६६८)

त्रिककुंदाशाहस्याहीनस्य नवस्वहःसु “शग्ध्यु शु शचीपते”
[२०. ११=] “अभि म गोपति गिरा” [२०. ६२] “तं वो
दस्ममृतीपहम्” [२०. ४६. ४] “वयमेनमिदा हः” [२०. ६७]
“इन्द्रमिदं गापिनो बृहन्” [२०. ३८. ४] “आयन्त इव
सूर्यम्” [२०. ५८] “क ई वेद सुते सचा” [२०. ५३]
“विदवाः पृतना अभिपूतरं नरम्” [२०. ५४] “यदिन्द्र प्राग-
पाण्डक्” [२०. १२०] इत्येते नवः पृष्ठस्तोत्रिया यथाक्रमं
भवन्ति । तद् उक्तं चैताने । “त्रिककुंदाशाहस्य नवसु शग्ध्यु शु
शचीपतेऽभि मगोपति गिरा तं वो दस्ममृतीपहं वयमेनमिदा ह

इन्द्रमिहायिनो बृहच्छ्रायन्त इव सूर्य क ई वेद सुते सचा विश्वाः
पृतना अभिभूतरं नरं यदिन्द्र मागपागुदगिति” इति [वै० ८. ४]

त्रिककुट्टदशाह अहीनके नौ दिनोंमें “शग्ध्यु प्यु शचीपते”
(२० । ११८) “अभि म गोपति गिरा” (२० । १२२) “तं वो
दस्ममृतीपहम्” (२० । ४६ । ४) “वयमेनमिदा ह्यः” (२० ।
६७) “इन्द्रमिद् गायिनो बृहद्” (२० । ३८ । ४) “श्रायन्त
इव सूर्यम्” (२० । ५८) “क ई वेद सुते सचा” (२० । ५३)
“विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” (२० । ५४) “यदिन्द्र माग-
पागुदक्” (२० । १२०) ये नौ यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं ।
इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“त्रिककुट्टदशाहस्य नवमं
शग्ध्यु प्यु शचीपतेऽभि मगोपति गिरा तं वो दस्ममृतीपहं वयमे-
नमिदा ह्य इन्द्रमिद्गायिनो बृहद् श्रायन्त इव सूर्यम् क ई वेद
सुते सचा विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् यदिन्द्र मागपागुद-
गिति” (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

क ई वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्त्योजंसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ।

कः । ईम् । वेद । सुते । सचा । पिबन्तम् । कद् । वयोः । दधे ।

अयम् । यः । पुरः । विभिनत्ति । ओजंसा । मन्दानः । शिपी ।

अन्धसः ॥ १ ॥

इस वातको कौन जानता है, कि—सोमका अभिषेक होने
पर साय २ कौनसे अन्नको ये धारण करते हैं । यह सुन्दर
ठोड़ी वाले हविरूप अन्नसे हर्षमें भरे हुए इन्द्र अपने सामनेके
शत्रुपुरोको बलपूर्वक नष्ट कर डालते हैं ॥ १ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिंष्ट्रा नि यमदा सुते गमो महान् चरस्योजसा २

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुत्रा । चरथम् । दधे ।

नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि ।

ओजसा ॥ २ ॥

मदमत्त मृगकी समान वारण करने वाले आप रथमें बैठ कर अनेक स्थानोंमें गमन करते हैं, सोमका अभिषव होने पर ऐसा कोई नहीं है जो आपको रोक सके । आप बलसे महान् वनते हुए विचरण करते हैं, अतः सोमका अभिषव होने पर आइये २

य उग्रः सन्ननिष्ठः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवां शृण्वद्धवं नेन्द्रो योपत्या गमत् ३

यः । उग्रः । सन् । अग्निः स्तुतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।

यदि । स्तोतुः । मयस्वा । शृण्वत् । हवम् । न । इन्द्रः ।

योपति । आ । गमत् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

जो उग्र पढ़ने पर शत्रुओंसे अहिंसित रहते हैं, जो रणके लिये तयार होने पर स्थिर रहते हैं यदि वह मयवा इन्द्र स्तुति करने वालेके आह्वानको सुने तो स्त्रीके पास जानेकी समान आवेंगे ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें षोडश सूक्त समाप्त (६६९)

षष्ठ्यपठहस्य एकविंशस्तोमके चतुर्थेऽहनि एकाहैकीभूते

“इन्द्रो दधीचो अस्यभिः” [२०. ४१] “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” [२०. ५४] “एवा ह्यसि वीरयुः” [२०. ६०] इति आज्यपृष्ठोक्तस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्यभिर्विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” इति [वै० ८. २] ॥

तथा व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्वयद्वानां द्वितीयेष्वहसु “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” इति स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “द्वितीयेषु विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरमिति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा त्रिककुद्दशाहस्याहीनस्य अष्टमेऽहनि एष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । सूत्रं पूर्वसूक्ते उक्तम् ॥

पृष्ठपण्डहके एकविंशस्तोमक चतुर्थदिनके एकाहैकीभूतमें “इन्द्रो दधीचो अस्यभिः” (२०।४१) “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” (२०।५४) “एवाह्यसि वीरयुः” (२० । ६०) ये आज्यपृष्ठोक्तस्तोत्रिय होते हैं । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्यभिः विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

तथा व्युष्ट्य आंगिरस कापिवन चैत्ररथ द्वयहोके द्वितीय दिनोंमें “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” यह स्तोत्रिय होता है । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वितीयेषु विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा त्रिककुद्दशाह अहीनके अष्टम दिनमें यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । सूत्र पहिले सूक्तमें कह दिया है ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजुस्तंतल्लुरिन्द्रं जजु-
नुश्च राजसे ।

कृत्वा वरिष्ठं वरं आमुस्मृतोऽग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्वि-
नम् ॥ १ ॥

विरवाः । पृतनाः । अभिऽभूतम् । नरम् । सऽज्जुः । ततऽज्जुः ।
इन्द्रम् । जज्जुः । च । राजसे ।

कृत्वा । वरिष्ठम् । वरे । आऽमुस्मृत् । उत । चग्रम् । ओजिष्ठम् ।
तवसम् । तरस्विनम् ॥ १ ॥

सकल सेनाओंने अभिभव करने वाले नेता शत्रुओंको पूर्ण-
रूपसे मूर्द्धित करने वाले, चग्र बलवान् तरस्वी इन्द्रको वरणीय
संग्राममें प्रेमपूर्वक वरण किया और प्रकट किया है ॥ १ ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदा वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समृतिभिः २

सम् । ईम् । रेभासः । अस्वरन् । इन्द्रम् । सोमस्य । पीतये ।
स्वऽर्पतिम् । यद् । ईम् । वृधे । धृतऽव्रतः । हि । ओजसा । सम् ।

ऊनिऽभिः ॥ २ ॥

ये स्तोता सोमपान करनेके लिये इन इन्द्रकी भली प्रकार
स्तुति कर रहे हैं, और धृतव्रत सोम भी इन स्वर्गपतिकी ओर
अपनी रक्षक शक्तियों सहित बढ़ता है ॥ २ ॥

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेघं विप्रां अभिस्वरां ।
सुदीतयां वो अद्रुहोपि कर्णे तरस्विनः समृकभिः ३

नेमिष् । नपन्ति । चक्षसा । मेपम् । विमाः । अभिऽस्वरा ।

मुऽदीतयः । वः । अद्गुहः । अपि । करो । तरस्विनः । सम् ।

ऋक्वऽभिः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

स्तुति करते हुए विम इनके मेपकी समान भक्षक वज्रको दृष्टि पड़ने पर प्रणाम करते हैं । हे स्तोताओं ! ऋक्व नामक पितरों के साथ इस वज्रकी सुन्दर दमकें भी तुम्हारे कानमें द्रोह न पहुँचावें अर्थात् तुम्हारे कानोंको कष्ट न दें ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सप्तदश सूक्त समाप्त (६७०)

“तमिन्द्रं जोहवीमि” इत्यस्य विनियोगः “वयं य त्वा मुतावन्तः” [२०. ५२] इति सूक्ते उक्तः ॥

“तमिन्द्रं जोहवीमि” सूक्तका मूत्र “वयं य त्वा मुतावन्तः” इस (२० । ५२) सूक्तके साथ कह दिया है ॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मयवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कृतं
शवांसि ।

मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा
सुपथां कृणोतु वज्री ॥ १ ॥

तम् । इन्द्रम् । जोहवीमि । मयज्वानम् । उग्रम् । सत्रा । दधानम् । अप्रतिष्कृतम् । शवांसि ।

मंहिष्ठः । गीऽभिः । आ । च । यज्ञियः । ववर्तत् । राये । नः । विश्वा । सुऽपथां कृणोतु । वज्री ॥ १ ॥

मैं उन इन्द्रका आह्वान करता हूँ, कि—जो धनवान् हैं उग्र हैं, संग्राममें सुख नहीं मोड़ते हैं और बलोंको धारण करने वाले हैं, स्तुतियोंसे पूजनीय स्तोत्र चल रहा है, वज्रधारी इन्द्र धनके लिये हमारे समस्त मागोंको सुन्दर करें ॥ १ ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा असुरेभ्यः ।

स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धये च त्वे वृक्तवर्हिपः २

याः । इन्द्र । भुजः । आ । अभरः । स्वर्वाऽवान् । असुरेभ्यः ।

स्तोतारम् । इत् । मघवन् । अस्य । वर्धये । ये । च । त्वे इति ।

वृक्तवर्हिपः ॥ २ ॥

हे स्वर्गके स्वामी इन्द्र ! आप असुरोंके लिये जिन भुजाओं को धारण करते हैं, उन भुजाओंसे इस यजमानके स्तुति करने वालेको बढ़ाइये और जो ऋत्विज आपमें परायण रहते हैं, उनको भी बढ़ाइये ॥ २ ॥

यमिन्द्र दधिपे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।

यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणो ॥ ३ ॥

यम् । इन्द्र । दधिपे । त्वम् । अश्वम् । गाम् । भागम् । अव्ययम् ।

यजमाने । सुन्वति । दक्षिणावति । तस्मिन् । तम् । धेहि । मा ।

पणो ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप जिस घोड़े गाँ और अव्यय रहने वाले भाग को पुष्ट करते हैं, उसको अभिषेक करने वाले और दक्षिणा देने वाले यजमानमें स्थापित करिये, पण नामक असुरमें स्थापित न करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुयाकमें अष्टादश सूक्त समाप्त (६७१)

पृष्ठयपञ्चाहस्य पञ्चमेऽहनि “उत्तिष्ठन्नोजसा सह” [२०. ४२. ३] “इन्द्रो मदाय वावृधे” [२०. ५६] “इन्द्राय साम गायत” [२०. ६२. ५-७] इत्येते आज्यपृष्ठोक्त्यस्तोत्रिया भवन्ति तद् उक्तं वैताने । “पञ्चम उत्तिष्ठन्नोजसा सहेन्द्रो मदाय वावृधे इन्द्राय साम गायतेति” इति [वै० अ. ३] ॥

पृष्ठयपञ्चाहके पञ्चम दिनमें “उत्तिष्ठन्नोजसा सह” (२० । ४२ । ३) “इन्द्रो मदाय वावृधे” (२० । ५६) “इन्द्राय साम गायत” (२० । ६२ । ५-७) ये आज्यपृष्ठोक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“पञ्चम उत्तिष्ठन्नो जसा सहेन्द्रो मदाय वावृधे इन्द्राय साम गायतेति” (वैतानमूत्र अ. ३) ॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

तमिन्महत्स्वाजिपूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नो विपत्

इन्द्रः । मदाय । वावृधे । शवसे । वृत्रहा । नृभिः ।

तम् । इत् । महत्स्व । आजिपु । उत । ईम् । अर्भे । हवामहे ।

सः । वाजेषु । म । नः । अविपत् ॥ १. ॥

वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्रदेवको मनुष्य मद और बलके लिये बढ़ाते हैं । हम उनको विशाल संग्रामोंमें और इस छोटेसे यज्ञमें आदान करते हैं, वह युद्धोंमें हममें व्याप्त होजावें ?

सेन्योसि भूरिं पराददिः ।

चेद् वृधो यजमानाय शिञ्जसि सुन्वते

॥ २ ॥

। सेन्यः । असि । भूरि । पराऽददिः ।

चेत् । वृधः । यजमानाय । शिञ्जसि । सुन्वते ।

॥ २ ॥

सेनाके योग्य हैं, शत्रुओंका मर्यंकर खण्डन
: तुच्छ पुरुषको आप यजमानके कारण दण्ड
। आपके लिये अभिषव करता है, आपका
: लिये ही है ॥ २ ॥

। यो घृण्येवं धीयते घना ।

॥ हरी कं हनः कं वसौ दधोस्माँ इन्द्र

। ३ ॥

आजयः । घृण्येवं । धीयते । घना ।

। हरी इति । कम् । हनः । कम् । वसौ । दधः ।

। वसौ । दधः ॥ ३ ॥

। लगता है और धर्षक पुरुषमें घन स्थापित
आप मदमग्न हरी नामक घोंड़ोंको जोड़, कर
र किममें घन स्थापित करेंगे ? हे इन्द्र ! उस
न स्थापित करिये ॥ ३ ॥

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।

सं गृभाय पुरु शतोभयाहस्त्या वसुं शिशीहि राय
आ भर ॥ ४ ॥

मदेऽमदे । हि । नः । ददिः । यूथा । गवाम् । अजुऽक्रतुः ।

सम् । गृभाय । पुरु । शता । उभयाहस्त्या । वसु । शिशीहि ।
रायः । आ । भर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! आपका यह सरल है, आप मत्स्येक बार हर्षमें भरने
पर हमें गौधोंके झुण्ड देते हैं । आप सैंकड़ों बार दोनों हाथोंसे
बहुतसे धनको ग्रहण करके तीक्ष्ण करिये और हमें मदान करिये ४
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।

विद्वा हि त्वां पुरुवसुमुप कामान्तससृज्महेथां नोविता
भव ॥ ५ ॥

मादयस्व । सुते । सचा । शवसे । शूर । राधसे ।

विद्वा । हि । त्वा । पुरुवसुम् । उप । कामान् । ससृज्महे । अयं ।
नः । अविता । भव ॥ ५ ॥

हे शूर इन्द्र ! आप सहायक बन कर सोमका अभिषेक होने
पर मदमें भरिये और बलको साधिये, हम आपको विशाल धन
वाला जानते हैं, हम आपसे अपनी कामनाओंसे संयुक्त रहें
आप हमारे रक्षक हजिये ॥ ५ ॥

एते ते इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुपां तेषां नो
वेद आभर ॥ ६ ॥

एते । ते । इन्द्र । जन्तवः । विश्वम् । पुष्यन्ति । वार्यम् ।
अन्तः । हि । ख्यः । जनानाम् । अर्यः । वेदः । अदाशुपाम् ।
तेषाम् । नः । वेदः । आ । भर ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! ये जन्तु आपके समग्र वीर्यको पुष्ट करते हैं, आप स्वामी हैं आपकी निन्दा करने वालोंके भीतर जो धन स्थित है उन हवि प्रदान न करने वालोंके धनको आप हमें प्रदान करिये ।
पञ्चम अनुवाकमें उन्नीसवां सूक्त समाप्त (६७२)

असोर्वाग्मिण क्रनो तृतीयसवने "सुरूपकृन्नुमृतये" [२०. ५७]
"शुष्मिन्तमं न ऊतये" [२०. ५७. ४] इति स्तोत्रियानुरूपो
भवतः । तत्र "सुरूपकृन्नुमृतये" इति स्तोत्रियमभितः प्राकृतः
स्तोत्रियो भवति । "शुष्मिन्तमं न ऊतये" इत्यनुरूपमभितः प्रा-
कृतोऽनुरूपो भवति । तद् उक्तं वैताने । "तृतीयसवने सुरूपकृन्नु-
मृतये शुष्मिन्तमं न ऊतये इति स्तोत्रियानुरूपावभितः स्तोत्रि-
यानुरूपो" इति [वै० ४. ३] ॥

तथा महाव्रते मातः सवने "सुरूपकृन्नुमृतये" इत्याज्यस्तोत्रियो
भवति । तद् उक्तं वैताने । "महाव्रते सुरूपकृन्नुमृतये इत्याज्य-
स्तोत्रियः" इति [वै० ६. ४] ॥

तथा श्येनसंदंशानिरवज्ञेषु एकादेषु "सुरूपकृन्नुमृतये" [२०.
५७] "वृक्षा मन्दन्तु स्तोमाः" [२०. ६३] एता आत्यस्तो-

(३१६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

त्रियो विकल्पितो भवतः । त्वामिद्धि हवामहे” इति [२०. ६८]
पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “रयेनसंदंशाजिरवज्रेषु
सुरूपकृत्नुमृतये उक्त्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वामिद्धि हवामहे इति”
इति [वै० ८. १] ॥

असौर्याम क्रतुके तृतीयसवनमें “सुरूपकृत्नुमृतये” (२०।५७)
“शुष्मिन्तमं न ऊतये” (२० । ५७ । ४) ये स्तोत्रियानुरूप
होते हैं । यहाँ “सुरूपकृत्नुमृतये” यह स्तोत्रियके अभितः प्राकृत
स्तोत्रिय होता है । “शुष्मिन्तमं न ऊतये” यह अनुरूपके अभितः
प्राकृत अनुरूप होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,
कि-“तृतीयमवने सुरूपकृत्नुमृतये शुष्मिन्तमं न ऊतय इति स्तो-
त्रियानुरूपावभिनः स्तोत्रियानुरूपी” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा महाव्रतके प्रातः सवनमें “सुरूपकृत्नुमृतये” (२० ।
५७) ये आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि-“महाव्रते सुरूपकृत्नुमृतये इत्याज्यस्तोत्रियः” (वैतान-
सूत्र ६ । ४) ॥

तथा रयेनसंदंशाजिरवज्रोंके एकाहोंमें “सुरूपकृत्नुमृतये”
(२० । ५७) “उक्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः” (२० । ६३) ये
विकल्पसे आज्यस्तोत्रिय होते हैं । “त्वामिद्धि हवामहे” (२० ।
६८) ये पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि-“रयेनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमृतये उक्त्वा मन्दन्तु
स्तोमास्त्वामिद्धि हवामहे इति” (वैतानसूत्र ८ । ४) ।

सुरूपकृत्नुमृतये सुदुयामिव गोदुहे । जुहमसि द्यवि-
द्यवि ॥ १ ॥

सुरूपकृत्नुम् । ऊतये । सुदुयाम् इव । गोदुहे ॥ जुहमसि ।

द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

जैसे दूध दुहने वाले के लिये सरलनासे दुहाने वाली गीँसो बुलाया जाता है, इसी प्रकार हम रत्ता के लिये मत्स्यग. अवमर पर इन्द्रदेवका आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

उपं नः सवना गंहि सोमस्य सोमपाःपिव । गोदा
इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

उप । नः । सवना । आ । गंहि । सोमस्य । सोमपाः । पिव ॥

गोदाः । इद् । रेवतः । मदः ॥ २ ॥

इन्द्रदेव गीँस देने वाले हैं, हर्षमें भरे रहते हैं, घनसम्पन्न हैं, ऐसे इन्द्रदेव हम रे सोमसवनों के समीप आइये और सोमका पान करिये ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो
अति ख्य आ गंहि ॥ ३ ॥

अथ । ते । अन्तमानाम् । विद्याम् । सुमतीनाम् ॥ मा । नः ।

अति । ख्यः । आ । गंहि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम आपके समीप रहने वाली सुन्दर बुद्धियोंको जानते हैं आप हमारी अधिक निन्दा न कराइये और हमारे पास आइये ॥ ३ ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये धुम्निनं पाहि जागृचिम् । इन्द्र
सोमं शतक्रतो ॥ ४ ॥

शुष्मिन्तम् । नः । ऊतये । धुम्निनम् । पाहि । जागृचिम् ॥

इन्द्र । सोमम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ ४ ॥

(३१८) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हे शतक्रतो इन्द्र ! आप हमारी रक्षा करनेके लिये इस बल-
मद ज्योतिःसम्पन्न-जागरूक रखनेवाले सोमका पान करिये ४
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त
आ वृणे ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । या । ते । जनेषु । पञ्चसु ॥

इन्द्र- । तानि । ते । आ । वृणे ॥ ५ ॥

हे बहुकर्मन् इन्द्र ! आपकी जो इन्द्रियें देवता पितर आदि पञ्च
जनोंमें हैं । हे इन्द्र ! मैं उन इन्द्रियोंका वरण करता हूँ ॥ ५ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्वदुष्टरम् । उत् ते
शुष्मं तिरामसि ॥ ६ ॥

अगन् । इन्द्र । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् । दधिष्व- । दुष्टरम् ॥

उत् । ते । शुष्मम् । तिरामसि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका विशाल अन्न हमको प्राप्त होवे, और
आप शत्रुओंसे तरनेके अयोग्य दमकने हुए धनोंको हममें स्था-
पित करिये और हम आपके घलको सोम और स्तोत्रसे बढ़ाते हैं ६
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।

उ लोको यस्ते अद्रिष्व इन्द्रेह तन् आ गहि ॥ ७ ॥

अर्वाऽवतः । नः । आ । गहि । अयो इति । शक्रः । पराऽवतः ।

ऊः इति । लोकाः । या । तेने अद्रिष्वः । इन्द्रः । इहः । ततः ।

आ । गहि ॥ ७ ॥

हे चलवान् इन्द्र ! आप समीपके स्थलमें हों तो समीपके स्थलसे और दूरके स्थलमें हों तो दूरके स्थानसे हमारे पास आइये, हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपका जो उत्तम लोक है, उस स्थानसे भी आप सोमपान करनेके लिये इस पूजाके स्थानमें आइये ॥ ७ ॥

इन्द्रो अङ्गमहद्भयमभीपदपंचुव्यवत् । स हि स्थिरो
विचर्षणिः ॥ ८ ॥

इन्द्रः । अङ्ग । महत् । भयम् । अभि । पदम् । अम् । पञ्चुव्यवत् ॥
सः । हि । स्थिरः । विचर्षणिः ॥ ८ ॥

हे आत्मा वा अस्तिवज्र ! इन्द्रदेव हमारे ऊपर पड़े हुए, दूसरों से न हटाने योग्य बड़े भारी भयका तिरस्कार कर डालते हैं, और भयको हमसे अलग करके दूर भगा देते हैं, वह इन्द्रदेव स्थिर रहने वाले हैं अर्थात् कोई उनकी च्युत नहीं कर सकता । और वह सबको देखने वाले हैं अर्थात् छिपे हुए भय देने वालों को और प्रकाशित हम रक्षणीयोंको भी जानते हैं ॥ ८ ॥

न्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादध नशत् । भद्रं
भवाति नः पुरः ॥ ९ ॥

न्द्रः । च । मृलयाति । नः । न । नः । पश्चात् । अयम् ।
नशत् । भद्रम् । भवाति । नः । पुरः ॥ ९ ॥

यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो वह हमको सुख दें, यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो पीछे हमारा दुःख नष्ट होजावे और सामने हमारा भद्रल होवे ॥ ९ ॥

(३२०) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

इन्द्र आशांभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं कर्तु । जेता
शत्रून् विचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रः । आशांभ्यः । परि । सर्वाभ्यः । अभयम् । कर्तु ॥ जेता ।

शत्रून् । विचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रदेव सब दिशा विदिशाओंसे हम पर पड़ सकने वाले
भयोंको दूर करें । यह इन्द्रदेव सब दिशाओंमें जो हमारे शत्रु हैं
उनको देखने वाले हैं ॥ १० ॥

क ई वेद सुते सचा पिवन्तं कद् वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्पोजसा मन्दानः शिप्रघन्धसः

फः । ईप् । वेद । सुते । सचा । पिवन्तम् । कद् । वयः । दधे ।

अयम् । यः । पुरः । विभिनत्ति । ओजसा । मन्दानः । शिप्री ।

अन्धसः ॥ ११ ॥

इस बातको कौन जानता है, कि-सोमका अभिषव होनेपर
साय २ यह कौनसे अन्नको धारण करते हैं, यह सुन्दर ठोड़ी
वाले हवीरूप अन्नसे हर्षमें भरे हुए इन्द्र अपने सामनेके शत्रु-
पुरोंको बलपूर्वक नष्ट कर डालते हैं ॥ ११ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिंश्वा नि यमदा सुते गमो महान्श्चरस्योजसा १२

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुत्रा । चरथम् । दधे ।

नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि ।

ओजसा ॥ १२ ॥

मदमय मृगकी समान चारण करने वाले आप रथमें बैठ कर
अनेक स्थानोंमें गमन करते हैं, सोमका अभिषव होने पर ऐसा
कोई नहीं है जो आपको रोक सके, आप बलसे महान् बनते हुए
विचरण करते हैं, अतः सोमका अभिषव होने पर आइये १२
य उग्रः सन्ननिष्ठृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवां शृण्वद्धवं नेन्द्रो योपत्या गमत्
यः । उग्रः । सन् । अनिष्ठृतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।
यदि । स्तोतुः । मघवां । शृण्वत् । दध्वम् । न । इन्द्रः ।
योपति । आ । गमत् ॥ १३ ॥

जो उग्र पड़ने पर शत्रुओंसे अहिंसित रहते हैं, जो रणके
लिये तयार होने पर अहिंसित रहते हैं, यदि यह मघवा इन्द्र
स्तुति करने वालेके आवाहनको सुनें तो स्त्रीके पास जानेकी समान
आवेंगे ॥ १३ ॥

वयं घं त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तवर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परिस्तोतारं आसते १४
वयम् । घ । त्वा । सुतवन्तः । आपः । न । वृक्तवर्हिषः ।
पवित्रस्य । प्रस्रवणेषु । वृत्रहन् । परि । स्तोतारः । आसते १४

हे इन्द्र ! अभिषव करके जलकी समान पतले किये गए
अभिषुत सोमसे सम्पन्न हम अतिविज, पवित्रसे प्रस्रवणके समय
आपकी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥ १४ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

(३२२) अथर्ववेदसंहिता समाप्य-वापानुवादसहित

कदा सुतं तृपाण ओक आ गम इन्द्र स्वव्दीवः वंसगः
स्वरन्ति । स्वा । सुते । नरः । वसो इति । निरेके । उक्थिनः ।
कदा । सुतम् । तृपाणः । ओकः । आ । गमः । इन्द्र । स्वव्दी-
इव । वंसगः ॥ १५ ॥

हे वासयितः इन्द्र ! सोमका अभिषव होजाने पर अधिकतासे
चवयगान करने वाले पुरुष ऋत्विज आपका स्वरोसे आहान
कर रहे हैं, कि-कव आप वननीय गति स्वव्दी वृषभकी समान
तृपामें भर कर यागगृहमें अभिषुत सोमका पान करनेके लिये
आवेगे ॥ १५ ॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृपद् वाजं दर्पि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मधवन् विचर्षणे मच्चू गोमन्तमीमहे १६
कण्वेभिः । धृष्णो इति । आ । धृपत् । वाजम् । दर्पि । सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपम् । मधवन् । विचर्षणे । मच्चू । गोमन्तम् । ईमहे ।
इति पञ्चमेनुवाके विंशं सूक्तम् ॥

हे धर्षक इन्द्रदेव ! आप धनकी दवा लेते हैं, सहस्रों शक्तियों
से भी सम्पन्न व्यक्तिको विदीर्ण कर डालते हैं, हे विद्वान् इन्द्र !
हम गोम्रोंसे सम्पन्न पिशङ्ग रूप वाले धनकी आपसे याचना
करते हैं ॥ १६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें बीसवाँ सूक्त समाप्त (६७३)

विपुवति सौर्यपृष्ठे “वषमर्हो असि सूर्य” [२०. ५८, ३]
“आयन्त इव सूर्यम्” [२०. ५८. १] इति विक्रन्तिपत्नी पृष्ठस्था-

त्रिपानुरूपो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “वयमहो असि सूर्य आ-
यन्त इव सूर्यमिति वा” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा तीव्रमुच्चतुःपर्याययोः सहस्रान्त्योर्दशपेये विभ्रंशयज्ञे
“आयन्त इव सूर्यम्” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति ॥

तथा सायःक्राभिधानेषु एकादेषु रयेनयागवर्जितेषु “अहमिद्धि
पितृप्परी” [२०. ११५] इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । चकारात्
“आयन्त इव सूर्यम्” इत्याज्यस्तोत्रियो भवति ॥

तद् उक्तं वैताने । “तीव्रमुच्चतुःपर्याययोः सहस्रान्त्योर्दश-
पेये विभ्रंशयज्ञे आयन्त इव सूर्यमिति । सायःक्रेषु रयेनवर्जम्
अहमिद्धि पितृप्परीति च” इति [वै० ८. २] ॥

तथा साकमेघस्य तृतीयेऽहनि अस्य मूक्तस्य विनियोग उक्तः ।
स च “तमिन्द्रं वाजयामसि” इति सूक्ते [२०. ४७] द्रष्टव्यः ॥

तथा चतुरहाणां तृतीयेष्वहःसु “आयन्त इव सूर्यम्” [२०.
५८] “त्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] एतां पृष्ठोक्त्यस्तोत्रियो
भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुरहाणां आयन्त इव सूर्यं त्वं न
इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा”
इति सूक्ते [२०. ५३] उक्तः ॥

विपुवत् सौर्यपृष्ठमे “वयमहो असि, सूर्य” (२० । ५८ । ३)
“आयन्त इव सूर्यम्” (२० । ५८ । १) ये विकल्पसे पृष्ठस्तो-
त्रिय अनुरूप होते हैं । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है,
कि—“वयमहो असि सूर्य आयन्त इव सूर्यमिति वा” (वैतान-
सूत्र ६ । ३) ॥

तथा सहस्रांत्य तीव्र मुच्चतुः पर्यायोंके दशपेयं विभ्रंश यज्ञमें
“आयन्त इव सूर्यम्” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है ।

तथा रयेनयागवर्जित सायःक्र नामक एकाहोंमें “अहमिद्धि

पितृप्परि" (२० । ११५) ये आज्यस्तोत्रिय होता है । चकार से "आयन्त इव सूर्यम्" यह आज्यस्तोत्रिय होता है ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रमुच्चतुः पर्वा-
ययोः सहस्रान्त्यपोर्दशपेये निभ्रंशयज्ञे आयन्त इव सूर्यमिति ।
साधःक्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितृप्परीति च” (वैतान-
सूत्र ८ । २)

तथा साक्रमेयके तृतीय दिनमें इस सूक्तका विनियोग करा है । उसको “तमिन्द्रं वाजयामसि” (२० । ४७) सूक्तमें देखना चाहिये ।

तथा चतुरहोके तीसरे दिनोंमें “आयन्त इव सूर्यम्” (२० । ५८) “त्वं न इन्द्राभर” (२० । १०८) ये पृष्ठोक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“चतुरहाणां आयन्त इव सूर्यम् त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा त्रिककुदशहमें इसका विनियोग “कई” वेदसुते सचा” (२० । ५३) सूक्तमें देखना चाहिये ।

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दाधिमः

आयन्तः इव । सूर्यम् । विश्वा । इत् । इन्द्रस्य । भक्षत ।

वसूनि । जाते । जनमाने । ओजसा । प्रति । भागम् । न ।

दाधिम् ॥ १ ॥

जिस प्रकार किरणें प्रतिदिन सूर्यका उपस्थान करती हैं—
सूर्यके समीप रहती हैं, इसी प्रकार मध्यस्थानक उदकेरवर इन्द्र
के समीप रहती हैं, उन इन्द्रके जलरूप सब धनोंको अपने लिये
या सब जनोंके लिये हम बाँटना चाहते हैं । और जैसे इन्द्र भूत

भविष्यत् वर्तमानके घनोंको अपने ऐश्वर्यबलसे बाँटना चाहते हैं और उस भागसे प्राणी उपजीवन करते हैं । इसी प्रकार हम भी उस भागका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

अनंशरार्तिं वसुदामुपं स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधत्ते न रोपति मनो दानाय
चोदयन् ॥ २ ॥

अनंशरार्तिम् । वसुदाम् । उपं । स्तुहि । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ।
सः । अस्य । कामम् । विधत्ते । न । रोपति । मनः । दानाय ।
चोदयन् ॥ २ ॥

हे स्तोतः ! अश्लीलता रहित दान वाले धनदाता इन्द्रकी मन से शरण लेकर तुम स्तुति करो । इन इन्द्रके दान कल्याणमय हैं । वह इन्द्रदेव उस अपने भक्तके धारण किये हुए मनोरथोंको नष्ट नहीं करते हैं और जो इस प्रकार स्तुति करके याचना करता है वह इन्द्रके मनको दानके लिये प्रेरित करता है ॥ २ ॥

वयमहौं असि सूर्य वडादित्य महौं असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महौं असि ३
वट् । महान् । असि । सूर्य । वट् । आदित्य । महान् । असि ।
महः । ते । सतः । महिमा । पनस्यते । अद्धा । देव । महान् ।
असि ॥ ३ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप महान् हैं, यह सत्य है, हे अदिति-पुत्र ! आप महान् हैं यह सत्य है । आप सत्स्वरूपपूज्यकी महिमा भी प्रशंसा पाती है, हे देव ! आप महान् हैं, यह सत्य है । ३।

वद सूर्यं श्रवसा महौ असि सत्रा देव महौ असि ।
महादेवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ४
वद । सूर्य । श्रवसा । महान् । असि । सत्रा । देव । महान् । असि ।
महा । देवानाम् । असुर्यः । पुरोहितः । विभु । ज्योतिः ।
अदाभ्यम् ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे सूर्य ! आप हविरूप अन्नसे महान् हैं, यह सत्य है और
हे देव ! साथ ही आप स्वयं भी महान् हैं । आप अपनी महिमा
से असुरोंसे भिड़ने वाले देवश्रेष्ठ हैं, आगे २ दित कासे हैं और
आप अहिंस्य व्यापक ज्योति हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकम् इत्येकविंशं सूक्तं समाप्त (६७४)

दशरात्रस्य दशमेहनि माध्यन्दिने सवने “उदु त्वे मधुमत्तमाः”
[२०. ५६. १] “उदिन्वस्य रिच्यते” [२०. ५६. ३] इति
पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो भवतः । उदु उक्तं वैताने । “उदु त्वे मधुम-
त्तमा उदिन्वस्य रिच्यत इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो” इति [वै० ६. ३] ॥

दशरात्रके दशम दिनमें माध्यन्दिन सवनके अन्तर पर “उदु
त्वे मधुमत्तमाः” (२० । ५६ । ३) ये पृष्ठस्तोत्रिय अनुरूप होते
हैं । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“उदु त्वे मधुमत्तमा
उदिन्वस्य रिच्यत इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो” (वैतानसूत्र ६।३) ॥

उदु त्वे मधुमत्तमा गिर स्तोमांस ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितो तयो वाजयन्तो रथा इव ?

उदु । ऊं इति । त्वे । मधुमत्तमाः । गिरः । स्तोमांसः । ईरते ।

सत्राऽजिताः । धनऽप्ताः । अक्षितऽकृतयः । वागऽयन्तः ।

रयाऽइव ॥ १ ॥

ये आगे कहे जाने जाने वाले मगीतमन्त्रसाध्य त्रिष्टु आदि स्तोत्र और अपगीत मन्त्रसाध्य शस्त्र आदिकी मधुर वाणियों प्रादुर्भूत हो रही हैं ये धन प्रदान करनेवाली हैं और एक बार ही शत्रुओंको जीत लेती हैं, ये सदा रक्षक हैं और यह अन्न प्रदान करनेवाली हैं और रथ जैसे रथमें बैठनेवालोंके मयोजनकेलिये दौड़ता है, तैसे ही यह इन्द्रके सन्तोषकेलिये मकट होती है । १।

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिच्छीतमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमोभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् २

कण्वाऽइव । भृगवः । सूर्याऽइव । विश्वम् । इव । धीनम् ।

आनशुः ।

इन्द्रम् । स्तोमोभिः । महऽयन्तः । आयवः । प्रियमेधासः ।

अस्वरन् ॥ २ ॥

कण्वगोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि जिस प्रकार, तीनों लोकोंके स्वामी, फलाभिलाषियोंके द्वारा ध्याये हुए इन्द्रको ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियोंसे प्राप्त होते हैं, जैसे धाता अर्यमा आदि सूर्य अपने नियन्त्रा इन्द्रको प्राप्त होते हैं, अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करते हैं और भृगुवंशी महर्षि जिस प्रकार इन्द्रकी शरणमें जाते हैं, इसी प्रकार प्रियमेधा नामक मनुष्य पूजा करते समय स्तोत्रों से इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

उदिन्वस्य रिच्येतेशो धनं न जिग्युषः ।

य इन्द्रो हरि॒वान्न द॑भन्ति॒ तं रि॒पो द॑त्तं दधाति
सोमि॒नि ॥ ३ ॥

यः । इन्द्रः । हरि॒वान् । न । द॑भन्ति । तम् । रि॒पः । द॑त्तम् ।
द॒धाति॒ । सोमि॒नि ॥ ३ ॥

विजेताके धनकी समान इन इन्द्रदेवका यह भाग होता है, जो इन्द्रदेव हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न हैं, उनको पाप बंध नहीं सकते और यह इन्द्रदेव सोमप्रदाता यजमानमें बलको स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशंसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवन् ४
मन्त्रम् । अखर्वम् । सु॒धितम् । सु॒पेश॑सम् । द॒धात॒ । य॒ज्ञिये॑षु । आ ।
पूर्वीः । च॒न । प्र॒सित॑यः । त॒रन्ति॒ । तम् । यः । इ॒न्द्रे । क॑र्मणा ।

॥ ४ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

हे स्तोताओं ! यज्ञिय स्तोत्रोंमें महामभावसम्पन्न सुन्दर दीप्ति
... वाले मन्त्रोंका प्रयोग करो, जो कर्मसे इन्द्रकी सेवामें
परायण रहता है वह पूर्व चन्धनों (पापों) से छूट जाता है ४
पञ्चम अनुवाकमें द्वाविंशं सूक्त समाप्त (६३५)

अभिसवमप्ययेष्वाहः सु द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमेषु । “एवा
दसि पीरयुः” इत्यादयोऽष्टौ द्वाचास्त्वतीयसवने सव्यस्तोत्रियास्तु-

रूपा यथाक्रमं भवन्ति । एवं च “एवा हसि वीरयुः” [२०. ६०]
 “एवा हस्य सूनृता” [२०. ६०. ४-६] इति स्तोत्रियानुरूपो
 द्वितीये । “तं ते मदं गृणीमसि” [२०. ६१] “तम्बभि म
 गायत” [२०. ६१. ४-६] इति तृतीये । “वयमु त्वामपूर्य”
 [२०. ६२, १] “यो न इदमिदं पुरा” [२०. ६२, ३]
 इति चतुर्थे । “इन्द्राय साम गायत” [२०. ६२. ५-७] “तम्बभि
 म गायत” [२०. ६१. ४-६] इति पञ्चमे । तद् उक्तं वैताने ।
 “मध्यमेऽन्वेवा हसि वीरयुरित्युक्त्वस्तोत्रियानुरूपा” इति [वै० ६. १] ॥

तथा वैकुण्ठस्य पृष्ठयज्यहस्य द्वितीयेऽहनि “एवा हसि वीरयुः”
 इति उक्त्वस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयज्यहस्य
 एवा हसि वीरयुरित्युक्त्वे” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा तस्यैव तृतीयेऽहनि अस्य विनियोगः “अभि म वः सुरा-
 धसम्” इति सूक्ते [२०. ५१] उक्तः ॥

तथा पृष्ठयज्यहस्य द्वितीयेऽहनि “एवा हसि वीरयुः” इति
 पृष्ठोक्त्वस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयज्यहस्यैवा
 हसि वीरयुरिति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा पृष्ठयज्यहस्य द्वितीयेऽहनि एव उक्त्वस्तोत्रियो भवति ।
 तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयस्य द्वितीय एवा हसि वीरयुरिति”
 इति [वै० ८. ४] ॥

अभिसवके मध्यमदिनमें दूसरे तीसरे चौथे पाँचवेंमें “एवा
 हसि वीरयुः” इत्यादि आठ वृत्त तृतीयसवनमें यथाक्रम स्तोत्रिय
 और अनुरूप होती हैं । इसी प्रकार “एवा हसि वीरयुः” (२०।
 ६०) “एवा हस्य सूनृता (२०। ६०। ४-६) ये स्तोत्रिय और
 अनुरूप दूसरे दिनमें होते हैं । “तं ते मदं गृणीमसि” (२०। ६१)
 “तम्बभि म गायत” (२०। ६१। ४-६) ये तृतीय दिनमें
 होते हैं । “वयमु त्वामपूर्य” (२०। ६२, १) “यो न इदमिदं

(३३०) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

पुरा" (२० । ६२, ३) ये चौथे दिनमें होने हैं । "इन्द्राय साम गायत" (२० । ६२ । ५-७) "तम्बभि मगायत" (२० । ६१ । ४-६) ये पञ्चम दिनमें होते हैं ॥ इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मध्यमेज्वेवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थस्तोत्रियानुरूपाः” इति (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तथा वैकृत पृष्ठयज्यहके द्वितीय दिनमें “एवा ह्यसि वीरयुः” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयज्यहस्य एवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थे” (वैतानसूत्र ८ । ३)

तथा इसीके तृतीयदिनमें इसका जो विनियोग “अभि म वः सुराधसम्” (२० । ५१) सूक्तमें कहा है, उसको देखना चाहिये ।

तथा पृष्ठयज्यहके द्वितीय दिनमें “एवा ह्यसि वीरयुः” यह पृष्ठोक्थस्तोत्रिय होता है । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयज्यहस्यैवा ह्यसि वीरयुरिति” (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

एव । हि । असि । वीरयुः । एव । शूरः । उत । स्थिरः ॥

एव । ते । राध्यम् । मनः ॥ १ ॥

आप वीरोंको हटाने वाले हैं, शूर हैं और स्थिर हैं, आपका मन राध्य ॥ १ ॥

एवा रातिस्तुंवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधां चिदिन्द्र मे सचां ॥ २ ॥

एव । रातिः । तुविष्मघ । विश्वेभिः । धायि । धातृभिः । अधां ।

चित् । इन्द्र । मे । सचां ॥ २ ॥

हे बहुतसे धनसे सम्पन्न इन्द्रदेव ! अपनी पुष्ट करने वाली
समस्त शक्तियोंके साथ हममें दानशक्तिको स्थापित करिये, हे
इन्द्र ! फिर आप मेरे सहायक बनिये ॥ २ ॥

मो पु ब्रह्मेवं तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वां
सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥

मो इति । सु । ब्रह्माऽइव । तन्द्रयुः । भुवः । वाजानाम् । पते ॥
मत्स्व । सुतस्य । गोऽमतः ॥ ३ ॥

हे अन्नोंके स्वामी आप ब्रह्माजीकी समान तन्द्रयु न बनिये
और बुद्धि प्रदान करने वाले अभिषुत सोमसे आनन्दमें भरिये
एवा ह्यस्य सूनृतां विरप्शी गोमंती मही । पक्वा
शाखा न दाशुपे ॥ ४ ॥

एव । हि । अस्य । सूनृतां । विरप्शी । गोऽमंती । मही ॥
पक्वा । शाखा । न । दाशुपे ॥ ४ ॥

इनकी मधुर, गोमदात्री विशाल भूमि हवि प्रदान करनेवाले
यजमानको पक्व शाखाकी समान (फल प्रदान करने वाली है)
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्त
सन्ति दाशुपे ॥ ५ ॥

एव । हि । ते । विभूतयः । ऊतयः । इन्द्र ! माऽवते ॥ सद्यः ।
चित् । सन्ति । दाशुपे ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपति इन्द्र ! आपकी रक्तक विभूतियों, दधि देने वाले यजमानके लिये शीघ्र ही उपस्थित होजाती हैं ॥ ५ ॥

ए॒वा ह्य॑स्य॒ काम्या॒ स्तोमं॑ उ॒क्तं च॒ शंस्यां॑ । इन्द्रा॒य
सोमं॑पीतये ॥ ६ ॥

ए॒व । हि । अ॒स्य । का॒म्या । स्तो॒मः । उ॒क्तम् । च । शं॒स्या ॥
इन्द्रा॒य । सोमं॑पीतये ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके त्रयोविंशं सूक्तम् ॥

इन्द्रको सोम पिलाते समय स्तोम उक्त और शंस्या (नामक स्तुतियों) इन्द्रदेवकी कामनीय हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें तेइससर्षा सूक्त समाप्त (६७६)

अभिसवे “तं ते मदं गृणीमसि” इत्यस्य विनियोगः पूर्वेण
[२०. ६०] सह उक्तः ॥

तथा व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां प्रथमेऽहनि “तं ते मदं गृणीमसि” इति उक्तस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां तं ते मदं गृणीमसीति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा वैश्वदेवादीनां त्र्यहाणां द्वितीयेष्वहःसु अस्य विनियोगः “तमिन्द्रं वाजयामसि” इति सूक्ते [२०. ४७] उक्तः ॥

अभिसवमें “तं ते मदं गृणीमसि” इसका विनियोग पूर्वसूक्त (२०।६०) के साथ कह दिया है ।

तथा व्युष्ट्य आंगिरस कापिवन चैत्ररथ द्वयहोके प्रथम दिनमें “तं ते मदं गृणीमसि” यह उक्तस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“व्युष्ट्यांगिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां तं ते मदं गृणीमसीति” (वैतानसूत्र ८।३) ॥

तथा वैश्वदेव आदि ऽपहोके द्वितीय दिनोंमें इसका विनि-
योग "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७) सूक्तमें कहा है ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सुसांसहिम् । उलोक-
कृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

तम् । ते । मदम् । गृणीमसि । वृषणम् । पृत्सु । सांसहिम् ।

ऊं इति । लोककृत्नुम् । अद्रिऽवः । हरिऽश्रियम् ॥ १ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! हम फलोंकी वर्षा करने वाले, सेनाओं
में शत्रुओंका अभिभव करने वाले और हरी नामक घोड़ोंकी
श्रीसे सम्पन्न आपके लोककृत्नु मदकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

येन ज्योतीष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।

मन्दानो अस्य वह्निपो वि राजसि ॥ २ ॥

येन । ज्योतीषि । आयवे । मनवे । च । विवेदिथ ।

मन्दानः । अस्य । वह्निपः । वि । राजसि ॥ २ ॥

आपने जिम सोमके प्रभावसे आयु और मनुके लिये ज्यो-
तिर्मय उपायोंको प्राप्त कराया था, उस सोमसे हर्षमें भरे हुए
आप इस यजमानके कुशासन पर विराज रहे हैं ॥ २ ॥

तद्वा चित्त उक्थिनोनुं स्तुवन्ति पूर्वथा ।

वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

तत् । अथ । चित् । ते । उक्थिनः । अनु । स्तुवन्ति । पूर्वथा ।

वृषपत्नीः । अपः । जय । दिवेऽदिवे ॥ ३ ॥

ये उक्थमान करनेवाले आपके पूर्व कर्मोंकी स्तुति कर रहे हैं, आप मरत्येक विजिगीषाके अवसर पर धर्मकृत्य करके विजयपाश्वे तम्बभि प्र गांयत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

इन्द्रं गीर्भिस्तविपमा विवासत ॥ ४ ॥

तम् । ऊं इति । अभि । प्र । गांयत । पुरुहूतम् । पुरुस्तुतम् ।

इन्द्रम् । गीःभिः । तविपम् । आ । विवासत ॥ ४ ॥

बहुतोंसे आहूत और बहुतोंसे स्तुत उन इन्द्रदेवका ही तुम यशोगान करो, महान् इन्द्रदेवको ही तुम स्तुतिरूपा वाणियोंसे आवासित करो ॥ ४ ॥

यस्य द्विर्वहसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।

गिरीरज्रां अपः स्वर्गपत्न्या ॥ ५ ॥

यस्य । द्विर्वहसः । बृहत् । सह । दाधार । रोदसी इति ।

गिरीन् । अजान् । अपः । स्वः । पत्न्या ॥ ५ ॥

जिस द्विर्वहस् इन्द्रके धर्मभावके कारण थावा पृथिवी उनके महान् बल पर्वत वज्र अल और स्वर्गको धारण करते हैं (हेस्तोताओं) तुम उन इन्द्रदेवकी स्तुति करो ॥ ५ ॥

स राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्रसे ।

इन्द्र जैत्रां श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

सः । राजसि । पुरुस्तुतः । एकः । वृत्राणि । जिघ्रसे ।

इन्द्र । जैत्रा । श्रवस्या । च । यन्तवे ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

हे पुण्ड्र ! आप विजयशील यशसो पानेकेलिये दमकने हैं और अकेले ही आवरक शत्रुओंको मार डालने हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाक्यं लीलीनर्वा दृष्ट समाप्त (६५५)

“वयमु त्वामपूर्व्य” इत्याद्यवृत्तस्य विनियोगः [२०. १४]
इत्यत्र उक्तः ॥

तथा “इन्द्राय साम गायत” [२०. ६२. ५] इत्यस्य विनियोगः “इन्द्रो मदाय वाट्ये” [२०. ५६] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“वयमुः त्वामपूर्व्य” मूक्तका विनियोग (२०. १४) में कह दिया है ।

तथा “इन्द्राय साम गायत” (२०. ६५. ५) इसका विनियोग “इन्द्रो मदाय वाट्ये” (२०. ५६) के साथ कह दिया है ।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोवस्यवः ।

वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

वयम् । वं इति । त्वाम् । अपूर्व्य । स्थूरम् । न । कच् । चिद् ।

भरन्तः । अवस्यवः । वाजे । चित्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

हे बारम्बार गमन करने पर भी नवीन ही रहनेवाले अपूर्व्य ! (अर्थात् आपका अनादर कभी नहीं होना) इन्द्र ! आप पूजनीयका अन्नप्राप्ति वा संग्राममें हवि आदिसे पोषण करने वाले हम रक्षाकाम ही, आवाहन करते हैं, आप हमारी ओर ही विजय दिलानेके लिये आइये हमारे प्रतिपत्तियोंकी ओर न जाइये, क्योंकि—हम ही आपका आवाहन कर रहे हैं । जैसे मनुष्य हिम्मी परमेश्वरी राजाको अभिमत फल देकर पुष्ट करते हैं, उसको ही अपनी विजयके लिये बुलाने हैं, उसी प्रकार हम आपका आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

उप त्वा कर्मन्नुतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृपत् ।
त्वामिद्धयवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानुसिम् ॥ २ ॥

उप । त्वा । कर्मन् । ऊतये । सः । नः । युवा । उग्रः । चक्राम ।
यः । धृपत् ।

त्वाम् । इत् । हि । अवि॒तारम् । व॒वृमहे । सखा॑यः । इन्द्र ।
सान॒सिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्ध आदि कर्मके आने पर रक्षाके लिये हम आप
की शरणमें जाते हैं । जो इन्द्रदेव शत्रुओंको दया देते हैं, नित्य
सरुण रहते हैं, प्रचण्ड बली हैं, वह इन्द्रदेव हमको सहायकरूप
से प्राप्त होंगे । हे इन्द्रदेव ! मित्ररूप हम प्रीति करने वाले और
रक्षा करने वाले आपका ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुपे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥

यः । नः । इ॒दम् । इ॒दम् । पुरा । म । वस्यः । आ॒नि॒नाय । तम् ।
ऊँ इति । वः । स्तु॒पे । सखा॑यः । इन्द्रम् । ऊ॒तये ॥ ३ ॥

हे समान रूपाति वाले मित्र हुए यजमानों ! मैं तुम्हारी रक्षा
के लिये उन इन्द्रदेवकी स्तुति करता हूँ, कि-जो इन्द्रदेव पहिले
हमारे लिये यह गाँ है आदिक रीतिसे धन देखुके हैं । उन ही
अभिमत फल देने वाले इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥
हव्यंश्च सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ण्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वेयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवां
शतम् ॥ ४ ॥

हरिऽअश्वम् । सत्स्वतिम् । चर्पणिऽसहम् । सः । हि । स्म । यः ।
अमन्दत ।

आ । तु । नः । सः । वेयति । गव्यम् । अश्व्यम् । स्तोतृभ्यः ।
मघवा । शतम् ॥ ४ ॥

जिन इन्द्रदेवके हरिनामक घोड़े हैं, जो श्रेष्ठ यर्म करने वाले मनुष्योंके पालक हैं, और मनुष्योंको नियममें रखने वाले हैं, उन इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ । जो इन्द्रदेव स्तुतिसे प्रसन्न होते हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ । वह घनवान् इन्द्र हम स्तुति करने वालोंको सौ गौओंका और सौ घोड़ोंका भुण्ड प्रदान करें ४

इन्द्राय सामं गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते
विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥

इन्द्राय । साम । गायत । विप्राय । बृहते । बृहत् ॥ धर्मऽकृते ।
विपऽचिते । पनस्यवे ॥ ५ ॥

हे स्तोताओं । तुम धर्मकर्ता निदान्, स्तुत्य निष्ठात् इन्द्रदेवके लिये बृहत्सामका गायन करो ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्व-
देवो महो अंसि ॥ ६ ॥

त्वम् । इन्द्र । अभिऽभू । असि । त्वम् । सूर्यम् । अरोचय । ॥

विश्वऽकर्मा । विश्वऽदेवः । महान् । असि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हैं, आपने सूर्यको आकाशमें दीप्त किया है, आप विश्वकर्मा विश्वदेव और महान् हैं ॥ ६ ॥

विभ्राजं ज्योतिषा स्वर्गच्छो रोचनं दिवः ।

देवास्तं इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥

विभ्राजन् । ज्योतिषा । स्वः । अगच्छः । रोचनम् । दिवः ।

देवाः । ते । इन्द्र । सख्याय । येमिरे ॥ ७ ॥

आप अपनी ज्योतिसे स्वर्गको दमकाने वाले सूर्यको दमकाते हुए, स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं, हे इन्द्र ! देवता आपके सखित्वकी प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥

तन्वभि प्र गांयत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तं
विपमा विवासत ॥ ८ ॥

तम् । ऊं इति । तन्वि । प्र । गांयत । पुरुहूतम् । पुरुष्टुतम् ॥

इन्द्रम् । गीऽभिः । तन्विपम् । आ । विवासत ॥ ८ ॥

हे स्तोताओं ! तुम अनेक यजमानोंसे पुलाये हुए और अनेक स्तोताओंसे स्तुत इन इन्द्रकी ही स्तुति करो, उन बलवान् इन्द्र को ही स्तुतिवाणियोंसे आच्छादित करो ॥ ८ ॥

यस्य दिवर्हंसो बृहत् सहां दाधाररोदसी । गिरीरंज्रा

अपः स्वर्पत्वनाना ॥ ९ ॥

यस्य । द्विर्वहसः । वृहन् । सहः । दाधार । रोदसी इति ॥

गिरीन् । भजान् । अपः । स्तुः । वृषस्त्वना ॥ ६ ॥

जिस द्विर्वहस् इन्द्रके धर्मभावके कारण दावापृथिवी तकके महान् बल पर्वत यज्ञ जल और स्वर्गको धारण करते हैं । हे स्तोताओं ! तुम इन्द्रदेवकी स्तुति करो ॥ ६ ॥

स राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्रसे । इन्द्रजैत्रां
श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥

सः । राजसि । पुरुःस्तुत । एकः । वृत्राणि । जिघ्रसे ॥ इन्द्र ।
जैत्रा । श्रवस्या । च । यन्तवे ॥ १० ॥

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

हे पुरुष्टुत इन्द्र ! आप विजयशील यशको पानेके लिये दम-
कते हैं और अकेले ही भावरक शत्रुओंको मार डालते हैं ॥ १० ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चोसर्वा सूक्त समाप्त (६७८)

पृष्ठयस्य पृष्ठेहनि “इमा नु कं भुवना सीपधाम” [२०. ६३. १]
“हत्वाय देवा अमुरान् यदापन्” [२०. ६३. २] इति द्वैपदां
पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठ इमा नु कं भुवना सीप-
धाम हत्वाय देवा अमुरान् यदायन्निति द्वैपदां पच्छः” इति [वै०
६. २] ॥

वाजपेये तृतीयसवने प्राकृतयोः स्तोत्रियानुरूपयोः प्रत्याम्नाय-
की “य एक इह विदयते” [२०. ६३. ४] “य इन्द्र सोम-
पातमः” [२०. ६३. ७] एतौ उक्थस्तोत्रियानुरूपौ भवनः ।
तद् उक्तं वैताने । “तृतीयसवने य एक इह विदयते य इन्द्र सोम-
पातम इत्युक्थस्तोत्रियानुरूपौ” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा अभिजिति विपुवति विश्वजिति महाव्रते च तृतीयसवने एतौ उक्थस्तोत्रिषानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने . “अभिजिति विपुवति विश्वजिति महाव्रते च ये एक इद् विदयते य इन्द्रसोमपातम इत्पुक्थस्तोत्रिषानुरूपौ” इति [वै० ६. १] ॥

तथा विश्वजिति एकाहीभूते “य एक यद् विदयते” इत्येव उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “विश्वजिति य एक इद् विदयत इति” इति [वै० ८. २] ॥

तथा चतुरहाणां चतुर्थेऽवहःसु “महौ इन्द्रो य ओजसा” [२०. १३८] “य एक इद् विदयते” [२०. ६३. ४] एतौ आज्यो-क्थस्तोत्रियो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थेषु महौ इन्द्रो य ओजसा य एक इद् विदयत इति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा अभिसवपश्चाहस्य “य एक इद् विदयते” इति उक्थ-स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “अभिसवपश्चाहस्य य एक इद् विदयत इति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा अभिप्लवस्य षष्ठमहः उक्थ्यसंस्थं भवति तदा “य एक इद् विदयते” [२०. ६३. ४] “यत् सोममिन्द्र विष्णुषि” [२०. १११] एतौ उक्थस्तोत्रियो विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “षष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इद् विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णुषीति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा द्वादशाहस्य छन्दोमप्यहस्य मथमान्त्ययोरहोः “स्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] “य एक इद् विदयते” एतौ उक्थ-स्तोत्रियो यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “द्वादशाहस्य छन्दोमप्यमान्त्ययोस्त्वं न इन्द्रा भर य एक इद् विदयत इति” इति [वै० ८. ४] ॥

षष्ठ्यके छठे दिन “इमा नु कम् भुवना सीपधाम” (२०।६३।१) “इत्वाय देवा असुरा यदायन्” (२०।६३।२) इन द्वैपदौ

को पद २ करके कहे । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—
“इमा नु कं शु।ना सीपचाम इत्वाय देवा असुरान् यदापन्निति
द्वैपदी पञ्चः” (वैतानमूत्र ६ । २) ॥

वानपेयके तृतीय सवनमें प्राकृत स्तोत्रियानुरूपोंके मत्स्याम्ना-
यक “य एक इद् विदयते” (२० । ६३ । ४) “य इन्द्र सोम-
पातमः” (२० । ६३ । ७) ये उक्थ स्तोत्रियानुरूप होते हैं ।
इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“तृतीयसवने य एक इद्
विदयते य इन्द्र सोमपातम इत्पुक्थस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतानमूत्र ४।३)

तथा अभिजित् विपुवत् विश्वजित् महाव्रतके भी तृतीयसवन
में ये उक्थस्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानमूत्रमें
कहा है, कि—“अभिजिति विपुवति विश्वजिति महाव्रते च य एक
इद् विदयते य इन्द्र सोमपातम इत्पुक्थस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतान-
मूत्र ६ । १) ॥

तथा एकहीभूत विश्वजित्में “य एक इद् विदयते” यह उक्थ-
स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“विश्व-
जिति य एक इद् विदयते” (वैतानमूत्र ८ । २) ॥

तथा चतुरहोंके चौथे दिनोंमें “महाँ इन्द्रो य ओजसा य एक
इद् विदयते” इति ये आद्योक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको
वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“चतुर्थेषु महाँ इन्द्रो व ओजसा य एक
इद् विदयते” (वैतानमूत्र ८ । ३) ॥

तथा अभिसवपञ्चाहका “य एक इद् विदयते” यह उक्थ-
स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानमें कहा है, कि—“अभि-
सवपञ्चाहस्य य एक इद् विदयते” (वैतानमूत्र ८ । ३) ॥

तथा अभिसवका छठा दिन उक्थ्यसंस्थ होता है तब “य एक
इद् विदयते” (२० । ६३ । ४) “यत् सोममिन्द्र विष्णवि”
(२० । १११) ये विकल्पित उक्थ्य स्तोत्रिय होते हैं । इसी बात

(३४२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

को वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“पृष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इद् विद-
यते यत् सोममिन्द्रविष्णवीति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा द्वादशाह छन्दोमन्त्रहके पहिले तीसरे दिनोंमें “त्वं न
इन्द्रा भर” (२० । १०८) “य एक इद् विदयते” ये यथाक्रम
उक्थ्य और स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,
कि-“द्वादशाहस्य छन्दोमन्त्रमन्त्रयोस्त्वं न इन्द्राभर य एक
विदयते” (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

इमा नु कं भुवना सीधामेन्द्रश्च विश्वं च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्यं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीकृ-
पाति ॥ १ ॥

इमा । नु । कम् । भुवना । सीधाम् । इन्द्रः । च । विश्वे । च । देवाः ।
यज्ञम् । च । नः । तन्यम् । च । प्रजाम् । च । आदित्यैः ।

इन्द्रः । सह । चीकृपाति ॥ १ ॥

ये सम्पूर्ण विरवेदेवता, इन्द्र तथा भुवन सुखको पानेकी चेष्टा
करते हैं, आदित्यों सहित इन्द्रदेव हमारे यज्ञको शरीरको और
प्रजाको समर्थ करें ॥ १ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनू-
नाम् ।

हत्वायं देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्ष-
माणाः ॥ २ ॥

आदित्यैः । इन्द्रः । सगणः । मरुद्भिः । अस्माकम् । भूत्वा ।

अविता । तनूनाम् ।

इत्वाय । देवाः । असुरान् । यत् । आप्यन् । देवाः । देवस्त्वम् ।

अभिऽरत्तमाणाः ॥ २ ॥

जो देवता देवत्वकी रक्षा करनेके लिये असुरोंको मार कर देवत्वको अक्षुण्ण रख सके थे, उन आदित्य और मरुद्गणोंसे सम्पन्न इन्द्र हमारे शरीरके रक्षक बनें ॥ २ ॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं शचीभिरादित्स्वधामिपिरां पर्येष्यन्

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ३

प्रत्यञ्चम् । अर्कम् । अनपन् । शचीभिः । आत् । इत् । स्वधाम् ।

इपिराम् । परि । अपश्यन् ।

अया । वाजम् । देवऽहितम् । सनेम । मदेम । शतऽहिमाः । सुऽवीराः ३

देवता शक्तियोंके द्वारा सूर्यको मर्त्येकके सन्मुख लाये हैं और फिर उन्होंने पृथ्वीको हविरूप भक्षसे सम्पन्न देखा है । इसी मायाके द्वारा हम देवताओंका हित करने वाले अन्नको पावे और सुन्दर वीरोंसे सम्पन्न रह कर सौ वर्ष तक जीवित रहें ३ य एक इद् विदयेते वसु मर्ताय दाशुपे । ईशानो

अप्रतिष्कृत इन्द्रो अद् ॥ ४ ॥

यः । एकः । इत् । विदयेते । वसु । मर्ताय । दाशुपे ॥ ईशानः ।

अप्रतिऽस्कृतः । इन्द्रः । अद् ॥ ४ ॥

जो अप्रतिभट स्वामी इन्द्र हवि देने वाले यजमानको घन देनेमें अद्वितीय हैं ॥ ४ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा जुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः
शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥

कदा । मर्तम् । अराधसम् । पदा । जुम्पम् इव स्फुरत् ॥ कदा ।

नः । शुश्रवत् । गिरः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ५ ॥

हवि वां स्तुतिसे अपनी आराधनां न करने वाले मनुष्यों को
इन्द्रदेव कब पैरसे ताड़ित करेगा और कब हम स्तोताओं की
वाणियों को सुनेंगे ॥ ५ ॥

यश्चिद्धि त्वां बहुभ्य आ सुतांवां आविवांसति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥

यः । चित् । हि । त्वा । बहुभ्यः । आ । सुतांवां । आवि-
वासति ॥ उग्रम् । तत् । पत्यते । शवः । इन्द्रः । अङ्गः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! जो अभिपुत्र सोम बाला पुरुष आपकी बहुतसी
स्तुतियोंसे प्रार्थना करता है, वह मचण्ड बलसे ऐश्वर्यमें भा-
जाता है ॥ ६ ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठचेतति । येना हंसि ।
न्येऽत्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥

यः । इन्द्र । सोमपातमः । मदः । शविष्ठ । चेतति ॥ येन । हंसि ।

नि । अत्रिणम् । तम् । ईमहे ॥ ७ ॥

जो इन्द्रदेव सोमके बड़े पियकड़ हैं और बलमय मद जिनमें
उदित होता है, और हे इन्द्र ! जिसके द्वारा मत्तणशील राजाओं

तो आप मारते हैं, उस बलकी हम याचना करते हैं ॥ ७ ॥
येना दशंग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्र-
माविंथा तमीमहे ॥ ८ ॥

येन । दशऽङ्गम् । अध्रिऽगुम् । वेपयन्तम् । स्वर्णऽनरम् ॥ येन ।
समुद्रम् । आविंथ । तम् । ईमहे ॥ ८ ॥

जिस मभावके द्वारा आपने दशगु अध्रिगु काँपते हुए स्वर्णर
की रक्षा की थी और समुद्रकी रक्षा की थी उस मभावकी हम
याचना करते हैं ॥ ८ ॥

येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थांमृतस्य
यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

येन । सिन्धुम् । महीः । अपः । रथान्ऽइव । प्रचोदयः ॥ पन्थाम् ।
मृतस्य । यातवे । तम् । ईमहे ॥ ९ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षड्विंशं सूक्तम् ॥

जिस मभावसे आपने विशाल जलोंको सिन्धुकी ओर रथकी
समान चला रक्खा है, अमृतके मार्गमें जानेके लिये हम उस
मभावकी याचना करते हैं ॥ ९ ॥

पञ्चम अनुवाकमें छत्तीसवाँ सूक्त समाप्त (६३९)

अभिसवस्य पञ्चमेदनि “एन्द्र नो गधि मियः” इति उक्थ-
स्तोत्रियो भवति । तद् वक्तुं चैताने । “पञ्चम एन्द्र नो गधि मिय
इति” इति [वै० ८. ३] ॥

अभिसवके पञ्चम दिनमें, “एन्द्र नो गधि मियः” ये उक्थ-

(३४६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, “
एन्द्र नो गधि प्रियः” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

एन्द्रं नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विस्व
तस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

आ । इन्द्र । नः । गधि । प्रियः । सत्राजित् । अगोह्यः ॥ गिरिः ।

न । विस्वतः । पृथुः । पतिः । दिवः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप हमारे प्रिय हैं, हमको प्रियरूपमें ग्रहण करिये,
आप सत्यसे विजय पाने वाले हैं, कोई आपको छिपानहीं सकता,
आप पर्वतकी समान विशाल हैं और स्वर्गके स्वामी हैं ॥ १ ॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे वभूथ रोदसी । इन्द्र ।

सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

अभि । हि । सत्य । सोमपाः । उभे इति । वभूथ । रोदसी इति ।

इन्द्र । असि । सुन्वतः । वृधः । पतिः । दिवः ॥ २ ॥

हे सत्य इन्द्र ! आप अभिमुख होकर सोमका पान
हैं धुलोक और पृथिवीलोक दोनोंमें आप प्रकट होजाते हैं,
इन्द्र ! आप अभिपय करने वालेको बढ़ाने वाले और
... ॥ २ ॥

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्रं दूर्ता पुरामसि । हन्ता

दस्योर्मनोवृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

त्वम् । हि । शश्वतीनाम् । इन्द्र । दूर्ता । पुराम् । असि । हन्ताः ।

दस्योः । मनोः । वृधः । पतिः । दिवः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शशरत्न पुरोंको तोड़ने वाले हैं, दस्युओंका
 बंधार करने वाले हैं, मनुको बढ़ाने वाले हैं और स्वर्गके स्वामी हैं ३
 शूद्र मध्वों मदिन्तरं मित्र वांधव्यो अन्धसः । एवा
 हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥

मा । इत् । ऊं इति । मध्वः । मदिन्तरम् । मित्र । वा ।
 अन्धसः इति । अन्धसः । एव । हि । वीरः । स्तवते । सदावृधः ४
 हे मध्वर्यो ! मधुमे भी अधिक मद करने वाले अन्नके भागसे
 इन इन्द्रदेवको वृद्ध करो, यज्ञमानकी सदा बढ़ातीर कराने वाले
 यह इन्द्र स्तुति पाते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रं स्थातहरीणां नकिंष्ट्रे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश
 शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥

इन्द्र । स्थातः । हरीणाम् । नकिः । त्रे । पूर्व्यस्तुतिम् ॥ उद ।
 आनंश । शवसा । न । भन्दना ॥ ५ ॥

हे हरि नामक घोड़ों पर स्थित होने वाले इन्द्र ! आपके पूर्व
 कर्मोंके कारण की जाने वाली स्तुतिको और कन्याओंको कोई
 बलसे नहीं पासका है ॥ ५ ॥

तं वा वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अमायुभि-
 र्यज्ञेभिर्विवृधेन्यम् ॥ ६ ॥

तम् । वः । वाजानाम् । पतिम् । अहूमहि । श्रवस्यवः । अमा-
 युभिः । यज्ञेभिः । विवृधेन्यम् ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

(३४८) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

अन्नको चाहने वाले हम, हविरूप अन्नके स्वाधी इन्द्रका आह्वान करते हैं । यह इन्द्रदेव सावधानतापूर्वक किये हुए यशों से त्रास्त्वार चढ़ते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सत्ताईसवां सूक्त समाप्त (६८०)

दशाहस्य नवमेदनि “एतो न्विन्द्रं स्तवाम” इति उच्यंस्तो-
त्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “नवम एतो न्विन्द्रं स्तवामेति”
इति [वै० ८. ४] ॥

दशाहके नवम दिनमें “एतो न्विन्द्रं स्तवाम” यह उच्यंस्तो-
त्रिय होता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“नवम
एतो न्विन्द्रं स्तवामेति” (वैतानमूत्र ८ । ४.) ॥

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् । कृष्टीयां
विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥

एतो इति । जु । इन्द्रम् । स्तवाम । सखायः । स्तोम्यम् । नरम् ॥

कृष्टीः । यः । विश्वाः । अभि । अस्ति । एकः । इत् ॥१॥

मित्ररूप हम इस ओर आनेके लिये इन्द्रकी स्तुति करते हैं,
यह इन्द्र स्तुतिके पात्र हैं, नेता हैं, यह इन्द्र सकल कर्मफलोंको
असाधारणरूपसे मेरित करते हैं ॥ १ ॥

अगोरुधाय गविषे क्षुत्ताय दस्युं वचः । धृतात
स्वादीयो मधुनश्च वोचत् ॥ २ ॥

अगोरुधाय । गोऽश्वे । क्षुत्ताय । दस्युम् । वचः ॥ धृतात ।

स्वादीयः । मधुनः । च । वोचत् ॥ २ ॥

गौओंको न रोकने वाले, बाणीरूप अन्न वाले, दमकने वाले,

दर्शनीय इन्द्रके लिये हे स्तोताओं ! तुम घृत और शहदसे भी
मधुर वचनका उच्चारण करो ॥ २ ॥

यस्यामितानि वीर्या॑ न राधः॑ पर्येतवे । ज्योतिर्न
विश्वमभ्यस्ति॑ दक्षिणा ॥ ३ ॥

यस्य । अमितानि । वीर्या । न । राधः । पर्येतवे ॥ ज्योतिः ।
न । विश्वम् । अभि । अस्ति । दक्षिणा ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके अष्टाविंशं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवमें कार्यको साधनेके लिये अमित वीर्य हैं और
दमरुती हुई दक्षिणा हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें अष्टाविंशो सूक्त समाप्त (६८१)

स्तुहीन्द्रं॑ व्यश्वदन्मि॑ वाजिनं॑ यमम् । अर्यो॑ गयं
मंहमानं॑ वि दाशुपे॑ ॥ १ ॥

स्तुहि । इन्द्रम् । व्यश्वदन्म् । अन्मिम् । वाजिनम् । यमम् ॥
अर्यः । गयम् । मंहमानम् । वि । दाशुपे ॥ १ ॥

हे अश्विज ! घोड़ोंको छोड़कर पशुमें निश्चल भावसे विराज-
मान घनी और मशंसाके पात्र इन्द्रकी आप हविर्दाता यजमान
के कन्पाणके लिये स्तुति करिये ॥ १ ॥

एवा॑ नूनमुप॑ स्तुहि॑ वैयश्वद॑शमं॑ नवम् । सुविद्वांसं॑
चकृत्यं॑ चरणीनाम् ॥ २ ॥

एव । नूनम् । उप । स्तुहि । वैयश्व । दशमम् । नवम् ॥ सु-
विद्वांसम् । चकृत्यम् । चरणीनाम् ॥ २ ॥

हे वैश्यरव ! आप सदा नवीन, दशम, परमविद्वान्, चरणि-
का वारम्बार कर्तन करने वाले इन्द्रदेवकी स्तुति करिये ॥ २॥
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः
शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

वेत्थ । हि । निःऽऋतीनाम् । वज्रहस्त । परिऽवृजम् । अहःऽअहः ।
शुन्ध्युः । परिपदाम्ऽइव ॥ ३ ॥

पञ्चमेऽनुवाके एकीनविंशं सूक्तम् ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! जैसे शोधक आदित्य प्रतिदिन परिपरी-
को (चारों ओर पतन करने वाली किरणें आदिको) जानते
हैं, इसी प्रकार आप पीड़ा देनेवाली शक्तियोंके समूहको जानते हैं ३
पञ्चम अनुवाकमें उन्तीसवाँ सूक्त समाप्त (६८२)

पञ्चम अनुवाक समाप्त

पृष्ठपदहस्य पृष्ठेऽहि मातःसवनमाध्यन्दिनयोर्द्वयोः सवनयोः
माकृतीनां मस्थितयाज्यानां पुरस्तात् “वनोति हि” इत्याद्याः
पारुच्छेप्याख्या ऋचः संवध्नाति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठ-
पृष्ठे वनोति हि सुन्वनं क्षयं परीणमः [२०. ६७] विश्वेषु हि
त्वा सवनेषु तुज्जते [२०. ७२] इति पारुच्छेपीरुपदधातिद्वयोः
सवनयोः पुरस्तात् मस्थितयाज्यानाम्” इति [वै० ६. १] ॥

पृष्ठपदहके छठे दिन मातः सवन और माध्यन्दिन दोनों
सवनोमें माकृती मस्थितयाज्याओंसे पहिले “वनोति हि” आदिक
पारुच्छेप्या नामक ऋचाएँ पढ़ीं जाती हैं । इसी बातको वैतान-
सूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठपृष्ठे वनोति हि सुन्वनं क्षयं परीणमः
(२० । ६७) विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुज्जते (२० । ७२)

इति पारुच्छेपीरुपदधाति द्वयोः सवनयोः पुरस्तात् प्रस्थितयाज्या-
नाम्" (वैतानसूत्र ६ । १)

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।

सुन्वान इत् सिंसासति सहस्रां वाज्यवृतः ।

सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥

वनोति । हि । सुन्वन् । क्षयम् । परीणसः । सुन्वानः । हि । स्म ।

यजति । अव । द्विषः । देवानाम् । अव । द्विषः ।

सुन्वानः । इत् । सिंसासति । सहस्रा । वाजी । अवृतः ।

सुन्वानाय । इन्द्रः । ददाति । आऽभुवम् । रयिम् । ददाति । आऽ-

भुवम् ॥ १ ॥

सोमका अभिषव करने वाला पुरुष बहुतसे घरोंको प्राप्त करता
है, सोमका अभिषव करता हुआ अपने शत्रुओंका अवयजन
करता है, और देवशत्रुओंका अवयजन करता है । सोमका अभिषव
करने वाला सहस्रों वस्तुओंका दान करना चाहता है, अन्नसे
सम्पन्न रहता है, और शत्रुओंसे घिरा हुआ नहीं रहता है ।
अभिषव करने वालेके लिये इन्द्रदेव पृथ्वीवरका घन देते हैं १

मो घु वो अस्मदभि तानि पौस्या सनां भूवन् हु-

म्नानि मोत जांरिपुरस्मत् पुरोत जांरिषुः ।

यद् वंश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।

(३५२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसरित

अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टं दिष्टता यच्च दुष्टम्
मो इति । सु । वः । अस्मत् । अभि । तानि । पौंस्या । सना ।

भुवन् । धुम्नानि । मा । उत । जारिपुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिपुः
यत् । वः । चित्रम् । युगेऽयुगे । नव्यम् । घोषात् । अमर्त्यम् ।

अस्मासु । तत् । मरुतः । यत् । च । दुस्तरम् । दिष्टत । यत् ।
च । दुस्तरम् ॥ २ ॥

(हे मरुद्गणों !) आपके जो दमकते हुए पुरुषार्थमय तापक
तेज हैं, वे हमारे अभिमुख न होवें, वे हमें जीर्ण न करें, वे हमें
जीर्ण न करें आपका जो घोषके कारण अमर्त्य नव्य चायनीय
बल है, उसको हममें स्थापित करो, उस शत्रुओंसे दुस्तर बल
को हममें स्थापित करो ॥ २ ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जात-
वेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वयां स्वध्वरो देवो देवाव्यां कृपा ।

धृतस्य विभ्राष्टिमनुं वष्टि शोचिपाजुह्वानस्य सर्पिषः
अग्निम् । होतारम् । मन्ये । दास्वन्तम् । वसुम् । मनुम् । सहसः ।

जातवेदसम् । विप्रम् । न । जातवेदसम् ।

यः । ऊर्ध्वयां । सुऽअध्वरोः । देवः । देवाव्यां । कृपा ।

घृतस्य । विष्म्राष्टिम् । अनु । वृष्टि । शोचिषा । आऽजुहानस्य ।
सर्पिषः ॥ ३ ॥

अग्निदेवको मैं देवताओंका होता, धनका प्रदान करनेवाला, बलका अनुन, उत्पन्न होने वालोंको जाननेवाले विषकी समान जातवेदा मानता हूँ । यह अग्निदेव अपनी देवताओंको पहुँचने वाली समर्प्य ऊँची लपटसे यज्ञको सुन्दर बनाते हैं और होमेहुए घृतकी दमकको और घृतकी विन्दुओंकी कामना करते हैं ॥३॥

यज्ञैः संमिश्राः पृपतीभिर्ऋष्टिभिर्यामं जुभ्रासो अजिपु
प्रिया उत ।

आसद्यां वर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता
दिवो नरः ॥ ४ ॥

यज्ञैः । सम्मिश्राः । पृपतीभिः । ऋष्टिभिः । यामन् । जुभ्रासः ।
अजिपु । प्रियाः । उत ।

आऽसद्य । वर्हिः । भरतस्य । सूनवः । पोत्रात् । आ । सोमम् ।
पिबत । दिवः । नरः ॥ ४ ॥

हे भरण करने वाले इन्द्रके छोटे भाई मरुद्गणों ! तुम स्वर्गके नेता हो, तुम फलप्रदानके अवसर पर अपनी दीसती हुई पृपती नामक घोड़ियोंके द्वारा यज्ञोंमें आते हो, तुम प्रिय हो और जुभ्र हो, ऐसे आप कुशाओं पर बैठ कर पोत्रसे सोमका पान करो ४
आ वंचि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षंदा
योनिषु त्रिषु ।

(३५४) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

प्रतिं वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिवाग्नीध्रात् त्वं
भागस्य तृणुहि ॥ ५ ॥

आ । वृत्ति । देवान् । इह । विप्र । यत्ति । च । उशन् । होतः ।
नि । सद । योनिषु । त्रिषु ।

प्रति । वीहि । प्रस्थितम् । सोम्यम् । मधु । पिव । आग्नीध्रात् ।
त्वं । भागस्य । तृणुहि ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! आप इस यज्ञमें देवताओंको लाइये, और उनका
पूजन करिये, हे कामयमान होतः ! आप तीनों स्थानोंमें विराज-
मान हजिये, प्रस्थित भागको पहुँचानेके अनन्तरस्वयं भी भक्षण
करिये, और आग्नीध्रसे सोम्य मधुका पान करिये, इस प्रकार
अपने भागसे वृत्त हजिये ॥ ५ ॥

एष स्य ते तन्वो नृमणवर्धनः सह श्रोजः प्रदिवि
वाहोर्हितः ।

तुभ्यं सुतो मधवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमेस्य ब्राह्मणादा
तृपत् पिव ॥ ६ ॥

एषः । स्यः । ते । तन्वः । नृमणवर्धनः । सहः । श्रोजः । प्रदिवि ।
वाहोः । रितः ।

तुभ्यम् । सुतः । मधवन् । तुभ्यम् । आभृतः । त्वम् । अस्य ।
ब्राह्मणात् । आ । तृपत् । पिव ॥ ६ ॥

हे मघवन् ! यह सोम आपके शरीरके बलको बढ़ाने वाला है, विजिगीषाके लिये आपकी भुजाओंमें दूसरोंको दवानेकी शक्ति और भोज भरा हुआ है, हे इन्द्र ! यह सोम आपके लिये अभिषुन हुआ है, आपके लिये ही पात्रमें भरा गया है आप ब्राह्मणके द्वारा वृत्ति पर्यन्त इसका पान करिये ॥ ६ ॥

यसु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददियो नाम् पत्यते ।

अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधुं पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिवं ऋतुभिः ॥ ७ ॥

यम् । ऊं इति । पूर्वम् । अहुवे । तम् । इदम् । हुवे । सः । इत् ।

ऊं इति । हव्यः । ददिः । यः । नाम् । पत्यते ।

अध्वर्युभिः । प्रस्थितम् । सोम्यम् । मधुं । पोत्रात् । सोमम् । द्रविणोदः । पिवं । ऋतुभिः ॥ ७ ॥

इति पष्ठेनुवाके मथमं सूक्तम् ॥

मैं जिन इन्द्रदेवका पहिले आवाहन किया करता था, अब भी उनका ही आवाहन करता हूँ, यह वही हव्य दिया जा रहा है, जो ऐश्वर्यसम्पन्न करता है, हे धनपद इन्द्र ! अध्वर्युओंके दिये हुए इस सोम्य मधुका समयानुसार पान करिये ॥ ७ ॥

छठे अनुवाकमें मथम सूक्त समाप्त (६८३)

छन्दोमानां मथमेहनि प्रातःसवने “सुरूपकृत्नुमृतये” इति द्वादश ऋच आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “सुरूपकृत्नुमृतय इति द्वादशर्चः” इति [वै० ६. ३] ॥

(३५८) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हमारे शत्रु भी हमारे सौभाग्यका बखान करें, हम इन्द्रके ७१
मदान करने पर दर्शनीय खेतियों वाले होवें ॥ ६ ॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्द
यत्संखम् ॥ ७ ॥

आ । ईम् । आशुम् । आशवे । भर । यज्ञऽश्रियम् । नृमादनम् ॥
पतयत् । मन्दयत्संखम् ॥ ७ ॥

हे स्तीतः । इन यज्ञकी शोभारूप, मनुष्योंको दणित करने
वाले, मित्रोंको प्रसन्न करने वाले आशुकारी इन्द्रको शरक
ऊपर भरण कर ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो
वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

अस्य । पीत्वा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । घनः । वृत्राणाम् ।
अभवः ॥ ८ ॥ प्रावः । वाजेषु । वाजिनम् ॥ ८ ॥

हे इन्द्र । आप इसके (सोमको) पीकर आवरक शत्रुओंके
घन हूजिये । और युद्धोंमें हमारे घोड़ेकी रक्षा करिये ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । घना
नामिन्द्र सातये ॥ ६ ॥

तम् । त्वा । वाजेषु । वाजिनम् । वाजयामः । शतक्रतो इति
शतऽक्रतो ॥ घनानाम् । इन्द्र । सातये ॥ ६ ॥

हे शनक्रवो इन्द्र ! हम आप यज्ञान्नसे सम्पन्नको यज्ञ वा संग्राममें आवाहन करते हैं । हे इन्द्र ! हम धनमाप्तिके लिये संग्राम में वा यज्ञमें आपका आवाहन करते हैं ॥ ९ ॥

यो रायोऽवनिर्महान्सुंगारः सुन्वतः सखा । तस्मा
इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

यः । रायः । अवनिः । महान् । सुंगारः । सुन्वतः । सखा ॥
तस्मै । इन्द्राय । गायत ॥ १० ॥

जो इन्द्र धनके बड़े भारी रत्नक हैं, सुन्दरनामे पालन करने वाले हैं और सोमका अभिषेक करने वालेके मित्र हैं, उन इन्द्र के लिये हे स्तोताओं ! तुम स्तुतिका गान करो ॥ १० ॥

आ त्वेतां नि पीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय
स्तोमंवाहसः ॥ ११ ॥

आ । तु । आ । इत । नि । पीदत । इन्द्रम् । अभि । प्र ।
गायत ॥ सखायः । स्तोमंवाहसः ॥ ११ ॥

हे स्तोमका बहन करने वाले मित्ररूप स्तोताओं ! तुम आओ और इधर बैठो तथा इन्द्रका गान करो ॥ ११ ॥

पुरुतमे पुरुणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे
सचा सुते ॥ १२ ॥

पुरुतमेम् । पुरुणाम् । ईशानाम् । वार्याणाम् । इन्द्रम् । सोमे ।
सचा । सुते ॥ १२ ॥

इति षष्ठेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

(३६०) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

परमविशाल, और बड़े २ बरणीयोंके स्वामी इन्द्रदेवको
का अभिषेक होनेके साथ ही (आह्वान करो) ॥ १२ ॥

छठे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६८४)

छन्दोमानां द्वितीयेदनि “स घा नो योग आ भुवत्” इति
द्वात्रिंशत्तम् अथ आचपते । तद् उक्तं वैताने । “स घा नो योग
आ भुवदिति द्वात्रिंशत्तम्” इति [वै० ६. ३] ॥

छन्दोमोंके द्वितीय दिनमें “स घा नो योग आभवत्” इस
द्वात्रिंशत्की आचार्य पढ़ी जाती है । इसी बातको वैतानसूत्रमें
कहा है, कि—“स घा नो योग आभवदिति द्वात्रिंशत्तम्” (वैतान-
सूत्र ६. ३) ॥

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।

गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥

सः । य । नः । योगे । आ । भुवत् । सः । राये । सः । पुरं०

ध्याम् ॥ गमत् । वाजेभिः । आ । सः । नः ॥ १ ॥

पुरोंकी चिन्ताके अवसर पर वह इन्द्रदेव हमारे सामने प्रकट
होते हैं, वह अन्नोंके साथ हमारे पास आवें ॥ १ ॥

यस्य संस्थे न वृणवते हरीं समत्सु शत्रवः । तस्मा

इन्द्राय गायत ॥ २ ॥

यस्य । सम०स्थे । न । वृणवते । हरी इति । समत्सु । शत्रवः ॥

तस्मै । इन्द्राय । गायत ॥ २ ॥

जिन इन्द्रदेवके स्थित होने पर संग्रामोंमें शत्रु इन्द्रके हरी

नामक घोड़ोंको नहीं घेरते हैं, उन इन्द्रदेवके लिये हे स्तोताओं !
तुम स्तुतिका गान करो ॥ २ ॥

सुत॒पान्ने सु॒ता इ॒मे शुच॑यो यन्ति वी॒तये॑ । सोमा॑सो
दध्या॑शिरः ॥ ३ ॥

सु॒त॒पान्ने । सु॒ताः । इ॒मे । शुच॑यः । यन्ति॑ । वी॒तये॑ । सोमा॑सः ।

दधि॑ऽमाशिरः ॥ ३ ॥

यह दधि पड़े, अभिषुत पवित्र सोम, अभिषुत सोमका पान
करने वाले इन्द्रदेवके भक्षणके लिये जा रहे हैं ॥ ३ ॥

त्वं सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ स॒द्यो वृ॒द्धो अ॒जाय॑थाः । इन्द्र॑
ज्यैष्ठ्या॑य सु॒क्रतो ॥ ४ ॥

त्वम् । सु॒तस्य॑ । पी॒तये॑ । स॒द्यः । वृ॒द्धः । अ॒जाय॑थाः ॥ इन्द्र॑ ।

ज्यैष्ठ्या॑य । सु॒क्रतो॒ इति॑ सु॒क्रतो ॥ ४ ॥

हे सुक्रतो इन्द्र ! आप अभिषुत सोमका बड़ा पान करनेके
लिये शीघ्र ही बड़े हो जाते हैं ॥ ४ ॥

आ त्वा वि॒शन्त्वा॒शवः॑ सोमा॑स इन्द्र॑ गिर्व॒णः । शं
ते॑ सन्तु प्र॒चेत॑से ॥ ५ ॥

आ । त्वा । वि॒शन्तु॑ । आ॒शवः॑ । सोमा॑सः । इन्द्र॑ । गिर्व॒णः ॥

शम् । ते॑ । सन्तु॑ । प्र॒चेत॑से ॥ ५ ॥

हे स्तुतिपाँसे संभजनीय इन्द्र ! कुर्ती देने वाले सोम आपसे
अभिमुख होकर प्रवेश करें । और आपके चित्तको शांति देने
वाले हों ॥ ५ ॥

त्वां स्तोमां अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां
वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥

त्वाम् । स्तोमाः । अवीवृधन् । त्वाम् । उक्था । शतक्रतो इति

शतक्रतो । त्वाम् । वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ६ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! स्तोम आपको बढ़ाते हैं, उक्थ्य आपको
बढ़ाते हैं और हमारी वाणियों आपको बढ़ावें ॥ ६ ॥

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन्
विश्वानि पौस्या ॥ ७ ॥

अक्षितः सनेत् । इमम् । वाजम् । इन्द्रः । सहस्रिणम् ॥

यस्मिन् । विश्वानि । पौस्या ॥ ७ ॥

जिसमें सैंकड़ों प्रकारके सहस्रों पुरुषार्थ भरे हुए हैं उस यज्ञ
का अक्षुण्ण रक्षा वाले इन्द्रदेव सेवन करें ॥ ७ ॥

मा नो मर्ता अभि वृहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥

मा । नः । मर्ताः । अभि । वृहन् । तनूनाम् । इन्द्र । गिर्वणः ॥

ईशानः । यवय । वधम् ॥ ८ ॥

हे स्तुतियोंसे संभजनीय इन्द्र ! मनुष्य हमारे शरीरोंसे द्रोह
न करें आप हमारे ईश्वर हैं, अतः हमारे वधनिमित्तको दूर
करिये ॥ ८ ॥

युञ्जन्ति ब्रह्मन्मरुपं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते
रोचना दिवि ॥ ६ ॥

युञ्जन्ति । ब्रह्मन् । मरुपम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ॥ रोचन्ते ।
रोचना । दिवि ॥ ६ ॥

महान्, दमकते हुए और स्यावर तथा जंगमोंके ऊपर विच-
रण करते हुए इन्द्रके रथमें हरि नामक अश्व जुतते हैं और वह
दमकते हुए अश्व धूलोकमें दमकते हैं ॥ ६ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणां घृष्ण
नृवाहसा ॥ १० ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विपक्षसा । रथे ॥
शोणा । घृष्ण इति । नृवाहसा ॥ १० ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरी नाम वाले अश्वोंको जोतते
हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों फरबटोंमें
रहते हैं, रक्त वर्ण वाले हैं, दवाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्यों
को सवारी देने वाले हैं ॥ १० ॥

केतुं कृणवन्केतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुपद्भि-
रजायथा ॥ ११ ॥

केतुम् । कृणवन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे ॥ सम् ।

उपद्भिः । अजायथाः ॥ ११ ॥

हे मरणधर्मसहित मनुष्यों ! प्रज्ञानरहित पुरुषको शान देने

बाले और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको
रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, या
अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ ११ ॥

आदहं स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमस्मि । दधाना नाम
यज्ञियम् ॥ १२ ॥

आत् । अहः । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भत्वम् । आर्श्वस्मि ॥
दधानाः । नाम । यज्ञियम् ॥ १२ ॥

इति पठेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर ये मरुद्गण स्वधा देने वाले गर्भत्वको प्राप्त
होनाते हैं और यज्ञिय नामको धारण करते हैं ॥ १२ ॥

छठे अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६८५)

द्वन्द्वोमानां तृतीयेहनि “वीलु चिदारुजत्नुभिः” इति पट्विंश-
तम् अक्षरः आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “वीलु चिदा-
रुजत्नुभिरिति पट्विंशतम् आवपते” इति [वै० ६. ३] ॥

द्वन्द्वोमके तृतीय दिनमें “वीलु चिदारुजत्नुभिः” इस पट्विंश-
तको अक्षरोंके आवापस्थानमें पड़े । इसी बातको वैतान-
सूत्रमें कहा है, कि—

वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहां चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द
उसिया अनु ॥ १ ॥

वीलु । चिद् । आरुजत्नुभिः । गुहा । चिद् । इन्द्र । वह्निभिः ॥

अविन्दः । उसियाः । अनु ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आपने अपनी प्रकाशक भेदन करने वाली शक्तियों से, उत्सर्पणशील उषाके अनन्तर ही गुफामें स्थित धनको प्राप्त किया है ॥ १ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छां विदद् वंसुं गिरः । महा-
मनूपत श्रुतम् ॥ २ ॥

देवयन्तः । यथा । मतिम् । अच्छ । विदत्स्वम् । गिरः ।
महाम् । मनूपत । श्रुतम् ॥ २ ॥

हे स्तुतिवाणियों ! जिस प्रकार हम देवताओंकी कामना करने वाले अपनी मतिको उनके अभिमुख कर सकें, उन प्रसिद्ध और महान् इन्द्रकी तुम स्तुति करो ॥ २ ॥

इन्द्रेण सं हि दत्तसे संजग्मानो अविभ्युषा । मन्द-
समानवर्चसा ॥ ३ ॥

इन्द्रेण । सम् । हि । दत्तसे । सम्जग्मानः । अविभ्युषा ॥ मन्द-
इति । समानवर्चसा ॥ ३ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! आप अभयवान् मरुद्गणसे मिलते हुए सदा ही देखे जाते हैं, मरुद्गण और आप दोनों एकत्र मिल कर नित्य प्रभुदिन होते हैं और आप दोनोंकी दीप्ति समान है ॥ ३ ॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहज्वदर्वति । गणैरिन्द्रस्य
काम्यैः ॥ ४ ॥

अनवद्यैः । अभिद्युभिः । मखः । सहज्वत् । अर्वति ॥ गणैः ।
इन्द्रस्य । काम्यैः ॥ ४ ॥

(३६६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

निष्पाप और दमकते हुए इन्द्रके काम्यगणोंसे यज्ञ
शोभा पाता है ॥ ४ ॥

अतः परिज्मन्ना गंहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृजते गिरः ॥ ५ ॥

अतः । परिज्मन् । आ । गंहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि ।
सम् । अस्मिन् । नृजते । गिरः ॥ ५ ॥

हे व्यापनशील इन्द्र ! आप इस भूलोकसे वा रोचनशील
धुलोकसे आइये, इन इन्द्रदेवमें वाणियों संयुक्त होती हैं ॥ ५ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं
महो वा रजसः ॥ ६ ॥

इतः । वा । सातिम् । ईमहे । दिवः । वा । पार्थिवात् । अधि ।
इन्द्रम् । महः । वा । रजसः ॥ ६ ॥

हम इन्द्रदेवकी मात्तिको वह इस पार्थिव लोकमें हों तो इन
लोकसे, स्वर्गमें हों तो स्वर्गसे, महर्लोकमें हों तो महर्लोकमें
चाहते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमकंभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीं
रनूपत ॥ ७ ॥

इन्द्रम् । इत् । गाथिनः । बृहत् । इन्द्रम् । अकंभिः । अर्किणः ॥

इन्द्रम् । वाणीः । अनूपत ॥ ७ ॥

गायान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा विशाल इन्द्रका ही पूजन करते हैं और वाणियों भी इन्द्रकी ही स्तुति करती हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र इन्द्रियोंः सचा संमिश्र आ वचोयुजा । इन्द्रो
वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥

इन्द्रः । इत् । इयोंः । सचा । समुऽमिश्रः । आ । वचोऽयुजा ॥

इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथ में संयुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली मरार प्राप्त होते हैं इन्द्रदेव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आ सूर्य रोहयद् दिवि । वि
गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ९ ॥

इन्द्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयद् । दिवि ॥

वि । गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ९ ॥

इन्द्रदेवने दीर्घदर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ाया है और सूर्यात्मक इन्द्रने किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण किया है ॥ ९ ॥

इन्द्र वाजेषु नोव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिः
तिभिः ॥ १० ॥

इन्द्र । वाजेषु । नः । अव । सहस्रऽप्रधनेषु । च । उग्रः । उग्राभिः ।

तिभिः ॥ १० ॥

(३६८) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

हे इन्द्रदेव । संदत्तों उत्कृष्ट धन वाले संग्राममें आप
रक्षा करिये, आप उग्र हैं अतः अपनी प्रचण्ड
हमारी रक्षा करिये ॥ १० ॥

इन्द्रं वयं महाधनं इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु
वज्रिणम् ॥ ११ ॥

इन्द्रम् । वयम् । महाधने । इन्द्रम् । अर्भे । हवामहे । युजम् ।
वृत्रेषु । वज्रिणम् ॥ ११ ॥

हम महाधनप्राप्तिके अवसर पर वा स्वरूपप्राप्तिके समय इन्द्र
का आवाहन करते हैं, यह आवरक शत्रुओं पर वज्रको संयुक्त
करने वाले हैं ॥ ११ ॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपां वृधि । अस्मभ्य-
मप्रतिष्कृतः ॥ १२ ॥

सः । नः । वृषन्न । अमुम् । चरुम् । सत्रादावन्न । अपः । वृधिः ॥
अस्मभ्यम् । अप्रतिष्कृतः ॥ १२ ॥

हे फलोंकी वर्षा करने वाले, और सत्य दान देने वाले इन्द्र ।
आप इस घण्टका सेवन करिये और किसीसे न हटने वाले आप
हमको बढ़ाइये ॥ १२ ॥

तुजेतुजे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्दे
अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

तुज्जेतुज्जे । ये । उत्तरे । स्तोमाः । इन्द्रस्य । वज्रिणः ॥ न ।
विन्दे । अस्य । सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

प्रत्येक दानके अवसर पर, उनसे उच्च दानमें परिवृष्ट हुआ
[ब्रह्मचारी इन्द्रके जिन २ स्त्रीयों का विचार करता है, उनमें
समाप्ति की ही मैं नहीं पाता ॥ १३ ॥

वृथा यूयम् वंसंगः कृष्टीरियुष्यो जंसा । ईशानो अम-
तिष्कृतः ॥ १४ ॥

वृथा । यूयाश्च । वंसंगः । कृष्टीः । इयति । भोजसा ॥ ईशानः ।

अमतिष्कृतः ॥ १४ ॥

आप पुराणि वननीयमति वृषभके खेतिगोको मेरित करने
की समान वृषसे फलों की मेरित करते हैं, आप ईशान हैं, और
अमतिष्कृत हैं ॥ १४ ॥

य एकं श्रवणीनां वसूनामिष्यति । इन्द्रः पथं क्षिती-
नाम् ॥ १५ ॥

यः । एकः । चर्षणीनाम् । वसूनाम् । इष्यति ॥ इन्द्रः । पथं ।

क्षितीनाम् ॥ १५ ॥

जो इन्द्रदेव अदितीय रूपमें मनुष्यों और पत्तोंके सामी है
और यह इन्द्रदेव पञ्च क्षितिगोके सामी है ॥ १५ ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परिह्वामहे जनेभ्यः । अस्मान्मस्तु
केवलः ॥ १६ ॥

इन्द्रम् । वो । विश्वतः । परि । ह्वामहे । जनेभ्यः ॥ अस्मान्मस्तु ।

केवलः ॥ १६ ॥

हम चारों ओरके माणियोंकी ओरसे (हटा कर)
आहान करते हैं, वह केवल हमारे ही हों ॥ १६ ॥

एन्द्रे सानसि रयि सजित्वान सदासहम् । वर्षिष्ठमृतये
भर ॥ १७ ॥

आ । इन्द्र । सानसिम् । रयिम् । सजित्वानम् । सदासहम् ।
वर्षिष्ठम् । ऊतये । भर ॥ १७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप भीति देने वाले, धनरूप, सजित्वा, सदा-
सह और फलोंकी वर्षा करने वाले अपने बलकी हमारी रक्षा
करनेके लिये धारण करिये ॥ १७ ॥

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहे । त्वोतांसो
न्यर्वता ॥ १८ ॥

नि । येन । मुष्टिहत्यया । नि । वृत्रा । रुणधामहे । त्वाऽऊतांसः ।
नि । अर्वता ॥ १८ ॥

आपकी रक्षा वाले हमघोड़े वाले होकर आवरक एक शत्रुओं
को मुक्कोंकी मारसे मार डालें ॥ १८ ॥

इन्द्र त्वोतांस आ वयं वज्रं घृणा दंदीमहि । जयेम
सं युधि स्पृधः ॥ १९ ॥

इन्द्र । त्वाऽऊतांसः । आ । वयम् । वज्रम् । घृणा । दंदीमहि ।
जयेम । सम् । युधि । स्पृधः ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! आपकी रक्षा वाले हम वज्रकी मचलरूपासे मारें

करें और स्पर्षा करने वालोंको युद्धमें जीत लें ॥ १६ ॥

वयं शूरेभिरस्तुभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्यामं
पृतन्यतः ॥ २० ॥

वयम् । शूरेभिः । अस्तुभिः । इन्द्र । त्वया । युजा । वयम् ॥
सासह्यामं । पृतन्यतः ॥ २० ॥

इति पष्ठेनुनाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

। हे इन्द्रदेव । हम आपसे और अहिंसित शूरोसे, सम्पन्न हो-
कर, सेना लेकर अपने ऊपर चढ़ने वाले शत्रुओंको दबावें २०
उठे अनुनाकम चतुर्थं सूक्तं समाप्त (६८६)

“सं चोदय चित्रमर्वाक्” [२०. ७१. ११] इत्यस्य विनि-
योगः “प्रणेतारं वस्यो अच्छा” [२०. ४६] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“सं चोदय चित्रमर्वाक्” (२० । ७१ । ११. इसका विनि-
योग “प्रणेतारं वस्यो अच्छा” (२० । ४६) के साथ कह दिया है
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न
प्रथिना शवः ॥ १ ॥

महान् । इन्द्रः । परः । च । नु । महिज्वम् । अस्तु । वज्रिणे ॥
द्यौः । न । प्रथिना । शवः ॥ १ ॥

इन्द्रदेव महान् है और उत्कृष्ट है उन इन्द्रदेवके लिये महत्त्व
हो उनका बल यलोककी समान विस्तृत होवे ॥ १ ॥

समोहे वा य आशंत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रांसो
वा धियायवः ॥ २ ॥

समुद्रोदे । वा । ये । आशत । नरः । तोकम्य । सनिती ।

विपातः । वा । विपास्यवः ॥ २ ॥

जो युद्धि चाहने वाले मेघावी पुरुष हैं, वे नेता मेघपात्र पुत्र में पुत्रके साथ भी युद्धमें व्याप्त होजाते हैं ॥ २ ॥

यः कुत्तिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीराशो न काकुदः ॥ ३ ॥

यः । कुत्तिः । सोमपातमः । समुद्रः इव । पिन्वते ॥ उर्वीराः ।

आपः । न । काकुदः ॥ ३ ॥

जो सोमका पान करने वाले इन्द्रदेवकी कुत्ति है वह कबूत वाले वृषभकी समान और विशाल जल वाले समुद्रकी समान बढ़ती है ॥ ३ ॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरुप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुपे ॥ ४ ॥

एव । हि । अस्य । सूनृता । विरुप्शी । गोमती । मही ॥ पक्वा ।

शाखा । न । दाशुपे ॥ ४ ॥

इनकी मधुर गोमदात्री विशाल भूमि हवि प्रदान करने वाले पत्रमानको पक्व शाखाकी समान (फलप्रदान करनेवाली है ॥ ४ ॥

एवा हि ते विभूतय ऊतये इन्द्र मावेते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुपे ॥ ५ ॥

तंर । हि । ते । विभूतयः । ऊनयः । इन्द्र । माऽवते ॥ सयः ।

विद्र । सन्ति । दाशुपे ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपति इन्द्र । आपकी रक्तक विभूतियें, द्रवि देने वाले
पत्रमानके लिये शीघ्र ही उपस्थित होजाती हैं ॥ ५ ॥

एवा हांस्य काम्या स्तोमं उक्थं च शंस्या । इन्द्राय
सोमंपीतये ॥ ६ ॥

एव । हि । अस्य । काम्या । स्तोमः । उक्थम् । च । शंस्या ॥

इन्द्राय । सोमंपीतये ॥ ६ ॥

इन्द्रको सोमका पान कराते समय स्तोम उक्थ और शंस्या
(नामक स्तुतियें) इन्द्रदेवको कमनीय होती हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । मह्यं
अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥

इन्द्र । आ । इहि । मत्सि । अन्धसः । विश्वेभिः । सोमपर्वभिः ॥

महान् । अभिष्टिः । ओजसा ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आइये और संकल सोमपर्वोंसे तथा सोमरूपी
अन्नसे आनन्दमें भरिये, आपकी अभिष्टि ओजसे बड़ी है ॥ ७ ॥

एमेन सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं
विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥

आ । ईम् । एनम् । सृजत । सुते । मन्दिम् । इन्द्राय । मन्दिने ॥

चक्रिम् । विश्वानि । चक्रये ॥ ८ ॥

हे अश्वपूरुषों ! दिने हुए उवयपात्रोंसे और आप मोमकी रचना करो, यह सोम अभिषुत होने पर प्रसन्नता मय इन्द्रको प्रसन्न करने वाला है संस्कृत कर्मोंसे सम्पन्न करते हुए इन्द्रको प्रसन्न करने वाला है ॥ ८ ॥

मत्स्वा सुशिप्रमृन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्पणे । सवनेष्वाम् ॥ ९ ॥

मत्स्व । सुशिप्र । मृन्दिभिः । स्तोमेभिः । विश्वचर्पणे । सवाम् । एषु । सवनेषु । आ ॥ ९ ॥

हे सबके साक्षी सुन्दर ठोड़ी वाले इन्द्र ! आप सबनोंमें साथ ही साथ इन आनन्दमय स्तोत्रोंसे भी हर्षमें भरिये ॥ ९ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत । अजोषाम् वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

असृग्रम् । इन्द्र । ते । गिरः । पतिम् । त्वाम् । उत । अहासत ॥ अजोषाम् । वृषभम् । पतिम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! पीति न करने वाली स्त्रियों जैसे वृषभ पति की स्थाप देती हैं, वृषभ इसी प्रकार स्तुतियों आपको स्थापती हैं । नहीं ॥ १० ॥

सं चोदय चित्रमर्वाग् राघं इन्द्र वरेण्यम् । असदितं ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥

म् । घोदय । चित्रम् । अर्वाक् । राघः । इन्द्र । वरेण्यम् ॥

असत् । इत् । ते । विश्वः । मय्यु ॥ ११ ॥

हे इन्द्रदेव ! कमनीय धनको हमारी ओर प्रेरित करिये, जो आपका मय्यु वा विश्व धन हो उसको प्रेरित करिये ॥ ११ ॥

अस्मान्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविंशुम्न
यशस्वतः ॥ १२ ॥

अस्मान् । सु । तत्र । चोदय । इन्द्र । राये । रभस्वतः ॥ तुविं-
शुम्न । यशस्वतः ॥ १२ ॥

हे परम दमकने वाले इन्द्र ! आप हमको यशस्वी महान्
पुरुषके धनके लिये प्रेरित करिये ॥ १२ ॥

सं गोमदिन्द्र वाजं वदस्मे पृथु श्रवां बृहत् । विश्वा-
युधेऽक्षितम् ॥ १३ ॥

सम् । गोमद । इन्द्र । वाजं वद । अस्मे इति । पृथु । श्रवाः ।
बृहत् ॥ विश्वायुः । धेहि । अक्षितम् ॥ १३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमको गोमोमे, यज्ञान्नसे सम्पन्न विशाल यश
प्रदान करिये और हमको क्षीणतारहित विशाल आयु प्रदान
करिये ॥ १३ ॥

अस्मे धेहि श्रवां बृहद् द्युम्नं संहस्तसातंगम् । इन्द्र
ता रथिनीरिपः ॥ १४ ॥

अस्मे इति । धेहि । श्रवः । बृहत् । शुम्नम् । सहस्रऽसानम् ।
इन्द्र । ताः । रथिनीः । इषा ॥ १४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हममें सहस्रांसे सेवनीय विशाल दमकते
को मदान करिये और रथिनी इषाओंको मदान करिये ॥
वसोरिन्द्र वसुपति गीर्भिर्गृणन्तं ऋग्मियम् । होम
गन्तारमूनये ॥ १५ ॥

वसोः । इन्द्रम् । वसुऽपतिम् । गीऽभिः । गृणन्तः । ऋग्मियम् ॥
होम । गन्तारम् । ऊतये ॥ १५ ॥

स्तुतिमयी वाणियोंसे स्तुति करते हुए हय धनके स्वाधी,
वसुपति, ऋग्मिय और होमको मातृ होने वाले इन्द्रकी रक्षाकी
रक्षाकी पूजा करते हैं ॥ १५ ॥

सुनेसुते न्योक्से बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शू-
मर्चति ॥ १६ ॥

सुनेऽसुते । निऽभोक्से । बृहत् । बृहते । आ । इत् । अरिः ॥
इन्द्राय । शूपम् । अर्चति ॥ १६ ॥

पष्ठेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति पष्ठेनुवाकः ॥

न्योक्स्में बृहद् इन्द्रके लिये प्रत्येक चार सोमका अभिषेक
होने पर अरि इन्द्रके बलकी मशंसा करते हैं ॥ १६ ॥

छठे अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६८७) ,

छठा अनुवाक समाप्त

पृष्ठयपदहस्य पष्ठेहनि "विश्वेषु हि त्वा सर्वनेषु तुज्जते" इत्य-
य विनियोगः "वनोति हि सुन्वन क्षयं परीणसः" [२०. ६७]
इत्यनेन सह उक्तः ॥

पृष्ठयपदहके छठे दिन "विश्वेषु हि त्वा सर्वनेषु तुज्जते" इस
का विनियोग "वनोति हि सुन्वन क्षयं परीणसः" (२० । ६७)
के साथ कह दिया है ।

विश्वेषु हि त्वा सर्वनेषु तुज्जते समानमेकं वृषमण्यवः

पृथक् स्वः सन्निष्यवः पृथक् ।

तं त्वा नावं न पर्पणिं शूयस्य धुरिं धीमहि ।

इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः १

विश्वेषु । हि । त्वा । सर्वनेषु । तुज्जते । समानम् । एकम् । वृष-

मण्यवः । पृथक् । स्वः । सन्निष्यवः । पृथक् ।

तम् । त्वा । नावम् । न । पर्पणिम् । शूयस्य । धुरि । धीमहि ।

इन्द्रम् । न । यज्ञैः । चितयन्त । आयवः । स्तोमेभिः । इन्द्रम् ।

आयवः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! पृथक् २ स्वर्गको चाहने वाले फलवर्षाके लिये
दीनता करने वाले, सब सर्वनोंमें केवल एक आपसे ही दान
भोगते हैं । हम जाँकारूप, अन्नके पूले वाले आपको बलके बोझ
में नियुक्त करते हैं । यज्ञोंसे इन्द्रको मनोहित करते हुए हम लोक-
वासी स्तोत्रोंसे (इन्द्रकी स्तुति करते हैं) ॥ १ ॥

वि त्वां ततस्ते मिथुना अ॒वस्य॑वो ब्र॒जस्य॑ सा॒ता ग॒व्य॑
स्य निःसृ॒जः स॑क्षन्त इन्द्र निःसृ॒जः ।

यद् ग॒व्यन्ता॑ द्वा जना॑ स्व॒र्यन्ता॑ समूह॑सि ।

आ॒विष्क॑रि॒कृद् वृष॑णं स॒चाभु॑वं वज्र॑मिन्द्र स

वि । त्वा । ततस्ते । मिथु॒नाः । अ॒वस्य॑वः । ब्र॒जस्य॑ । सा॒ता

ग॒व्यस्य॑ । निः॒सृजः॑ । स॑क्षन्तः । इन्द्र । निः॒सृजः॑ ।

यद् । ग॒व्यन्ता॑ । द्वा । जना॑ । स्व॒र्यः । यन्ता॑ । समू॒हसि॑ ।

आ॒विः । क॑रि॒कृद् । वृष॑णम् । स॒चा॒भुव॑म् । वज्र॑म् । इन्द्र । स॒चा॒भुव॑म्

अस चाहने वाले मिथुन, गव्य ब्रजके दानके अवसर पर आपमें ध्यान लगाते हुए आपको फलप्रदानके लिये प्रेरित करते हैं आप स्वर्गको जाने वाले गव्यन्त दो, जनोंको भली प्रज्ञा पहिचानते हैं, हे इन्द्र ! उस समय आप अपने वर्षक सहायक रूप वज्रको प्रकाशित करते हैं ॥ २ ॥

उ॒तो नो॑ अ॒स्या उ॒पसो॑ जु॒पेत॑ ह्य॒र्कस्य॑ वो॒धि ह॒विषो॑

ह॒वीम॑भिः स्व॒र्पाता॑ ह॒वीम॑भिः ।

यदि॑न्द्र ह॒न्त॑वे मृ॒धो वृषा॑ वज्रि॑ त्रि॒केत॑सि ।

आ मे॑ अ॒स्य वे॒धसो॑ नवी॒यसो॑ म॒न्म श्रु॒धि नवी॒यसः॑

उ॒तो इति॑ । नः । अ॒स्याः । उ॒पसः॑ । जु॒पेत॑ । हि । अ॒र्कस्य॑ । वो॒धि ।

ह॒विषः॑ । ह॒वीम॑भिः । स्व॒र्पाता॑ । ह॒वीम॑भिः ।

इन्द्र । इन्द्र । हन्तवे । मृगः । वृषा । वज्रिन् । चिकेतसि ।

॥ मे । अस्य । वेवसः । नवीयसः । मग्म । श्रधि । नवीयसः

इति सप्तमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

सूर्यकी झापिका इस उपाकी इविकी हम स्वर्गका उपभोग करनेके लिये इवन करते हैं, हे वर्षक इन्द्र ! आप संग्राम करने शालोंको नष्ट करनेके लिये अपने वज्रको उठाते हैं, आप इस नवीन स्रष्टा (मेरे) मननीय स्तोत्रको सुनिये ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमे प्रथम सूक्त समाप्त (६=६)

पृष्ठयस्य चतुर्थेऽदिनि “तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा” इति पुरस्तात्संपातसूक्तात् पट्टच आवपते । तासां प्रथमास्ति स ऋचः अर्थः चर्षाः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थे तुभ्यदिमा सवना शूर विश्वेति पट् पुरस्तात्संपाताः । निसोर्यचर्षाः” इति [वै० ६. २]

पृष्ठयके चौथे दिन “तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा” इसकी ऋचः ऋचाओंको सम्पातसूक्तसे पहिले पढ़े । इनमें पहिली तीन ऋचाओंको अर्थचर्षाः पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्र ६ । २ में कहा है, कि—“चतुर्थे तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वेति पट् पुरस्तात् सम्पाताः” ॥

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधांसि ॥ १ ॥

तुभ्यं । इव । इमा । सवना । शूर । विश्वा । तुभ्यम् । ब्रह्माणि ।

वर्धना । कृणोमि । ताम् । नृभिः । हव्यः । विश्वा । असि १

हे शूर ! यह सब सवन आपने ही लिये है । मैं आपने लिये

ही इन मन्त्रोंको वर्धक करता हूँ । आप मनुष्योंसे आहुति पाने के पात्र हैं और आप सबको पुष्ट करने वाले हैं ॥ १ ॥

नूचिन्नु ते मन्यमानस्य दुस्मोदंश्चुवन्ति महिमानमुग्र।
न वीर्यमिन्द्र ते न राघः ॥ २ ॥

नू । चित् । नू । ते । मन्यमानस्य । दुस्म । उत् । अश्नुवन्ति ।

महिमानम् । उग्र ! न । वीर्यम् । इन्द्र । ते । न । राघः ॥ २ ॥

हे अभिमान रखने वाले उग्र इन्द्र ! आपकी महिमा छुटकर वीर्य और धनको अन्य नहीं पासकते ॥ २ ॥

प्र वो महे महिष्ठ्ये भरध्वं प्रचेतसे प्रसुमति कृणुध्वम् ।

विशः पूर्वीः प्र चरा चर्पणिप्राः ॥ ३ ॥

प्र । वः । महे । महिष्ठ्ये । भरध्वम् । प्रचेतसे । प्र । सुमतिम् ।

कृणुध्वम् । विशः । पूर्वीः । प्र । चर । चर्पणिप्राः ॥ ३ ॥

हे याजकों ! तुम महत्त्व पानेके लिये महिष्ठ्य प्रचेतस इन्द्रका दहिमे भरण करो, सुमति करो, हे मनुष्योंको अभिमत फलसे पूर्ण करने वाले !-आप प्रकृष्टरूपसे हविका भक्षण करिये ॥ ३ ॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा स्थं हरी यमस्य वहंतो त्रि
मूरिभिः ।

आ तिष्ठति मधवा सनश्नुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवं
सस्पतिः ॥ ४ ॥

यश । वज्रम् । हिरण्यम् । इत् । अथ । रथम् । हरी इति । यम् ।
अस्य । वहतः । वि । । मूरिऽभिः ।

आ । तिष्ठति । मयऽवा । सनऽश्रुतः । इन्द्रः । वाजस्य । दीर्घ-
ऽश्रवसः । पतिः ॥ ४ ॥

जब सबको नशमें रखने वाले इन्द्रके हरी नामक अरव सुवर्णमय
वज्रको और रथको लगायोंसे खेंचने लगते हैं, तब तपसे मसिद्ध
महान्न और विशाल कीर्तिके स्वामी मयवा इन्द्र रथ पर अभि-
ष्टित होने हैं ॥ ४ ॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूध्यां स्वा सचा इन्द्रः शमश्रूणि
हरिताभिः प्रुणुते ।

अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा
वनम् ॥ ५ ॥

सो इति । चिन् । नु । वृष्टिः । यूध्या । स्वा । सचा । इन्द्रः ।
शमश्रूणि । हरिता । अभि । प्रुणुते ।

अव । वेति । सुक्षयम् । सुते । मधु । उद् । इत् । धूनोति ।
वातः । यथा । वनम् ॥ ५ ॥

बड़ी भारी वृष्टि इन्द्रकी अपनी ही है, और वह सहायक
इन्द्र सोमलताओंसे अपनी मूँछोंको स्नान करा देते हैं, जैसे
वायु वनको कँपाता है, इसी प्रकार वह सोमका अभिषव होने
पर घर घर आते हैं और मधुको कँपित करते हैं ॥ ५ ॥

(३८२) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

यो वाचा विवांचो मृध्रवाचः पुरु सहस्राशिवा जघान
तत्तदिदं स्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे
शवः ॥ ६ ॥

यः । वाचा । वि०वाचः । मृध्र०वाचः । पुरु । सहस्रा । अशिवा ।
जघान ।

तत्तत्तत् । इत् । अस्य । पौंस्यम् । गृणीमसि । पिताऽइव । यः ।
तविषीम् । वृधे । शवः ॥ ६ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जो इन्द्रदेव विकृत घोलने वालोंको अपनी वाणियोंसे कोमल
वाणी बाले कर देते हैं, सहस्रों अशुभकारियोंको मार डालते हैं,
इन्द्रदेवके उन २ पुरुषार्थोंकी हम स्तुति करते हैं, जो पिताकी
समान महान् बलको बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥

सप्तम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६८९)

पृष्ठयस्य पञ्चमेऽहनि पुरस्तात् संघातात् पङ्क्तिच्छन्दस्कम् “यच्चिदि
सत्य सोमपाः” इति सूक्तम् आचपते । तस्य शंसनधर्ममपि सूत्र-
कार आह । तद् उक्तं वैताने । “पञ्चमे यच्चिदि सत्य सोमपा
इति पाङ्क्तं सप्तर्चम् । द्वा द्वौ वससाय पञ्चमं सन्तनोति । त्रयं वाव-
साय द्वयम्” इति [वै० ६. २] ॥ अस्य अर्थः पाङ्क्तस्य
एकैकस्य द्वा द्वौ पादौ संहता अवसाय अर्धर्चस्यैवत् पञ्चमं
पादं मणवेनोपसंतनोति संवध्नाति । पादत्रयं संहतं वा अवसाय
अन्त्यपादद्वयं संहतं मणवेनोपसंतनोति इति ॥

पृष्ठयके पञ्चम दिनमें सम्पातसे पहिले पंक्ति छन्द बाले

“यच्चिद्धि सत्य सोमपाः” इस सूक्तको पढ़ें । इसके शंसनघर्म को भी सूत्रकारने कहा है, कि—“पञ्चमे यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति पातं सप्तर्चम् । द्वाँ द्वाववसाय पञ्चमं सन्तनोति । प्रयं वावसाय द्वयम्” (वैतानसूत्र ६ । २) इसका अर्थ यह है, कि—पातयके एक २ मन्त्रके दो दो मिले हुए पादोंका अवसान करके अर्घ्यर्चशस्त्रकी समान मणवसे उपसन्तान करना हुआ संयंघन करे । वा तीनों संहत पादोंका अवसान करके अन्तिम मिले हुए दो पादोंको मणवसे उपसन्तान करे ।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसिं ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु

तुवीमघ ॥ १ ॥

यत् । चिद् । हि । सत्य । सोमपाः । अनाशस्ताः । इव । स्मसिं ।

आ । तू । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सह-

स्रेषु । तुविमघ ॥ १ ॥

हे सोमका पान करने वाले सन्त इन्द्र ! आप अनाशस्ता ही हैं, हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारी सहस्रों गौधोंमें घोड़ोंमें और शुभ्रियोंमें अनाशस्त्वको कहिये ॥ १ ॥

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तवं दंसनां । आ तू ० २

शिप्रिन् । वाजानाम् । पते । शचीवः । त्वं । दंसनां । ० २

हे सुन्दर ठोड़ी वाले घनोंके स्वामी शक्तिपति इन्द्र ! शत्रुधों को हंसनेकी शक्ति आपकी है, हे बहुधन इन्द्र उसको आप हमारे सहस्रों गौ घोड़ोंमें और शुभ्रियोंमें कहिये ॥ २ ॥

निष्वापया मिथुहृशां सस्तामबुध्यमाने । आतू० ।

नि । स्वापय । मिथुहृशा । सस्ताम् । अबुध्यमाने । इति । ० २

दोनों नेधोंसे आप सुलाइये, अबुध्यमान होकर दोनों नेत्र सोवें, हे बहुधन इन्द्र ! हमारी गौओंमें घोड़ोंमें और पवित्र सहस्रों प्राणियोंमें निद्राको प्रदान करिये ॥ ३ ॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूररातयः । आतू० ४

ससन्तु । त्या । अरातयः । बोधन्तु । शूर । रातयः । ॥ ४ ॥

ये शत्रु निद्राके आधीन होजावें, हे शूर ! धन जागृत होजावें, हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारे सहस्रों घोड़े गौ और पवित्र प्राणियोंमें धनको कहिये ॥ ४ ॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया । आतू० ५

सम् । इन्द्र । गर्दभम् । मृण । नुवन्तम् । पापया । अमुया । ० ५

हे इन्द्र ! इस पापवृत्तिसे खदेड़ते हुए गधेका आप संहार करिये और हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारे घोड़े आदिमें संहारक शक्ति दीजिये ॥ ५ ॥

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि आतू० ६

पताति । कुण्डृणाच्या । दूरम् । वातः । वनात् । अधि । ० ६

कुण्डृणाचीके द्वारा वायु वनसे दूर जाता है हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारी गौ घोड़े और सहस्रों पवित्र प्राणियोंमें कुण्डृणाची कहिये ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जंहि जम्भया कृकदाश्वम् ।

आ तू नं इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु
तुवीमघ ॥ ७ ॥

सर्वम् । परिऽक्रोशम् । जहि । जम्पय । कृकदारवम् ।

आ । तू । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु ।
सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ७ ॥

इति सप्तमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप सब परिक्रोशको दूर करिये, और कृकदारव
का नाश करिये, और हे बहुयन इन्द्र ! हमारी गौ घोड़े और
पवित्र प्राणियोंमेंसे परिक्रोशको हटाइये ॥ ७ ॥

सप्तम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६९०)

पृष्ठयस्य पष्ठेहनि पुरस्तात् संपातात् “वि त्वा ततस्ते मिथुना
अवस्यवः” इति तिस्रः सप्तपदा आवपते सूत्रोक्तप्रकारेण प्रणवे-
नोपसंतनोति च । तद् उक्तं वैताने । “पष्ठे वि त्वा ततस्ते मिथुना
अवस्यव इति । सप्तपदानामेकैकवसाय द्वयं संतनोति । द्वयम-
वसाय द्वयम्” इति [वै० ६. २] ॥ अस्य अर्थः । सप्तपदानां
तिसृणामृचाम् एकैकस्यामृचि एकैकं पदम् अवसाय पदत्रयं प्रण-
वेनोपसंतनोति । तता परं पादद्वयमवसाय अपर पादद्वयं प्रणवे-
नोपसंतनोति ॥

पृष्ठयके छठे दिन सम्पातसे पहिले “वि त्वा ततस्ते मिथुना
अवस्यवः” इन तीन सप्तपदोंका आवपन करे और सूत्रोक्तरीति
से प्रणवसे उपसन्तान भी करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है । “पष्ठे वि त्वा ततस्ते मिथुना अवस्यव इति । सप्तपदानामेकै-
कमवसाय द्वयं संतनोति । द्वयमवसाय द्वयम्” (वैतानसूत्र ६ । २)

इसका अर्थ यह है, कि—सप्तपदोंकी तीन अक्षरोंमेंसे एक एक अक्षरमें एक २ पदका अवसान करके तीन पादोंका मणवसे उपसंतान करे।

वि त्वां ततस्ते मिथुना अंवस्यवो ब्रजस्य साता
गव्यस्य निःसृजः सत्तन्त इन्द्र निःसृजं ।

यद् गव्यन्तां द्वा जना स्वर्यन्तां समूहसि ।

आविष्करिक्त्वा वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवं

वि । त्वा । ततस्ते । मिथुनाः । अंवस्यवः । ब्रजस्य । साता ।

गव्यस्य । निःसृजः । सत्तन्तः । इन्द्र । निःसृजः ।

यद् । गव्यन्तां । द्वा । जनां । स्वः । यन्तां । समूहसि ।

आविः । करिक्त्वा । वृषणम् । सचाभुवम् । वज्रम् । इन्द्र ।

सचाभुवम् ॥ १ ॥

अन्न चाहने वाले मिथुन, गव्य ब्रजके दानके अवसर पर आपमें ध्यान लगाते हुए आपको फलप्रदानके लिये प्रेरित करते हैं आप स्वर्गको जाने वाले गव्यन्त दो जनोंकी भली प्रकार पहचानते हैं, हे इन्द्र ! उस समय आप अपने वर्षक सहायक-रूप वज्रको प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूग्वः पुरो यदिन्द्र शारंदीर-
वातिरः सासहानो अवातिरः ।

शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयंज्युं शवसस्पते ।

म॒हीमंमु॒ष्णाः पृथि॒वीमि॒मा अ॒पो म॑न्द॒सान॒इ॒मा अ॒पः

वि॒दुः । ते । अ॒स्य । वी॒र्य॑स्य । पु॒रवः॑ । पु॒रः । यत् । इन्द्र॒ ।

शा॒रदीः॑ । अ॒व॒ऽअति॑रः । स॒स॒हानः॑ । अ॒व॒ऽअति॑रः ।

शा॒सः । तम् । इन्द्र॒ । म॒र्त्यम् । अ॒य॒ऽयु॑म् । श॒व॒मः । प॒ते ।

म॒हीम् । अ॒मु॒ष्णाः । पृथि॒वीम् । इ॒माः । अ॒पः । म॒न्द॒सानः॑ ।

इ॒माः । अ॒पः ॥ २ ॥

मनुष्य इन इन्द्रके वीर्योंको जानते हैं, कि-जो यह शत्रु शत्रु का वस्तुओंमें अवनीर्ण होते हैं यह शत्रुओंको बारम्बार दबाते हुए अवनीर्ण होते हैं, हे बलके अधिष्ठात्रीदेवता इन्द्र ! जो मरण-धर्मी पुरुष आपका यजन नहीं करता है, उसका आप शासन करिये, और इस विशालपृथिवीको और अमुष्ण जलोंको हर्षित करिये ॥ २ ॥

आदि॒त् ते॑ अ॒स्य वी॒र्य॑स्य च॒र्कि॑र॒मन्दे॑षु वृ॒प॒न्नु॒शिजो॑

यदा॑वि॒न्ध स॒खी॒यतो॑ यदा॑वि॒न्ध ।

च॒क॒र्य॑ क॒ारमे॑भ्यः पृ॒त॒नासु॑ प्र॒व॒न्त॒वे ।

ते अ॒न्याम॑न्यां न॒द्यः स॒निष्ण॑त श्र॒व॒स्यन्तः॑ स॒निष्ण॑त

आ॒त् । इ॒त् । ते । अ॒स्य । वी॒र्य॑स्य । च॒र्कि॑र॒न् । म॒देषु॑ । वृ॒प॒न् ।

उ॒शिजः॑ । यत् । आ॒वि॒न्ध । स॒खि॒ऽयनः॑ । यत् । आ॒वि॒न्ध ।

च॒क॒र्य॑ । क॒ारम् । ए॒भ्यः । पृ॒त॒नासु॑ । प्र॒व॒न्त॒वे ।

ते । अन्याम्ऽअन्याम् । नद्यम् । सनिष्णत । श्रवस्पन्तः ।
सनिष्णत ॥ ३ ॥

इति सप्तमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे वृषन् ! अब हम आपके वीर्यको (कहते हैं, कि—) हे कांति-
मय जलों ! तुम इन्द्रदेवको मद होने पर रक्षा करते हो, सखि-
भाव रखने वालोंकी रक्षा करते हो, और पृतनाओंमें सेवन करने
के लिये कृत्योंको करते हो, तुम दूसरी २ नदियोंका आश्रय
लो, अन्न देते हुए स्नान कराओ ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (६९१)

पृष्ठयस्य पष्ठेह्न्येव पूर्वोक्तसप्तपदाभ्योनन्तरं पुरस्तात् संपाताद्
“वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इत्यष्टर्चम् आवपते । तद् उक्तं
वैताने । “वने न वा यो न्यधायि चाकन्नित्यष्टर्चं च” इति
[वै० ६. २] ॥

तथा छन्दोमानां द्वितीयतृतीययोरहोः माध्यंदिने सवने उप-
रिष्ठात् संपाताद् अष्टर्चम् [२०. ७६] “आ सत्यो यातु मघवाँ
अजीपी” [२०. ७७] इति सूक्तं चावपते । तद् उक्तं वैताने ।
“उत्तरयोरष्टर्चम् आ सत्यो यातु मघवाँ अजीपीति चावपते”
इति [वै० ६. ३] ॥ “वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इत्यस्य
अष्टर्चम् इति संज्ञा ॥

पृष्ठयके छठे दिन ही पूर्वोक्त सप्तपदाओंके अनन्तर
संपातसे पहिले “वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इस आठ
अन्वा वाले सूक्तको पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—
“वने न वा यो न्यधायि चाकन्नित्यष्टर्चं च” (वैतानसूत्र ६।२)

तथा छन्दोमोंके द्वितीय तृतीय दिनोंमें माध्यंदिन सवनमें
संपातसे पहिले आठ अन्वा वाले (२० । ७६) को और “आ

सत्यो यातु मयर्वा ऋजीषी" इस ! (२० । ७७) मूक्तको भी पढ़े । इसी बातको वैतानमूक्तमें कहा है, कि—“उत्तरयोरष्टाधेम् आ सत्यो यातु मयर्वा ऋजीषीति चावपते” (वैतानमूत्र ६।३) “वने न वा यो न्यवायि चाकन्” इसकी अष्टव संज्ञा है ।
वने न वा यो न्यवायि चाकं छुचिर्वा स्तोमो भुर-

णावजीगः ।

यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होतां नृणां नर्यो नृतमः क्षपा-
वान् ॥ १ ॥

वने । न । वा । यः । नि । अथायि । चाकन् । शुचिः । वाम् ।
स्तोमः । भुरणा । अर्जीगरिति ।

यस्य । इत् । इन्द्रः । पुरुदिनेषु । होतां । नृणाम् । नर्या ।
नृतमः । क्षपाज्वान् ॥ १ ॥

हे देवताओं का भरण करने वाले भुगण्य अश्विर्नाकुमारों ! जो यह स्तोम हममें निहित है, यह दोषरहित है और पक्षिपुत्रके वृत्त मेंसे देखनेकी समान इन्द्रकी कामना करता है (यह वह स्तोम है, कि—) जिसके इन्द्र बहुत दिनोंसे आह्वाना थे, कि—इसमें कोई मेरी स्तुति करे । वह इन्द्रदेव मनुष्योंमें भी मनुष्यनम है अर्थात् शूरोमें भी शूर हैं, और सोमका भाग पाने वाले हैं, यह स्तोम उन ही की ओर जाना है ॥ १ ॥

प्र ते अस्या उपसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य
नृणाम् ।

अनुं त्रिशोकः शतमावहन्नृन् कुत्सेन्न रथो यो असत्
ससवान् ॥ २ ॥

म । ते । अस्याः । उपसः । म । अपरस्याः । नृत्तौ । स्याम ।
नृत्तमस्य । नृणाम् ।

अनु । त्रिशोकः । शतम् । आ । अवहत् । नृन् । कुत्सेन ।
रथः । यः । असत् । ससवान् ॥ २ ॥

हम इस दूसरी उपाके पारको प्राप्त होवें, और शरोंमें शूर
इन्द्रकी नृतिमें रहें, त्रिशोक नामक ऋषि मनुष्योंको सँकड़ों उपाओं
को प्राप्त करा चुके हैं, जो संसाररूपी रथ है वह कुत्स ऋषि
के द्वारा अन्न वाला हुआ है ॥ २ ॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि
धाव ।

कद् बाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्या
मुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥

कः । ते । मदः । इन्द्रः । रन्त्यः । भूत् । दुरः । गिरः । अभि ।
उग्रः । वि । धाव ।

कत् । बाहः । अर्वाक् । उप । मा । मनीषा । आ । त्वा ।
शक्याम् । उपमम् । राधः । अन्नैः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! कौनसा हर्षप्रद स्तोम, आपको प्रसन्न करता हुआ
 हमारे लिये दाता होसकता है, हे उग्र ! आप स्तोत्ररूप बाणियों
 की ओर दौड़िये, कौनसा अश्व बुद्धिसे आपको मेरे पास लावेगा
 आप उपमाके योग्यको मैं अन्नोसे (हवियोंसे) साथ सकूँगा
 कदुं दुष्प्रमिन्द्रत्वावन्तो नृन् कयां धिया करसे कन्न
 आगन् ।

मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यद-
 संन्मनीषाः ॥ ४ ॥

कद् । ऊं इति । युञ्जम् । इन्द्र । त्वाऽवतः । नृन् । कयां । धिया ।
 करसे । कन् । नः । आ । अगन् ।

मित्रः । न । सत्यः । उरुगाय । भृत्यै । अन्ने । समस्य । यद् ।
 असन् । मनीषाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! आप अपनी शरणमें रहने वाले मनुष्योंको किस
 बुद्धिसे दमकते दूष करते हैं, हे विशालकीर्ति ! आप सच्चे मित्रकी
 समान भृतिके लिये अन्नमें जो इसकी बुद्धिमें हो, (उनको करिये)
 प्रेरय सूर्ये अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिषा इव
 गमन् ।

गिरंश्च ये ते तुविजात पूर्वोर्नरं इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ५
 म । ईरय । सूरः । अर्थम् । न । पारम् । ये । अस्य । कामम् ।
 जनिषाः इव । गमन् ।

गिरः । च । ये । ते । तुविज्ञात । पूर्वीः । नरः । इन्द्र । मनिः-

शिक्षन्ति । अन्नैः ॥ ५ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप हमको अर्थकी समान पार पहुँचाइये, जो इसकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये माताकी समान प्राप्त होती है, और हे तुविज्ञात ! जो आपकी प्राचीन स्तुतियाँ हैं (उनको आप इस यजमानके हितके लिये प्रेरित करिये) हे इन्द्र ! नेता पवन इसको अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी
काव्येन ।

वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाधन् भवन्तु पीतये
मधूनि ॥ ६ ॥

मात्रे इति । नु । ते । सुमिते इति सुमिते । इन्द्र । पूर्वी इति ।

द्यौः । मज्मना । पृथिवी । काव्येन ।

वराय । ते । घृतवन्तः । सुतासः । स्वाधन् । भवन्तु । पीतये ।

मधूनि ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! निर्माता सुमित् आपके लिये पूर्वी पृथिवी और द्यौ अपने बंधक काव्यके साथ (हितकारी हों) ये घृत वाले निचोड़े हुए सोम आपके पीनेके लिये स्वाद वाले हों ॥ ६ ॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमन्त्रमिन्द्राय पूर्णं स हि
सत्यराधाः ।

स वावृधे वरिमन्ता पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः
पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

आ । मवः । अस्मै । असिचन । अमत्रम् । इन्द्राय । पूर्णम् ।
सः । हि । सत्यपराधाः ।

सः । ववृधे । वरिमन् । आ । पृथिव्याः । अभि । क्रत्वा । नर्यः ।
पौंस्यैः । च ॥ ७ ॥

इस पात्रको इन्द्रदेवके लिये पूर्णरूपसे मधुसे भर दिया गया है, वह इन्द्रदेव ही सत्यसे साधे जाते हैं, वह मनुष्योंके हितकारी आने-पुरुषार्थो करके पृथ्वीसे बढ़ते हैं ॥ ७ ॥

व्यान्लिन्द्रः पृतना स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय
पूर्वीः ।

आस्मा रथं न पृतनासु तिष्ठयं भद्रया सुमत्या चोदयासे

वि । आनन् । इन्द्रः । पृतनाः । सुऽओजाः । आ । अस्मै । यतन्ते ।
सख्याय । पूर्वीः ।

आ । स्म । रथम् । न । पृतनासु । तिष्ठ । यम् । भद्रया । सुऽ-
मत्या । चोदयासे ॥ ८ ॥

॥ इति सप्तमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

सुन्दर बल वाले इन्द्र इन सेनाओंमें व्याप्त होगए हैं, इनकी मित्रता करनेके लिये बहुतसी सेनाएँ चेष्टाएँ करती हैं, आप

जिसे अपनी सुमतिसे मेरणा करते हैं, उस सुमतिसे आप रथ की समान हमारी सेनामें स्थित हजिये ॥ ८ ॥

सप्तम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६९२)

छन्दोमानां द्वितीयतृतीययोरहोः “आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीपी” इत्यस्य त्रिनियोगः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

छन्दोमके द्वितीय तृतीय दिनोंमें “आसत्यो यातु मघवाँ ऋजीपी” इसका त्रिनियोग पूर्वसूक्तमें कहा है ।

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीपी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः
तस्मा इदन्धः सुपुमा सुदत्तमिहाभिपित्वं करते गृणानः

आ । सत्यः । यातु । मघवान् । ऋजीपी । द्रवन्तु । अस्य ।

हरयः । उप । नः ।

तस्मै । इत् । अन्धः । सुपुम । सुदत्तम् । इह । अभिऽपित्वम् ।

करते । गृणानः ॥ १ ॥

सत्य, घनवान्, सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव आवें, इनके घोड़े हमारे पासको दौड़ें, हम उनके लिये ही सोमरूपी अन्नका अभिषव कर रहे हैं, इसी कारण जो स्तुति करने वाला है, वह यहाँ ही स्नान आदि कर रहा है ॥ १ ॥

अवस्य शूराध्वनो नान्तेस्मिन् नो शय्य सवने मन्दर्ष्यं
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिंकितुपे असुर्याय मन्म

अव । स्य । शूर । अध्वनः । न । अन्ते । अस्मिन् । नः । अय ।

सवने । मन्दर्ष्यं ।

शंसाति । उक्थम् । उशनाऽश्व । वेधाः । चिक्वितुष । अमुर्याय । मन्म

हे शूर ! हमारे पासमें आप मार्गको बाँधसा दीजिये और आज इस हमारे यज्ञमें मदमें भरिये, यह वेधा ज्ञानवान् इन्द्रके लिये शुक्राचार्यकी समान मननीय उक्थका उच्चारण कर रहे हैं २ कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।

दिव इत्या जीजनत् सप्त कारूनह्वा चिचकुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥

कविः । न । निण्यम् । विदथानि । साधन् । वृषा । यत् । सेकम् । विपिपानः । अर्चात् ।

दिवः । इत्या । जीजनत् । सप्त । कारून । अह्वा । चित्र । चक्रुः । वयुना । गृणन्तः ॥ ३ ॥

फलोंकी वर्षा करने वाले इन्द्र वर्षा करके पृथ्वीको पूर्ण करते हुए आवें इस लिये चतुर ऋत्विज निश्चितसा यज्ञोंको साथ रहा है, विजिगीषासे इस प्रकार सात स्तोत्राओंको मकट किया है और वह सुन्दर स्तोत्रोंका उच्चारण कर रहे हैं ॥३॥ स्वं यद् वेदिं सुदृशीकमर्कर्महि ज्योतीं रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।

अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यंश्चकार नृतमो अभिष्टो ॥ ४ ॥

(३६६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

स्यः । यत् । वेदि । सुष्टशोकम् । अर्कः । महि । ज्योतिः । रुरुः ।

यत् । ह । वस्तोः ।

अन्धा । तमोसि । दुधिना । विश्वक्षे । नृभ्यः । चकार । नृनमः ।

अभिष्टी ॥ ४ ॥

जिन मन्त्रोंके द्वारा भली मकार देखने योग्य स्वर्ग जाना जाता है और जो मन्त्र दिनकी परम ज्योति-सूर्य-को दमकाते हैं और जो सूर्यात्मक इन्द्र दूर होने पर भी घोर अन्धकारको दूर करके प्रकाश करते हैं और जो परम शूर अभिष्टि स्थापित कर देते हैं, (उनके लिये मणाम है) ॥ ४ ॥

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युं १ भे आ पंप्रौ रोदसी महित्वा
अतंश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना
वभूव ॥ ५ ॥

ववक्षे । इन्द्रः । अमितम् । मृजीषी । उभे इति । आ । पंप्रौ ।

रोदसी इति । महित्वा ।

अतः । चित् । अस्य । महिमा । वि । रेचि । अभि । यः । विश्वा ।

भुवना । वभूव ॥ ५ ॥

यह सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव अमित धनको (यजमानोंके पास) पहुँचाते हैं और अपनी महिमा धूलोक और भूलोक दोनोंको भर देते हैं, जो यह सब भुवनोंमें व्याप्त होगए हैं, इस लिये इनकी महिमा अधिक है ॥ ५ ॥

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभि-
निक्रामैः ।

अश्मानं चिद् ये विभिदुर्वचोभिर्ब्रजं गोमन्तमुशिजो
वि वव्रुः ॥ ६ ॥

विश्वानि । शक्रः । नर्याणि । विद्वान् । अपः । रिरेच । सखिऽ-
भिः । निक्रामैः ।

अश्मानम् । चिद् । ये । विभिदुः । वचऽभिः । ब्रजम् । गोऽ-
मन्तम् । उशिजः । वि । वव्रुरिति वयुः ॥ ६ ॥

विद्वान् इन्द्रदेवने मनुष्योंका हित करने वाले जलोको, इच्छा-
नुसार चलने वाले मित्र (—रूप मेघों) से बढ़ाया है, वे जल
अपनी बाणीसे (गड़गड़ाहटमे) पत्थरोंको भी विदीर्ण कर
ढालते हैं—अलग अलग कर देते हैं और कामना करते हैं तो
गोओं वाले ब्रजको घेर लेते हैं ॥ ६ ॥

अपो वृत्रं वन्निवांसं पराहन् प्रावन्त ते वज्रं पृथिवी
सचेताः ।

प्राणीसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवं च्वंसा शूर घृष्णो
अपः । वृत्रम् । वन्निवांसम् । परा । अहन् । म । आवन्त । ते ।
वज्रम् । पृथिवी । सऽचेताः ।

म । अणोसि । समुद्रियाणि । ऐनोः । पतिः । भवन् । शवसा ।
शूर । घृष्णो इति ॥ ७ ॥

जलोंने आवरण करते हुए मैयको विदीर्ण कर डाला है और पृथिवी सावधान होकर (हे इन्द्र) आपके वज्रकी रक्षा करती है और समुद्रके जलोंकी रक्षा करती है, हे धर्मक शूर इन्द्र ! आप बलपूर्वक इसके स्वामी बनते हैं ॥ ७ ॥

अपो यदाद्रिं पुरुहूत ददर्शविभुवत् सरमा पूर्ण्य ते ।
स नो नेता वाजमा दपि भूरि गोत्रा रुजन्नङ्गिरो-
भिर्गृणानः ॥ ८ ॥

अपः । यत् । अद्रिम् । पुरुहूत । दर्दः । आविः । भुवत् । सरमा ।
पूर्ण्यम् । ते ।

सः । नः । नेता । वाजम् । आ । दपि । भूरिम् गोत्रा । रुजन् ।
अङ्गिरः । ऽभिः । गृणानः ॥ ८ ॥

इति सप्तमेनुवाके पष्ठ सूक्तम् ॥

हे बहुतसे यजमानोंमे आदृत इन्द्र ! आप जो पर्वतको वा मैय को जल प्रदान करते हैं, वह आपसे पहिले ही प्रकट होकर चलते हैं, ऐसे नेता आप अंगिरागोत्री ऋत्विजोंसे स्तुति पाते हुए मैयोंको विदीर्ण करते हुए हमें बहुतसा अन्न प्रदान करते हैं ॥

सप्तम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (६६३)

वाजपेये “तद् वो गाय” इति स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं यैताने । “तद् वो गायेनि स्तोत्रियः” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा बृहस्पतिसवे “तद् वो गाय सुते सचा” [२०. ७८]
 “वयमेनमिदाद्यः” [२०. ६७] एतां आज्यपृष्ठस्तोत्रिणौ यथा-
 क्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “बृहस्पतिसवे तद् वो गाय सुते
 सचा वयमेनमिदाद्य इति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा तत्रैव मातःसवनमाध्यन्दिनसवनयोः एतावेव उक्त्वमुखीयं
 तृचपर्यासश्च भवतः माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम् । तद् उक्तं
 वैताने । “सवनयोरुक्त्वमुखीयतृचपर्यासौ । माध्यन्दिने पर्यासाद्य-
 तृचवर्जम्” इति [वै० ८. १] ॥

तथा सर्वजित्यग्रे मरुत्स्तोमे सहस्रान्त्ये च चतुर्व्वेकादेषु “तद्
 वो गाय सुते सचा” “वयमेनमिदाद्यः” एतां आज्यपृष्ठस्तोत्रिणौ
 भवतः । तद् उक्तं वैताने । “सर्वजित्यग्रे मरुत्स्तोमे सहस्रान्त्ये
 तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाद्य इति” इति [वै० ८. १] ॥

बानपेयमें “तद् वो गाय” यह स्तोत्रिय होता है । इसी बात
 को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तद् वो गायेति स्तोत्रियः”
 (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा बृहस्पतिसवमें “तद् वो गाय सुते सचा” (२०।७८)
 “वयमेनमिदाद्यः” (२०।६७) ये यथाक्रम आज्यपृष्ठस्तोत्रिण
 होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“बृहस्पतिसवे
 तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाद्यः” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा तहाँ ही मातःसवन और माध्यन्दिन सवनमें ये ही उक्त्व-
 मुखीय और तृचपर्यास होते हैं और माध्यन्दिनमें पर्यासाद्यतृच
 नहीं होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सवन-
 मोरुक्त्वमुखीयतृचपर्यासौ । माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम्”
 (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा सर्वजित् ऋगम मरुत्स्तोम और सहस्रान्त्य इन चारोंके
 एकाहोंमें “तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाद्य इति” (वैतान-
 सूत्र ८ । १) ॥

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्त्वेने । शंयद्
गवे न शाकिने ॥ १ ॥

तद् । वो । गाय । सुते । सचा । पुरुहूताय । सत्त्वेने ॥ शम् ।

यत् । गवे । न । शाकिने ॥ १ ॥

अपने सोमका अभिषेक होने पर जल वाले पुरुहूत इन्द्रके लिए
स्तोत्रका गान करो, जिससे, कि-वह गौकी समान हम शाक
(सोम) वालोंके लिये कन्याणकारी होवें ॥ १ ॥

न धा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमंतः । यत्
सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥

न । धा । वसुः । नि । यमते । दानम् । वाजस्य । गोमन्तः ॥

यत् । सीम् । उप । श्रवत् । गिरः ॥ २ ॥

यह इन्द्रदेव यदि स्तुतिरूपा वाणीको सुन लेते हैं, तो वह वसु
धजमानके लिये वसुके और गोसम्पन्न अन्नके दानकी नहीं
रोकते हैं ॥ २ ॥

कुवित्सेस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शची-
भिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

कुवित्सेस्य । प्र । हि । व्रजम् । गोमन्तम् । दस्युहा । गमत् ।

शचीभिः । अप । नः । वरत् ॥ ३ ॥

इति सप्तमेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे घान्यसे सम्पन्न ! वृत्रहारी दस्युका संहार करने वाले इन्द्र ! आप गौ (बाणी) वाले व्रज (यज्ञ) की ओर आवें और शक्तियोंसे हमको भरें ॥ ३ ॥

स्वतन्त्र अनुशासक सप्तम सूक्त समाप्त (६९३)

वाजपेये माध्यन्दिने सवने “इन्द्र क्रतुं न आ भर” [२०. ७३] “इन्द्र ज्येष्ठम्” [२०. ८०] “उदु त्ये मधुमत्तमाः” [२०. ५६] इत्येतेषामन्यतमो विकल्पेन स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “माध्यन्दिन इन्द्र क्रतुं न आ भरेति स्तोत्रियः । इन्द्र ज्येष्ठम् उदुत्ये मधुमत्तमा इति वा” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा विषुवति सौर्यपृष्ठे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” “इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर” इति विकल्पेन स्तोत्रियानुसृष्टौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र क्रतुं न आ भर इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरेति वा” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा विरवजिति वैराजपृष्ठे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इति इमां पूर्वाभ्यां तृतीयाम् अर्धर्चशः मग्नयनां शंसति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र क्रतुं न आ भरेति तृतीयाम्” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा इन्द्रस्तोमाख्ये एकाहे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” [२०. ७६] “तव त्यदिन्द्रियं बृहत्” [२०. १०६] इत्येतौ पृष्ठोक्त्यस्तोत्रियो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रस्तोम इन्द्रं क्रतुं न आ भर तव त्यदिन्द्रियम् बृहदिति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा विषुवति एकाहीभूते “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इति पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “विषुवतीन्द्र क्रतुं न आ भरेति” इति [वै० ८. २] ॥

वाजपेयके माध्यन्दिन सवनमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” (२०. ७६) “इन्द्र ज्येष्ठम्” (२०. ८०) “उदु त्ये मधुमत्तमाः” (२०. ५६) इनमेंसे कोई एक विकल्पसे स्तोत्रिय होता है ।

(४०२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“माध्यन्दिन इन्द्र क्रतुं न आ भरेति स्तोत्रियः । इन्द्रं ज्येष्ठम् उदु त्ये मधुमत्तमा इति वा” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा विपुवत् सौर्यपृष्ठमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” “इन्द्रं ज्येष्ठं न आ भर” ये विकल्पसे स्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र क्रतुं न आ भर इन्द्र ज्येष्ठं न आभरेति वा” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इसको दो पूर्वाशौसे, तृतीयाको अर्धर्चशः मग्नयनारूप कहे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र क्रतुं न आ भरेति तृतीयाम्” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” (२० । ७६) “तव तदिन्द्रियं बृहत्” (२० । १०६) ये पृष्ठोक्त्य स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्रस्तोम इन्द्र क्रतुं न आ भर तव तदिन्द्रियं बृहदिति” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा एकाहीभूत विपुवत्में “इन्द्र क्रतुं न आ भर” यह पृष्ठ-स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विपु-वतीन्द्र क्रतुं न आभरेति” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिवां णो अस्मिन् पुंरूहन् त्वामनि जीवा ज्योतिं-
रशीमहि ॥ १ ॥

इन्द्र । क्रतुम् । नः । आ । भर । पिता । पुत्रेभ्यः । यथा ।

शिक्षं । नः । अस्मिन् । पुरुऽहन् । यामनि । जीवाः । ज्योतिः ।

अशीमहि ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे पिता पुत्रोंको अभिमत वस्तु देता है, इसी प्रकार आप हमको सोमयाग आदिरूप अभिमत वस्तु दीजिये, हे बहुतसे यजमानोंसे बुलाये जाने वाले पुरुहन् इन्द्रदेव ! आप हमको संसारयात्रामें अभिमत वस्तुएँ दीजिये और हम भी आपके मसादसे चिरकालका जीवन पाकर इस लोकके सुखका अनुभव करना रूप ज्योतिको पावें ॥ १ ॥

मा नो अज्ञाता वृजनां दुराध्यो ३ माशिंवासो अवं
क्रमुः ।

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोतिं शूर तरामसि । २ ।

मा । नः । अज्ञाताः । वृजनाः । दुःऽआध्यः । मा । अशिंवासः ।

अव । क्रमुः ।

त्वया । वयम् । प्रवतः । शश्वतीः । अपः । अति । शूर । तरामसि

इति सप्तमेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे शूर ! अज्ञात पाप हम पर आक्रमण न करें, दुष्ट आधियों हम पर आक्रमण न करें, अकन्याण करने वाली वार्तायें हम पर आक्रमण न करें, आपकी कृपासे हम मनुष्योंसे सम्पर्क रहते हुए मदा कर्मोंके पार पहुँचते रहें ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाहमे अष्टम सूक्त समाप्त । (६९५)

वाजपेय पाण्डिने सरने "इन्द्र उग्रेष्ठम्" इत्यस्य पूर्व भूक्तेन सह उक्तो विनिर्गोपः ॥

तथा विपुवति सौर्यपृष्ठे अस्य पूर्वमूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

वाजपेयके माध्यन्दिनसवनमें “इन्द्र ज्येष्ठम्” इसका विनियोग पूर्वमूक्तके साथ कह दिया है ।

तथा विपुवत् सौर्यपृष्ठमें इसका पूर्वमूक्तके साथ विनियोग कहा है ।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुंरि श्रवंः ।

येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुंशिप्र प्राः १

इन्द्र । ज्येष्ठम् । नः । आ । भर । ओजिष्ठम् । पपुंरि । श्रवंः ।

येन । इमे इति । चित्र । वज्रहस्त । रोदसी इति । आ ।

उभे इति । सुंशिप्र । प्राः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप अपने ज्येष्ठ ओजिष्ठ और पूर्ण करने वाले धनको हमें दीजिये, हे चायनीय वज्रहस्त सुन्दर ठोड़ी वाले इन्द्र ! आपने जिस धनसे दोनों धुलोक और पृथिवीलोकों व्याप्त कर रखा है, उसे हमें दीजिये ॥ १ ॥

त्वामुग्रमवंसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।

विश्वा सु नो विथुरा पिन्द्ना वसोमित्रान् सुपहान्

कृधि ॥ २ ॥

त्वाम् । उग्रम् । अवसे । चर्षणिस्तहम् । राजन् । देवेषु । हूमहे ।

विश्वा । सु । नः । विथुरा । पिन्द्ना । वसो इति । अमित्रान् ।

सुपहान् । कृधि ॥ २ ॥

इति रासमेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे राजन् ! हम देवताओंमेंसे आप चर्पणीसह उग्रका ही रक्षा के लिये आदान करते हैं । हे वासक इन्द्र ! हमारे भयके सब कारणोंको आप नष्ट करिये और शत्रुओंको भली प्रकार दवाने योग्य कर दीजिये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त (६२६)

अप्तेर्यामिण क्रनौ माध्यंदिने सवने “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इति स्तोत्रियम् अभितः प्राकृतः स्तोत्रियो भवति । “यदिन्द्र यावत्स्त्वम्” [२०. ८२] इत्यनुरूपम् अभितः प्राकृतोऽनुरूपः । तद् उक्तं वैताने । “माध्यंदिने यद् द्याव इन्द्र ते शतं यदिन्द्र यावत्स्त्वम् इति स्तोत्रियानुरूपावभिनस्तोत्रियानुरूपा” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा विश्वजिति चैराजपृष्ठे “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” “यदिन्द्र यावत्स्त्वम्” इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपा चार्हता प्रगाथा भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विश्वजिति चैराजपृष्ठे यद् द्याव इन्द्र ते शतं यदिन्द्र यावत्स्त्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपा चार्हता” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा तनूगृष्टे षड्दे “अभि त्वा शूर नोनुमः” [२०. १२१] “त्वामिद्धि हवामहे” [२०. ६८] “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] “पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” [२०. ११७] “कया नश्चित्र आ भुवत्” [२०. १२४] “रेवतीर्नः सधमादे” [२०. १२२] इति पृष्ठस्तोत्रिया यथाक्रमं भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “तनूगृष्टेभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे यद् द्याव इन्द्र ते शतं पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा कया नश्चित्र आ भुवत् रेवतीर्नः सधमाद इति” इति [वै० ८. ४] ॥

अप्तेर्याम क्रतुके माध्यन्दिन सवनमें “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” (२० । ८१) यह स्तोत्रिय चारों ओरसे प्राकृत स्तोत्रिय होता

है । “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” (२० । ८२) यह अनुरूप अभितः प्राकृत अनुरूप है । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-
“माध्यन्दिने यद् द्याव इन्द्र ते शतम् यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति स्तोत्रियानुरूपावभितस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” ये पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बार्हत मगाय होते हैं । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“विश्वजिति वैराजपृष्ठे यद् द्याव इन्द्र ते शतम् यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हता (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा तनूपृष्ठ षडहमें “अभि त्वा शूर नोनुवः” (२० । १२१) “त्वामिद्धि हवामहे” (२० । ६८) “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” (२० । ८१) “पिवा सोमिन्द्र मदन्तु त्वा” (२० । ११७) “कया नश्चित्र आभुवत् (२० । १२४) “रेवतीर्नः सघमादे” (२० । १२२) ये यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“तनूपृष्ठेऽभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे यद् द्याव इन्द्र ते शतं पिवा सोमिन्द्र मदन्तु त्वा कया नश्चित्र आभुवद् रेवतीर्नः सघमाद इति” (वैतानसूत्र ८ । ४)
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिनसहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।।

यद् । द्यावः । इन्द्र । ते । शतम् । शतम् । भूमीः । नत ।
स्युरिति । स्युः ।

न । त्वा । वज्रिनः । सहस्रम् । सूर्याः । अनु । न । जातम् ।
अष्ट । रोदसी इति ॥ १ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! यदि सैकड़ों सुलोक सैकड़ों भूमि और
सहस्रों सूर्य आपके उपमानमें हो जावें, तब भी हे वज्रधारिन् इन्द्र !
आपमे नहीं बढ़ सकते ॥ १ ॥

आ पंप्राथ महिना वृष्ण्यां वृषन् विश्वां शविष्ठ शर्वसा ।
अस्माँ अय मघवन् गोमंति व्रजे वज्रिं चित्राभिरु-
त्तिभिः ॥ २ ॥

आ । पंप्राथ । महिना । वृष्ण्यां । वृषन् । विश्वां । शविष्ठ ।
शर्वसा ।

अस्मान् । अय । मघवन् । गोमंति । व्रजे । वज्रिन् । चित्राभिः ।
ऊत्तिभिः ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

हे वज्रिन् शविष्ठ मघवन् फलमद इन्द्र ! हमारे गाँओं वाले
व्रजमें अपनी चिचिच रक्तक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करिये और
अपनी महिमासे बलपूर्वक हमको बढ़ाइये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (६६७)

अग्नोर्यामिण क्रतौ “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” इति सूक्तस्य पूर्व-
सूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे अस्य सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह
उक्तो विनियोगः ॥

अग्नोर्याम क्रतुम् “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” इस सूक्तका पूर्वसूक्तके
साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा विश्वजित् वैराज्यपृष्ठमें इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ
विनियोग कह दिया है ।

यदिन्द्र यावत्स्त्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिद् दिधिपेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ।

यत् । इन्द्र । यावत् । त्वम् । एतावत् । अहम् । ईशीय ।

स्तोतारम् । इत् । दिधिपेय । रदावसो इति रदवसो । न ।

पापत्वाय । रासीय ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप जितने हैं, इतना मैं ईश्वर हो जाऊँ, स्तोताओं को धन प्रदान करूँ, मैं पापत्वके लिये विलिखित न होऊँ अर्थात् पाप करके पक्षियोंके द्वारा नोचा न जाऊँ ॥ १ ॥

शिक्षेयमिन्मह्यते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।

नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता

चन ॥ २ ॥

शिक्षेयम् । इत् । मह्यते । दिवेदिवे । राय । आ । कुहचिद्विदे ।

ऽविदे ।

नहि । त्वत् । अन्यत् । मघवन् । नः । आप्यम् । वस्यः ।

अस्ति । पिता । चन ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

जो मुझसे बढ़ना चाहे (उसे संग्राममें मार कर) स्वर्गमें जानेका दण्ड दूँ, चाहे कहींसे धनको प्राप्त करूँ, हे मघवन् ! आपसे अतिरिक्त और कौन हमको पूर्ण करने वाला वासक और पालक है ॥ २ ॥

असौर्षाम्णि माकृतसामप्रगाथादनन्तरम् “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” इति सामप्रगाथो भवति । तद् उक्तं वैताने । “सामप्रगाथाद् इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति सामप्रगाथः” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा विरवजिति चैराजपृष्ठे “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” इति सामप्रगाथो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति सामप्रगाथः” इति [वै० ६. ३] ॥

असौर्षाम्णि माकृतसामप्रगाथके अनन्तर “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” यह साम प्रगाथ होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सामप्रगाथाद् इन्द्र त्रिधातु शरणम्” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा विरवजित् चैराजपृष्ठमें “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” यह सामप्रगाथ होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति सामप्रगाथः” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

इन्द्रं त्रिधातुं शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

वृद्धिर्पञ्च मघवन्निन्द्रं मह्यं च यावयां दिद्युमेभ्यः ।
इन्द्र । त्रिधातु । शरणम् । त्रिवरूथम् । स्वस्तिमत् ।

वृद्धिः । पञ्च । मघवत्भ्यः । च । मह्यम् । च । यावयं । दिद्युम् । पञ्चः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! त्रिधातु त्रिवरूथ और स्वस्तिसम्पन्न यहको घनवानोंके लिये और मेरे लिये प्रदान करिये और इनसे दिद्युको अलग करिये—खण्डन करने वाले वज्रको अलग करिये ॥१॥

ये गंव्यता मनसा शत्रुमाद्भुरभिप्रवृन्ति धृष्णुया ।
अथ स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥

(४१०) . अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ये । गव्यता । मनसा । शत्रुम् । आङ्मधुः । अभिऽप्रमन्ति ।
धृष्ट्वा ।

अथ । स्म । नः । मघश्चन् । इन्द्र । गिर्वणः । तनूऽपाः ।
अन्तमः । भव ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

जो गमनशील मनसे शत्रुओंकी हिंसा करते हैं और अपनी
धर्मक शक्तियोंसे शत्रुको विकटरूपसे पीटते हैं (वे आपके बल
शत्रुओंको पीटें) इसके अनन्तर हे स्तुतिवाणियोंसे सेवनीय
मघश्चन् इन्द्र ! आप हमारे पास रह कर हमारे शरीरकी रक्षा
करिये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त (६९९)

चतुर्विंशे द्वितीयेहनि प्रातःसवने “इन्द्रा याहि चित्रभानो”
इति विकल्पेन आङ्मस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रा
याहि चित्रभानो इति वा” इति [वै० ६. १] ॥

तथा छन्दोमाख्येषु शिष्वहःसु प्रातःसवने अस्य “तमिन्द्रं
वाजयामसि” [२०. ४७] इत्यनेन सह विनियोग उक्तः ॥

तथा चतुर्विंशे सांवत्सरिके एकाहीभूते “इन्द्रा याहि चित्र-
भानो” [२०. ८४] “मा चिदन्यद् वि शंसते” [२०. ८५]
इत्याङ्मस्तोत्रियो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्विंश
इन्द्रा याहि चित्रभानो मा चिदन्यद् वि शंसतेति” इति
[वै० ८. २] ॥

चतुर्विंशके द्वितीय दिनके प्रातःसवनमें “इन्द्रा याहि चित्र-
भानो” यह विकल्पसे आङ्मस्तोत्रिय होता है । इसी बातको
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्रा याहि चित्रभानो इति वा”
(वैतानसूत्र ६ । १)

तथा छन्दोमोके तीनों दिनोंके प्रातःसवनमें इसका “तमिन्द्रं वाजयाममि” के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा चतुर्विंश साम्बत्सरिक एकाही भूतमें “इन्द्रा याहि चित्रमानो” (२० । ८४) “मा चिदन्यद् विशंसते” (२० । ८५) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“चतुर्विंश इन्द्रा याहि चित्रमानो मा चिदन्यद् विशंसतेति” (वैतानमूत्र ८ । २) ॥

इन्द्रा याहि चित्रमानो सुता इमे त्वायवः । अयवीभिस्तनां पूतासः ॥ १ ॥

इन्द्र । आ । याहि । चित्रमानो इति चित्रमानो । सुताः । इमे । त्वायवः । अयवीभिः । तनां । पूतासः ॥ १ ॥

हे चित्रमानो इन्द्र ! आइये, यह मूषम (वस्त्रों) से निचोड़े हुए घनरूप सोम आपके ही हैं ॥ १ ॥

इन्द्रा याहि धियेपितो विप्रंजूनः सुतावतः । उपब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

० धिया । इपितः । विप्रंजूनः । सुतावतः ॥ उप । ब्रह्माणि । वाघतः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ब्राह्मण आपको अपनेसे उत्कृष्ट समझने हैं । इस लिये बुद्धिसे प्रेरित होकर, इन अभिपुन सोम वाले और मन्त्रों (का उच्चारण करते हुए) ऋत्विजोंके पास आइये ॥ २ ॥

इन्द्रा याहि तूतुंजान उपब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

(४१२) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-त्रायानुवादसहित

इन्द्र । आ । योद्धि । तूनुजानः । उप । ब्रह्माणि । हरिष्वः ।
सुने । दधिष्व । नः । चनः ।

इति सप्तमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप शीघ्रता करके स्तोत्रों की ओर आइये और हमारे अभिषुत सोमके पास अपने घोड़ों को कुछ उइराइये ॥ ३ ॥

असम अनुषाङ्गमे त्रयोदश सूक्त समाप्त (७००)

चतुर्विंशे माध्यन्दिने सवने “मा चिदन्यद् वि शंसत” [२०. ८५. १, २] “यच्चिद्धि त्वा जना इमे” [२०. ८५. ३, ४] इति विकल्पेन पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो वार्हती मगार्यो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “मा चिदन्यद् वि शंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति वा” इति [वै० ६. १] ॥

तथा चतुर्विंशे सामन्तसरिके एकाहीभूते “मा चिदन्यद् वि शंसत” इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

चतुर्विंश माध्यन्दिन सवनमें “मा चिदन्यद् विशंसत” (२०। ८५। १, २) “यच्चिद्धि त्वा जना इमे” (२०। ८५। ३, ४) ये विकल्पसे पृष्ठस्तोत्रियानुरूप वार्हत मगाय होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मा चिदन्यद् विशंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति वा” (वैतानसूत्र ६। १) ॥

तथा चतुर्विंश सामन्तसरि एकाहीभूतमें “मा चिदन्यद् वि शंसत” इसका विनियोग पूर्वसूक्तके साथ कह दिया है ।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखांयो मा रिषयंत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचां सुने मुहुरुक्या च शंसत ?

मा । चि॒त् । अ॒न्यद् । वि । शंस॑त । स॒त्वायः । मा । रि॒प॒ण॒यत् ।
इन्द्र॑म् । इत् । स्तो॒त । वृ॒ष॒णम् । स॒घा । मु॒ने । मु॒हुः । व॒क्त्र॒भा ।
च । शंस॑त ॥ १ ॥

हे मित्ररूप स्तोताओं ! तुम विविध प्रकारकी स्तुतियोंसे और किसीकी स्तुति न करो तथा चित्तसे भी और किसी देवताके पास न जाओ, फलोंकी वर्षा करने वाले इन्द्रकी ही स्तुति करो हे इस अभिपुत्र सोमके पास रहने वाले होनाओं ! तुम बारम्बार वक्त्रभा गान करो ॥ १ ॥

अ॒व॒क्र॒क्षि॑णं वृ॒ष॒भं य॑था॒जु॒रं गां न च॑र्प॒णी॒सह॑म् ।
वि॒द्वेप॑णं स॒व॒न॒नो॒भय॑क॒रं म॑हि॒ष्ठमु॒भया॑वि॒नम् ॥ २ ॥
अ॒व॒क्र॒क्षि॑णम् । वृ॒ष॒भम् । य॒था । अ॒जु॒रम् । गा॒म् । न । च॑र्प॒णि॒स॒ह॑म् ।

वि॒द्वेप॑णम् । स॒व॒ज्व॒न॒ना । उ॒भय॑म्॒ऽक॒रम् । म॑हि॒ष्ठम् । उ॒भया॒॑वि॒नम् ॥ २ ॥

अवक्रक्षी, वृषभ, अजुर, बैलकी समान चर्पणीसह, जत्रओं से द्वेष करने वाले, संवननीय, महिष्ठ और दोनों लोकोंमें रक्षा करने वाले (इन्द्रदेवका मैं आह्वान करता हूँ) ॥ २ ॥

यच्चि॒द्धि त्वा॒ जना॑ इ॒मे ना॒ना ह॒व॒न्ते ऊ॒तये॑ ।
अ॒स्माकं॑ ब्र॒ह्म॒दमि॑न्द्र भू॒तु ते॒हा वि॒श्वां च॒वर्ध॑नम् ३
यत् । चि॒त् । हि । त्वा॒ । ज॒नाः । इ॒मे । ना॒ना । ह॒व॒न्ते । ऊ॒तये॑ ।

अस्माकम् । ब्रह्म । इदम् । इन्द्र । भूतु । ते । अर्हा । विरता । च ।
वर्धनम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! ये बहुतसे पुरुष रक्षा के लिये अनेक प्रकारकी
स्तुतियोंसे आपका आवाहन करते हैं, हे इन्द्र ! हमारा यह मन्त्र-
मय स्तोत्र सब दिन आपकी बढ़ाने वाला होवे ॥ ३ ॥

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोर्यो विपो जनानाम्
उपं क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

वि । तर्तूर्यन्ते । मघवन् । विपःचितः । अर्यः । विपः । जनानाम् ।
उपं । क्रमस्व । पुरुःरूपम् । आ । भर । वाजम् । नेदिष्ठम् ।
ऊतये ॥ ४ ॥

इति सप्तमेनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

हे मघवन् ! विद्वान् पुरुष, यज्ञस्वामी और मनुष्योंकी अंगुलियों
त्तरा कर रही हैं आप आइये और विशाल रूपको धारण करिये
और रक्षा करनेके लिये अन्नको निकटतम करके प्रदान करिये ४

सप्तम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (७०१)

संवत्सरे माध्यंदिने सवने सामप्रगाथाइ अनन्तरम् “ब्रह्मणा ते
ब्रह्मपुजा युनजिम्” इति आरम्भणीया भवति । तद् उक्तं वैताने ।
“ब्रह्मणा ते ब्रह्मपुजा युनजिमीत्यारम्भणीया” इति [वै० ६. ५] ॥

संवत्सरके माध्यन्दिन सवनमें सामप्रगाथके अनन्तर “ब्रह्मणा
ते ब्रह्मपुजा युनजिम्” यह आरम्भणीया होती है । इसी बातको
वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“ब्रह्मणा ते ब्रह्मपुजा युनजिमीत्यारं-
भणीया भवति” (वैतानमूत्र ६ । ५) ॥

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजां युनज्मि हरी सखाया सधमादं
आशू ।

स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि
सोमम् ॥ १ ॥

ब्रह्मणा । ते । ब्रह्मयुजा । युनज्मि । हरी इति । सखाया ।
सधमादे । आशू इति ।

स्थिरम् । रथम् । सुखम् । इन्द्र । अधितिष्ठन् । प्रजानन् ।
विद्वान् । उप । याहि । सोमम् ॥ १ ॥

इति सप्तमेनुवाके पञ्चदशं सूक्तम् ॥

कर्ममें लगे हुए मन्त्रके द्वारा मैं आपके हरिनामक शीघ्रगामी
घोड़ोंको यज्ञमें आनेके लिये रथमें जोड़ता हूँ, हे इन्द्रदेव ! आप
विद्वाँ हैं अतः रथको स्थिर और सुखपद समझ उस पर चढ़
कर सोमके मयीप आइये ॥ १ ॥

सप्तम अनुवाकमें पञ्चदश सूक्त समाप्त (७०२)

द्वितीये छन्दोमेहनि “अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्” [२०. ८७]
“यस्तस्मै सहसा वि उषो अन्तान्” [२०. ८८] “अस्तेव
सु मतरं लायमस्यन्” [२०. ८९] इत्येकाहिकानि भवन्ति ।
तद् उक्तं वैताने । “द्वितीयेध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं यस्तस्मै सहसा
वि उषो अन्तान् अस्तेव सु मतरं लायमस्यन् इत्येकाहिकानि”
इति [वै० ६. ३] ॥

तथा तृतीये छन्दोमेहनि “अध्वर्यवोरुणम्” [२०. ८७] “यो
अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा” [२०. ९०] “आ यात्विन्द्रः स्व-

पतिर्मदाय” [२०. ६४] इत्येतानि ऐकाहिकानि भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “तृतीयेध्वर्यवोरुणं यो अद्रिभित् । मथमजा श्रुतावा यास्विन्द्रः स्वपतिर्मदायेति” इति [वै० ६. ३] ॥

द्वितीय छन्दोमं दिनमें “अध्वर्यवोरुणम् दुग्धमंशुम्” (२० । ८७) “यस्तस्तम्भ सहसा वि उमो अन्तान्” अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् (२० । ८६) ये ऐकाहिक होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वितीयेध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं यस्तस्तम्भ सहसा वि उमो अन्तान् अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् इत्यैकाहिकानि” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा तृतीय छन्दोमं दिनमें “अध्वर्यवोरुणम् (२० । ८७) “यो अद्रिभित् मथमजा श्रुतावा” (२० । ६०) “आ यास्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय” (२० । ६४) ये ऐकाहिक होते हैं, इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तृतीयेध्वर्यवोरुणं यो अद्रिभित् मथमजा श्रुतावा यास्विन्द्रः स्वपतिर्मदायेति” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं जुहोतनं वृषभाय चितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवृषानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुत-
सोममिच्छन् ॥ १ ॥

अध्वर्यवः । अरुणम् । दुग्धम् । अंशुम् । जुहोतन । वृषभाय ।
चितीनाम् ।

गौराद् । वेदीयान् । अवृषानम् । इन्द्रः । विश्वाहा । इत् । याति ।
सुतसोमम् । इच्छन् ॥ १ ॥

हे अध्वर्युओं ! तुम पृथ्वीके धर्मक इन्द्रके लिये सोमके अंश

अरुण दुग्धकी आहुति दो, विश्वाहा विद्वान् इन्द्र सुतसोमको
चाहता हुआ गौरसे अवपान पर आता है ॥ १ ॥

यद् दधिपे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य
वक्षि ।

उत्त हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि
सोमान् ॥ २ ॥

यद् । दधिपे । प्रदिवि । चारु । अन्नम् । दिवेदिवे । पीतिम् ।
इत् । अस्य । वक्षि ।

उत्त । हृदा । उत्त । मनसा । जुषाणः । उशन् । इन्द्र । प्रस्थितान् ।
पाहि । सोमान् ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जो घृतोक्तों चारु अन्नको धारण करते हैं,
और मत्स्यक क्रीड़ाके अवसर पर जो इस सोमकी पीतिको धारण
करते हैं, हे इन्द्र ! हृदय और मनसे इस सोमको चाहते हुए
आप प्रस्थित सोमोंकी रक्षा करिये ॥ २ ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाय प्र ते माता महिमानं-
मुवाच ।

एन्द्र पपायोर्व १न्तरिचं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकथ ३

जज्ञानः । सोमम् । सहसे । पपाय । प्र । ते । माता । महिमानम् ।
उवाच ।

आ । इन्द्र । पमाथ । उरु । अन्तरिक्षम् । युधा । देवेभ्यः ।
परिवः । चकर्थ ॥ ३ ॥

आप आविर्भूत होते ही बलके लिये सोम पर जाते हैं, अन्तरिक्ष आपकी महिमाको प्रकृष्टरूपसे कहता है । हे इन्द्रदेव ! आप विशाल अन्तरिक्षमें जाते हैं और आपने युद्ध करके देवताओंको धन प्रदान किया है ॥ ३ ॥

यद् योधयां महतो मन्यमानान् साक्षांस्तान् बाहुभिः
शाशदानान् ।

यद्वा नृभिर्वृतं इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम
यत् । योधयाः । महता । मन्यमानान् । साक्षां । तान् । बाहुभिः ।
शाशदानान् ।

यत् । वा । नृभिः । वृता । इन्द्र । अभियुध्याः । तम् । त्वया ।
आजिम् । सौश्रवसम् । जयेम ॥ ४ ॥

आप अपनेको बड़ा मानने हुआसे युद्ध करते हैं, उन भुजाओं से विशरण करते हुआसे हम संगत होवें, अथवा हे इन्द्र ! आप मनुष्योंसे घिर कर युद्ध करिये आपके प्रभाववश हम सुन्दर यश के साथ युद्धको जीतें ॥ ४ ॥

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्रनूतना मघवा या चकारं
यदेदेदीरसंहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य
म । इन्द्रस्य । वोचम् । प्रथमा । कृतानि । म । नूतना । मघवा ।
या । चकार ।

यदा । इत् । अदेवीः । असहिष्ट ॥ मायाः । अयं । अमवत् ।

केवलः । सोमः । अस्थ ॥ ५ ॥

मैं इन्द्रके पहिले किये हुए कृत्योंका वर्णन कर रहा हूँ और घनी इन्द्रदेवने जो नवीन कर्म किये हैं उनका वर्णन करता हूँ, जो इन्होंने आसुरी मायाओंको सहा है, इससे सोम केवल इन के लिये होगया है ॥ ५ ॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं १ यत् पश्यासि चक्षसा
सूर्यस्य ।

गवामसि गोपन्तिरेकं इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः

तव । इदम् । विश्वम् । अभितः । पशव्यम् । यत् । पश्यसि ।

चक्षसा । सूर्यस्य ।

गवाम् । असि । गोपन्ति । एकः । इन्द्र । भक्षीमहि । ते । प्रय-
तस्य । वस्वः ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सूर्यरूपी नेत्रसे जिसको देखते हैं यह सब पशुघन आपका ही है, हे इन्द्रदेव ! आप गौओंके असाधारण

गोपालक है हम, आप प्रयत अपने भक्तफलरत्वमें मकृष्टरूपसे

लगे रहने वालेके घनका उपभोग करें ॥ ६ ॥

वृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य

घृत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् ग्र्यं पात स्वस्तिभिः

सदा नः ॥ ७ ॥

बृहस्पते । युवम् । इन्द्रः । च । वस्वः । दिव्यस्य । ईशायेति ।
उत । पार्थिवस्य ।

धत्तम् । रगिम् । स्तुवते । कीरये । चित् । युयम् । पान । स्तु-
स्तिभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

इति सप्तमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

हे बृहस्पते ! आप और इन्द्रदेव तुम दोनों ही ध्रुलोकके और
भूलोकके धनके स्वामी हैं आप स्तुति करनेवाले स्तोताके लिये
धनको दीजिये और अपनी रक्षक शक्तियोंसे सदा हमारी रक्षा
करिये, ॥ ७ ॥

सप्तम अनुवाकमें सोडहवाँ सूक्त समाप्त (५०३)

द्वितीये छन्दोमेहनि “यस्तस्तम्भ सहसा वि जमो अन्तान्”
इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें “यस्तस्तम्भ सहसा विजमो अन्तान्”
इसका विनियोग पूर्व सूक्तके साथ कह दिया है ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि जमो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषध-
स्थो रवेण ।

तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्र-
जिह्वम् ॥ १ ॥

यः । तस्तम्भ । सहसा । वि । जमः । अन्तान् । बृहस्पतिः ।
त्रिषधस्थः । रवेण ।

तम् । प्रत्नासः । ऋषयः । दीध्यानाः । पुरः । विप्रा । दधिरे ।
मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥

निन त्रिसधस्य बृहस्पतिने अपने घोषसे पृथ्वीके छोर तक को स्तम्भित कर दिया था, प्राचीन ऋषि, उनका बारम्बार ध्यान करते हैं और ब्राह्मण उन दर्पमद जिह्वा वालेको पहिले रखते हैं ॥ १ ॥

धुनेतयः सुप्रकेनं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततसे
पृपन्तं सुप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् २
धुनऽतयः । सुप्रकेतम् । मदन्तः । बृहस्पते । अभि । ये । नः ।
तनसे ।

पृपन्तम् । सुप्रम् । मदन्वम् । ऊर्ध्वम् । बृहस्पते । रक्षतात् । अस्य ।
योनिम् ॥ २ ॥

हे बृहस्पते ! ध्वनिको प्रेरित करते हुए आनन्दमें भरे हुए जो ऋषिज आपको हमारी ओर प्रेरित करते हैं । हे बृहस्पते ! उस ऋषिजसंघके कारण, गमनशील, सबसे अहिंसित बलवान् घृतविन्दु वाले की आप रक्षा करिये ॥ २ ॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ तं ऋतस्पृशो नि
पेदुः ।

तुभ्यं स्वाता अंवता अद्रिदुग्धा मध्वं श्रोतन्त्यभितो
विरणाम् ॥ ३ ॥

बृहस्पते । या । परमा । परावदत् । अतः । आ । ते । ऋतस्पृशः ।
नि । सेदुः ।

तुभ्यम् । खाताः । अवताः । अद्रिऽदुग्धाः । मध्वाः । ज्योतिन्ति ।

अभितः । विऽरप्शम् ॥ ३ ॥

हे बृहस्पते ! आपकी परम रक्षक शक्ति रक्षा करती है, इसी कारण अतस्पृश् अस्विज् आपके पास बँडे हैं, आपके लिये तोड़े हुए, रक्षित और पहाड़ परसे लाये हुए मधुके अधिकरण चारों ओरसे विशाल परिमाणमें मधुको बरसाते हैं ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिपः परमे व्योमन् ।

सप्तास्यंस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ४

बृहस्पतिः । प्रथमम् । जायमानः । महः । ज्योतिपः । परमे ।

विऽव्योमन् ।

सप्तऽआस्यः । तुविऽजातः । रवेण । वि । सप्तरश्मिः । अधमन् ।

तमांसि ॥ ४ ॥

बृहस्पति देव ज्योतिपके महिमामय चक्रसे परम व्योममें प्रकट होते हैं, तब वह तुविजात सप्तास्य सप्तरश्मि बन अपने शब्दसे अन्धकारोंको नष्ट कर डालते हैं ॥ ४ ॥

स सुष्टुभा स ऋक्ता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।

बृहस्पतिरुसियां हव्यसूदः कनिक्कद्व् वावशतीरुदाजत्

सः । सुऽस्तुभा । सः । ऋक्ता । गणेन । वलम् । रुरोज ।

फलिगम् । रवेण ।

वृहस्पतिः । उ॒त्तिपाः । ह॒व्यऽमू॒दः । क॒निक॑दत् । वा॒य॒शतीः ।

उ॒त । आ॒ज॒त् ॥ ५ ॥

वृहस्पति देव सुन्दरतासे स्तुति करने वाले अचामयगणसे और स्वसे मेघको विदीर्ण कर डालते हैं—वर्षा करते हैं । हव्यसे प्रेरित हुए वृहस्पति देव कामना करती हुई गौओंके लिये वारम्बार शब्द करते हैं और मास होजाते हैं ॥ ५ ॥

ए॒वा पि॒त्रे वि॒श्वदे॒वाय॒ वृ॒ष्णे य॒ज्ञैर्वि॒धेम॒ नम॑सा ह॒विर्भिः॑ ।

वृ॒ह॒स्प॒ते सु॒प्र॒जा वी॒रव॑न्तो व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो र॒थी॒णाम् ६

ए॒व । पि॒त्रे । वि॒श्वदे॒वाय॒ । वृ॒ष्णे । य॒ज्ञैः । वि॒धेम॒ । नम॑सा ।

ह॒विःभिः॑ ।

वृ॒ह॒स्प॒ते । सु॒प्र॒जाः । वी॒रव॑न्तः । व॒यम् । स्या॑म॒ । प॒तयः॑ ।

र॒थी॒णाम् ॥ ६ ॥

इति सप्तमेनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

ऐमे पालक विश्वदेव वर्षक वृहस्पतिके लिये हम यज्ञोंके द्वारा नमस्कारके द्वारा और हविके द्वारा सेवा करते हैं, हे वृहस्पति-देव ! हम सुन्दर प्रजा वाले, वीरोंसे सम्पन्न होवें और धनके स्वामी होवें ॥ ६ ॥

सप्तम अनुवाकमें सप्तदश सूक्त समाप्त (७०४)

द्वितीये छन्दोमेहनि “अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्” इत्यस्य विनियोगः “अन्वयवोरुणं दुग्धमंशुम्” [२०, ८७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें “अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्” इसका

विनियोम “अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्” (२० । ८७) के साथ कह दिया है ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूपन्निव प्र भरा स्तोम-
मस्मै ।

वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम-
इन्द्रम् ॥ १ ॥

अस्ताऽइव । सु । प्रतरम् । लायम् । अस्यन् । भूपन्ऽइव । प्र ।
भर । स्तोमम् । अस्मै ।

वाचा । विप्राः । तरत । वाचम् । अर्यः । नि । रामय । जरित-
रिति । सोमे । इन्द्रम् ॥ १ ॥

जैसे फेंकने वाला पुरुष, ग्रहण करने वाली वस्तुको विभू-
षित होता हुआसा फेंकता है, इसी प्रकार आप इन इन्द्रदेवके
लिये स्तोमका भरण करिये । हे विप्रों ! तुम मन्त्ररूपा वाणीके
वाणीसे पार जाओ हे स्तोतः ! आप स्वामी हैं अतः सोममें
इन्द्रको रमण कराइये ॥ १ ॥

दोहेन गामुप शिक्ता सखायं प्र वोधय जरितर्ज-
मिन्द्रम् ।

कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा व्यावय मघदेयाय
शूरम् ॥ २ ॥

दोहेन । गाम् । उप । शिक्ता । सखायम् । प्र । वोधय । जरितः ।
जारम् । इन्द्रम् ।

कोशम् । न । पूर्णम् । वसुता । निःश्रेष्ठम् । आ । च्यवप ।
मघज्जेषाय । शूरम् ॥ २ ॥

आप मित्ररूपा वाणीको दोहनसे शिञ्जित करिये और हे
स्तुति करने वाले ! शत्रुओंको जीर्ण करने वाले इन्द्रको मघोधित
करिये । और धनसे पूर्ण कोशकी समान शूरतामद शुद्ध सोम
को धनमद इन्द्रके लिये च्पावित करिये ॥ २ ॥

किमङ्ग त्वां मघवन् भोजमाहुः शिश्रीहि मां शिशयं
त्वां शृणोमि ।

अमंस्वती मम धीरंस्तु शक्र वसुमिदं भगंमिन्द्रा
भरा नः ॥ ३ ॥

किम् । अङ्ग । त्वा । मघवन् । भोजम् । आहुः । शिश्रीहि ।
मा । शिशयम् । त्वा । शृणोमि ।

अमंस्वती । मम । धीः । अस्तु । शक्र । वसुमिदम् । भगम् ।
इन्द्र । आ । भर । नः ॥ ३ ॥

हे मघवन् इन्द्रदेव ! आपको भोगने वाला कहते हैं, आपमुझे
जीर्ण न करिये, मैं आपको शत्रुजीर्णकर्ता सुनता हूँ । हे शक्र !
मेरी बुद्धि कर्म वाली हो और हे इन्द्रदेव ! आप हमको धन प्राप्त
कराने वाला भाग्य दीजिये ॥ ३ ॥

त्वां जनां ममसंस्तयेष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते
समीके ।

अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वेष्टि
शूरः ॥ ४ ॥

त्वाम् । जनाः । मयऽसत्येषु । इन्द्र । सम्स्तस्यानाः । वि ।
द्वयन्ते । सम्स्त्येके ।

अत्र । युजम् । कृणुते । यः । हविष्मान् । न । असुन्वत । सख्यम् ।
वेष्टि । शूरः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र । मेरे यज्ञोंमें खड़े हुए और युद्धमें खड़े हुए पुरुष
आपका ही विशेषरूपसे आदान करते हैं, जो हवि वाला आप
के लिये योग करता है वह शूर आपकी मित्रता चाहता है अतः
सोमका अभिषेक करता है ॥ ४ ॥

धनं न स्पन्दं बहुलं यो अस्मे तीव्रान्तसोमो आसु-
नोति प्रयस्वान् ।

तस्मै शत्रून्सुतुकान् प्रातरहो नि स्वष्टान् युवति
हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥

धनम् । न । स्पन्दम् । बहुलम् । यः । अस्मै । तीव्रान् । सोमान् ।
आऽसुनोति । प्रयस्वान् ।

तस्मै । शत्रून् । सुतुकान् । प्रातः । अहो । नि । सुऽश्वष्टान् ।
युवति । हन्ति । वृत्रम् ॥ ५ ॥

जो हविरूप अन्नसे सम्पन्न पुरुष अपने धनको धीरे धीरे

सरकने वाला रख कर इन इन्द्रदेवके लिये तीव्र सोमोंका अभि-
पव नहीं करता है उसके लिये इन्द्रदेव दिनके मातःकालमें शीघ्र
गमन करने वाले भली प्रकार व्याप्त कर लेने वाली शत्रुओंको
मिलाते हैं और वज्रका प्रहार करते हैं ॥ ५ ॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्रायं मघवा
काममस्मे ।

आराधित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै दुम्ना जन्या
नमन्ताम् ॥ ६ ॥

यस्मिन् । वयम् । दधिमा । शंसम् । इन्द्रे । यः । शिश्रायं ।
मघवा । कामम् । अस्मे इति ।

आरात् । चित् । सन् । भयताम् । अस्य । शत्रुः । नि । अस्मै ।
दुम्ना । जन्या । नमन्ताम् ॥ ६ ॥

जिस इन्द्रमें हम प्रशंसाको स्थापित कर रहे हैं अर्थात् जिस
इन्द्रकी प्रशंसा कर रहे हैं और जो घनवान् इन्द्र हममें इच्छाको
आश्रित करते हैं—अर्थात् हमारी इच्छाको पूर्ण करते हैं । इन
इन्द्रदेवका शत्रु इनके पासमें आते ही डरने लगे और दमरता
हुआ जनसमूह इनको प्रणाम करे ॥ ६ ॥

आराध्यत्रुमपं बाधस्य दूरमुग्रो यः शम्भः पुरहूत तेन
अस्मे धेहि यवमदु गोमदिन्द्र कृषी धियं जरित्रे
वाजस्तनाम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम दुष्ट गतिवाली दरिद्रतासे आई हुई दुर्बुद्धि
को पशुओंके द्वारा तरें, यव आदि धान्यके द्वारा घुमुक्ताका निवा-
रण करें, राजाओंमें स्थित श्रेष्ठ धनको हम प्रतिपत्नी जुआरियों
से पराजित न होकर बलकारिणी अक्षशलाकाओंसे जीत लें०
बृहस्पतिर्नः परिं पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः
कृणोतु ॥ ११ ॥

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत्त । उत्तरस्मात् ।

अधरात् । अघायोः ।

इन्द्रः । पुरस्तात् । उत्त । मध्यतः । नः । सखा । सखिभ्यः ।

वरीयः । कृणोतु ॥ ११ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

जो हमारी हिंसारूप पापको करना चाहता है उस शत्रुसे बृह-
स्पतिदेव पश्चिम उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे हमको
बचावें, इन्द्रदेव पूर्वदिशाकी ओरसे हमको बचावें, हमारे मित्ररूप
बृहस्पति अन्य मित्रोंसे हमको श्रेष्ठ करें ॥ ११ ॥

सप्तम अनुवाकमें अष्टादशों सूक्त समाप्त (७०५)

तृतीये अन्धोमेदनि “यो अद्रिभिव्” इत्यस्य वित्तियोगः
“अथर्वशोरुणम्” [२०, ८७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा उभयोर्द्वितीयतृतीययोरहोरैकाहिकानां सूक्तानां मध्यमस्य
आदावन्ते वा “यो अद्रिभिव्” [२०, ६०] “इमां धियं सप्त-
शीर्ष्णां पिना नः” [२०, ६१] इत्येतयोर्गयाक्रमम् एकैकं

शंसति । तद् उक्तं चैताने । “यो अद्रिभिद् इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न इत्युभयोरेकैकं मध्यमस्यादावन्त्ये व” इति [वै० ६.३] ॥

तृतीय छन्दोग दिनमें “यो अद्रिभिद्” का विनियोग “अध्वर्यवोऽरुणम्” (२० । ८७) के साथ कह दिया है ।

तथा दोनों द्वितीय तृतीय दिनोंके ऐरादिक सूक्तोंके मध्यम का आदि वा अन्तमें “यो अद्रिभिद्” (२० । ६०) “इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” (२० । ६१) को यथाक्रम एक एक करके कहे । इसी बातको चैतानसूत्रमें कहा है, कि—“यो अद्रिभिद् इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न इत्युभयोरेकैकं मध्यमस्यादावन्त्ये वा” (चैतानसूत्र ६ । ३) ॥

यो अद्रिभिद् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।

द्विर्वर्हज्मां प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

यः । अद्रिऽभिद् । मध्यमऽजाः । ऋतऽवा । बृहस्पतिः । आङ्गिरसः । हविष्मान् ।

द्विर्वर्हज्मा । प्राघर्मसत् । पिता । नः । आ । रोदसी इति । वृषभः । रोरवीति ॥ १ ॥

जो मेघोंको विदीर्ण करने वाले हैं, प्रथम प्रादुर्भूत होने वाले हैं, सत्यसम्पन्न हैं, वह अद्रिरागोत्री बृहस्पति हविके पात्र हैं, द्विर्वर्हज्मा हैं, प्राघर्मसत् हैं, पालक हैं, वर्षक हैं और ध्रुलोक तथा पृथ्वीलोकमें बारम्बार शब्द करते हैं ॥ १ ॥

जनाय चिद् य ईवंत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयं शत्रून् मित्रान् पृच्छ
साहन् ॥ २ ॥

जनाय । चिद् । यः । ईवंते । ऊं इति । लोकम् । बृहस्पतिः ।
देवहूतौ । चकार ।

घ्नन् । वृत्राणि । वि । पुरः । दर्दरीति । जयन् । शत्रून् । मि-
त्रान् । पृच्छ । साहन् ॥ २ ॥

जो बृहस्पतिदेव मनुष्योंके लिये चलते हैं और देवहूतिमें
जिन्होंने लोकको किया है, वह आवरक मेघोंको विदीर्ण करते
हुए पुरोंका दारण करते हैं, शत्रुओंको जीतते हैं और सेनाओं
में शत्रुओंको सहते हैं ॥ २ ॥

बृहस्पतिः समंजयद् वसूनि महो ब्रजान् गोमती
देव एषः ।

अपः सिपांसन्त्स्वैरमतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः
बृहस्पतिः । सम् । अजयत् । वसूनि । महः । ब्रजान् । गोमतीः ।
देवः । एषः ।

अपः । सिपांसन् । स्वैः । अमतीः । बृहस्पतिः । हन्ति ।
अमित्रम् । अर्कैः ॥ ३ ॥

सप्तमोनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥ इति सप्तमोनुवाकः ॥

इन बृहस्पति देवने बड़े २ गौओं वाले गोठोंको और घनोंको जीत लिया है, जलोंका दान करनेके लिये वह अमतीतरूपमें स्वर्गमें जाते हैं और मन्त्रोंके द्वारा शत्रुका नाश करते हैं ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकम् उन्नीतर्षां सूक्त समाप्त (७०६)

सप्तम अनुवाक समाप्त

“इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नं ऋतप्रजातां बृहती-
मविन्दत् ।

तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योयास्यं उक्थमिन्द्राय
शंसन् ॥ १ ॥

इमाम् । धियम् । सप्तशीर्ष्णीम् । पिता । नः । ऋतप्रजाताम् ।
बृहतीम् । अविन्दत् ।

तुरीयम् । स्वि । जनयत् । विश्वजन्यः । अयास्यः । उक्थम् ।
इन्द्राय । शंसन् ॥ १ ॥

हमारे पालक बृहस्पतिदेवने सत्यसे उत्पन्न हुई इस सात शिर वाली विशाल बुद्धिको पाया है, और उन विश्वजन्य अयास्यने इन्द्रसे कह कर तुरीयको प्रकट किया है ॥ १ ॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य
वीराः ।

विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त
 ऋतम् । शंसन्तः । ऋजु । दीध्यानाः । दिवः । पुत्रासः । अमु-
 रस्य । वीराः ।

विप्रम् । पदम् । अङ्गिरसः । दधानाः । यज्ञस्य । धाम । प्रथमम् ।
 मनन्त ॥ २ ॥

सत्य बोलते हुए, सरलताका ध्यान रखते हुए माणवलीके
 वीर्यसे प्रकट हुए दिवस्पुत्र अङ्गिरागोत्री विप्रत्वको धारण करते
 हैं और यज्ञके धाममें प्रथम माने जाते हैं ॥ २ ॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदक्षिष्मन्मयानि नहन्ता व्यस्यन्
 बृहस्पतिरभिकनिक्कदद् गा उत् प्रास्तौदुच्चं विद्रां
 अंगायत् ॥ ३ ॥

हंसैःऽव । सखिऽभिः । वावदत्ऽभिः । अश्मन्ऽमयानि । नहन्ता ।
 विऽव्यस्यन् ।

बृहस्पतिः । अभिऽकनिक्कदत् । गाः । उत् । प्र । अस्तौत् । उत् ।
 च । विद्रान् । अंगायत् ॥ ३ ॥

हंसकी समान भाषण करने वाले अपने मित्रोंसे ओले भरे
 हुए बंधक (मेघों) को खोलते हुए बृहस्पति बाणियोंका उच्चा-
 रण करते समय स्तुतिसी करते हैं और गति हुए विद्वान्से प्रतीत
 होते हैं ॥ ३ ॥

शवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहां तिष्ठन्तीरन्तस्य
 सेतौ ।

वृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्ता आकर्वि हि तिस्र
आवः ॥ ४ ॥

अवः । द्वाभ्याम् । पुरः । एकया । गाः । गुहा । तिष्ठन्तीः ।
अनृतस्प । सेता ।

वृहस्पतिः । तमसि । ज्योतिः । इच्छन् । उद् । उस्ताः । आ ।
अकः । वि । हि । तिस्रः । आवरित्यावः ॥ ४ ॥

अन्नको दो से फिर एकसे हृदयदेशमें स्थित बाणियोंको
मकट करते हैं, और वृहस्पतिदेव अन्धकारमें प्रकाशको चाहते
हुए तीन प्रकारके प्रकाशोंको करते हैं ॥ ४ ॥

विभिद्या पुरं शयथेमपांचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरं-
कृन्तत् ।

वृहस्पतिरुपसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयान्निव द्यौः
विभिद्यं । पुरम् । शयथां । ईम् । अपांचीम् । निः । त्रीणि ।
साकम् । उदधेः । अकृन्तत् ।

वृहस्पतिः । उपसम् । सूर्यम् । गाम् । अर्कम् । विवेद । स्तनयान्-
इव । द्यौः ॥ ५ ॥

आप पुरको विदीर्ण करके पश्चिममें शयन करते हैं और समुद्र
के चारों भागोंको नहीं काटते हैं—अर्थात् उनमें वर्षा करते हैं ।
वृहस्पति धूलोकको कड़काते हुएसे उपा सूर्य गाँ और मन्त्रको
माप्त होते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुष्टानां करेणैव विचकर्त्तारवेण ।

स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छामानोरोदयत् पणिमा गा
अमुष्णात् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । पलम् । रत्तितारम् । दुघानाम् । करेणऽश्न । वि । चर्त ।
रवेण ।

स्वेदाञ्जिऽभिः । आऽशिरम् । इच्छमानः । अरोदयत् । पणिम् ।
आ । गाः । अमुष्णात् ॥ ६ ॥

इन्द्रदेव कामदुघा धेनुओंके रक्तक मेघको बलपूर्वक विदीर्ण
कर डालते हैं, इन्होंने स्वेदाञ्जियोंसे दधिकी इच्छा करके पणि
नामके असुरको रुलाया, कि-जिसने गौएँ चुरा ली थीं ॥६॥
स ई सत्येभिः सखिभिः शुचन्निर्गोधांसं वि धन-
सैरददः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्धर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानद ७
सः । ईम् । सत्येभिः । सखिऽभिः । शुचत्ऽभिः । गोऽधायसम् ।
वि । धनऽसैः । अददरित्यददः ।

ब्रह्मणः । पतिः । वृषऽभिः । वराहैः । धर्मऽस्वेदेभिः । द्रविणम् ।
वि । आनद ॥ ७ ॥

वह इन्द्रदेव मित्ररूप यज्ञात्मक धनप्रद मेघों को तापदायक
यज्ञोंसे पृथ्वीको शुष्ट करने वाले मेघको विदीर्ण करते हैं, और
ब्रह्मणस्पति वर्षक धर्मस्वेद मेघोंके द्वारा धनमें व्याप्त होजाते हैं ७
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानासं इषण्यन्त धीभिः

वृहस्पतिर्मिथोऽनवद्यपेभिरुदुस्त्रियां असृजत स्वयुग्भिः
ते । सत्येनं । मनसा । गोऽपतिम् । गाः । इयानासः । इपण्यन्त ।
धीभिः ।

वृहस्पतिः । मिथःऽअनवद्यपेभिः । उत् । उस्त्रियाः । असृजत ।
स्वयुक्ऽभिः ॥ ८ ॥

वह मेघ सत्य मनसे गोपति—वृषभ और गौओं पर जानेकी
इच्छा करते हुए अपनी बुद्धियोंसे उनको प्राप्त होते हैं और वृह-
स्पति देव उन स्वयुक् अनवद्यप—प्रशस्त शब्दकी रक्षा करनेवाले
मेघोंके द्वारा गौओंमें मिलते हैं ॥ ८ ॥

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं
सधस्थे ।

वृहस्पतिं वृषणं शूरं सातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ६
तम् । वर्धयन्तः । मतिऽभिः । शिवाभिः । सिंहम्ऽइव । नानद-
तम् । सधऽस्थे ।

वृहस्पतिम् । वृषणम् । शूरंऽसातौ । भरेऽभरे । अनु । मदेम ।
जिष्णुम् ॥ ६ ॥

उन यज्ञमें (वा संग्राममें) सिंहकी समान बारम्बार गरजने
वाले वर्षक जयशील वृहस्पतिदेवको हम अपनी कन्याणमयी
बुद्धियोंसे बढ़ाते हुए प्रत्येक संग्रामके अवसर पर हर्षित करते हैं ६
यदा वाजमसंनद् विश्वरूपमाद्यामरुक्षदुत्तराणि सद्वा

बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो विभ्रतो
ज्योतिरासा ॥ १० ॥

यदा । वाजम् । असनत् । विश्वऽरूपम् । आ । घाम् । अरुचत् ।
उत्तराणि । सद्यः ।

बृहस्पतिम् । वृषणम् । वर्धयन्तः । नाना । सन्तः । विभ्रतः ।
ज्योतिः । आसा ॥ १० ॥

जब यह विश्वरूप-सब प्रकारके रूपों वाले गेहूँ जौ चावल
आदि-अन्नको देना चाहते हैं तब घुलोकरूपी भवन पर आरुढ़
होते हैं, उस समय अनेक होते हुए और ज्योतिको धारण करते
हुए बुद्धिसे वर्षक बृहस्पतिको बढ़ाते हैं ॥ १० ॥

सत्यामांशिपं कृणुता वयोधैः कीरिं चिच्छ्वेधस्वेभिर्सेः
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं
विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥

सत्याम् । आऽशिपम् । कृणुत । वयोऽधैः । कीरिम् । चिच्छ्वेधः ।
अवधः । स्वेभिः । एवः ।

पश्चा । मृधः । अप । भवन्तु । विश्वाः । तत् । रोदसी इति ।
शृणुतम् । विश्वमिन्वे इति विश्वम्ऽइन्वे ॥ ११ ॥

अन्नको पुष्ट करने वाले कारणोंसे आशीर्वादको सत्य करिये,
और अपने गमनोंसे इस स्तोताकी रक्षा करिये, जितने युद्ध हैं
सब पोढ़े होजावें, इस बातको हे व्यावापृथिवी ! आप अग्न्यर्चिके
प्रचण्ड होने पर सुनिये ॥ ११ ॥

इन्द्रो म॒ह्ना म॒हतो अ॒र्णव॒स्य वि॒मूर्धा॒नम॒भिन॒द॒र्बुद॒स्य ।
अ॒ह॒न्नहि॒मरि॒णात् स॒प्त सि॒न्धून् दे॒वैर्धा॒वापृ॒थि॒वी प्रां॒-
व॒तं नः ॥ १२ ॥

इन्द्रः । म॒ह्ना । म॒हतः । अ॒र्णव॒स्य । वि॒ । मूर्धा॒नम् । अ॒भिन॒त् ।
अ॒र्बुद॒स्य ।

अ॒ह॒न् । अ॒हिम् । अ॒रि॒णात् । स॒प्त । सि॒न्धून् । दे॒वैः । द्वा॒वापृ॒थि॒वी इति ।
प्र । अ॒व॒तम् । नः ॥ १२ ॥

इति अष्टमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव अपनी महती मदिमासे जल चाले मेघके मस्तकको
विदीर्ण कर डालते हैं, वह मेघ पर महार करके दमकती हुई
जलबिन्दुओंसे सात नदियोंको मवृच कर देते हैं । हे द्वावापृथिवी !
आप हमारी रक्षा करिये ॥ १२ ॥

अष्टम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (७०७)

अतिरात्रे मण्यमे पर्याये “अभि त्वा वृषभा सुते” [२०, २२]
“अभि प्र गोपति गिरा” [२०, ६२] एतौ स्तोत्रियाञ्चरूपौ
उपशंसनधर्मकौ भवतः । तद् उक्तं यैताने । “अभि त्वा वृषभा
सुतेभि प्र गोपति गिरेति स्तोत्रियाञ्चरूपौ” इति [वै० ४, २] ॥

तथा पृष्ठचपटहस्य पठेहनि प्रातःसवने “अभि प्र गोपति गिरा”
इत्येकविंशतिमृच आवपते । तद् उक्तं यैताने । “पठेभि प्र गोपति
गिरेत्येकविंशतिः” इति [वै० ६, २] ॥

तथा अभिजिति “अभि प्र गोपति गिरा” इत्याज्यस्तोत्रियो
भवति । तद् उक्तं यैताने । अभिजित्पभि प्र गोपति गिरेति च”
इति [वै० ८, २] ॥

तथा त्रिककुक्ष्यादे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा”
[२०. ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

अतिरात्रके मध्यमपर्यायमें “अभि त्वा वृषभा सुते” (२०।२२)
“अभि प्र गोपति गिरा” (२० । ६२) ये उक्त्यशंसनधर्मक
स्तोत्रिय और अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि—“अभि त्वा वृषभा सुतेभि प्र गोपति गिरेति स्तोत्रिया-
नुरूपौ” (वैतानसूत्र ४ । २) ॥

तथा पृष्ठथपटहके छठे दिन प्रातःसवनमें “अभि प्र गोपति गिरा”
इन इक्कीस ऋचाओंको पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि
“पष्ठेभि प्र गोपति गिरेत्येकविंशतिः” इति (वैतानसूत्र ६ । २)

तथा अभिजित्में “अभि प्र गोपति गिरा” यह आश्वस्तो-
त्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है कि—अभिजि-
त्यभि प्र गोपति गिरेति च” इति (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

अभि प्र गोपति गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य
सत्पतिम् ॥ १ ॥

अभि । प्र । गोपतिम् । गिरा । इन्द्रम् । अर्चः । यथा । विदे ॥

सूनुम् । सत्यस्य । सत्पतिम् ॥ १ ॥

हे स्तोतः ! गौओंके स्वामी इन्द्रको मैं जिस प्रकार प्राप्त कर
सकूँ अर्थात् वह जिस प्रकार वह हमको अपना समझने लगे
तिस प्रकार तू इन्द्रकी श्रेष्ठतासे पूजा कर । यह इन्द्रदेव सत्य
फल वाले यज्ञके पुत्रस्थानीय हैं, और सत्कर्म करने वाले अपने
सेवकोंका पालन करने वाले हैं ॥ १ ॥

आ हरयः ससृज्जिरेरुपीरधि वर्हिषि । यत्राभि संन-
वांगहे ॥ २ ॥

आ । हरयः । ससृजिरे । अरुषीः । अधि । बर्हिषि ॥ यत्र ।
अभि । समुऽनवामहे ॥ २ ॥

रूपवान् हरि नामक घोड़े फैली हुई उन कुशाओं पर इन्द्रके
रथको संयुक्त करें, जिन कुशाओं पर हम इन्द्रकी स्तुति कर रहे हैं २
इन्द्राय गावं आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधुं । यत् सी-
मुपहरे विदत् ॥ ३ ॥

इन्द्राय । गावं । आऽशिरम् । दुदुहे । वज्रिणे । मधुं ॥ यत् ।
सीम् । उपऽहरे । विदत् ॥ ३ ॥

वज्रयुक्त इन्द्रके लिये गौएँ मधुर दुग्धको दुहती हैं, उस समय
समीपमें वर्तमान मधुकी समान स्वादिष्ट सोमको इन्द्र सब ओर
से पाते हैं ॥ ३ ॥

उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।

मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥

उत् । यम् । ब्रध्नस्य । विष्टपम् । गृहम् । इन्द्रः । च । गन्वहि ।

मध्वः । पीत्वा । सचेवहि । त्रिः । सप्त । सख्युः । पदे ॥ ४ ॥

जो ब्रध्नका घर स्वर्ग है उसमें हम और इन्द्र जावें, हम इफीस
बार मधु पीकर इन्द्रके मित्र बनें ॥ ४ ॥

अर्चन्तु प्रार्चन्तु प्रियमेधासो अर्चन्तु ।

अर्चन्तु पुत्रका उत्तं पुरं न धृष्यवर्चन्तु ॥ ५ ॥

अर्चन्तु । प्र । अर्चन्तु । प्रियमेधासः । अर्चन्तु ।

अर्चन्तु । पुत्रकाः । उत्तं । पुरम् । न धृष्यन्तु । अर्चन्तु ॥ ५ ॥

हे मिय बुद्धि वालों ! आप इन्द्रका पूजन करिये, पूजन करिये
श्रेष्ठ रीतिसे पूजन करिये, हे पुत्रो ! तुम इन्द्रका पूजन करो
सामने खड़े हुएकी समान उनका अपने शत्रुओंको दबाने वाला
पूजन करो ॥ ५ ॥

अव स्वराति गर्गरो गोधा परिं सनिष्वणत् ।

पिङ्गा परिं चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोर्धतम् ॥ ६ ॥

अव । स्वराति । गर्गरः । गोधा । परिं । सनिस्वनत् ।

पिङ्गा । परिं । चनिष्कदत् । इन्द्राय । ब्रह्म । उत्प्यतम् ॥ ६ ॥

जब इन्द्रके लिये मन्त्र उद्यत होता है तब गर्गर-कलश-शब्द
करता है, धनुषकी मत्स्यश्वाकी समान शब्द करता है और
विशंग वर्ण वाला पदार्थ चलता है ॥ ६ ॥

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।

अपस्फुरं गृभायत् सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥

आ । यत् । पतन्ति । एन्यः । सुदुघाः । अनपस्फुरः ।

अपस्फुरम् । गृभायत् । सोमम् । इन्द्राय । पातवे ॥ ७ ॥

ये जो रवेत वर्णकी गाँई आरही हैं (इनमें) अनपस्फुर-अवि-
नाशी (नष्ट न होने देने वाला) पदार्थ है उस अविनाशी पदार्थ
को ग्रहण करो सोमको इन्द्रके पानके लिये ग्रहण करो ॥ ७ ॥

अपादिन्द्रो अपादिनिर्विश्वं देवा अमत्सत ।

वरुण इदिह क्षयत् तमापो अम्यनूयत वत्सं संशि-

खरीरिव ॥ ८ ॥

अपात् । इन्द्रः । अपात् । अग्निः । विश्वे । देवाः । अमत्सत ।
वरुणः । इत् । इह । जयत् । तम् । आपः । अभि । अनूपत ।
वत्सम् । संशिरवरीऽश्व ॥ ८ ॥

इसको इन्द्रदेवने पीलिया है, अग्निदेवने इसका पान कर लिया है, विश्वेदेवता इमसोपका पान करके पदमें भर गए हैं, हे जलों ! यदि वरुण यहाँ निवास करते हैं तो संशिरवरीके वत्सकी समान उनकी स्तुति करो ॥ ८ ॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुत्तरन्ति काकुदं सूर्यम् सुपिरामिव ॥ ९ ॥

सुदेवः । असि । वरुण । यस्य । ते । सप्त । सिन्धवः ।

अनुत्तरन्ति । काकुदम् । सूर्यम् । सुपिराम्श्व ॥ ९ ॥

हे वरुणदेव ! आप शोभन देवता हैं, क्योंकि—आपके पास अरवा, तितुवा, अभ्रवत्री, मेघपत्नी, वर्षयन्त्री और पुरस्तात् अरुन्धा नाम वाली सात अन्तरिक्ष नदियें (वा सात समुद्र) हैं । जैसे ऊँचे स्थानका जल नगरके जल निकलनेकी भूमिकी ओर दौड़ता है, इसी प्रकार वे नदियें जल बहाती हैं ॥ ९ ॥

यो व्यतीरफाणयत् सुयुक्ताँ उपं दाशुषं ।

तको नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

यः । व्यतीन् । अफाणयत् । सुयुक्तान् । उपं । दाशुषं ।

तवः । नेता । तत् । इत् । वपुः । उपमा । यः । अमुच्यत १०

जो हविदाता यजमानके लिये सुयुक्त व्यक्तियोंको फाणित करते हैं, तब हैं, नेता हैं, जो छूट गए हैं उनकी शरीर उपमा है अतीदुं शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।

भिनत् कनीनं ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥११॥

अति । इत् । ऊं । शत । शक्रः । ओहत । इन्द्रः । विश्वाः ।

अति । द्विषः ।

भिनत् । कनीनः । ओदनम् । पच्यमानम् । परः । गिरा ॥११॥

इन्द्रदेव इस बड़े भारी भारको सम्हालते हैं, इन्द्रदेव सपत्न शत्रुओंको दबा देते हैं, इन्होंने कनीन होने पर भी मन्त्रसे पकते हुए ओदनको भेद ढाला था ॥ ११ ॥

अर्भको न कुमारकोधिं तिष्ठन्नवं रथम् ।

स पत्न्यमहिपं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१२॥

अर्भकः । न । कुमारः । अधि । तिष्ठत् । नवम् । रथम् ।

सः । पत्न्यम् । महिपम् । मृगम् । पित्रे । मात्रे । विभुक्रतुम् १२

थेष्ट यालककी समान वह नवीन रथ पर सवार होते हैं और माता पिता (धावापृथिवी) के लिये विभुक्रतु महिप और मृग का पचन करते हैं ॥ १२ ॥

आ तू सुशिम दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।

अथ शुचं संचेवहि सहस्रपादमरुपं स्वस्तिगामनेहसम्

आ । तू । सुशिम । दम्पते । रथम् । तिष्ठ । हिरण्ययम् ।

अथ । सु॒क्तम् । स॒चे॒व॒हि । स॒ह॒स्र॒ज्पा॒दम् । अ॒रु॒पम् । स्व॒स्ति॒ऽ-
गा॒म् । अ॒ने॒ह॒सम् ॥ १३ ॥

हे सुन्दर ठोड़ी वाले दम्पते इन्द्र ! आप सुवर्णके रथ पर
अधिष्ठित हजिये और हम भी फिर सहस्रों मार्ग वाले, रूपवान्
स्वस्तिमय बाणियोंसे सम्पन्न निष्पाप स्वर्ग पर आरुढ़ होवें १३
तं घे॑मि॒त्था न॑म॒स्वि॒न॒ उप॑ स्व॒राज॑मासते ।

अ॒र्थं चि॒दस्य॑ सु॒धितं॑ यदे॒त॒व आ॒व॒र्तय॑न्ति दा॒वने॑ १४
तम् । घ॒ । ई॒म् । इ॒त्या । न॒म॒स्वि॒नः । उप॑ । स्व॒राज॑म् । आ॒स॒ते ।
अ॒र्थम् । चि॒त् । अ॒स्य॑ । सु॒धित॑म् । यत् । ए॒त॒वे । आ॒व॒र्तय॑न्ति ।
दा॒वने॑ ॥ १४ ॥

उनको इस प्रकार जान कर प्रणाम करने वाले पुरुष स्वराज
पर बैठते हैं, और इनके पास जो घन भली प्रकार स्थित है उस
को अतिवज्र हविर्दाता यजमानके लिये लाते हैं ॥ १४ ॥

अ॒नु॒ प्र॒त्न॒स्यौ॒कंसः॑ प्रि॒यमे॑धास ए॒षाम् ।
पू॒र्वाम॑नु प्र॒यति॑ वृ॒क्तव॑र्हि॒षो हि॒तप्र॑यस आ॒शत॑ १५
अ॒नु । प्र॒त्न॒स्य॑ । ओ॒कंसः॑ । प्रि॒यमे॑धासः । ए॒षाम् ।
पू॒र्वाम् । अ॒नु । प्र॒यति॑म् । वृ॒क्तव॑र्हि॒षः । हि॒तप्र॑यसः । आ॒शत॑

इनके प्राचीन भवनके प्रियबुद्धि अतिवज्र हितकारक अन्न
वाले होकर पूर्वा प्रयतिका उपभोग लगाते हैं ॥ १५ ॥

यो राजां चर्षणीनां याता रथेभिरधिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे १६

यः । राजां । चर्षणीनाम् । याता । रथेभिः । अधिगुः ।

विश्वासाम् । तरुता । पृतनानाम् । ज्येष्ठः । यः । वृत्रहा । गृणे

जो मनुष्योंके राजा इन्द्रदेव रथसे चलते हैं । सम्पूर्ण सेनाओं

को तरने वाले हैं और ज्येष्ठ हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ १६

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नावसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः

इन्द्रम् । तम् । शुम्भ । पुरुहन्मन् । अवसे । यस्य । द्विता । वि-

धर्तरि ।

हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः

हैं पुरुहन्मन् ! इस विशेषरूपसे धारक यज्ञमें आप अन्नके

लिये इन्द्रको अर्लंकन करिये, उनकी सत्ता मध्यमलोक अन्तरिक्ष

और स्थान (स्वर्ग) में भी है । उन दर्शनीयका क्रीड़ाके लिये

हाथमें उठाया हुआ वज्र पूजनीय सूर्यसा दीखता है ॥ १७ ॥

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृषम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमष्टं धृष्यवो जसम् १८

नकिः । तम् । कर्मणा । नशत् । यः । चकार । सदावृषम् ।

इन्द्रम् । न । यज्ञैः । विश्वगूर्तम् । अृभ्वसम् । अष्टम् । धृष्यवो-
जसम् ॥ १८ ॥

जो पुरुष यज्ञोंके द्वारा, सब कार्योंमें प्रचण्ड बली, सदा वृद्धि करने वाले, अश्वत्थ, अष्टाष्ट और घर्षक तेज वाले इन्द्रकी सेवा करता है, कोई पुरुष उसको अपने कर्मसे नष्ट नहीं कर सकता १८

अषान्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्धावः क्षामो अनोनवुः
अषान्हम् । उग्रम् । पृतनासु । सासहिम् । यस्मिन् । महीः । रुज्रयः
सम् । धेनवः । जायमाने । अनोनवुः । धावः । क्षामः । अनोनवुः

जो इन्द्रदेव सेनाओंमें असश्र हैं, और प्रचण्ड हैं, जिनमें विशाल शरण मार्ग हैं, जिनके प्रकट होने पर वाणियों मली प्रकार स्तुति करती हैं, धुलोक और पृथिवीलोक स्तुति करते हैं (जन् इन्द्रकी तुम स्तुति करो) ॥ १६ ॥

यद् द्यावं इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी
यद् । द्यावः । इन्द्र । ते । शतम् । शतम् । भूमीः । उत । स्यु-
रिति स्युः ।

न । त्वा । वज्रिन् । सहस्रम् । सूर्याः । अनु । न । जातम् । अष्ट ।
रोदसी इति ॥ २० ॥

हे मणवन् ! इन्द्र ! यदि सैकड़ों धुलोक और सैकड़ों भूलोक हों वा सहस्रों सूर्य और द्यावापृथिवी होजावें तथापि आप प्रादुर्भूत हुए मात्रको भी वह नहीं पहुँच सकते ॥ २० ॥

आ पंप्राथमहिना वृषण्यां वृषन् विश्वां शविष्ठ शवसा

अस्माँ अव मघवन् गोमंति व्रजे वज्रिं चित्राभिरु-
तिभिः ॥ २१ ॥

आ । प॒माय । म॒हिना । वृ॒ष्ण्या । वृ॒षन् । वि॒स्वा । श॒विष्ठ ।
शव॒सा ।

अ॒स्मान् । अ॒व । म॒घऽवन् । गो॒ऽमंति । व्र॒जे । व॒ज्रिन् । चि॒त्राभिः ।
ऊ॒तिऽभिः ॥ २१ ॥

इति अष्टमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे वज्रिन् शविष्ठ मघवन् वर्षक इन्द्र ! हमारे गौओं वाले व्रज
में अपना विचित्र रक्तक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करिये और
अपनी महिमासे हमको बलपूर्वक बढ़ाइये ॥ २१ ॥

अष्टम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (७०८)

दशरात्रे दशमेदनि “उत् त्वा मन्दन्तु” इति आज्यस्तोत्रिषो
भवति । तद् उक्तं वैताने । “उत् त्वा मन्दत्विज्याज्यस्तोत्रियः”
इति [वै० ६. ३] ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकादेषु “सुरूपकन्तुमृतये” [२०.
५७] “उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः” [२०. ६३] “त्वामिद्धि हवामहे” [२०. ६८] इत्याद्यावाज्यस्तोत्रियां विकल्पितौ भवतः ।
तृतीयः पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “श्येनसंदंशा-
जिरवज्रेषु सुरूपकन्तुमृतय उत् त्वा मन्दन्तुस्तोमास्त्वामिद्धि
हवामहे इति” इति [वै० ८. १] ॥

महाव्रते मातःसवने “ईद्वयन्तीरपस्युवः” [२०. ६३. ४]
इति पञ्चमं सूक्तम् आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने ।
“ईद्वयन्तीरपस्युव इत्यावपर्ग” इति [वै० ६. ४] ॥

दशरात्रके दशम दिनमें “उत् त्वा मन्दन्तु” यह आज्यस्तोत्रिय होता है। इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“उत् त्वा मन्दन्तिवत्याज्यस्तोत्रियः” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्र एकादशमें “सुरूपकृत्नुमृतये” (२० । ५७) “उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः” (२० । ६३ ।) “त्वामिद्धि हवामहे” (२० । ६८) ये विकल्पित आज्यस्तोत्रिय होते हैं। तृतीय पृष्ठस्तोत्रिय होता है, इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमृतये उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वमिद्धि हवामहे” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

महाव्रतके प्रातःसवनमें “ईक्ष्वन्तीरपस्युवः” (२० । ६३ । ४) इस पञ्चम सूक्तको आवापस्थानमें पढ़ा जाता है। इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“ईक्ष्वन्तीरपस्युव इत्यावपते” (वैतानसूत्र ६ । ४) ॥

उत् त्वां मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अवं ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

उत् । त्वा । मन्दन्तु । स्तोमाः । कृणुष्व । राधः । अद्रिवः ॥

अव । ब्रह्मद्विषः । जहि ॥ १ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! यह स्तोत्र आपको आनन्द देवें, आप हमें धन प्रदान करिये और ब्रह्मद्विषोंका संहार करिये ॥१॥

पदा पणिराधसो नि बाधस्व मुहौ असि । नहित्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

पदा । पणीन् । अराधसः । नि । बाधस्व । मुहान् । असि ॥

नहि । त्वा । का । चन । प्रति ॥ २ ॥

आप पणि नामक असुरोंको निर्धन करके उनका संहार करिये,
क्योंकि—आप महान् हैं, आपसे टक्कर लेने वाला कोई नहीं है २
त्वमींशिपे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा
जनानाम् ॥ ३ ॥

त्वम् । ईंशिपे । सुतानाम् । इन्द्र । त्वम् । असुतानाम् ॥ त्वम् ।

राजा । जनानाम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभिषुत और अनभिषुत (निचोड़े और
न निचोड़े हुए) सोमोंके ईश्वर हैं और जनोंके ईश्वर हैं ॥३॥
ईक्ष्वयन्तीपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सु-
वीर्यम् ॥ ४ ॥

ईक्ष्वयन्तीः । अपस्युवः । इन्द्रम् । जातम् । उप । आसते ॥ भेजा-
नासः । सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

सुन्दर शक्तिका सेवन करती हुई जल चाहती हुई सोमात्मक
आपधियें मकट होते ही इन्द्रकी वपासना करने लगती हैं ॥४॥
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन्
वृषदंसि ॥ ५ ॥

त्वम् । इन्द्र । बलात् । अधि । सहसः । जातः । ओजसः ॥

त्वम् । वृषन् । वृषा । इत् । असि ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! धर्षक ओजके बलसे मकट हुए हैं, हे वृषन् !
आप फलोंकी वर्षा करने वाले ही हैं ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यं॑न्तरिक्षमतिरः । उद् घामे॑स्तभ्ना
ओज॑सा ॥ ६ ॥

त्वम् । इन्द्र । असि । वृत्रहा । वि । अन्तरिक्षम् । अतिरः ॥

उत् । घाम् । अस्तभ्नाः । ओजसा ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वृत्र (असुर वा मेघ) का संहार करने वाले हैं और आप अन्तरिक्षको विशिष्टतासे पार कर जाते हैं और आप अपने ओजसे धूलोकको स्तम्भित कर डालते हैं ॥ ६ ॥

त्वमिन्द्र सजोप॑समर्कं वि॒भर्षि॑ वा॒होः । वज्रं॑ शिशा॑न
ओज॑सा ॥ ७ ॥

त्वम् । इन्द्र । सजोपसम् । अर्कम् । विभर्षि । वाहोः ॥ वज्रम् ।

शिशानः । ओजसा ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप भीति उत्पन्न करने वाले मन्त्रको धारण करके अपनी भुजाओंके बलसे वज्रको तीक्ष्ण करके धारण करते हैं ॥ ७ ॥

त्वमिन्द्राभिभू॑रसि विश्वा॑ जा॒तान्यो॑जसा । स विश्वा॑
भुव॑ आ॒भवः॑ ॥ ८ ॥

त्वम् । इन्द्र । अभिभूः । असि । विश्वा । जातानि । ओजसा ॥

सः । विश्वाः । भुवः । अभवः ॥ ८ ॥

इति अष्टमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जितने मकड़ होने वाले पदार्थ हैं उनको आप अपने बलसे दबा सकते हैं, वह आप (हमारे विरुद्ध) मकड़ होने वाली सब शक्तियोंका पराभव करिये ॥ ८ ॥

अष्टम अनुशास्त्रमें तृतीय सूक्त समाप्त (७०६)

तृतीये छन्दोमेदनि “आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय” इत्यस्य “अथर्वबोऽरुणम्” [२०. ८७] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तृतीय छन्दोम दिनमें “आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय” इसका “अथर्वबोऽरुणम्” (२०।८७) के साथ विनियोग कह दिया है

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तु-
विष्मान् ।

प्रत्वच्चाणो अति विश्वा सहोऽस्यपारेण महता वृष्ययेन
आ । यातु । इन्द्रः । स्वपतिः । मदाय । यः । धर्मणा । तूतुजानः ॥

तुविष्मान् ।

प्रत्वच्चाणः । अति । विश्वा । सहोऽसि । अपारेण । महता ।
वृष्ययेन ॥ १ ॥

बलवान् इन्द्र कि-जो धर्मसे शीघ्रता करते हैं, वह धनपति इन्द्र मदके लिये आवें, और अपने अपार महान् वर्षक बलसे सब दवाने वालोंको क्षीण करें ॥ १ ॥

सुश्रमा रथः सुयमा हरीं ते मिम्यक्षु वज्रो नृपते गभस्तौ
शीमे राजन् सुयथा यां ह्यर्वाङ् वधीम ते पुपुशौ
वृष्ययानि ॥ २ ॥

सु॒स्थामा॑ । रयः॑ । सु॒ज्यमा॑ । हरी॒ इति॑ । ते । मि॒म्यत्त॑ । वज्रः॑ ।

नृ॒ज्यते॑ । ग॒भस्तौ॑ ।

शी॒भम् । रा॒जन् । सु॒ज्यया॑ । आ । या॒हि । अ॒र्वाङ् । वर्धाम॑ ।

ते । प॒पुपः॑ । वृ॒थ्यानि॑ ॥ २ ॥

आपके रथमें बैठनेका स्थान अच्छा है, आपके घोड़े भली प्रकार वशमें रहने वाले हैं । हे नृपते ! आपके हाथमें वज्र प्राप्त होता है हे राजन् ! आप स्वर्गसे नीचेको सुन्दर मार्गसे आइये हम आप पान करनेकी इच्छा वालेके अभिवर्षक बलोंको बढ़ातेहैं २

ए॒न्द्रवा॑हो॒ नृ॒पतिं॑ वज्रं॒वाहु॑मु॒ग्रमु॒ग्रासं॑स्त॒विपासं॑ ए॒नम् प्र॒त्नं॒क्षसं॑ वृ॒षभं॑ स॒त्यशु॑ष्ममे॒मस्म॒त्रा स॑ध॒मादो॑ वह॒न्तु ३

आ । इ॒न्द्र॒ज्वाहः॑ । नृ॒ज्यति॑म् । वज्रं॒ज्वाहु॑म् । उ॒ग्रम् । उ॒ग्रासः॑ ।

त॒वि॒पासः॑ । ए॒नम् ।

म॒ज्ज॒वत्क्ष॑सम् । वृ॒षभम् । स॒त्यशु॑ष्मम् । आ । ई॒म् । अ॒स्मज्जा॑ ।

स॒य॒ज्मादः॑ । व॒ह॒न्तु ॥ ३ ॥

इन्द्रको सवारी देनेवाले उग्र बलवान् घोड़े इन नृपति, भुजाओं में वज्रको धारण करने वाले, उग्र शत्रुओंको क्षीण करने वाले, फलवर्षक, सत्यबली इन्द्रको इस पहमें लावें ॥ ३ ॥

ए॒वा प॑तिं द्रो॒णसा॑चं स॒च॑त॒समूर्जं॑ स्कु॒म्भं ध॒रुण॑ आ वृ॒षाय॑से ।

(४५४) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ओजः कृण्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपाना-
मिनो वृधे ॥ ४ ॥

एव । पतिम् । द्रोणऽसाचम् । सऽचेतसम् । ऊर्जः । स्कम्भम् ।
वृधणे । आ । वृषऽप्यसे ।

ओजः । कृण्व । सम् । गृभाय । त्वे इति । अपि । असः । यथा ।
केऽनिपानाम् । इनः । वृधे ॥ ४ ॥

(हे अश्वत्विज !) द्रोण नामक पात्रसे संयुक्त होने वाले, शान-
वान, बली, स्कम्भ इन्द्रको आप जलमें धरसाइये, आप बल प्रदान
करिये, मुक्तको भली प्रकार ग्रहण करिये, मैं केनिपानोंकी वृद्धि
के लिये आपमें होऊँ ॥ ४ ॥

गमन्नस्मे वसून्त्या हि शंसिपं स्वाशिपं भरमा याहि
सोमिनः ।

त्वमीशिपे सोस्मिन्ना संत्सि वर्हिष्यनावृष्या तव
पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥

गमन् । अस्मे इति । वसूनि । आ । हि । शंसिपम् । सुऽआशि-
पम् । भरम् । आ । याहि । सोमिनः ।

त्वम् । ईशिपे । सः । अस्मिन् । आ । संत्सि । वर्हिषि । अनावृष्या ।
तव । पात्राणि । धर्मणा ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस यजमानमें घनको प्राप्त कराइये, इस मन्त्र-
पाठ करने वालेको सुन्दर आर्गावार्द सम्पन्न करिये और इस
सोम वाले यजमानके घरमें आइये, आप ईश्वर हैं अतः इस
कुशासन पर बैठिये, धारण शक्तिके कारण आपके पात्र अष्टपुष्प हैं ५

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोक्तं एव त श्रवस्यानि दुष्टरां ।
न ये शैकुर्यज्ञियां नावमारुहं भीर्मव ते न्यविशन्त केपयः ।
पृथक् । प्र । आपन् । प्रथमाः । देवहूतयः । अकृण्वन् । श्रवस्यानि ।

दुष्टरा ।

न । ये । शैकुरः । यज्ञियाम् । नावम् । आरुहम् । भीर्मा । एव ।
ते । नि । अविशन्त । केपयः ॥ ६ ॥

जो विद्या और कर्मके अनुरूप पृथक् २ देवयान वा पितृ-
यानसे भयाण करना चाहते हैं और जो सर्व साधारणसे कठि-
नतासे करने योग्य देवहूति यशोंको करते हैं किन्तु आपकी
कृपादृष्टि न होने पर वे यज्ञरूपी नौका पर नहीं चढ़ सकते और
यज्ञरूपी नौका पर न चढ़नेके कारण वे कष्टपूर्ण कर्मको ही करते
हैं अतः कर्मानुसार इसी लोककी किसी योनिमें पड़े रहते हैं ६
एवैवापागपरे सन्तु दुद्वयोश्वा येषां दुर्युजं आयुयुञ्जे ।
इत्या ये प्रागुपरे सन्ति दावनें पुरुषि यत्र वयुनानि
भोजेना ॥ ७ ॥

एव । एव । अपाक् । अपरे । सन्तु । दुःऽय्यः । अश्वाः । येषाम् ।
दुःऽयुजः । आयुयुञ्जे ।

इत्या । ये । माक् । उपरे । सन्ति । दावने । पुरुणि । यत्र ।

वयुनानि । भोजना ॥ ७ ॥

दूसरे दुःध्य अश्व अपाक रहें, किं-जिनको दुर्युज संपुक्त करते हैं, और जो दाताके लिये जिनमें बहुतसे श्रेष्ठ भोजन भरे हुए हैं वे मेघ हों ॥ ७ ॥

गिरिरज्जान् रेजमानाँ आधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि
कोपयत् ।

समीचीने धिपणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मदं
उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥

गिरीन् । अज्जान् । रेजमानान् । आधारयत् । द्यौः । क्रन्दत् ।

अन्तरिक्षाणि । कोपयत् ।

समीचीने इति समूर्द्धचीने । धिपणे इति । वि । ष्कभायति ।

वृष्णः । पीत्वा । मदं । उक्थानि । शंसति ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव इस वर्षक सोमके रसको पीकर मद होने पर श्रेष्ठ २ पर्वतोंको धारण करते हैं, धूलोकको क्रन्दित करते हैं, अन्तरिक्ष के पदार्थोंको कुपित करते हैं, समीचीन द्यावापृथिवीको, विष्कभित करते हैं, और उक्थोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ८ ॥

इमं विभर्मि सुकृतं ते अद्भुशं येनारुजासि मधवन्ध्रारुजः
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्थं सुत इष्टौ मधवन् बोध्या-
भगे ॥ ९ ॥

इमम् । विभर्मि । सुकृत्वम् । ते अहुशम् । येन । आश्रुनासि ।

मयऽवन् । शफऽआरुजः ।

अस्मिन् । सु । ते । सवने । अस्तु । ओज्यम् । सुते । इष्टो ।

मयऽवन् । बोधि । आऽभगः ॥ ६ ॥

हे मयवन् ! मैं आपके इस सुकृत अंकुशको धारण कर रहा हूँ, जिससे आप नाखूनोंसे (वा सुरोंसे) पीड़ा देनेवाले प्राणियों का नाश करते हैं, इस सवनमें आपका ओज्य होवे, और सोम का अभिषव होने पर आप धनको समझें ॥ ६ ॥

गोभिर्ग्रेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेन जयेम
गोभिः । तरेम । अपतिम् । दुःऽएवाम् । यवेन । क्षुधम् । पुरुहूत ।

विश्वाम् ।

वयम् । राजभिः । प्रथमाः । धनानि । अस्माकेन । वृजनेन । जयेम

हे अनेक यजमानोंसे आह्वान किये हुए इन्द्र ! हम आपसे अनुग्रह पाते हुए यजमान, आपकी दी हुई गोओंसे दुर्गति—
दरिद्रताके पार पहुँच जावें और आपके दिये हुए यव व्रीहि
आदिसे पुत्र भृत्य आदि सबकी लुधाको दूर करें, और आपके
अनुग्रहसे अपने समान पुरुषोंमें मुख्य बने हुए हम वज्रसे धन प्राप्त
करें और अपने बलसे शत्रुओंको जीतें ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु

(४५८) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत्त । उत्तरस्मात् । अघ-
रात् । अघऽघोः ।

इन्द्रः । पुरस्तात् । उत्त । मध्यतः । नः । सखा । सखिऽभ्यः ।

वरिवः । कृणोतु ॥ ११ ॥

इति अष्टमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

बृहस्पति देवता पश्चिमदिशाकी ओरसे आते हुए हिंसक पुरुष
से हमारी भली भाँति रक्षा करें, उत्तर दिशासे तथा दक्षिण
दिशासे आते हुए हिंसक पुरुषसे भी हमारी रक्षा करें, इन्द्र-
देवता पूर्वदिशासे और मध्य दिशासे हमको भली भाँति बचावें,
इस प्रकार रक्षा करके मित्र बने हुए इन्द्र मित्र बने हुए हमको
धन प्रदान करें ॥ ११ ॥

अष्टम अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त (७१०)

महाव्रते “त्रिकटुकेषु महिषः” [२०. ६५. १] “प्रो प्वस्मै
पुरोरयम्” [२०. ६५. २] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपी भवतः ।
तद् उक्तं वैताने । त्रिकटुकेषु महिषः प्रो प्वस्मै पुरोरयमिति स्तो-
त्रियानुरूपी” इति [वै० ६. ४] ॥

महाव्रतमें “त्रिकटुकेषु महिषः” (२० । ६५ । १) “प्रो प्व-
स्मै पुरोरयम्” (२० । ६५ । २) करते हैं ॥ ८ ॥
हैं । इसी बातको वैतानमूत्रमें
प्रो प्वस्मै पुरो रयमिति स्तो

त्रिकटुकेषु महिषो यत्त्वोक्तं सुत इष्टो मन्वन्वोद्या-
पिवद् विष्णुना सु

स ई ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्वद्
देवो देवं सत्यमिन्द्र सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

त्रिऽकटुकेषु । महिपः । यवऽआशिरम् । तुविऽशुष्मः । वृषत् ।

सोमम् । अपिबत् । विष्णुना । सुतम् । यथा । अवशत् ।

सः । ईम् । ममाद । महि । कर्म । कर्तवे । महाम् । उरुम् । सः ।

एनम् । सश्वत् । देवः । देवम् । सत्यम् । इन्द्रम् । सत्यः । इन्दुः ।

परमवली राजा इन्द्र त्रिकटु रु सोमयागोंमें जौ मिले हुए पदार्थ से वृष होते हैं, सोमका पान करते हैं, विष्णुके निचोड़े हुए सोमको वशमें करते हैं, वह सोम विशाल कर्म करनेके लिये इन इन्द्रको मदमें भर देता है, यह सत्य सोम देव इन विशाल सत्य-देव इन्द्रसे संयुक्त होना है ॥ १ ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूपमर्चत ।

अभीके चिदु लोककृत् मंङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं वोधि
चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधिधन्वसु २

प्रो इति । सु । अस्मै । पुरऽरथम् । इन्द्राय । शूपम् । अर्चत ।

आभीके पुत्र भृत्य आदि सर... ति । लोकऽकृत् । सम्जो । समत्सु ।

अनुग्रहसे अपने समान पुरुषोंमें वृद्धि । चोदिता । नभन्ताम् । अन्यके-
करे और अपने बलसे शत्रुओंको नन्वऽसु ॥ २ ॥

वृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोऽसौ, रथके आगे रहने वाले इन
इन्द्रः पुरस्तादुत मन्वतो नः सखा । में लोककर्ता है, संग्राममें आव-

रक शत्रुओंका नाश करने वाले हैं, यह मेरक देव हमारे स्तोत्रों को जान गए हैं, दूसरे पुरुषों की मृत्युआएँ धनुष पर न चढ़ सकें २ त्वं सिन्धूर्वासृजोधराचो अहन्नहिम् ।

अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि
ज्वामहे नभं० ॥ ३ ॥

त्वम् । सिन्धून् । अवं । असृजः । अधराचः । । अहन् । अहिम् ।
शत्रुः । इन्द्र । जज्ञिषे । विश्वम् । पुष्यसि । वार्यम् । तम् । त्वा ।
परि । स्वजामहे । ० ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने नदियोंको दक्षिणकी ओर जाने वाली करके रचा है, और आपने मेघ वा वृत्रासुरका संहार किया है, हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुसहित होते हुए मकट होते हैं, सब वरण करने योग्य पदार्थोंको पुष्ट करते हैं ऐसे आपका हम आलिंगन करते हैं दूसरोंकी मृत्युआएँ धनुषों पर न चढ़ सकें ॥ ३ ॥

वि पु विश्वा अरातयो यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते
रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेपां ज्याका अधि धन्वसु
वि । सु । विश्वाः । अरातयः । अर्यः । नशन्तः । नः । धियः ।
अस्ता । असि । शत्रवे । वधम् । यः । नः । इन्द्र । जिघांसति ।
या । ते । रातिः । ददिः । वसु । नभन्ताम् । अन्यकेपाम् ।
ज्याकाः । अधि । धन्वसु ॥ ४ ॥

इति अष्टमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे स्वामी हैं, अतः हमारे जो सम्पूर्ण शत्रु हैं, उनकी बुद्धियें नष्ट होजावें, हे इन्द्र ! जो शत्रु हमको मारना चाहता है आप उस शत्रु पर मृत्युके साधन वज्रको फेंकिये आपका जो धन है उस धनको हमें प्रदान करिये, आपके अनुग्रहसे शत्रुओंकी मृत्युआएँ धनुष पर न चढ़ सकें ॥ ४ ॥

अष्टम अनुवाकम् पञ्चम सूक्त समाप्त (७११)

महाव्रते माध्यन्दिने सवने “तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि” इत्येताश्चतुर्विंशतिम् ऋचः आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहीति चतुर्विंशतिम् आवपते” इति [वै० ६. ४] ॥

महाव्रतके माध्यन्दिनसवनमें “तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि” इन चौबीस ऋचाओंको आवापस्थानमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहीति चतुर्विंशतिम् आवपते” (वैतानसूत्र ६ । ४) ॥

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यं-
मिमे सुतासः ॥ १ ॥

तीव्रस्य । अभिवयसः । अस्य । पाहि । सर्वरथा । वि ।
हरी इति । इह । मुञ्च ।

इन्द्र । मा । त्वा । यजमानासः । अन्ये । नि । रीरमन् । तुभ्यम् ।
इमे । सुतासः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस तीव्र हविरूप अन्नके अभिमुख रहने वाले यजमानके सब रथियोंकी रक्षा करिये और इस यज्ञमें

अपने घोड़ोंको छोड़िये, हे इन्द्र ! दूसरे यजमान आपको अधिक
रमण न करा सकें, क्योंकि-आपके लिये इन सोमोंका अभिषव
होचुका है ॥ १ ॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यंमु सोत्वांसस्त्वां गिरः श्वाज्या आ
ह्वयन्ति ।

इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि
सोमम् ॥ २ ॥

तुभ्यम् । सुताः । तुभ्यम् । ऊँ इति । सोत्वासः । त्वाम् । गिरः॥
श्वाज्याः । आ । ह्वयन्ति ।

इन्द्र । इदम् । अद्य । सवनम् । जुषाणः । विश्वस्य । विद्वान् ।
इह । पाहि । सोमम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ये सोम आपके लिये निचोड़े गए हैं, आपके लिये
ही सोत्वास (निचोड़े गए) हैं, ये वालियें शीघ्रता करती हुई
आपका ही आह्वान कर रही हैं, हे इन्द्र ! आप सबको जानने
वाले हैं अतः आज इस सवनका सेवन करके इस सोमका
पान करिये ॥ २ ॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति
न गा इन्द्रस्तस्य परां ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै
कृणोति ॥ ३ ॥

यः । उशता । मनसा । सोमम् । अस्मै । सर्वहृदा । देवकामः ।
सुनोति ।

न । गाः । इन्द्रः । तस्य । परा । ददाति । मऽशस्तम् । इत् ।

चारुम् । अस्मै । कृणोति ॥ ३ ॥

देवताओंकी कामना वाला जो पुरुष कामना करते हुए पूर्ण मनसे इन इन्द्रदेवके लिये सोमका अभिषव करता है, इन्द्रदेव उसकी स्तुतियोंको नहीं लौटाते—ग्रहण कर लेते हैं—और इसके लिये सुन्दर और श्रेष्ठ बातको करते हैं ॥ ३ ॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति
सोमम् ।

निरत्नौ मयवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः

अनुस्पष्टः । भवति । एषः । अस्य । यः । अस्मै । रेवान् । न ।

सुनोति । । सोमम् ।

निः । अरत्नौ । मयवा । तम् । दधाति । ब्रह्मद्विषः । हन्ति ।

अननुदिष्टः ॥ ४ ॥

जो धनवान् पुरुष इन इन्द्रदेवके लिये सोमका अभिषव नहीं करता है वह इन इन्द्रदेवसे अनुस्पष्ट होता है, इन्द्रदेव उसको अपने मुक्केमें धरते हैं और इन्द्रके निमित्त हवि न देनेसे वह उन ब्रह्म-देवियोंको मार डालते हैं ॥ ४ ॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा
उ ।

आभूयन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम

अ॒श्व॒स्यन्तः । ग॒व्यन्तः । वा॒ज॒यन्तः । इ॒वा॒महे । त्वा । स॒व॒ग्नान्त॒वौ ।
ऊँ इति ।

आ॒श्व॒भू॒यन्तः । ते । सु॒ऽम॒नौ । न॒वा॒याम् । न॒य॒म् । इन्द्र । त्वा ।
शुन॒म् । हु॒वे॒म् ॥ ५ ॥

चोड़े गो और अन्नको चाहते हुए हम आपकी शरण लेनेके
लिये आपका आह्वान करते हैं, हम आपकी नवीन सुमतिमें
विभूषित होने हुए आप सुखरूपका आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

मु॒ञ्चामि॑ त्वा ह॒विषा॑ जी॒व॒नाय॑ कर्म॒ज्ञात॑य॒क्ष्मादु॑त
रा॒ज॒य॒क्ष्मात् ।

ग्राहि॑र्ज॒ग्राह॑ यद्ये॒तदे॒नं तस्या॑ इन्द्रा॒ग्नी प्र सु॑मु॒क्तमे॒नम्
मु॒ञ्चामि॑ । त्वा । ह॒विषा॑ । जी॒व॒नाय॑ । क॒म् । अ॒ज्ञात॑य॒क्ष्मात् ।
उ॒त । रा॒ज॒य॒क्ष्मात् ।

ग्राहिः । ज॒ग्राह॑ । यदि॑ । ए॒नम् । ए॒नम् । तस्याः॑ । इन्द्रा॒ग्नी इति॑ ।
प्र । सु॒मु॒क्तम् । ए॒नम् ॥ ६ ॥

हे रोगिन् ! मैं तुम्हको जीवन रहनेके लिये हविके द्वारा
अज्ञानयक्ष्मा और राजयक्ष्मा रोगसे छुड़ाता हूँ, यदि ग्राहिका
पिशाचीने इसको पकड़ लिया हो तो हे इन्द्र और अग्निदेवताओं !
तुम इस रोगीको उमके पाससे मुक्त करो ॥ ६ ॥

यदि॑ चि॒तायु॑र्यदि॑ वा॒ परे॑तो यदि॑ मृ॒त्योर्ऽन्तिकं॑ नी॒त
ए॒व ।

तमा ह॑रामि नि॒ऋते॑रुप॒स्थाद॑स्पा॒र्शमे॑नं श॒तशा॑रदाय ७

यदि॑ । जित॑ऽआयुः । यदि॑ । वा । परा॑ऽइतः । यदि॑ । मृत्योः ।

अ॒न्तिक॑म् । नि॒ऽइतः॑ । ए॒व ।

तम् । आ । ह॒रामि॑ । निःऽऋ॑तेः । उ॒प॒ऽस्थात् । अ॒स्पा॒र्शम् ।

ए॒नम् । श॒त॒ऽशा॒रदा॑य ॥ ७ ॥

यदि इसकी आयु क्षीण होगई है, यह बड़ा ही गया बीता हुआ होगया है, वा मृत्युके पास ही पहुँच चुका है, तब भी मैं इसको निश्च॒ति राज्ञसीकी गोदपेसे खेचता हूँ, मैंने सौ वर्षकी आयु तक जीवित रहनेके लिये इसका स्पर्श कर लिया है ॥७॥

स॒ह॒स्रा॒क्षेण॑ श॒तवी॑र्येण श॒तायु॑षा ह॒विषा॑हार्प॒मेनम् ।

इन्द्रो॑ यथे॒नं श॒रदो॑ न॒यात्य॑ति॒ विश्व॑स्य दुरि॒तस्य॑

पा॒रम् ॥ ८ ॥

स॒ह॒स्र॒ऽअ॒क्षेण॑ । श॒त॒ऽवी॑र्येण । श॒त॒ऽआ॑युषा । ह॒विषा॑ । आ ।

अ॒हार्प॑म् । ए॒नम् ।

इन्द्रः॑ । यथा॑ । ए॒नम् । श॒रदः॑ । न॒याति॑ । अति॑ । विश्व॑स्य ।

दुः॒ऽइत॑स्य । पा॒रम् ॥ ८ ॥

सैंकड़ों मकारके वीर्य और सहस्रों मकारकी सूक्ष्मदृष्टि और सौ वर्षकी आयु (मदान करने) वाली हविसे मैं इस रोगीको मृत्युसे हर लाया हूँ, इन्द्रदेव इसको वषों तक सब पापोंके पार पहुँचावे ॥ ८ ॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्वृतमु वस-
न्तान् ।

शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हवि-
पाहार्पमेनम् ॥ ९ ॥

शतम् । जीव । शरदः । वर्धमानः । शतम् । हेमन्तान् । शतम् ।
ऊं इति । वसन्तान् ।

शतम् । ते । इन्द्रः । अग्निः । सविता । बृहस्पतिः । शतऽआयुषा ।
हविषा । आ । महार्पम् । एनम् ॥ ९ ॥

हे रोगिन् ! तू सौ वर्ष तक जीवित रह, सौ वर्ष तक बढ़ता
रह, सौ हेमन्त और वसन्त ऋतुओं तक रह, इन्द्र अग्नि सविता
और बृहस्पति देवता तुझको सौ वर्षकी आयु मंदान करें, मैं
सौ वर्षकी आयु देने वाली हविसे इसको ले आया हूँ ॥ ९ ॥

आहार्पमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेविदम् ॥ १० ॥

आ । महार्पम् । अविदम् । त्वा । पुनः । आ । अगाः । पुनः-
ऽनवः ।

सर्वऽअङ्ग । सर्वम् । ते । चक्षुः । सर्वम् । आयुः । च । ते ।
अविदम् ॥ १० ॥

मैं तुझको लौटाया हुआ समझता हूँ, तू फिर आ, फिर
नवीन हो, हे सर्वाङ्ग ! मैंने तेरी चक्षु और पूर्ण आयुको इस
कर्मके प्रभावसे पा लिया है ॥ १० ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।

अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥

ब्रह्मणा । अग्निः । सम्विदानः । रक्षःऽहा । बाधताम् । इतः ।

अमीवा । यः । ते । गर्भम् । दुःनामा । योनिम् । आशये ११

राक्षसोंका संहार करने वाले अग्निदेव मन्त्रसे संयुक्त होते हुए उसको यहाँसे बाधा दे जो दूषित नाम वाला रोग तेरे गर्भ योनिमें शयन कर रहा है ॥ ११ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।

अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥

यः । ते । गर्भम् । अमीवा । दुःनामा । योनिम् । आशये ।

अग्निः । तम् । ब्रह्मणा । सह । निः । क्रव्यऽमदम् । अनीनशत् १२

जो दूषित नाम वाला रोग तेरे गर्भ और योनिमें शयन कर रहा है उन स्थानोंको अग्निदेव मन्त्रकी सहायतासे कच्चे मांस का भक्षण करने वाले रोगसे रहित करके उस रोगको ही नष्ट कर डालें ॥ १२ ॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निपत्सुं यः संरीसृपम् ।

जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥

यः । ते । हन्ति । पतयन्तम् । निऽसत्सुम् । यः । संरीसृपम् ।

जातम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १३

जो तेरे गिरते हुए, सरकते हुए निपस्त्रु वा निकलते हुए गर्भ को मारना चाहता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥१३॥

यस्तं ऊरु विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।

योनिं यो अन्तरारेल्हि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

यः । ते । ऊरु इति । विहरति । अन्तरा । दम्पती इति दम्पती । शये ।

योनिम् । यः । अन्तः । आग्नेहि । तम् । इतः । नाशयामसि १४-

जो रोग वा भूत राक्षस, तेरी ऊरुओंमें विहार करता है तुम दोनों दम्पतियोंमें शयन करता है जो योनिके भीतर आलेह्न करता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥

यः । त्वा । भ्राता । पतिः । भूत्वा । जारः । भूत्वा । निपद्यते ।

प्रजाम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १५-

जो भूत वा राक्षस तुम्हको भाई, पति, वा जार बनकर प्राप्त होता है और जो तेरी सन्तानको नष्ट करना चाहता है, उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १५ ॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥

यः । त्वा । स्वप्नेन । तमसा । मोहयित्वा । निपद्यते ।

प्रज्ञाम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १६

जो पुरुष तुम्हको स्वयंके अँधेरेसे मोहमें डाल कर भास हो-
जाता है और जो तेरी मजाको नष्ट करना चाहता है उसको
हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १६ ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुंकादधिं ।

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्कांज्जिह्वाया वि वृहामि ते १७

अक्षीभ्याम् । ते । नासिकाभ्याम् । कर्णाभ्याम् । छुबुंकात् । अधिं ।

यक्ष्मम् । शीर्षण्यम् । मस्तिष्कात् । जिह्वायाः । वि । वृहामि । ते १७

मैं तेरे नेत्रोंसे, तेरी नाकके दोनों नथुनोंसे, दोनों कानोंसे,
तेरी ठोड़ीसे यक्ष्मा रोगको, और मस्तिष्कमें होने वाले शीर्षण्य
रोगको मस्तिष्कसे और जिह्वासे निकालता हूँ ॥ १७ ॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकंसाभ्यो अनूक्यात् ।

यक्ष्मं दोषण्यं शंसंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते १८

ग्रीवाभ्यः । ते । उष्णिहाभ्यः । कीकंसाभ्यः । अनूक्यात् ।

यक्ष्मम् । दोषण्यम् । शंसंसाभ्याम् । बाहुभ्याम् । वि । वृहामि । ते १८

है व्याधिग्रस्त ! तेरी ग्रीवा (गरदन) की चौदह सूक्ष्म नाड़ियों
से मैं यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ और रक्तमवादके कारण ऊपर
को स्नान कराने वाली स्निग्ध उष्णिह नामकी नाड़ियोंसे,
हँसली और वक्त्रःस्थलकी नाड़ियोंसे, तथा जिसमें क्रमशः
अस्थिर्य मिलती है उस अनूक्यसे मैं यक्षमारोगको दूर करता हूँ,
तथा तेरे कंधे और मुजाओंसे मैं यक्षमारोगको दूर करता हूँ १८

हृदयात् ते परिं क्लोमो हलीक्षणात् पार्श्वाम्भ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां शीहो यक्ष्मस्ते वि बृहामसि १९
हृदयात् । ते । परिं । क्लोमः । हलीक्षणात् । पार्श्वाम्भ्याम् ।

यक्ष्मम् । मतस्नाभ्याम् । साहः । यक्ष्मः । ते । वि । बृहामसि १९

हे रोगिन् ! मैं तेरे हृदयकमलसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ
और हृदयके समीप स्थित क्लोम (मूत्राधार-मसाने) से तथा
हलीक्षण नामक मांसपिण्डसे दोनों पसलियोंसे, दोनों पिचाधार
पात्रोंसे और उदर तथा पसलियोंमें स्थित श्वेन पत्नीकी समान
आकार वाले सीरा (तिल्ली) से और हृदयके समीपमें स्थित
यक्ष्म (जिगर) से भी मैं राजयक्ष्मा रोगको दूर करता हूँ १९
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।

यक्ष्मं कुक्षिभ्यां श्लोशेर्नाभ्या वि बृहामि ते ॥ २० ॥

आन्त्रेभ्यः । ते । गुदाभ्यः । वनिष्ठोः । उदरात् । अधि ।

यक्ष्मम् । कुक्षिभ्याम् । श्लोशेः । नाभ्याः । वि । बृहामि । ते २०

हे यक्ष्मारोगसे ग्रसे हुए ! मैं तेरी अंतर्द्वियोंसे, मल और
मूत्रके सरकनेके स्थानोंसे, मोठी आँसे और इन सबके आधार
उदरसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ, तथा तेरी दाईं बाईं कोंखों
से और अनेक छिद्र वाले मलपात्र श्लोशसे तथा नाभिमण्डल
से तेरे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ ॥ २० ॥

ऊरुभ्यां ते अश्विन्द्र्यां पार्णिभ्यां प्रपदाम्याम् ।

यक्ष्मं भसदं ? श्रोणिभ्यां भासदं भसतो वि बृहामि ते

ऊरुऽभ्याम् । ते । अष्टीवत्तुऽभ्याम् । पाणिऽभ्याम् । मण्डपदाभ्याम् ।
 यक्ष्मम् । भस्त्र्यम् । श्रोणिऽभ्याम् । भासदम् । भंससः । वि ।
 वृहामि । ते ॥ २१ ॥

मैं तेरी ऊरुओंसे, जानुओंसे, पैरोंके अपरभागसे और पैरोंके
 अग्रभागसे यक्ष्मारोगको अलग करता हूँ और तेरी कमरमें होने
 वाले यक्ष्माको कटिके नीचेके भागसे अलग करता हूँ और गुद्-
 देशमें होनेवाले रोगको भासमान गुद्स्थानसे पृथक् करता हूँ २१

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
 यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते २२
 अस्थिऽभ्यः । ते । मज्जऽभ्यः । स्नावऽभ्यः । धमनिऽभ्यः ।
 यक्ष्मम् । पाणिऽभ्याम् । अङ्गुलिऽभ्यः । नखेभ्यः । वि । वृहामि ।
 ते ॥ २२ ॥

मैं तेरी हड्डी मज्जा आदि सब घातुओंसे, सूक्ष्म नाड़ियोंसे,
 स्थूल नाड़ियोंसे, हाथ अङ्गुलि और नखोंसे यक्ष्मारोगको दूर
 करता हूँ ॥ २२ ॥

अङ्गेऽङ्गे लोम्निऽलोम्नि यस्ते पर्वणिऽपर्वणि ।
 यक्ष्मं त्वचस्य ते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वञ्चं वि
 वृहामसि ॥ २३ ॥

अङ्गेऽङ्गे । लोम्निऽलोम्नि । यः । ते । पर्वणिऽपर्वणि ।

यक्ष्मम् । त्वचस्यम् । ते । वयम् । कश्यपस्य । विश्वर्हेण । विश्व-
श्वम् । वि । बृहामसि ॥ २३ ॥

हे रोगिन् ! तेरे ऊपर न कहे गए प्रत्येक अँगोंमें, सम्पूर्ण
रोमकूपोंमें और प्रत्येक जोड़ोंमें जो यक्ष्मारोग होगया है उस रोग
को हम दूर करते हैं । और तेरी त्वचामें जो यक्ष्मारोग पहुँच
गया है, उसको हम दूर करते हैं, और तेरे नेत्र आदि सम्पूर्ण
अँगोंमें व्याप्त रोगको हम महर्षि कश्यपके इस विबर्ह मन्त्रसे दूर
करते हैं ॥ २३ ॥

अपेहि मनसस्पतेपं क्राम परश्चर ।

परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः २४

अप । इहि । मनसः । पते । अप । क्राम । परः । चर ।

परो । निःऽऋत्यै । आ । चक्ष्व । बहुधा । जीवतो । मनः २४

अष्टमेनुवाके पष्ठं सूक्तम् ॥

इति अष्टमोनुवाकः ॥

हे मन पर अधिकार जमाने वाले रोग ! दूर जा, भाग, दूर
विचर, निर्ऋतिसे इस जीवित पुरुषके मनसे दूर रहनेको कह २४

अष्टम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (७१२)

अष्टम अनुवाद समाप्त

बृहस्पतिसवे “वयमेनमिदा ह्यः इत्यस्य “तद् वो गाय सुते
सचा” [२०. ७८] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥ तथा सर्व-
जित्यृषभादिषु अस्य तेनैव सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा त्रिवृदादिषु सूत्रोक्तेषु सप्तसु त्रिरात्रैकाहेषु “उभयं मृण-
वस्य नः” [२०. ११३] “वयमेनमिदा ह्यः” [२०. ६७]

“पिवा सोममिन्द्र मन्दन्तु त्वा” [२०, ११७] एते आज्यस्तोत्रिया भवन्ति चकारात् पृष्ठस्तोत्रिया विकल्पिता भवन्ति तद् उक्तं वैताने । “त्रिष्टपश्चदशसप्तदशैकविंशत्रिणवत्रयस्त्रिंशन्वसप्तदशेषूभयं शृणवच्च नो वयमेनमिदा ह्यः पिवा सोममिन्द्र मन्दन्तु त्वेति” इति [वै०. ८, २] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा [२०. ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

बृहस्पतिसवर्मे “वयमेनमिदा ह्यः” इसका “तद् वो गाय सुते सचा” (२० । ७८) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा सर्वजित् ऋषभ आदिमें भी इसका उसके साथ ही विनियोग कह दिया है ।

तथा त्रिष्टप आदि सूत्रोक्त सात त्रिरात्रैकाहोंमें “उभयं शृणवच्च नः” (२० । ११३) “वयमेनमिदा ह्यः” (२० । ६७) “पिवा सोममिन्द्र मन्दन्तु त्वा” (२० । ११७) ये आज्यस्तोत्रिय होते हैं, चकारसे विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“त्रिष्टपश्चदशसप्तदशैकविंशत्रिणवत्रयस्त्रिंशन्वसप्तदशेषूभयं शृणवच्च नो वयमेनमिदा ह्यः पिवा सोममिन्द्र मन्दन्तु त्वेति” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

तथा त्रिककुद दशाहमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते सचा” (२० । ५३) के साथ कह दिया है ।

वयमेनमिदा ह्योषीपेमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य संमना सुतं भरा नूनं भूपत श्रुते ।

वगम् । एनम् । इदा । ह्यः । अषीपेम । इह । वज्रिणम् ।

तस्मै । ऊं इति । अथ । समना । सुतम् । भर । आ । नूनम् ।
भूपत । श्रुते ॥ १ ॥

हम कल इस सोमसे वज्रधारी इन्द्रको पुष्ट कर चुके हैं उनके
लिये ही आज आप मनको मसन्न करके अभिषुत सोम दीजिये,
हे स्तोताओं ! इस बातको सुन कर तुम भी उन इन्द्रको स्तुतियों
से अवश्य भूषित करो ॥ १ ॥

वृकांश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूपति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुपाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया
एकः । चित् । अस्य । वारणः । उरामथिः । आ । वयुनेषु ।
भूपति ।

सः । इमम् । नः । स्तोमम् । जुजुपाणः । आ । गहि । इन्द्र ।
प्र । चित्रया । धिया ॥ २ ॥

इन इन्द्रके पास एक अर्थात् कुत्ता भी है, वह शत्रुओंको हटाने
वाला है, वह मेढ़ोंका मयन करने वाला है, वह मज्ञानोंमें आभूषित
करता है, ऐसे हे इन्द्र ! आप हमारे इस स्तोत्रको सुन कर अपनी
कमनीय बुद्धिसे इस यज्ञमें आइये [सरमा देवकुत्ती मसिद्ध है
अतः उसके पोते घेवते भी देवताओंके ही हैं इस लिये यहाँ कुत्ते
को एक कहा है, क्योंकि—और श्वापदोंका अवलम्ब है] २

कदू न्व१ स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।

केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुपः परिवृत्रहा ३
कत् । ऊं इति । नु । अस्य । अकृतम् । इन्द्रस्य । अस्ति ।

पौंस्यम् ।

केनो इति । जु । कम् । श्रोमतेन । न । शुश्रुवे । जनुषः । परि ।
वृत्राहा ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

ऐसा कौनसा पुरुषार्थका काम है जो इन इन्द्रदेवका किया हुआ नहीं है । किस श्रवणशक्ति सम्पन्नने यह सुखमय बात नहीं सुनी है, कि-यह वृत्रासुरका संहार करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (७१३)

श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकाहेषु “त्वामिद्धि हवामहे” इत्यस्य विनियोगः “सुरूपकृन्नुमृतये” [२०.५७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा तनूषष्ठे पठहे अस्य विनियोगः “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

श्येनसंदंशाजिरवज्र एकाहोंमें “त्वामिद्धि हवामहे” का विनियोग “सुरूपकृन्नुमृतये” (२० । ५७) के साथ कह दिया है ।

तथा तनूषष्ठ पठहमें इसका विनियोग “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” (२० । ८१) के साथ कह दिया है ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

त्वाम् । इत् । हि । हवामहे । साता । वाजस्य । कारवः ।

त्वाम् । वृत्रेषु । इन्द्र । सत्पतिम् । नरः । त्वाम् । काष्ठासु ।

अर्वतः ॥ १ ॥

हम स्तोता अन्नप्राप्ति कराने वाले यज्ञमें आपका ही आवाहन करते हैं, हे इन्द्र ! कोई घेर लेता है ऐसे अवंसरों पर सज्जनोंके पालक दिशाओंमें उदकको प्रेरित करनेवाले आपका ही नेता लोग आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानो अद्रिवः
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे
सः । त्वम् । नः । चित्र । । वज्रहस्त । धृष्णुया । महः ।
स्तवानः । अद्रिवः ।

गाम् । अश्वम् । रथ्यम् । इन्द्र । सम् । किर । सत्रा । वाजम् ।
न । जिग्युषे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे चायनीय ! वज्रहस्त वज्र वाले इन्द्र ! ऐसे आप हमारी धन-
कत्व प्रदान करने वाली स्तुतिसे स्तुत होकर इस विजय चाहने
वाले रागाके लिये गी अश्व और रथकी वस्तुएँ अन्नकी समान
प्रदान करिये ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (७१४)

अपूर्वाख्ये एकाहे “अभि त्वा पूर्वपीतये” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो
भवति । तद् उक्तं वैताने । “अपूर्वेभि त्वा पूर्वपीतय इति” इति
[वै० ८. १] ॥

अपूर्व नामक एकाहमें “अभि त्वा पूर्वपीतये” यह पृष्ठस्तोत्रिय
होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अपूर्वेभि त्वा
पूर्वपीतय इति” (वैतानसूत्र (८. १) ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्
अभि । त्वा । पूर्वपीतये । इन्द्र । स्तोमेभिः । आयवः ।
समर्द्धीचीनासः । ऋभवः । सम् । अस्वरन् । रुद्राः । गृणन्त ।
पूर्व्यम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! ये मनुष्य समीचीन ऋषु देवता और रुद्रदेवता आप पूर्वकी पहिले पान करनेके लिये स्तुतियोंसे स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्णयं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोनुं पुवन्ति पूर्वथां २
अस्य । इत् । इन्द्रः । ववृधे । वृष्णयम् । शवः । मदे । सुतस्य ।
विष्णवि ।

अद्य । तम् । अस्य । महिमानम् । आयवः । अनु । स्तुवन्ति ।
पूर्वथां ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

यज्ञमें अभिषुत सोमका मद होने पर इस यजमानके ही बल को और धनवर्षकत्वको इन्द्रदेव बढ़ाते हैं । ये स्तोता मनुष्य इन्द्रदेवकी उस महिमाका ही पहिलेकी समान गान कर रहे हैं २

नवम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (७१५)

वात्पस्तोमाख्येषु एकाहेषु “आ त्वेना नि पीदत” [२०. ६८. ११] “अद्या हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] इति आज्य-
पृष्ठस्तोत्रियो यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । वात्पस्तोमेष्वा
त्वेता नि पीदताद्या हीन्द्र गिर्वण इति” [वै० ८. १] ॥

तथा पवित्रादिषु राजमूयैकाहेषु “यत् सोममिन्द्र विष्णवि”
[२०. १११] “अद्या हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] “अभ्रा-
तृणो अना त्वम्” [२०. ११४] “त्वम् न इन्द्रा भर” [२०. १०८] एते यथासंभवम् उच्यस्तोत्रिया भवन्ति । चकाराद् “यदद्य
कच्च वृत्रहन्” [२०. ११२] “उभयं मृणवच्च नः” [२०. ११३]
एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियो भवतः ॥

तथा चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु “यत् सोममिन्द्र विष्णुवि” एते त्वत्वारो यथासंभवम् उक्थस्तोत्रिया भवन्ति ॥

तद् वक्तुं वैताने । “राजसूयेषु यत्सोममिन्द्र विष्णुव्यधा हीन्द्र गिर्वणोऽभ्रातृव्यो अना त्वं त्वं न इन्द्रा भरेति च । चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु इति” इति [वै० ८, २] ॥

व्रात्यस्तोम नामक एकाहोमे ‘आ त्वेता नि पीदत’ (२० । ६८ । ११) ‘अथा हीन्द्र गिर्वणः’ (२० । १००) ये यथाक्रम आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी व्रातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—‘व्रात्यस्तोमेष्वा त्वेता नि पीदताथा हीन्द्र गिर्वण इति’ (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोमे ‘यत् सोममिन्द्र विष्णुवि’ (२० । १११) ‘अथा हीन्द्र गिर्वणः’ (२० । १००) ‘अभ्रातृव्यो अना त्वम्’ (२० । ११४) ‘त्वं न इन्द्रा भर’ (२० । १०८) ये यथासंभव उक्थस्तोत्रिय होते हैं । चकारसे ‘यद्य कच वृत्रहन्’ (२० । ११२) उभयं शृणुवच्च नः’ (२० । ११३) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं ॥

तथा चतुरह पञ्चाह अहीनदशाह और छन्दोमदशाहोमे ‘यत् सोममिन्द्र विष्णुवि’ ये चार यथासंभव उक्थस्तोत्रिय होते हैं ।

इसी व्रातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—‘राजसूयेषु यत्सोममिन्द्र विष्णुव्यधा हीन्द्र गिर्वणोऽभ्रातृव्यो अना त्वं त्वं न इन्द्रा भरेति च । चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु च’ (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

अथा हीन्द्र गिर्वणः उप त्वा कामान् महः संसृज्महे ।

उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

अ० । हि । इन्द्र । गिर्व॑णः । उप॑ । त्वा॑ । कामा॑न् । महः॑ । सस्य॑-
जमहे॑ । उ॒दाऽइ॑व । यन्तः॑ । उ॒दऽभिः॑ ॥ १ ॥

जैसे जलसे काम लेने वाले पुरुष जलसे जलको संयुक्त करते हैं, इसी प्रकार हे स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र ! आपसे कामनाओं को चाहते हुए हम सोमात्मक जलोंसे आपको संयुक्त करते हैं।

वा॑र्ण॒ त्वा॑ य॒व्याभि॑र्वर्ध॑न्ति शूर॒ ब्रह्मा॑णि । वा॒वृ॒ध्वांसं॑
चि॒दद्रि॑वो दि॒वेदि॑वे ॥ २ ॥

वाः । न । त्वा । य॒व्याभिः॑ । वर्ध॑न्ति । शूर॒ । ब्रह्मा॑णि ॥ वा॒वृ॒ध्वा-
सम् । चि॒त् । अ॒द्रिऽवः॑ । दि॒वेऽदि॑वे ॥ २ ॥

हे षष्ठधारिन् शूर इन्द्र ! मत्प्रेक स्तुतिके अवसर पर बार-बार बढ़ना चाहते हुए आपको ये मन्त्र यव्याओंसे जलकी समान बढ़ाते हैं ॥ २ ॥

यु॒ञ्जन्ति॑ ह॒रीं इ॒पिर॑स्य॒ गाथ॑यो॒रौ रथं॑ उ॒रुयु॑गे । इन्द्र॒-
वा॒हा व॒चो॒युजा॑ ॥ ३ ॥

यु॒ञ्जन्ति॑ । ह॒री इति॑ । इ॒पिर॑स्य । गा॒थया॑ । उ॒रौ । रथे॑ । उ॒रुऽ-
युगे॑ ॥ इन्द्र॒ऽवा॒हा । व॒चः॒ऽयुजा॑ ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

युद्धगमनशील इन्द्रकी गाथासे, मन्त्रसे संयुक्त होने वाले इन्द्र के हरि नामक घोड़े विशाल युग वाले इन्द्रके रथमें जुतते हैं ३

नवम अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त (७१६)

अग्निष्टुप् एकाहेषु “ईलेन्यो नमस्यः” [२०. १०२] “अग्निं दूतं वृणीमहे” [२०. १०१] “अग्निमीलिष्ववसे” [२०. १०३] “अग्न आ याद्याग्निभिः” [२०. १०३. २] एषु आद्यौ आज्यस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । उत्तरौ पृष्ठस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अग्निष्टुप्स्वीलेन्यो नमस्योऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निमीलिष्ववसेऽग्न आ याद्याग्निभिरिति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा विराजेनेः स्तोमेनेः कुलाये “अग्निं दूतं वृणीमहे” अग्निमीलिष्ववसे” एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विराजेनेः स्तोमेनेः कुलायेऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निमीलिष्ववसे इति” [वै० ८. २] ॥

अग्निष्टुप् एकाहोर्मे “ईलेन्यो नमस्यः” (२०. १०२) “अग्निं दूतं वृणीमहे” (२०. १०१) “अग्निमीलिष्ववसे” (२०. १०३) “अग्न आयाद्याग्निभिः” (२०. १०३. २) इनमें पहिले दो विकल्पित आज्यस्तोत्रिय होते हैं । अगले विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अग्निष्टुप्स्वीलेन्यो नमस्योऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निमीलिष्ववसेऽग्न आ याद्याग्निभिरिति” (वैतानसूत्र ८. १)

तथा विराजर्मे अग्निके और स्तोमर्मे अग्निके कुलायर्मे “अग्निं दूतं वृणीमहे” “अग्निमीलिष्ववसे” ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विराजेनेः स्तोमेनेः कुलायेऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निमीलिष्ववसे इति” (वैतानसूत्र ८. २)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुकृतम् ॥ १ ॥

अग्निम् । दत्तम् । दृणीमहे । होतारम् । विश्वज्वेदसम् ॥ अस्य ।

यज्ञस्य । सुऽक्रतुम् ॥ १ ॥

हम अग्निदेवताका वरण करते हैं वह होता हैं और सबको जानने वाले हैं और इस यज्ञके कर्मोंको श्रेष्ठ बनाने वाले हैं ॥ १ ॥

अग्निं गग्निं हवींमभिः सदा हवन्त विशपतिम् । हव्य-
वाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

अग्निम्ऽअग्निम् । हवींमभिः । सदा । हवन्त । विशपतिम् ॥

हव्यऽवाहम् । पुरुऽप्रियम् ॥ २ ॥

पुरुष हव्यका वहन करने वाले, बहुतसे पुरुषोंके प्रिय प्रजापति अग्निको सदा हवि देते हैं अतः हम भी अग्निको हवि प्रदान करते हैं ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तवर्हिषं । असि होता
न ईड्यः ॥ ३ ॥

अग्ने । देवान् । इह । आ । वह । जज्ञानः । वृक्तवर्हिषे ॥ असि ।

होता । नः । ईड्यः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! आप ऋत्विज्के लिये मरट होते हुए यहाँ पर देवताओंको लाइये आप हमारे पूज्य होता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (७१७)

अग्निष्टुतसु एकादेषु "ईलेन्यो नमस्यः" इत्यस्य पूर्वेण सह
उक्तो विनियोगः ॥

अग्निष्टुत् एकाहोमें “ईलेन्यो नमस्यः” का पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

ईलेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते
वृषां ॥ १ ॥

ईलेन्यः । नमस्यः । तिरः । तमांसि । दर्शतः ॥ सम् । अग्निः ।
इध्यते । वृषां ॥ १ ॥

स्तुति और प्रणाम करने योग्य दर्शनीय फलवर्षक इन्द्रदेव
घुएँको तिरछा करते हुए भली प्रकार दीप्त होते हैं ॥ १ ॥

वृषां अग्निः समिध्यतेश्वो न देववाहनः । तं हवि-
ष्मन्त ईलते ॥ २ ॥

वृषो इति । अग्निः । सम् । इध्यते । अश्वः । न । देववाहनः ॥
तम् । हविष्मन्तः । ईलते ॥ २ ॥

देववाहन अश्वकी समान फलवर्षक अग्निदेव दीप्त होते हैं,
हवि वाले पुरुष उनका पूजन करते हैं ॥ २ ॥

वृषं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने
दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

वृषणम् । त्वा । वयम् । वृषन् । वृषणः । सम् । इधीमहि ॥
अग्ने । दीद्यतम् । बृहत् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके षष्ठे सूक्तम् ॥

हविकी वर्षा करने वाले हम है वृषन् । आप फलवर्षकको
भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं, हे अग्निदेव । आप भली प्रकार
दीप्त हजिये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (७१८)

“अग्निमीलिष्वावसे” इत्यस्य “अग्निं दूतं वृणीमहे” [२०.
१०१] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“अग्निमीलिष्वावसे” का “अग्निं दूतं वृणीमहे” (२०।१०१)
के साथ विनियोग कह दिया है” ।

अग्निमीलिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिपम् ।
अग्निं राये पुरुमील्ह श्रुतं नरोग्निं सुदीतये छर्दिः १
अग्निम् । ईलिष्व । अवसे । गाथाभिः । शीरऽशोचिपम् ।
अग्निम् । राये । पुरुमील्ह । श्रुतम् । नरः । अग्निम् । सुदीतये ।
छर्दिः ॥ १ ॥

हे नर ! व्यापक तापक अग्नि की तू गाथाओंमें अन्नके लिये
पूजा कर । हे पुरुमीढ़ ! सुन्दर दीप्ति और धनके लिये श्रुति-
प्रसिद्ध शरणरूप अग्निदेव की तू पूजा कर ॥ १ ॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं वर्हिरासदे २
अग्ने । आ । याहि । अग्निभिः । होतारम् । त्वा । वृणीमहे ।
आ । त्वाम् । अनक्तु । प्रयता । हविष्मती । यजिष्ठम् । वर्हिः ।
आसदे ॥ २ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी विभूतिरूप अन्य अग्नियोंके साथ
आइये आप होताका हम आह्वान करते हैं, आप यजनीयसे बैठने
के स्थानमें प्रयत्ना दृविष्यती बहि संयुक्त होवे ॥ २ ॥

अच्छा हित्वां सहसः सूनो अङ्गिरः सुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपांत घृतकेशमीमहेभि यज्ञेषु पूर्वम् ॥ ३ ॥

अच्छ । हि । त्वा । सहसः । सूनो इति । अङ्गिरः । सुचः ।
चरन्ति । अध्वरे ।

ऊर्जः । नपांतम् । घृतकेशम् । ईमहे । अग्निम् । यज्ञेषु ।
पूर्वम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे जलके पुत्र अंगिरागोत्री अग्निदेव ! यज्ञमें सुवे आपके
अभिमुख विचरण करते हैं । हम भी बलको बने रखने वाले,
केशोंकी समान घृतको ऊपर धारण करने वाले सदा नवीन ही
रहने वाले अग्निदेवकी यज्ञोंमें प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

नाम अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त (५१९)

“इमा उ त्वा पुरुवसो” इत्यस्य विनियोगः “अयमु ते सम-
तसि” [२०. ४५] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“इमा उ त्वा पुरुवसो” का विनियोग “अयमु ते समतसि”
(२० । ४५) के साथ कह दिया है ।

इमा उ त्वा पुरुवसो गिरां वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोभि स्तोमैरनूपन ॥ १ ॥

इमाः । ऊं इति । त्वा । पुरुवसो इति पुरुवसो । गिरां । वर्धन्तु ।
याः । मम ।

पावकऽवर्णाः । शुचयः । विपऽचितः । अभि । स्तोमैः ।
अनूपत ॥ १ ॥

हे विशाल धनसे सम्पन्न इन्द्र ! जो हमारी अग्निकी समान
शुद्ध वर्ण वाली पवित्र वाणियाँ हैं वह आपको बढ़ावें, हे विद्वानों !
तुम स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करो ॥ १ ॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहंस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये २
अयम् । सहस्रम् । ऋषिभिः । सहऽस्कृतः । समुद्रऽइव । पप्रथे ।
सत्यः । सः । अस्य । महिमा । गृणे । शवः । यज्ञेषु । विप्र-
राज्ये ॥ २ ॥

यह अग्निदेव ऋषियोंके द्वारा जलसे बने हुए समुद्रकी
समान सहस्रगुणे बढ़ जाते हैं, मैं इनकी इस सत्य महिमाका
वर्णन कर रहा हूँ, इनका बल विप्रराज्य यज्ञोंमें दीखता है २
आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूयतु ।

उप ब्रह्माणि सर्वानानि वृत्रहा परमज्या ऋचीपमः ३
आ । नः । विश्वासु । हव्यः । इन्द्रः । समत्सु । भूयतु ।

उप । ब्रह्माणि । सर्वानानि । वृत्रहा । परमज्याः । ऋचीपमः ३

हवि देने योग्य इन्द्रदेव ! सब यज्ञोंमें आप हमको भूषित
करिये, यह इन्द्रदेव वास्तवमें अपरिमेय होने पर भी ऋचाओंकी
समान अपने रूपको बना लेते हैं, ऐसे यह वृत्रासुरके संहारक
इन्द्रदेव मन्त्रोंको सवनोंको और श्रेष्ठ २ धनुषोंको विभूषित
करें ॥ ३ ॥

(४८६) अथर्ववेदसहिता सभाष्यः-भाषानुवादसहित

त्वं दाता प्रथमो राधं सामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तुविद्युन्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ४

त्वम् । दाता । प्रथमः । राधं साम् । असि । असि । सत्यः । ईशान-
कृत् ।

तुविद्युन्नस्य । युज्या । आ । वृणीमहे । पुत्रस्य । शवसः । महः ४

इति नवमेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे ईश्वर बनाने वाले सत्य अग्निदेव ! तुम धनोंके मुख्य-
दाता हो, अतिदमकते हुए जलके पुत्रकी युक्तिका हम वरण
करते हैं ॥ ४ ॥

नवम अनुवाकमें अष्टमसूक्त समाप्त (७२०)

मतीचीनस्तोमे एकाहे “त्वमिन्द्र मतूर्तिषु” इत्येष आज्यपृष्ठ-
स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “मतीचीनस्तोमे त्वमिन्द्र
मतूर्तिष्विति” इति [वै० ८, १] ॥

राजि एकाहे “यो राजा चर्पणीनाम्” [२०, १०५, ४] इति
पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “राजि यो राजा चर्प-
णीनाम् इति” [वै ८, १] ॥

एक दिनमें होने वाले मतीचीनस्तोममें “त्वमिन्द्र मतूर्तिषु”
यह आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि—“मतीचीनस्तोमे त्वमिन्द्र मतूर्तिषु” (वैतानसूत्र ८।१) ॥

राज् एकाहमें “यो राजा चर्पणीनाम्” (२० । १०५ । ४)
यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—
“राजि यो राजा चर्पणीनाम्” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

त्वमिन्द्र मतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वंतूर्य तरुण्यतः १

त्वम् । इन्द्र । प्रज्जुतिषु । अभि । विश्वाः । असि । स्पृधः ।
अशस्तिऽहा । जनिता । विरवऽशुः । असि । त्वम् । तुर्य । तरुण्यतः

हे इन्द्र आप हिंसा वाले युद्धोंमें सबसे स्पर्धा करने वाले हैं,
और आप अशस्ति का नाश करने वाले, कन्याणको मकड़ करने
वाले, सबसे त्वरा करने वाले हैं आप त्वरा करने वालोंको मारिये ?
अनुं ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरां ।
विश्वास्ते स्पृधः श्रययन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि
अनु । ते शुष्मम् । तुरयन्तम् । ईयतुः । क्षोणी इति । शिशुम् ।
न । मातरां ।

विश्वाः । ते । स्पृधः । श्रययन्त । मन्यवे । वृत्रम् । यत् । इन्द्र ।
तूर्वसि ॥ २ ॥

त्वरा करते हुए आपके बलके पीछे, बच्चेके पीछे माता पिता
की समान धूलोक और पृथ्वीलोक भासते हैं । हे इन्द्रदेव !
जब आप क्रोधमें भर कर वृत्रका संहार कर रहे थे उस समय
उसकी सब स्पर्धक वृत्तियें आपको मारना चाह रहीं थीं ॥ २ ॥

इत ऊनी वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशुं जेतारं हेतारं रथितममर्तुं तुग्रयावृधम् ॥ ३ ॥

इतः । ऊनी । वः । अजरम् । प्रहेतारम् । अप्रहितम् ।

आशुम् । जेतारम् । हेतारम् । रथिज्जम् । अर्तुम् । तुग्रयावृधम् ३

यहाँसे मन्त्रशक्तिसे जो रत्नक वृत्तियें प्रेरित होती हैं वह उस समय आपको अजर, प्रदेता, अमरित, शीघ्रता करने वाला, हेता, रथितम, अनूत और तुष्ट्यवृत्त बना रह्यो र्थी ॥ ३ ॥

यो राजा चर्पणीनां याता स्थेभिरध्रिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ४

यः । राजा । चर्पणीनाम् । याता । स्थेभिः । अध्रिगुः ।

विश्वासाम् । तरुता । पृतनानाम् । ज्येष्ठः । यः । वृत्रहा । गृणे ४

जो मनुष्योंके राजा हैं, जो रथोंके द्वारा मन्त्रोंके अभिमुख जाते हैं, सकल सेनाओंको तरने वाले हैं, जो ज्येष्ठ हैं और वृत्रासुरका संहार करने वाले हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ । ४॥

इन्द्रं तं शुम्भं पुरुहन्मन्त्रवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः

इन्द्रम् । तम् । शुम्भं । पुरुहन्मन् । अवसे । अस्य । द्विता । वि-

धर्तरि ।

हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः

इति नवमेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे पुरुहन्मन् ! इस विशेषरूपसे धारक यज्ञमें आप अन्नके लिये इन्द्रको अलंकृत करिये, उनकी सत्ता मध्यमलोक अन्तरिक्ष और स्थान (स्वर्ग) में भी है । उन दर्शनीयका क्रीड़ाके लिये हाथमें लठाया हुआ वज्र पूजनीय सूर्यसा दीखता है ॥ ५ ॥

इन्द्रस्तोमाख्ये एकाहे “तव त्यदिन्द्रियं बृहत्” इत्यस्य “इन्द्र क्रतुं न आ भर” [२०. ७६] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें “तव त्यदिन्द्रियं बृहत्” इसका “इन्द्र क्रतुं न आ भर” (२० । ७६) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं
शिश्राति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

तव । त्यत् । इन्द्रियम् । बृहत् । तव । शुष्मम् । उत । क्रतुम् ॥
वज्रम् । शिश्राति । धिषणा । वरेण्यम् ॥ १ ॥

आपका इन्द्रसम्बन्धी बृहद् बल है, वह बुद्धिसे वरने योग्य बल कर्म और वज्रको तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः
पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

तव । द्यौः । इन्द्र । पौंस्यम् । पृथिवी । वर्धति । श्रवः ॥ त्वाम् ।
आपः । पर्वतासः । च । हिन्विरे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! धुलोक आपका पुंस्त्व है, पृथिवी मन्त्रको बढ़ाती है, जल और पर्वत आपको प्रेरित करते हैं ॥ २ ॥

त्वां विष्णुर्वृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां
शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

त्वाम् । विष्णुः । बृहन् । क्षयः । मित्रः । शुण्ठाति । वरुणः ॥

त्वाम् । शर्धः । मदति । अनु । मारुतम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

विशाल विष्णुदेव, सूर्य, वरुण और यम आपकी प्रशंसा करते हैं, वायुके पीछे षल आपको मद प्रदान करता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (७२२)

विघने एकाहे “समस्य मन्यवे विशः” [२०. १०७] “तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्” [२०. १०७, ४] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विघने समस्य मन्यवे विशस्तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति” इति [वै० अ. १] ॥

विघन एकाहमें “समस्य मन्यवे विशः” (२० । १०७) “तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्” (२० । १०७ । ४) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विघने समस्य मन्यवे विशस्तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति” (वैतानसूत्र ८।१) समस्य मन्यवे विशो विश्वां नमन्त कृष्टयः । समु-

द्रायेवं सिन्धवः ॥ १ ॥

सम् । अस्य । मन्यवे । विशः । विश्वाः । नमन्त । कृष्टयः ॥

समुद्रायऽइव । सिन्धवः ॥ १ ॥

जैसे समुद्रके लिये नदियें नमती हैं, इसी प्रकार सम्पूर्ण प्रजाएँ कर्म करते हुए इन इन्द्रके लिये नमती हैं—इनकी शरणमें जाती हैं । ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मव रोदसी ॥ २ ॥

द्योः । तन् । अस्य । तित्विषे । उभे इति । सम्ऽभवर्तयत् ॥

इन्द्रः । चर्मऽश्व । रोदसी इति ॥ २ ॥

इन इन्द्रने दोनों घावापृथिवीको चमड़ेकी समान लपेट लिया था. इनका वह वीर्य दमकता है ॥ २ ॥

वि चिद् वृत्रस्य दोधंतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरां
विभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥

वि । चित् । वृत्रस्य । दोधंतः । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥ शिरः ।

विभेद् । वृष्णिना ॥ ३ ॥

इन्द्रदेवने क्रोधमें भरे हुए वृत्रासुरके शिरको सँकड़ों पर्ववाले और रुधिरकी वर्षा करनेवाले वज्रसे काट डाला था ॥ ३ ॥

तदिदांस भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेपनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति
विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥

तत् । इत् । आस । भुवनेषु । ज्येष्ठम् । यतः । जज्ञे । उग्रः ।

स्त्वेऽनृम्णः ।

सद्यः । जज्ञानः । नि । रिणाति । शत्रून् । अन्नु । यत् । एनम् ।

मदन्ति । विश्वे । ऊमाः ।

क्योंकि—यह इन्द्रदेव धनवान् और बली हैं, इस कारण भुवनों में श्रेष्ठ माने जाते हैं, यह मकट होते ही शत्रुओंको मारने लगते हैं

इसी लिये इनकी ऊमा (रक्तक शक्तियें) इनके मकट होते ही आनन्दमें भर जाती हैं ॥ ४ ॥

वावृ॒धानः शव॑सा भूर्यो॑जाः शत्रु॑र्दासाय॑ भियसं॑ दधाति
अव्य॑नच्च व्यनच्च॑ सस्ति॑ सं ते॑ नवन्त॑ प्रभृ॑ता मदे॑षु
ववृ॒धानः । शव॑सा । भूरि॑ऽओजाः । शत्रुः॑ । दा॒साय॑ । भिय॑सम् ।
दधा॑ति ।

अवि॑ऽभनत् । च॒ । वि॑ऽभनत् । च॒ । सस्ति॑ । सम् । ते॒ । नव॑न्त॒ ।
प्रभृ॑ता । मदे॑षु ॥ ५ ॥

महाबलवान् बलसे बढ़ता हुआ शत्रु दासोंको भय देता है, स्यावर और जंगम सारा जगत् (परब्रह्ममें) शयन करता है अर्थात् लीन होजाता है, अतः भली प्रकार चेतन आदि देकर स्वखे हुए (सैनिक) हर्षके अवसर युद्धोंमें उन परब्रह्म वा इन्द्रकी स्तुति कर (युद्धमें प्रवृत्त होजा) ते हैं ॥ ५ ॥

त्वे क्रतु॑मपि॑ पृञ्चन्ति॑ भूरि॑ द्वि॒र्यदे॑ते त्रि॒र्भव॑न्त्यूमाः ।
स्वा॒दोः स्वा॒दीयः॑ स्वा॒दुना॑ सृ॒जा सम्॒दः सु॒ गधु॑ मधु॒
नाभि॑ यो॒धीः ॥ ६ ॥

त्वे इति॑ । क्रतु॑म् । अपि॑ । पृञ्च॑न्ति । भूरि॑ । द्विः । यत् । एते ।
त्रिः । भव॑न्ति । ऊमाः ।

स्वा॒दोः । स्वा॒दीयः॑ । स्वा॒दुना॑ । सृ॒ज । सम् । अ॒दः । सु॒ । गधु॑ ।
मधु॑ना । अ॒भि । यो॒धीः ॥ ६ ॥

जो यह जन्म और संस्कारसे दो बार उत्पन्न होते हैं, और पुद्ग वा यज्ञकी दीक्षा ले तीन बार उत्पन्न होते हैं, ये बड़े भारी यज्ञको आपमें संयुक्त करते हैं, ऐसे हे स्वादिष्ट पदार्थोंको स्वादु बनाने वाले आप स्वादु पदार्थोंसे इन योधाओंको संयुक्त करिये। और हे सुन्दर जल वाले इन्द्रदेव ! आप योधाओंमें प्रवेश करके मधुर रीतिसे युद्ध करिये ॥ ६ ॥

यदि चिन्नु त्वा घना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः
ओजीयः शुष्मिन् स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरे-
वासः कुशोकाः ॥ ७ ॥

यदि । चिन्नु । त्वा । घना । जयन्तम् । रणेरणे । अनु-
मदन्ति । विप्राः ।

ओजीयः । शुष्मिन् । स्थिरम् । आ । तनुष्व । मा । त्वा । दभन् ।
दुःस्वासः । कुशोकाः ॥ ७ ॥

प्रत्येक रणमें धनोंको जीतने वाले आपकी ब्राह्मण यदि स्तुति करते हैं तो हे बलवान् ! आप उनमें स्थिर (धन रूप) बल फैलाइये, सुखमें दुःख करने वाले अत एव दुर्गति पाने वाले पुरुष आपको मास न हों ॥ ७ ॥

त्वया वयं शाशद्गहे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि
चोदयामि त आयुधा ववाभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा
वयांसि ॥ ८ ॥

स्वया । वयम् । शाश्वदे । रणेऽप्यु । मऽपश्यन्तः । युधेऽन्यानि । भूरि
चोदयामि । ते । आयुधा । वचःऽभिः । सम् । ते । शिशामि ।
प्रहणा । वयांसि ॥ ८ ॥

हम देखते २ आपके द्वारा युद्धोंमें बहुतसे दूसरे पक्ष वालोंका
संहार करा डालते हैं, मैं अपने तपः सिद्धयवनोसे आपके आयुधों
को प्रेरित करता हूँ और मन्त्रके द्वारा आपके पक्षीकीसी गति
वाले वाणोंको तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ८ ॥

नि तद् दधिपेवरे परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्बराणि भूरि
नि । तद् । दधिपे । अवरे । परे । च । यस्मिन् । आविथ । अवसा ।
दुरोणे ।

आ । स्थापयत । मातरम् । जिगत्नुम् । मतः । इन्वत । कर्ब-
राणि । भूरि ॥ ९ ॥

जिसको श्रेष्ठ और साधारण प्राणियोंने धारण किया है और
जिस घरमें अन्नसे रक्षा पाई है उसमें चलती फिरती कालिका
माता शक्तिको स्थापित करिये, तदनन्तर अनेक विचित्र पदार्थों
को इसमें लाइये ॥ ९ ॥

स्तुष्व वर्धन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमा-
प्यानाम् ।

आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र संचति प्रतिमानं
पृथिव्याः ॥ १० ॥

स्तु॒ष्व । व॒र्ष्मन् । पु॒रु॒ष्व॒र्त्त॒मानम् । स॒म् । ऋ॒भ्वा॒णम् । इ॒न्द्र॒ज॒न॒मम् ।
आ॒प्तम् । आ॒प्त्या॒नाम् ।

आ । दर्श॑ति । शव॑सा । भुरि॑ऽओजाः । म । स॒त्त॒ति । म॒ति॒ऽमान॑म्
पृथि॒व्याः ॥ १० ॥

हे स्तोतः ! अनेक मार्गोंमें विचरण करने वाले परम तेजस्वी,
श्रेष्ठ स्वामी, आप पुरुषोंके गुणोंको प्राप्त हुए इन्द्रकी स्तुति कर
यह पृथिवीकी प्रतिमारूप महाबली इन्द्र यज्ञको देखने हुए यज्ञमें
संलग्न हो रहे हैं ॥ १० ॥

इ॒मा ब्र॒ह्म बृ॒हद्दि॒वः कृ॒णव॒दिन्द्रा॑य शू॒यम॑ग्नि॒यः स्व॒र्पाः ।
म॒हो गो॒त्रस्य॑ क्ष॒यति॑ स्व॒राजा॒ तुर॑श्चिद् वि॒श्वम॑र्णवत्
तप॑स्वान् ॥ ११ ॥

इ॒मा । ब्र॒ह्म । बृ॒हत्॒ऽदि॒वः । कृ॒णव॒त् । इन्द्रा॑य । शू॒यम् । अ॒ग्नि॒यः ।
स्वः॑ऽस्ताः ।

म॒हः । गो॒त्रस्य॑ । क्ष॒यति॑ । स्व॒ऽराजा॑ । तुरः॑ । चि॒त् । वि॒श्वम् ।
अ॒र्णव॑त् । तप॑स्वान् ॥ ११ ॥

स्वर्गका सेवन करनेकी इच्छा वाला यह श्रेष्ठ राजा महास्वर्ग
के अधिपति इन्द्रके लिये इन बड़े २ स्तोत्रोंको करता हुआ इन्द्र
को सुख देता है, और स्वर्गका राजा शीघ्रता करने वाला तपस्वी
इन्द्र मेघके जलका क्षय करता हुआ अर्थात् बसको बरसाता हुआ
जगत्को जलपूर्ण करता है ॥ ११ ॥

ए॒वा म॒हान् बृ॒हद्दि॒वो अथ॒र्वावो॑च॒त् स्वां त॒न्व १ मि॒न्द्रमे॒व

स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिमे हिन्वन्ति चैने शर्वसा
वर्धयेन्ति च ॥ १२ ॥

एव । महान् । बृहत् । दिवः । अथर्वा । अवोचत् । स्वाम् । तन्वम् ।
इन्द्रम् । एव ।

स्वसारी । मातरिभ्वरी इति । अरिमे इति । हिन्वन्ति । च ।
एने इति । शर्वसा । वर्धयेन्ति । च ॥ १२ ॥

अपनेको इन्द्र मानने हुए परमपकाशवान् महर्षि अथर्वाने इस
प्रकार कहा था, कि-निष्पाप मातरिभ्वरी बहिर्ने इसको प्रसन्न
करती हैं और बलको बढ़ाती हैं ॥ १२ ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य
उद्यन् ।

दिवाकरोतिं घुम्नैस्तमांसि विश्वांतारीद् दुरितानि
शुक्रः ॥ १३ ॥

चित्रम् । देवानाम् । केतुः । अनीकम् । ज्योतिष्मान् । प्रदिशः ।
सूर्यः । उत्पद्यन् ।

दिवाऽकरः । अति । घुम्नैः । तमांसि । विश्वा । अतारीद् ।
दुऽइतानि । शुक्रः ॥ १३ ॥

यह पूजनीय, किरणोंके समूह वाले ज्ञापक ज्योतिः भरे हुए

दिशाओंकी ओरको उठते हुए अपने मकाशोंसे दिन कर देते हैं, सब अंधकारोंको तर जाते हैं और यह वीर्य सम्पन्न इन्द्र सब पापोंके पार जाते हैं अर्थात् उनको नष्ट कर डालते हैं ॥ १३ ॥

चित्रं देवानां मुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्ताद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यं आत्मा जग-
तस्तस्थुषश्च ॥ १४ ॥

चित्रम् । देवानाम् । उद । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य ।
वरुणस्य । अग्नेः ।

आ । अपात् । द्यावापृथिवी इति । अन्तरिक्षम् । सूर्यः । आत्मा ।
जगतः । तस्थुषः । च ॥ १४ ॥

यह पूजनीय, किरणोंका जो समूह उदय हो रहा है, यह मित्र वरुण और अग्निका चक्षु है । यह जो सूर्य हैं यह जंगम और स्यावरके आत्मा हैं अर्थात् सर्वभूतानुपवेशी हैं, यह सूर्यदेव अपनी महिमासे द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको भर देते हैं ॥ १४ ॥

सूर्यो देवीमुपसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति
पश्चात् ।

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय
भद्रम् ॥ १५ ॥

सूर्यः । देवीम् । उपसम् । रोचमानाम् । मर्यः । न । योषाम् ।
अभि । एति । पश्चात् ।

यत्र । नरः । देवस्यन्तः । युगानि । विस्तन्वते । मति । भद्राय ।
भद्रम् ॥ १५ ॥

इति नवमेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

जैसे मरणधर्मी पुरुष स्त्रीके पीछे जाता है, इसी प्रकार यह सूर्यदेव दमकती हुई देवी उपाको प्राप्त होते हैं, उस समय पुरुष दिनोंको देवताओंके उपयोगमें लाते हुए भद्र सूर्यके लिये (अर्थ आदि) भद्र कार्योंको करते हैं ॥ १५ ॥

नवम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त (७२३)

वज्रपुनःस्तोमाख्ययोरेकादयोः “त्वं न इन्द्रा भर” इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “वज्रे पुनःस्तोमे त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा पवित्रादिषु राजमूयैकादेषु एतस्य विनियोगः “अथा हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा वैदस्वरसाम्नोस्तुवहयोः प्रथमयोरहोः एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “वैदस्वरसाम्नोस्त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा चतुरहाणां तृतीयेष्वहःसु अस्य विनियोगः “आयन्त इव सूर्यम्” [२०. ५८] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अभ्यासङ्गयपञ्चशारदीययोः पञ्चाहयोर्द्वितीयेदनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “अभ्यासङ्गयपञ्चशारदीययोर्द्वितीये त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. ३]

तथा अभिसवस्यायुराख्येदनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “आयुषि त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा पृष्ठयपट्टहस्य तृतीयेदनि अस्य विनियोगः “इन्द्रेण संहि दत्तसे” [२०. ४०] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा द्वादशाहस्य च्छन्दोमन्त्र्यहस्य प्रथमान्त्यघोरहोः “त्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] “य एक इद् विदयते” [२०. ६३. ४] एतौ उक्थस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवनः । तद् उक्तं वैताने । “द्वादशाहस्य च्छन्दोमन्त्र्यहस्योस्तुत्वं न इन्द्रा भर य एक इद् विदयत इति” इति [वै० ८. ४] ॥

वज्र और पुनःस्तोम नामक एकाहोंमें “त्वं न इन्द्रा भर” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वज्रे पुनःस्तोमे त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें इसका विनियोग “अथा हीन्द्रा गिर्वणः” (२० । १००) के साथ कह दिया है ।

तथा तीन दिनमें होने वाले वैदस्वरसामोंमें प्रथम दिन यह उक्थस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वैदस्वरसामोस्तुत्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा चतुरहोंके तीसरे दिनोंमें इसका विनियोग “आयन्त इव सूर्यम्” (२० । ५८) के साथ कह दिया है ।

तथा अभ्यासङ्ग्य पञ्चशारदीय पञ्चाहोंके द्वितीय दिनोंमें यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अभ्यासङ्ग्यपञ्चशारदीययोर्द्वितीये त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा अभिसवके आयु नामक दिनमें यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“आयुपि त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा पृष्ठयपहके तीसरे दिनमें इसका विनियोग “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” (२० । ४०) के साथ कह दिया है ।

तथा द्वादशाह और छन्दोमन्त्र्यहके प्रथम और अन्तिम दिनों में “त्वं न इन्द्रा भर” (२० । १०८) “य एक इद् विदयते”

(२० । ६३ । ४) ये यथाक्रम उच्यन्ते स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वादशाहस्य च्छन्दोमयमान्त्ययोस्त्वं
न इन्द्रा भर य एक इह विदयत इति (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनापहम् ॥ १ ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । आ । भर । ओजः । नृम्णम् । शतक्रतो इति
शतऽक्रतो । विचर्षणे ॥ आ । वीरम् । पृतनाऽपहम् ॥ १ ॥

हे विशेषरूपसे द्रष्टा शतक्रतु इन्द्र ! हममें धन और बलको
स्थापित करिये और शत्रुओंकी सेनाओंका पराभव करने वाले
वीर-पुत्र-को दीजिये ॥ १ ॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो वभूविथ ।
अधां ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

त्वम् । हि । नः । पिता । वसो इति । त्वम् । माता । शतक्रतो
इति शतऽक्रतो । वभूविथ ॥ अधां । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥ २ ॥

हे शतक्रतो ! आप हमारे पिता हैं और हे वसो इन्द्र ! आप
हमारी माता हैं, इसलिये हम आपसे सुखकी याचना करते हैं २
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुपं ब्रुवे शतक्रतो ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

त्वाम् । शुष्मिन् । पुरुहूत । वाजयन्तम् । उप । ब्रुवे । शतक्रतो
इति शतऽक्रतो । सः । नः । रास्व । सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

हे बलवन् शतक्रतो ! मैं आप हविरूप अन्न चाहने वाले की स्तुति करता हूँ, इस लिये आप सुन्दर वीरतासे सम्पन्न धन दीजिये ॥ ३ ॥

नवम अष्टादशमे द्वादश सूक्तसमाप्त (७२४)

साहस्राख्याश्चत्वार एकाह ब्राह्मणपठिताः । तेषां मध्यमद्वितीययोः “स्वादोरित्या विपूवतः” इति पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “साहस्राद्ययोः स्वादोरित्या विपूवत इति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा अश्वमेधग्रहस्य द्वितीयेदनि अस्य विनियोगः “वाचमष्टापदीमहम्” [२०. ४२] इत्यनेन सह उक्तः ॥

साहस्र नामक चार एकाह ब्राह्मणमें पठित हैं । उनमेंसे पहिले दूसरेमें “स्वादोरित्या विपूवतः” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“साहस्राद्ययोः स्वादोरित्या विपूवतः” (वैतानसूत्र ८. १) ॥

तथा अश्वमेध ग्रहके द्वितीय दिनमें इसका विनियोग “वाचमष्टापदीमहम्” (२०. ४२) के साथ कह दिया है ।

स्वादोरित्या विपूवतो मध्वः पिवन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सयावरीवृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीनुं स्वराज्यम् ॥ १ ॥

स्वादोः । इत्या । विपूवतः । मध्वः । पिवन्ति । गौर्यः ।

याः । इन्द्रेण । सयावरीः । वृष्णा । मदन्ति । शोभसे । वस्वीः ।

अनु । स्वराज्यम् ॥ १ ॥

विपुवत् यज्ञके स्वादु मधुका स्तोत्र की बाणियें इस प्रकार पान करती हैं, कि-वह इन्द्रसे संयुक्त होकर रात्रियों तक इन्द्र को हर्षमें भरे रखती हैं, उसके अनन्तर हे यज्ञमान ! तू भी स्वराज्य पर शोभा पावेगा ॥ १ ॥

तां अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्र हिन्वन्ति सायकं वस्वीस्तु
स्वराज्यम् ॥ २ ॥

ताः । अस्य । पृशनायुवः । सोमम् । श्रीणन्ति । पृश्नयः ।

प्रियाः । इन्द्रस्य । धेनवः । वज्रम् । हिन्वन्ति । सायकम् ॥ २

वह पृशनायुव पृश्नियें इसके सोमको पका रही हैं, यह इन्द्रकी धेनुएँ इन्द्रके सायक और वज्रको मेरित करती हैं। इन रात्रियों के अनन्तर आप स्वराज्य पर आरुढ़ हूजिये ॥ २ ॥

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

व्रतान्यस्य सश्विरे पुरुषि पूर्वचित्तये वस्वीस्तु स्व-
राज्यम् ॥ ३ ॥

ताः । अस्य । नमसा । सहः । सपर्यन्ति । प्रचेतसः ।

व्रतानि । अस्य । सश्विरे । पुरुषि । पूर्वचित्तये । वस्वीः ।

अनु । स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

वे मकृष्ट ज्ञान वाली बाणियें इस (इन्द्र) की हविके साथ

पूजा करती हैं, इस यंजमानके बड़े २ व्रत इस पूर्वचित्ति इन्द्रमें संयुक्त होते हैं और यज्ञकी रात्रियोंके अनन्तर आप स्वराज्य पर आरुढ़ होंगे ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त (७२५)

विराडादिषु सप्तस्वेकाहेषु “इन्द्राय मद्धने सुतम्” [२०.११०] “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” [२०. १११] एतौ आज्योक्थस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विराजि भूमिस्तोमे वनस्पतिसवे त्विष्यपचित्योरिन्द्राग्न्योः स्तोम इन्द्राग्न्योःकुलाय इन्द्राय मद्धने सुतं यत् सोममिन्द्र विष्णवीति” इति [वै० ८. २]. ॥

विराट् आदि सात एकाहोंमें “इन्द्राय मद्धने सुतम्” (२०।१००) “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” (२० । १११) यह आज्योक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विराजि भूमिस्तोमे वनस्पतिसवे त्विष्यपचित्योरिन्द्राग्न्योः स्तोम इन्द्राग्न्योः कुलाय इन्द्राय मद्धने सुतं यत् सोममिन्द्र विष्णवि” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्राय मद्धने सुतं परि शोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥

इन्द्राय । मद्धने । सुतम् । परि । शोभन्तु । नः । गिरः ॥ अर्कम् । अर्चन्तु । कारवः ॥ १ ॥

हमारे इस सेवनीय यज्ञमें अभिषुत सोमकी हमारी वाणियों स्तुति करें और स्तोता पूजनीय इन्द्रका पूजन करें ॥ १ ॥

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

(५०४) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यस्मिन् । विश्वाः । अधि । श्रियाः । रणन्ति । सप्त । सम्ऽसदः ॥

इन्द्रम् । सुते । हवामहे ॥ २ ॥

सात संपत्तिरूपा सब सभाएँ जिनको प्राप्त होती हैं, उन इन्द्र-
देवका हम सोमका अभिषेक होने पर आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

त्रिकंदुकेषु चेतनं देवासां यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु
नो गिरः ॥ ३ ॥

त्रिऽकंदुकेषु । चेतनम् । देवासः । यज्ञम् । अत्नत ॥ तम् । इत् ।
वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

त्रिकंदुकोंने इस ज्ञानप्रद यज्ञको आरंभ किया था, उसको
हमारी वाणियों बढ़ावें ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (७२६)

“यत् सोममिन्द्र विष्णुवि” इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन
सह उक्तः ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयैकाहेषु चतुरहादिषु च अस्य विनि-
योगः “अथा हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अभिसवस्य षष्ठमहः उक्थ्यसंस्थं चेद्भवति तदा “य
एक इह विदयते” [२०. ६३. ४] “यत् सोममिन्द्र विष्णुवि”
[२०. १११] एतां उक्थ्यस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं
वैताने । “षष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इह विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णु-
वीति” इति [वै० ८. ३] ॥

“यत् सोममिन्द्र विष्णुवि” का विनियोग पहिले सूक्तके साथ
कह दिया है ।

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें तथा चतुरह आदिमें भी इसका विनियोग “अथा हीन्द्र गिर्वणः” (२० । १००) के साथ कह दिया है ।

तथा अभिसवका द्धठा दिन यदि उवध्य-संस्थ होता है तो “य एक इह विद्यते” (२० । ६३ । ४) यत् सोममिन्द्र विष्णवि” (२० । १११) ये विकल्पित उवयस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पष्ठमुवध्यं चेत् य एक इह विद्यते यत् सोममिन्द्र विष्णवीति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

यत् सोममिन्द्र विष्णांवि यद्वा घ त्रित आप्तये । यद्वा
मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥

यत् । सोमम् । इन्द्र । विष्णवि । यत् । वा । घ । त्रिते । आप्तये ।

यत् । वा । मरुत्सु । मन्दसे । सम् । इन्दुभिः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जो आप त्रितमें यज्ञमें वा आप्तय तथा मरुत्में हर्ष में भरते हैं वह जलके साथके सोमसे ही हर्षमें भरते हैं ॥ १ ॥

यद्वा शक्र परांजति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माक-
मित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥

यत् । वा । शक्र । परांजति । समुद्रे । अधि । मन्दसे ॥ अस्मा-

कम् । इत् । सुते । रण । सम् । इन्दुभिः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जो आप बहुत दूरके समुद्रमें वा हमारे यज्ञमें हर्षित होते हैं वह जल मिले सोमसे ही होते हैं ॥ २ ॥

यद्वासिं सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा
यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥

यत् । वा । अ॒सि । सु॒न्व॒तः । वृ॒धः । य॒ज॒मा॒न॒स्य । स॒त्प॒ते ॥
उ॒क्थे । वा । य॒स्य । र॒ण्य॒सि । स॒म् । इ॒न्दु॒भिः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके पंचदशं सूक्तम् ॥

हे सत्पते ! जो आप सोमाभिषव करने वाले यजमानके बढ़ाने वाले हैं, वा जिसके उक्थमें रमणीय होते हैं वह सोमसे ही होते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें पन्द्रहवाँ सूक्त समाप्त (७२७)

विनुत्यभिभूत्यादिषु अष्टसु द्वन्द्वैकाहेषु “यदद्य कच्च वृत्रहन्”
[२०. ११२] “उभयं शृणवच्च नः” [२०. ११३] एतौ
आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विनुत्यभिभूत्यो
राशिमराशयोः शदोपशदयोः सम्राट्स्वराजोर्यदद्य कच्च वृत्रहन्नु-
भयं शृणवच्च न इति” इति [वै० ८. २] ॥

विनुति अभिभूति आदि आठ द्वन्द्वैकाहोंमें “यदद्य कच्च वृत्र-
हन्” (२० । ११२) “उभयं शृणवच्च नः” (२० । ११३)
ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि—“विनुत्यभिभूत्यो राशिमराशयोः शदोपशदयोः सम्राट्-
स्वराजोर्यदद्य कच्च वृत्रहन्नुभयं शृणवच्च न इति” (वैतानसूत्र ८।२)
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगां अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते
वशे ॥ १ ॥

यत् । अ॒द्य । क॒च्च । वृ॒त्र॒ह॒न् । उ॒त्स॒म्रा॒ताः । अ॒भि । सूर्य ॥
सर्व॑म् । तत् । इ॒न्द्र । ते । व॒शे ॥ १ ॥

हे मेघोंका संहार करने वाले वृत्रहन् सूर्यात्मक इन्द्र ! आप जब कभी उदय होते हैं, वह सब हे इन्द्रात्मक इन्द्र ! आपके वशमें है ॥ १ ॥

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत्
सत्यमित् तव ॥ २ ॥

यत् । वा । प्रवृद्ध । सत्पते । न । मरै । इति । मन्यसे ॥

उतो इति । तत् । सत्पम् । इत् । तव ॥ २ ॥

अथवा हे सत्पते इन्द्र ! जब आप यह विचारते हैं, कि—यह न मरे वह आपका विचार सत्य ही होता है ॥ २ ॥

ये सोमांसः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वास्ताँ
इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥

ये । सोमांसः । परावति । ये अर्वावति । सुन्विरे ॥ सर्वान् ।
तान् । इन्द्र । गच्छसि ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

जो सोम दूर वा पास पर निचोड़े जाते हैं, हे इन्द्र ! उन सबके पास आप प्राप्त होने हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें षोडश सूक्त समाप्त (८२८)

विनुत्यभिभूत्यादिषु “उभयं मृणवच्च नः” इत्यस्य विनियोगः
पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

तथा त्रिवृदादिषु अस्य विनियोगः “वयमेनमिदा ह्यः” [२०.
६७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

विनुति अभिभृति आदिमें इसका विनियोग पूर्वसूक्तके साथ कह दिया है ।

तथा त्रिष्टुप् आदिमें इसका विनियोग “वयमेनमिदा ऋः” (२० । ६७) के साथ कह दिया है ।

उभयं शृण्वच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्

उभयम् । शृण्वत् । च । नः । इन्द्रः । अर्वाक् । इदम् । वचः ।

सत्राच्या । मघवा । सोमपीतये । धिया । शविष्ठः । आ । गमत्

दोनों लोकोंमें हित करने वाले हमारे इस वचनको इन्द्रदेव अभिमुख होकर सुनें, कि-सत्यात्मिका बुद्धिसे बलवान् इन्द्रदेव सोमपान करनेके लिये आरहे हैं ॥ १ ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिपणं निष्टतत्तुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि पीदसि सोमकामं हि ते मनः

तम् । हि । स्वराजम् । वृषभम् । तम् । ओजसे । धिपणे इति ।

निःस्ततत्तुः ।

उत । उपमानाम् । प्रथमः । नि । पीदसि । सोमकामम् । हि । ते ।

मनः ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

उन अपनी गभासे दमरूने वाले, कामनाओंकी पूर्ति करने वाले इन्द्रको बल पानेके लिये दुलोक और पृथ्वीलोक तनू करते

हैं । तुम इनमेंसे उपमानाको प्रथम प्राप्त होते हो, तुम्हारा मन सोमकी इच्छा वाला है ॥ २ ॥

नवम अनुषाक्तमे सप्तदशौ सूक्त समाप्त (७२९)

पवित्रादिषु राजमूर्त्यैकादेषु “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इत्यस्य विनियोगः “अथा हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] इत्यनेन सह उक्तः

तथा अभिसव पटहस्य गवाख्येहनि “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इत्येष उक्त्वस्तोत्रियो भवति । तद् उत्तं चैताने । “पटहस्य गव्य-भ्रातृव्यो अना त्वमिति” इति [वै० अ. ३] ॥

पवित्र आदि राजमूर्त्य एकादशोंमें “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इसका विनियोग “अथा हीन्द्र गिर्वणः” (२० । १००) के साथ कह दिया है ।

तथा अभिसव पटहके गवाख्य दिनमें अभ्रातृव्यो अना त्वम्” यह उक्त्वस्तोत्रिय होता है । इसी बातको चैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पटहस्य गव्यभ्रातृव्यो अना त्वमिति” (चैतान-सूत्र अ. ३) ॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जुनुपां सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

अभ्रातृव्यः । अना । त्वम् । अनापिः । इन्द्र । जुनुपां । सनात् ।
असि ॥ युधा । इत् । आपित्वम् । इच्छसे ॥ १ ॥ ।

हे इन्द्र ! आप शत्रुरहित हैं, अना और अनापि हैं, आप प्रकट होते ही संभक्ति करते हैं और युद्धमें आप आपित्वको चाहते हैं ॥ १ ॥

नकीं रेवन्तं सख्यायं विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।

(५१०) अथर्ववेदसंहिता समाप्य-भाषानुवादसहित

यदा कृणोषि नदन्तुं समूहस्यादित् पितेव ह्यसे २
नकिः । रुक्न्तम् । स्रुपाय । बिन्दसे । पीयन्ति । ते । मृताश्च ।
यदा । कृणोषि । नदन्तुम् । सम् । ऊहसि । मात् । इत् । पित्रा-
श्च । ह्यसे ॥ २ ॥

इति नवपेनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

आप घनवान्को मित्रनाके लिये प्राप्त करते हैं । मृताशु आप
को पुष्ट करते हैं, जब आप अपने समूहकी गर्जनाको करते हैं
तब आप पित्राकी समान बुलाये जाने हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें अष्टादशों सूक्त समाप्त (७२०)

साधःक्रामिधानेषु एकादेषु द्येनयागर्जितेषु “अहमिद्धि पितु-
प्परि” इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैनाने । “साधः-
क्रेषु द्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुप्परीति च” इति [घै० ८. २]

द्येनयागरहित साधःक्रामिधान एकादशोंमें “अहमिद्धि पितु-
प्परि” यह आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैनानमूत्रमें
कहा है, कि-“साधःक्रेषु द्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुप्परीति च”
(वैनानमूत्र (८. २)) ॥

अहमिद्धि पितुप्परि मेधामृतस्य जग्रमं । अहं सूर्यं
इवाजनि ॥ १ ॥

अहम् । इत् । हि । पितुः । परि । मेधाम् । मृतस्य । जग्रमं ॥

अहम् । सूर्यः । इव । अजनि ॥ १ ॥

मैंने पित्रा ब्रह्माकी मेधाकी भली, प्रकार ग्रहण कर लिया है ।
और मैं सूर्यकी समान भूकट हुआ हूँ ॥ १ ॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि, कण्ववत् । येनेन्द्रः
शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥

अहम् । प्रत्नेन । मन्मना । गिरः । शुम्भामि । कण्ववत् ॥
येन । इन्द्रः । शुष्मम् । इत् । दधे ॥ २ ॥

मैं माचीन मननीय स्तोत्रसे कण्व ऋषिकी समान बाणियों
को अलंकृत करता हूँ । इससे इन्द्रमें बलको स्थापित करता हूँ २
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्
वर्धस्व सुष्टुतैः ॥ ३ ॥

ये । त्वाम् । इन्द्र । नः । तुष्टुवुः । ऋषयः । ये । च । तुष्टुवुः ॥
मम । इत् । वर्धस्व । सुष्टुतैः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! जिन ऋषियोंने आपकी स्तुतिकी है वा जिन ऋषियों
ने आपकी स्तुति न की हो, (उनकी ओर कुछ ध्यान न देकर)
आप मुझसे ही भली प्रकार स्तुत होकर बढ़िये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें वन्तीसवां सूक्त समाप्त (७३१)

अतिरात्राणां सर्वस्तोमाख्ययोः “मा भूमनिष्ठया इव” [२०.
११६] “विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे” [६. १५. ६] एतौ
पृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अतिरात्राणां
सर्वस्तोमयोर्मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठइति”
[वै० ८. २] ॥

तथा चतुरहाणां सर्वेष्वहःसु एतौ पृष्ठस्तोत्रियौ विकल्पितौ

भवतः । तद् उक्तं वैताने । “सर्वेषु मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे इति” इति [वै० ८. ३] ॥

अतिरात्रोको सर्वस्तोमाख्योर्मे “मा भूम निष्ठया इव” (२०। ११६) “विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे” (६। १५। ६) ये यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अतिरात्राणां सर्वस्तोमयोर्मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे इति” (वैतानसूत्र ८। २) ॥

तथा चतुरहोके सब दिनोंमें ये विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सर्वेषु मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे इति” (वैतानसूत्र ८। ३) ॥

मा भूम निष्ठया इवेन्द्र त्वदरणा इव ।

वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोपांसो अमन्महि ?

मा । भूम । निष्ठयाऽइव । इन्द्र । त्वत् । अरणाऽइव ।

वनानि । न । प्रजहितानि । अद्रिवः । दुरोपांसः । अमन्महि ?

हम आपसे उच्छ्रय न होनेके कारण दुष्ट शत्रुसे न हों, हम आपकी त्यागने योग्य वस्तुओंको दुष्ट पाक (दावानल) से संपन्न वनोंकी समान मानें ॥ १ ॥

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।

सकृत् सु ते महता शूर राघसानु स्तोमं मुदीमहि ?

अमन्महि । इत् । अनाशवः । अनुग्रासः । च । वृत्रहन् ।

सकृत् । सु । ते । महता । शूर । राघसा । अनु । स्तोमम् ।

मुदीमहि ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके विंशं सूक्तम् ॥

हे वृत्रहन् ! हम अपनेको आपसे नाशरहित + और अनुग्रह समझें
हे शूर ! हम आपको एक बारकी ही श्रद्धासे स्तोम करने पर
आनन्द पावें ॥ २ ॥

नवम अनुष्ठाकमें चौसवाँ सूक्त समाप्त (७३२)

त्रिवृदादिषु “पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” इत्यस्य विनियोगः
“वपमेनमिदा ह्यः” [२०. ६७] इत्यनेन सह उक्तः ॥ तथा
तनूषष्ठे पङ्क्ते अस्य विनियोगः “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्”
[२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

त्रिवृत् आदिमें “पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” का विनियोग
“वपमेनमिदा ह्यः” (२० । ६७) के साथ कह दिया है ।

तथा तनूषष्ठ पङ्क्तिमें इसका विनियोग “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्”
(२० । ८१) के साथ कह दिया है ।

पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुपाव ह्यश्वद्विः
सोतुर्बाहुभ्यां सुयंतो नार्वी ॥ १ ॥

पि॒व । सोम॑म् । इन्द्र॑ । मन्द॑तु । त्वा । यम् । ते । सु॒पाव॑ ।

ह॒रि॒ऽअ॒श्व । अ॒द्विः ।

सोतुः । बाहु॑भ्याम् । सुय॑तः । न । अ॒र्वा ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप सोमका पान करिये, हे ह्यश्व ! जिसको
पत्थरने निचोड़ा है वह सोम आपको हर्ष प्रदान करे । सघे हुए
घोड़ेकी समान यह पत्थर अभिषव करने वालेके हाथमें रहा या
यस्ते मदो युज्यंश्चासुरस्ति येनं वृत्राणि ह्यश्व हंसि
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

(५१४) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यः । ते । मदः । युज्यः । चारुः । अस्ति । येन । वृत्राणि ।
हरिऽअरव । हंसि ।

सः । त्वाम् । इन्द्र । मभूरसो इति मभुज्वसो । ममच ॥ २ ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! जो आपका मद युज्य और चारु है और जिससे आप आवरक मेघोंको विदीर्ण करते हैं ।
हे मभूरसो इन्द्र ! वह आपको हर्ष देय ॥ २ ॥

वोधा सु मे मघवन् वाचमेमांयां ते वसिष्ठो अर्चति
प्रशस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सधमादे जुपस्व ॥ ३ ॥

वोध । सु । मे । मघवन् । वाचम् । आ । इमाम् । याम् । ते ।

वसिष्ठः । अर्चति । प्रशस्तिम् ।

इमा । ब्रह्म । सधमादे । जुपस्व ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे धनवान् इन्द्र ! आप मेरी इस वाणीको भली प्रकार जानिये कि-जिस प्रशस्तिकी वशिष्ठ पूजा करते हैं और इन मन्त्रसमूह का आप यज्ञमें सेवन करिये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें इसीसर्वाँ सूक्त समाप्त (७३३)

चातुर्मास्यवैश्वदेवादीनां सप्तानां व्यहाणां प्रथमेवहःसु “शग्धू
पु शचीपते” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने ।
“चातुर्मास्यवैश्वदेवगर्गवैदरुद्रन्दोमवत्पराक्रान्तर्वैश्वदेवमेघव्यहाणां
शग्धू पु शचीपत इति” इति [वै० ऋ० ३] ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीने अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा” [२०, ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

साकमेयज्यहस्य प्रथमेदिनि “इन्द्रमिद् देवतातये” [२०, ११८, ३] इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । ‘साकमेयस्येन्द्रमिद् देवतातय इति’ इति [वै० ८. ३] ॥

चातुर्मास्य वैश्वदेव आदि सात ज्यहोंके प्रथम दिनोंमें “शग्ध्यु पु शचीपते” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी वातको वैतानमूत्र में कहा है, कि—“चातुर्मास्यवैश्वदेवगर्गवैदच्छन्दोमवत्पराक्रान्तर्वस्वश्वमेधज्याणां शग्ध्यु पु शचीपते” (वैतानमूत्र ८ । ३) ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीनमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते सचा” (२० । ५३) के साथ कह दिया है ।

साकमेय ज्यहके प्रथमदिन “इन्द्रमिद् देवतातये” (२० । ११८ । ३) यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी वातको वैतानमूत्रमें कहा है, है, कि—“साकमेयस्येन्द्रमिद् देवतातये” (वैतानमूत्र ८ । ३) ॥

शग्ध्यु ३ पु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

भगं न हि त्वां यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि १

शग्ध्यु । ऊं इति । सु । शचीपते । इन्द्र । विश्वाभिः । उतिभिः

भगम् । न । हि । त्वा । यशसम् । वसुविदम् । अनु । शूर ।

चरामसि ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि—आपकी सकल रत्नक शक्तियोंके द्वारा आपसे भाग्य और यश पानेके लिये हम आप धनलभकके अनुकूल चलें ॥ १ ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकुद् गवामस्युत्सो देव हिस्त्रययः ।

नकिर्हि दानं परिमर्धिपत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर २
 पारः । अश्वस्य । पुरुऽकृत् । गवाम् । असि । उत्सः । देव ।

हिरण्यगः ।

नकिः । हि । दानम् । परिऽमर्धिपत् । त्वे इति । यत्स्यद् । यामि ।
 तत् । आ । भर ॥ २ ॥

आप धन आदिको प्रचुर करने वाले हैं, पुरवासियोंके लिये अश्वरूप हैं अर्थात् उनको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने वाले हैं, आप गीर्भोंको बहुत करने वाले हैं, उत्सदेव और हिरण्यग हैं, आपकी दानकी कोई हिंसा नहीं कर सकता । मैं जिस २ वस्तु की इच्छासे आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ उस २ वस्तुको आप मुझमें भरिये ॥ २ ॥

इन्द्रमिद् देवतांतय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनां हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ३

इन्द्रम् । इत् । देवऽतांतये । इन्द्रम् । प्रऽयति । अध्वरे ।

इन्द्रम् । समीके । वनिनः । हवामहे । इन्द्रम् । धनस्य । सातये ३

हम यज्ञके लिये प्रयत् यज्ञमें इन्द्रका आवाहन करते हैं, इन्द्र की सेवा करने वाले हम युद्धके अवसर पर धनकी प्राप्तिके लिये इन्द्रका आवाहन करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रो मत्वा रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रं ह विश्वा भुवनानि येमिरिन्द्रं सुवानास इन्द्रवः ४

इन्द्रे । म॒हा । रोद॑सी इति । प॒म॒थत् । श॒वः । इन्द्रः । सूर्य॑म् ।
अ॒रोच॑यत् ।

इन्द्रे । ह॒ । वि॒र॒वा । भु॒व॒ना॒नि । ये॒मि॒रे । इन्द्रे । सु॒वा॒ना॒सः । इन्द्र॑वः
इति नवमेनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेवने अपनी महिमासे धावापृथिवीका विस्तार किया है,
इन्द्रात्मक यत्नसे सूर्यको दमका रक्खा है । सकल भुवन इन्द्रमें ही
आश्रित होते हैं, और इन्द्रके लिये सोम अभिपुत होते हैं ॥४॥

नवम अनुवाकमें धार्इसर्वा सूक्त समाप्त (७३४)

वैश्वदेवादित्र्यहेषु “अस्तावि मन्म पूर्व्यम्” इत्यस्य विनियोगः
“तमिन्द्रं वाजयामसि” [२०. ४७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

वैश्वदेव आदि त्र्यहोमें “अस्तावि मन्म पूर्व्यम्” का विनि-
योग “तमिन्द्रं वाजयामसि” (२०।४७) के साथ कह दिया है ।

अस्ता॑वि मन्मं पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

पूर्वा॑र्ध्न॒तस्य॑ बृ॒हती॑र॒नूप॑त स्तो॒तुमे॑धा अ॒सृ॒जत ॥१॥

अस्ता॑वि । मन्म । पूर्व्यम् । ब्रह्म । इन्द्राय । वोच॑त ।

पूर्वाः । अ॒र्ध्न॒तस्य॑ । बृ॒हतीः । अ॒नूप॑त । स्तो॒तुः । मे॒धाः । अ॒सृ॒जत १

मैं मननीय प्राचीन स्तोत्रसे इन्द्रकी स्तुति कर चुका हूँ अब
हे ऋत्विजों ! तुम इन्द्रके लिये मन्त्रका उच्चारण करो, तुम
इन्द्रकी यज्ञकी प्राचीन कालोंकी बड़ी २ ऋचाओंसे स्तुति करो,
स्तुति करने वालों की बुद्धि ऋचाओंमें संयुक्त होगई ॥ १ ॥

तु॒र॒ण्य॒वो मधु॑मन्तं घृ॒तश्रु॑तं वि॒प्रांसो अ॒र्कमा॑नृ॒चुः ।

अ॒स्मे र॒यिः प॑प्र॒थे वृ॒ण्यं श॒वोस्मे सु॒वा॒ना॒स इन्द्र॑वः २

तुर॒ण॒प॒वः । मधु॑ऽम॒न्तम् । घृ॒त॒ऽश्रु॒तम् । वि॒पा॒सः । अ॒र्कम् । आ॒नृ॒चुः॥
अ॒स्मे इति॑ । र॒यिः । प॒प्र॒थे । वृ॒ण्यम् । श॒वः । अ॒स्मे इति॑ ।
सु॒वा॒ना॒सः । इन्द्र॑वः ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके त्रयोविंशं सूक्तम् ॥

शीघ्रता करने वाले विप्र मधुमय घृतस्त्रावि पूजक (मन्त्र) की प्रशंसा करते हैं, इस यजमानके लिये धन विस्तृत होता है और वर्षक बल इसको प्राप्त होता है, और इन इन्द्रदेवके लिये सोम अग्निपुत होते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें गेहिसर्षा सूक्त समाप्त (७३५)

दशाहस्य गवामयनिकस्य अष्टमेहनि “यदिन्द्र प्रागपागुदक्” इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । उक्तं वैताने । “दशाहस्याष्टमे यदिन्द्र प्रागपागुदगिति” इति [वै० ८. ४] ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीने अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा” [२०. ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

दशाह गवामयनिकाको अष्टम दिनमें “यदिन्द्र प्रागपागुदक्” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“दशाहस्याष्टमे यदिन्द्र प्रागपागुदगिति” (वैतानसूत्र ८।४) ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीनमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते सचा” (२० । ५३) के साथ कह दिया है ।

यदिन्द्र प्रागपागुदहन्यग् वा ह्यसे नृभिः ।

सिमां पुरु नृपंतो अस्यानवेसिं प्रशर्ध तुर्वशं ॥१॥

यत् । इन्द्र । प्राक् । अपाक् । उदक् । न्यक् । वा । ह्यसे । नृभिः ।

सिम । पुरु । नृऽपंतः । असि । आनवे । असि । प्रऽशर्ध । तुर्वशं

हे इन्द्रदेव ! आप पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण जिस ओरसे भी मनुष्योंसे बुलाये जाते हैं हे सर्व ! हे प्रकृष्टरूपसे शत्रुओंका संहार करने वाले ! आप इस मनुष्यमें आनुके लिये हैं ॥ १॥
 यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे इन्द्र मादयसे सचा ।
 कण्वांसस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमिवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गंहि
 पत् । वा । रुमे । रुशमे । श्यावके । कृपे । इन्द्र । मादयसे । सचा ।
 कण्वासः । त्वा । ब्रह्मभिः । स्तोमिवाहसः । इन्द्र । आ । यच्छन्ति ।
 आ । गंहि ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

हे समर्थ इन्द्र ! आप रुम रुशम और श्यावकमें साथ ही साथ आनन्द उत्पन्न करते हैं । कण्वगोत्री स्तोमधारी ऋषि आपको (हवि) देते हैं आप आइये ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें चौथीसवाँ सूक्त समाप्त (७३६)

तनूपृष्ठे पढ़हे “अभि त्वा शूर नोनुमः” इत्यस्य विनियोगः
 “यद्वा घाव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ पढ़हमें “अभि त्वा शूर नोनुमः” का विनियोग
 “यद्वा घाव इन्द्र ते शतम्” (२० । ८१) के साथ कह दिया है ।

अभि त्वां शूर नोनुमोदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुपः १

अभि । त्वा । शूर । नोनुमः । अदुग्धाऽइव । धेनवः ।

ईशानम् । अस्य । जगतः । स्वऽदृशम् । ईशानम् । इन्द्र । तस्थुपः

हे शूर ! बिना दुही हुई धेनुओंकी समान हम आपको प्रेरित करते हैं । आप इस चर जगत्के ईश्वर हैं । स्वर्गके द्रष्टा हैं और हे इन्द्र ! आप स्थावर जगत्के ईश्वर हैं ॥ १ ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनि-
निष्यते ।

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवा-
महे ॥ २ ॥

न । त्वाऽवान् । अन्यः । दिव्यः । न । पार्थिवः । न । जातः ।
न । जनिष्यते ।

अश्वऽयन्तः । मघऽवन् । इन्द्र । वाजिनः । गव्यन्तः । त्वा ।
हवामहे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आपकी समान और कोई दिव्य पदार्थ नहीं है, और कोई पार्थिव माणी आप की समान नहीं है, व कोई हुआ है और न कोई होगा । हे मघवन् ! इन्द्र ! हम गौ अश्व और अन्नकी मार्थना करते हुए आपका आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें पञ्चोत्तमो सूक्त समाप्त (५३७)

तनूषृष्टे पङ्क्ति “रेवतीर्नः सधमादे” इत्यस्य विनियोगः “यद्वाव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूषृष्ट पङ्क्ति “रेवतीर्नः सधमादे” का विनियोग “यद्वाव इन्द्र ते शतम्” (२०. ८१) के साथ कइ दिया है ।

रेवतीर्नः सधमाद् इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो
याभिर्मदेम ॥ १ ॥

रेवतीः । नः । सधमादे । इन्द्रे । सन्तु । तुविवाजाः ॥
क्षुमन्तः । याभिः । मदेम ॥ १ ॥

हमारे यज्ञमें इन्द्र के आने पर हम यज्ञान्न और साधारण अन्न
की धनमयी वस्तुओंसे सम्पन्न होवें और उनसे हम आनन्द पावें ?
आ ध त्वावान् त्मनास्तोतृभ्यो घृष्णवियानः ।
ऋणोरत्तं न चक्रयोः ॥ २ ॥

आ । ध । त्वावान् । त्मना । आस्तः । स्तोतृभ्यः । घृष्णो इति ।
इयानः ॥ ऋणोः । अत्तम् । न । चक्रयोः ॥ २ ॥

हे घृष्णो ! स्ताताओंकी कृपासे आपकी दयाको पाने वाला
पुरुष गमनशील रथके दोनों चक्रोंमें रहने वाले अत्तकी समान
आप्त होजाता है ॥ २ ॥

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणो-
रत्तं न शचीभिः ॥ ३ ॥

आ । यद् । दुवः । शतक्रतो इति शतक्रतो । आ । कामम् ।
जरितृणाम् । ऋणोः । अत्तम् । न । शचीभिः ॥ ३ ॥

-इति नवमेनुवाके षड्विंशं सूक्तम् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! आपकी सेवा करने वाला पुरुष आपकी

शक्तियोंको पाकर स्तोत्राओंकी कामनाओंको गमनशील रखके
अक्षकी सगान (पूर्ण करनेमें मुख्य) होता है ॥ ३ ॥

नयम अनुयाकमें छम्बीसवाँ सूक्त समाप्त (७३८)

विपुवति सौर्यपृष्ठे माध्यन्दिने “चित्रं देवानामुदगादनीकम्”
[२०. १०७. १४] “तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम्” [२०.
१२३] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने ।
“चित्रं देवानामुदगादनीकं तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम् इति
पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ” इति [वै० ६. ३] ॥

विपुवत् सौर्यपृष्ठ माध्यन्दिनमें “चित्रं देवानामुदगादनीकं”
(२० । १०७ । १४) “तत् सूर्यस्य देवत्वम् तन्महित्वम्” (२०।
१२३) यह पृष्ठस्तोत्रिय और अनुरूप होते हैं । इसी बातको
वैतानसूत्रमें कहा है, कि-चित्रं देवानामुदगादनीकं तत् सूर्यस्य
देवत्वं तन्महित्वं इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतानसूत्र ६ । ३)

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादादात्री वासस्तनुते सिमस्मै
तत् । सूर्यस्य । देवत्वम् । तत् । महित्वम् । मध्याः । कर्तोः । विस्त-
तम् । सम् । जभार ।

यदा । इत् । अयुक्त । हरितः । सधस्थात् । आत् । रात्री ।
वासः । तनुते । सिमस्मै ॥ १ ॥

यह सूर्यदेवका देवत्व और माहात्म्य है, कि-जब वह किरणों
को अपनेमें अनुभवेश कराते हैं तो फैले हुए कामोंको बीचमें ही
समेट लेते हैं, और तब इस भूलोकके लिये पृथ्वी अन्वहारको

चारों ओरसे समेट कर वस्त्ररूपमें अर्पण करती है (वह अन्य-
कार सूर्यसे नष्ट होता है अतः सूर्य महिमामय हैं) ॥ १ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे
अनन्तमन्यद् रुशंसस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं
भरन्ति ॥ २ ॥

तत् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिऽक्षे । सूर्यः । रूपम् । कृणुते ।
द्योः । उपऽस्थे ।

अनन्तम् । अन्यत् । रुशत् । अस्य । पाजः । कृष्णम् । अन्यत् । हरितः ।
सम् । भरन्ति ॥ २ ॥

इति नवमेऽनुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

मैं मित्र और वरुण देवताके माहात्म्यका वर्णन करता हूँ,
कि—सूर्यदेव द्युलोकमें अपना रूप करते हैं, इनका दमकता हुआ
तेज अनन्त है, दूसरा वारुण तेज कृष्ण है उसको सूर्यकी किरणें
भली प्रकार भरण करती हैं—खींच कर लेजाती हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें सत्ताईसवां सूक्त समाप्त (७३९)

तनूपृष्ठे पदहे “कया नश्चित्र आ भुवत्” इत्यस्य विनियोगः
“यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ पदहमें “कया नश्चित्र आ भुवत्” का विनियोग “यद्
द्याव इन्द्र ते शतम्” (२० । ८१) के साथ कह दिया है ।

कया नश्चित्र आ भुवद्दूती सदावृधः सखा । कया
शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

कया । नः । चित्रः । आ । भुवत् । ऊनी । सदाऽवृधः । सत्वा ॥

कया । शचिष्ठया । वृता ॥ १ ॥

सदा वृद्धि करने वाले, चापनीय, सखा किस रक्षक शक्ति के द्वारा हमारी रक्षा करने वाले होंगे वह रक्षकत्ववृत्ति किस शक्तिमती धारणासे सम्पन्न होगी (सुखमदा धारणासे) ॥१॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृष्ट्वा

चिंशरुजे वसुं ॥ २ ॥

कः । त्वा । सत्यः । मदानाम् । मंहिष्ठः । मत्सत् । अन्धसः ॥

दृष्ट्वा । चित् । आऽरुजे । वसुं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सोमरूप अन्नका कौन अंश जो कि—मदजनक हवियों में श्रेष्ठ है तुम्हें प्रसन्न करता है, कि—आप निससे प्रसन्न होकर दृढ़तासे रहने वाले धनको भक्तोंको विभाग करके देते हो ॥२॥

अभी पुणः सखीनामविता जरितृणाम् ॥ शतं भवा-

स्यूतिभिः ॥ ३ ॥

अभि । सु । नः । सखीनाम् । अविता । जरितृणाम् ॥ शतम् ।

भवासि । ऊतिऽभिः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! मित्ररूप हम स्तोताओंके रक्षक आप रक्षा करनेके लिये भली प्रकार हमारे अभिमुख होकर सैंकड़ों बार (राम कृष्ण आदिके रूपमें) प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥

इमा नु कं भुवना सीपधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।

यज्ञं च न सन्व्यं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीकलृपाति
इमा । नु । कम् । भुवना । सीसधाम । इन्द्रः । च । विश्वे । च । देवाः ।
यज्ञम् । च । नः । तन्वम् । च । प्रजाम् । च । आदित्यैः । इन्द्रः ।
सह । चीकलृपाति ॥ ४ ॥

इस रमणीय यज्ञको [सब प्रकट होने वाले ऋत्विज इन्द्र
और सकल देवता (तथा हम) सिद्ध करें, आदित्यों सहित
इन्द्रदेव हमारे यज्ञ शरीर और प्रजाको समर्थ रखें ॥ ४ ॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनू-
नाम् ।

हत्वायं देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्ष-
माणाः ॥ ५ ॥

आदित्यैः । इन्द्रः । सगणः । मरुद्भिः । अस्माकम् । भूतु ।
अविता । तनूनाम् ।

हत्वायं । देवाः । असुरान् । यत् । आयन् । देवाः । देवत्वम् ।
अभिरक्षमाणाः ॥ ५ ॥

जो देवता देवत्वकी रक्षा करनेके लिये असुरोंको मार कर
देवत्वको अक्षुण्ण रख सके थे, उन आदित्य और मरुद्गणोंसे
सम्पन्न इन्द्र हमारे शरीरके रक्षक बनें ॥ ५ ॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं ज्ञेयमभिरादित्स्वधामिपिरां पर्यपश्यन्
ज्ञया वाजं देवहितं सनेममदेम शतहिंमाः सुवीराः

प्रत्यक्षम् । अर्कम् । अनयन् । शचीभिः । आत् । इत् । स्वधाम् ।
इषिराम् । परि । अपश्यन् ।

अया । वाजम् । देवऽहितम् । सनेम् । मर्देम् । शतऽहिमा ।
सुञ्जीराः ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाके अष्टाविंशं सूक्तम् ॥

देवतां शक्तिपोंके द्वारा सूर्यको प्रत्येकके सम्मुख लाये हैं और फिर उन्होंने पृथ्वीको हविरूप अन्नसे सम्पन्न देखा है, इसी मायाके द्वारा हम देवताओंका हित करने वाले अन्नको पावे और सुन्दर वीरोंसे सम्पन्न रहकर सौ वर्ष तक जीवित रहें ३
नवम अनुवाकमें अष्टाविंशौ सूक्त समाप्त (७४०)

पृष्ठयस्य पष्ठेदनि “अपेन्द्र माचो मघवन्नमित्रान्” इति सुकीर्त्याख्यस्य सकलसूक्तस्य पच्छः शंसने प्राप्ते चतुर्थीम् अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अपेन्द्र माचो मघवन्नमित्रान् इति सुकीर्तिम् । चतुर्थीमर्धर्चशः” इति [वै० ६. २] ॥

सौत्रामण्यां गृहीतेष्वाज्येषु “कुविदङ्ग यवमन्तः” [२०. १२५. २] इति ऋचा पयोग्रहान् गृह्णन्तमध्वर्युम् अभिमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । “गृहीतेष्वाज्येषु कुविदङ्ग यवमन्त इति पयोग्रहान् गृह्णन्तम्” इति [वै० ५. ३] ॥

तत्रैव वषामार्जनादनन्तरम् “युवं सुराममश्विना” [२. १२५. ४-७] इति चतसृभिर्ऋग्भिः पयःसुराग्रहाणो होमान् अनुमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । “वषामार्जनाद् युवं सुराममश्विनेति चतसृभिः पयःसुराग्रहाणाम्” इति [वै० ५. ३] ॥

पृष्ठयके द्युते दिन “अपेन्द्र माचो मघवन्नमित्रान्” इस सुकीर्तिनाम वाले सकल सूक्तके पद-पद करके शंसनकी प्राप्ति होने पर

चतुर्थीको अर्धचरूपमें कहे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “अपेन्द्र प्राचो मघवन्निमित्रान् इति सुकीर्तिम् । चतुर्थी-मर्धचशः” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

सौत्रामणिके घृतके ग्रहण करने पर “कुविदंग यवमन्तः” (२० । १२५) ऋचासे पयोग्रहोंको पकड़ते हुए अध्वर्युको अभिमन्त्रित करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “गृहीतेष्वाज्येषु कुविदंग यवमन्त इति पयोग्रहान् गृह्णन्तम्” (वैतानसूत्र ५ । ३) ॥

तहाँ ही वषामार्जनके अनन्तर “युवं सुराममरिवना” (२० । १२५ । ४-७) इन चार ऋचाओंसे पयःसुराग्रहके होमोंका अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “वषामार्जनाद् युवं सुराममरिवनेति चतसृभिः पयःसुराग्रहाणाम्” (वैतानसूत्र ५ । ३) ॥

अपेन्द्र प्राचो मघवन्निमित्रानपापांचो अभिभूते नुदस्व
अपोदीचो अपं शूराधराचं उरौ यथा तव शर्मन् मदेम
अपं । इन्द्र । प्राचः । मघवन् । मित्रान् । अपं । अपाचा ।
अभिभूते । नुदस्व ।

अपं । उदीचः । अपं । शूर । अधराचः । उरौ । यथा । तव ।
शर्मन् । मदेम ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! पूर्वकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको दूर करिये,
हे अभिभूते ! पश्चिमकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको पीड़ित
करिये, हे शूर इन्द्र ! उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे आप
हमारे शत्रुओंको बाधा दीजिये । जिससे आपके दिग् विशाल
सुखमें हम आनन्द पा सकें ॥ १ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं विज्यूय
इहेहपां कृणुहि भोजनानि ये वहिपो नमोवृक्तिं न
जग्मुः ॥ २ ॥

कुविद् । अङ्ग । यवऽमन्तः । यवम् । चिद् । यथा । दान्ति ।
अनुऽपूर्वम् । विज्यूय ।

इहइह । एषाम् । कृणुहि । भोजनानि । ये । वहिपः । नमऽवृ-
क्तिम् । न । जग्मुः ॥ २ ॥

हे अग्ने ! बहुतसे यव वाले पुरुष जैसे जोंको मिला कर आनु-
पूर्वक काटते हैं, इसी प्रकार जो कुशाएँ हविसे संपृक्त नहीं हुई
हैं उनका आप भक्षण करिये ॥ २ ॥

नहि स्थूर्धुतुथा यातमस्ति नोत श्रवां विविदे संगमेपु
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रां अश्वायन्तो वृषणं वाज-
यन्तः ॥ ३ ॥

नहि । स्थूरि । अतुऽथा । यातम् । अस्ति । न । उन । श्रवाः ।
विविदे । सम्ऽगमेपु ।

गव्यन्तः । इन्द्रम् । सख्याय । विप्राः । अश्वऽयन्तः । वृषणम् ।
वाजयन्तः ॥ ३ ॥

अतुके अनुसार बहुतसा अन्न हमको नहीं मिला है, और
युद्धोंमें भी हमको अन्न नहीं मिला है, इस लिये इन्द्रको मित्रके

लिये चाहते हुए विप्र, गौ अरव और अन्नको चाहते हुए उन फलवर्षक इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

युवं सुराममश्विना नमुंचावासुरे सचा ।

विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

युवम् । सुरामम् । अश्विना । नमुंचौ । आसुरे । सचा ।

विपिपाना । शुभः । पती इति । इन्द्रम् । कर्मसु । आवतम् ४

हे अश्विनीकुमारों ! अलंकारोंके देवता तुम दोनों नमुचिके साथ आसुर युद्ध होते समय सुन्दर रमणीय सोमका विशेषरूप से पान करके कर्मोंमें इन्द्रकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

पुत्रमिव पितरांश्वश्विनोभेन्द्रावयुः काव्यैर्दंसनाभिः ।

यत् सुरामं व्यपिवः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्न-

भिष्णक् ॥ ५ ॥

पुत्रम्इव । पितरौ । अश्विना । उभा । इन्द्र । आवयुः । काव्यैः ।

दंसनाभिः ।

यत् । सुरामम् । वि । अपिवः । शचीभिः । सरस्वती । त्वा ।

मघवन्न । अभिष्णक् ॥ ५ ॥

दोनों अश्विनीकुमारोंने, माता पिताके पुत्रकी रक्षा करनेकी समान, अपनी चतुरता और शत्रुओंको काटनेकी युक्तियोंसे इन्द्र की रक्षा की है, हे मघवन् ! जो आपने सुन्दर रमणीय सोमका पान किया है तो सरस्वती देवी अपनी शक्तियोंसे आपको स्नान करावे ॥ ५ ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवाँभिः सुमृडीको भवतु विश्व-
वेदाः ।

वाधनां द्वेषो अभयं नः कृणोत सुवीर्यस्य पतयः स्याम

इन्द्रः । सुत्रामा । स्ववान् । अवाऽभिः । सुमृडीकः । भवतु ।

विश्ववेदाः ।

वाधनाम् । द्वेषः । अभयम् । नः । कृणोतु । सुवीर्यस्य । पतयः ।

स्याम ॥ ६ ॥

भली मकार रक्षा करने वाले धनी इन्द्र रक्षाओंके द्वारा हम
को सुन्दर सुख प्रदान किया करें और यह बड़े भारी धनसे
सम्पन्न इन्द्र हमारे शत्रुओंका संहार करें और हमको अभय भी
देवे, और हम शोभन प्रभाव वाले धनके स्वामी होवें ॥ ६ ॥

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराचिद् द्वेषः सनुत-
युयोतु ।

तस्य वयं सुमती यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम

सः । सुत्रामा । स्ववान् । इन्द्रः । अस्मत् । आरात् । चिद् । द्वेषः ।

सनुतः । युयोतु ।

तस्य । वयम् । सुमती । यज्ञियस्य । अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ७

इति नवमेनुवाके एकोनत्रिंशं सूक्तम् ॥

भली मकार रक्षा करने वाले इन्द्र हमसे दूर ही हमारे शत्रुओं
को तिरोहित कर डालें अलग २ कर डालें, हम यज्ञके पात्र बन

इन्द्रदेवकी अनुग्रहरूपा बुद्धिमें रहते हुए उनके कन्याएँ मय भाव को पाते रहें ॥ ७ ॥

नवम अनुवाकमें उन्नीसवाँ सूक्त समाप्त (७४१)

पृष्ठयस्य पष्ठेहनि “वि हि सोतोरसृजत” इति वृषाकप्याख्यं सूक्तं सूत्रोक्तधर्मकं शंसति । तद् उक्तं वैताने । “वि हि सोतोरसृजतेति वृषाकपिम्” इत्यादि [वै० ६. २] ॥

पृष्ठयके छठे दिन “वि हि सोतोरसृजत” यह वृषाकपि नामक सूक्त सूत्रमें कहे हुए धर्म वालेका गान करता है ! इसी वानको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वि हि सोतोरसृजतेति वृषाकपिम्” इत्यादि (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

वि हि सोतोरसृजत नेन्द्रं देवममंसत ।

यत्रामंदद् वृषाकपिर्यः पुष्टेषु मत्संखा विश्वस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ १ ॥

वि । हि । सोतोः । असृजत । न । इन्द्रम् । देवम् । अमंसत ।

यत्र । अमंदद् । वृषाकपिः । अर्यः । पुष्टेषु । मत्संखा । विश्वस्मात् ।

इन्द्रः । उत्तरः ॥ १ ॥

अभिषव करने वालेमे अलग हुए (वृषाकपिने) इन्द्रको देवकी समान माना, ऐमें वृषाकपि देवता जो पुष्टोंमें स्वामी हैं, वह मेरे सखा हैं, इस कारण मैं इन्द्र सबमें श्रेष्ठ हूँ ॥ १ ॥

परा हीन्द्र धावेसि वृषाकपेरति व्यथिः ।

नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ २ ॥

परा । हि । इन्द्र । धावसि । वृषाकपेः । अति । उपधिः ।

नो इति । अह । म । विन्दसि । अन्यत्र । सोमऽपीतये । ० ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! आप शत्रुओंको व्यथा देने वाले हैं, आप वृषाकपि से भी अधिक दौड़ते हैं, सोमपानके अतिरिक्त अन्यस्थलमें आप किसीसे नहीं मिलते हैं, अत एव इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।

यस्मां इरस्यसीदु न्वं१र्यो वां पुष्टिमद् वसु विश्वंस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥

किम् । अयम् । त्वाम् । वृषाकपि । चकारः । हरितः । मृगः ।

यस्मै । इरस्यसि । इत् । ऊं इति । जु । अर्यः । वा । पुष्टिमद् ।

वसु । ० ॥ ३ ॥

क्या इन वृषाकपि (किरणोंसे घँपाने वाले देव) ने आपको हरित मृग बना दिया है, कि-जो आप स्वामी होने पर भी इनको पुष्टि-मद धन देते हैं, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।

श्वा न्वंस्य जम्भिपदपि कर्णे वराहयुर्विश्वंस्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ ४ ॥

यम् । इमम् । त्वम् । वृषाकपिम् । प्रियम् । इन्द्र । अभिरक्षसि ।

श्वा । जु । अस्य । जम्भिपत् । अपि । कर्णे । वराहऽयुः । ० ४

हे इन्द्र ! जिन प्रिय वृषाकपिकी आप रक्षा करते हैं, क्या कुत्ता इनके सामने जँभाई लेता है और क्या कान पर बराहको चाहने वाला जँभाई लेता है ? इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।

शिरो न्वस्य राविपं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वंस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥

प्रिया । तष्टानि । मे । कपिः । विऽभक्ता । वि । व्यदूदुषत् ।

शिरः । नु । अस्य । राविपम् । न । सुगम् । दुःऽकृते । भुवम् । ०

कपिने मेरे प्रियोंको तनू किया है, व्यक्ताने दूषित किया है, मैं इसके शिरको शब्दित करता हूँ, दुष्कृतमें प्रादुर्भाव सुगम नहीं होता है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ५ ॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।

न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वंस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥

न । मत् । स्त्री । सुभसत्तरा । न । सुयाशुतरा । भुवत् ।

न । मत् । प्रतिच्यवीयसी । न । सक्थि । उद्यमीयसी । ० ६

मेरी स्त्री सुभसत्तरा नहीं है, और सुयाशुतरा भी नहीं है, और प्रतिच्यवीयसी भी नहीं है । और सक्थियोंको उदाने वाली भी नहीं है, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

उवे अंभ्व सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।

भसन्मे अम्व सक्थि मे शिरां मे वीर्व हृष्यति विश्वं-
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

उवे । अम्व । सुलाभिके । यथाऽऽव । अह् । भविष्यति ।

भसत् । मे । अम्व । सक्थि । मे । शिरः । मे । विऽऽव । हृष्यति ।

हे उवे अम्व सुलाभिके अंग ! जैसा होगा तैसा हो, हे अम्व !
मेरी कटि मेरी सक्थि और मेरा शिर पत्नीकी समान प्रसन्न
होरहा है, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥

किं सुवाहो स्वजुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीपि वृषाकपि विश्वंस्मादिन्द्र-

उत्तरः ॥ ८ ॥

किम् । सुवाहो इति सुधाहो । सुधम्वजुरे । पृथुस्तो इति पृथु-
स्तो । पृथुजघने ।

किम् । शूरपत्नि । नः । त्वम् । अभि । अमीपि । वृषाकपिम् ।

हे सुन्दर सुजा वाली, हे सुन्दर अंगुलियों वाली, हे पृथुस्तु
वाली, हे पृथु जघन वाली, हे शूरपत्नि ! क्या तू हमको वृषा-
कपिके अभिमुख मारती है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥

अवीरामिव मामयं शूरारुभि मन्यते ।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुतमंस्वा विश्वंस्मादिन्द्र-

उत्तरः ॥ ९ ॥

अवीराम्ऽइव । माम् । अयम् । शराहः । अभि । मन्यते ।

न । अहम् । अस्मि । वीरिणी । इन्द्रपत्नी । मरुत्सखा । १०

यह अपने शरीरको नष्ट करना चाहने वाला नहुष मुझे वीर (पति) से रहित मानता है, परन्तु मैं वीर पतिसे सम्पन्न हूँ, मेरे पति मरुत्सखा इन्द्र हैं, वह सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

संहोत्रं स्मं पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।

वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वंस्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ १० ॥

सम्ऽहोत्रम् । स्म । पुरा । नारी । समनम् । वा । अथ । गच्छति ।

वेधाः । ऋतस्य । वीरिणी । इन्द्रपत्नी । महीयते । १० ॥ १० ॥

पहिले स्त्री होत्ररूप होती है और वह यागमें पुरुषके साथ बैठती है, इस प्रकार वह यज्ञकी रचना करने वाली है, ऐसी वीरिणी इन्द्रपत्नी मशंसा पाती है, क्योंकि-इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं १०

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमंश्रवम् ।

नह्यस्या अपरं च न जरसा मरते पतिर्विश्वंस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ ११ ॥

इन्द्राणीम् । आसु । नारिषु । सुभगाम् । अहम् । अश्रवम् ।

नहि । अस्याः । अपरम् । च न । जरसा । मरते । पतिः । १०

मैं नारियोंमें मैं इन्द्राणीको ही सौभाग्यवती समझता हूँ, क्योंकि-इसका पति अन्य वर्षको प्राप्त होकर भी नहीं मरता है,

जैसे, कि-और प्राकृत नारियोंके पति मर जाते हैं और न इस
का पति वृद्ध होता है । वह कौनसा पति है ? उत्तर-जो सर्व-
श्रेष्ठ इन्द्र हैं, वही इसके पति हैं ॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि ररण सख्युर्वृपाकपेऋते ।

यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ १२ ॥

न । अहम् । इन्द्राणि । ररण । सख्युः । वृपाकपेः । ऋते ।

यस्य । इदम् । अप्यम् । हविः । प्रियम् । देवेषु । गच्छति । ०

इन्द्र कहते हैं, कि-हे इन्द्राणि ! मैं अपने मित्र वृपाकपि को
छोड़ कर अन्यत्र कहीं रमण नहीं करता हूँ, क्योंकि-इनकी हवि
जलसे संस्कृत होती है, यह मुझे सब देवताओंमें प्रिय है, ऐसा
मैं सब देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र कहता हूँ ॥ १२ ॥

वृपाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुपे ।

यसत् त इन्द्र उक्ष्णः प्रियं काचित्करं हविर्विश्व-
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १३ ॥

वृपाकपायि । रेवति । सुपुत्रे । आत् । ऊं इति । सुस्नुपे ।

यसत् । ते इन्द्रः । उक्ष्णः । प्रियम् । काचित्करम् । हविः ॥ ०

हे वृपाकपि सूर्यकी-पत्नी-विभूति वृपाकपायि ! हे पनवति !
हे सुपुत्रे ! हे माध्यमिका बाणीसे सुस्नुपे ! तेरे इन माध्यमिक
वक्ता अवश्यायसंस्त्यानोंको यह इन्द्र (सूर्य) प्रिय और तुम्हारी
इष्ट सुखस्थान जलरूप हविकी यह इन्द्र भक्षण करें, क्योंकि-
इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १३ ॥

उच्चणो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
 उताहमांश्चि पीव इदुभा कुचीः पृणन्ति मे विश्वंस्मा-
 दिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥

उच्चणः । हि । मे । पञ्चदश । साकम् । पचन्ति । विंशतिम् ।
 उत । अहम् । अंश्चि । पीवः । इत् । उभा । कुची इति । पृणन्ति । मे ।
 मुक्त पक्षान्त्रके पन्द्रह सायमें बीसको पकाते हैं, मैं उनका भक्षण करता हूँ अतः मैं स्थूल हूँ, मेरी दोनों कोखें भरी हुई, इन्द्रदेव सबसे उत्तम हैं ॥ १४ ॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
 मन्यस्तं इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वंस्मा-
 दिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥

वृषभः । न । तिग्मशृङ्गः । अन्तः । यूथेषु । रोरुवत् ।
 मन्यः । ते । इन्द्र । शम् । हृदे । यम् । ते । सुनोति । भावयुः ।
 तीखे सींग वाले वृषभके यूथमें वास्ववार शब्द करनेकी समान है इन्द्र । आपका मन्य जिसके हृदयमें सुख प्रदान करता है, वह सुख पाने वाला होता है, क्योंकि-इन्द्र सबमें श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

न सेशे यस्य रम्बतेन्तरा सक्थ्या ३ कम्पत् ।
 सेदींशे यस्य रोमशं निपेदुषां विजृम्भते विश्वंस्मा-
 दिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥

न । सः । ईशे । यस्य । रम्बते । अन्तरा । सक्थ्या । कपृत् ।

सः । इत् । ईशे । यस्य । रोमशम् । निऽसेदुपः । विऽजृम्भते ।

जिसकी सक्थियोंके बीचमें कपृत् लटकता रहता है, वह ऐश्वर्य नहीं पाता है, और जिस बैठनेकी इच्छा वालेका रोमश जैभाई लेता है वह (उपभोग करनेमें) समर्थ होता है । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥

न सेशे यस्य रोमशं निऽपेदुपो विजृम्भते ।

सेदीशे यस्य रम्बतेन्तरा सक्थ्या ३ कपृद् विश्वस्मा-

दिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

न । सः । ईशे । यस्य । रोमशम् । निऽसेदुपः । विऽजृम्भते ।

सः । इत् । ईशे । यस्य । रम्बते । अन्तरा । सक्थ्या । कपृत् ।

जिस (आसन लगा कर) बैठने वाले (योगी) का रोमश विजृम्भण करता है वह (योगसाधनमें) समर्थ नहीं होता और जिसका कपृत् सक्थियोंमें लटकता रहता है (वह योगसिद्धि में) समर्थ होता है इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।

असिं सूनां नवं चरुमादेघस्यान आचितं विश्वस्मा-

दिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥

अयम् । इन्द्र । वृषाकपिः । परस्वन्तम् । हतम् । विदत् ।

अ॒सिम् । सु॒नाम् । न॒वम् । च॒रुम् । आ॒त् । ए॒षस्य॑ । अ॒नः ।

आ॒ञ्चितम् । ० ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! इन वृषाकपिने अपने नष्ट हुए अतः शत्रुघनको पाया या और एषकी तलवार, सूना, और आचित नवीन चरुको ग्रहण किया है । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

अ॒यमे॑मि वि॒चाक॑शद् वि॒चिन्व॑न् दा॒स॒मार्ग्य॑म् ।

पि॒त्रा॑मि पा॒क॒सु॒त्वनो॑मि धी॒र॒म॒चाक॑शं वि॒श्व॑स्मादिन्द्र

उ॒त्तरः॑ ॥ १९ ॥

अ॒यम् । ए॒मि । वि॒ञ्चाक॑शन् । वि॒ञ्चि॒न्वन् । दा॒सम् । आ॒र्यम् ।

पि॒त्रा॑मि । पा॒क॒ऽसु॒त्वनः॑ । अ॒भि । धी॒रम् । अ॒चाक॑शम् । ० १९

यह मैं कर्म करने वाले आर्यको दूँड़ता हुआ और दमकता हुआ आरहा हूँ, मैं प्रशस्तरसे निचोड़े हुए, धीरतामय सोमांश का पान कर रहा हूँ, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

घ॒न्वं च॒ यत् कृ॒न्त॒त्रं च॒ क॒तिं स्वि॒त् ता वि॒ योज॑न्ता

ने॒दी॒य॒सो वृ॒षाक॑पे॒स्तमे॒हिं गृ॒ह्णो॑ उप॒ वि॒श्व॑स्मादिन्द्र

उ॒त्तरः॑ ॥ २० ॥

घ॒न्वं । च॒ । यत् । कृ॒न्त॒त्रम् । च॒ । क॒ति । स्वि॒त् । ता । वि॒ ।

यो॒ज॒ना ।

ने॒दी॒य॒सः । वृ॒षाक॑पे । अ॒स्तम् । आ॒ । इ॒हि । गृ॒ह्णन् । उप॑ । ०

मो महस्पल और अन्नरिक्त हैं, उनका वियोजन कितना है,

हे वृषाकपे ! उस निकटतम स्थलसे आप घरको आइये, यहाँ के पास आइये, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥

पुनरेहिं वृषाकपे सुविता कल्पयावहे ।

य एष स्वप्नं शनोस्तमेपि पथा पुनर्विश्वंस्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ २१ ॥

पुनः । आ । इति । वृषाकपे । सुविता । कल्पयावहे ।

यः । एषः । स्वप्नं शनः । अस्तम् । एपि । पथा । पुनः । १०

हे भगवन् वृषाकपे ! जो आप अपने उदयसे स्वप्नको नष्ट करने वाले हैं, वह आप मार्गसे फिर अस्तको प्राप्त होजाते हैं, जो आप सब जगत्से श्रेष्ठ हैं, वह आप फिर उदयको प्राप्त हुआजिये, फिर हम शोभन अर्घ्यके उद्देश्यसे जगत्के हितमें प्रवृत्त हुए शोभन कर्माँकी कल्पना करें अर्थात् उनको सगुण करें ॥ २१ ॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।

क्व १ स्य पुल्वधो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वं
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥

यत् । उदञ्चः । वृषाकपे । गृहम् । इन्द्र । अजगन्तन ।

क्व । स्यः । पुल्वधः । मृगः । कम् । अगन् । जनयोपनः । १०

हे वृषाकपे इन्द्र (सूर्य) ! जब आप उत्तरमें रहते हुए भूतनों को मदक्षिण करते हुए गृहानुपवेशमें अन्तर्हित होते हैं, उससमय आपके घर आने पर-अस्त होने पर-लोक प्रकाशरहित होकर विस्मृत होकर कहता है, कि-वह सब प्राणियोंमें रहकर बहुत

सा भक्षण करने वाले मूय कहाँ गए, वह जनमोहन सूर्य सबसे श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

पर्शुर्हं नाम मानवी साकं ससूत्र विंशतिम् ।

भद्रं भलं त्वस्यां अभूद् यस्यां उदरमामयद् विश्व-
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥

पर्शुः । ह । नाम । मानवी । साकम् । ससूत्र । विंशतिम् ।

भद्रम् । भल । त्वस्यै । अभूत् । यस्याः । उदरम् । आमयत् ।

विश्वन्पात् । इन्द्रः । उत्तरः ॥ २३ ॥

मानवी पर्शु मसिद्ध है उसने साथ ही साथ बीसको प्रकट किया है, उसके लिये भद्र हुआ, जिसका उदर रोगसहित था, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

नक्षत्रांशु । कर्म तासर्वां सूक्त समाप्त (७४२)

❀ अथ कुन्तापसूक्तानि ❀

पृथक्स्य पृष्ठेहनि “इदं जना उपश्रुत” इति कुन्तापम् अर्ध-
र्चशः शंसति । तत्र प्रथमाश्चतुर्दश श्रुचः पदावग्राहं शंसति ।
तद् उक्तं वैताने । “इदं जना उपश्रुतेति कुन्तापम् अर्धर्चशः ।
चतुर्दश पदावग्राहम्” इति [वै० ६. २] ॥

पृथक्के छठे दिन “इदं जना उपश्रुत” इस कुन्तापको आधी २
श्रुचा करके पढ़े, इसकी पहिली चौदह श्रुचाओंको (पद पद
करके) पदावग्राह पढ़े । इसी बातसे वैतानमूनमें कहा, है, कि-
“इदं जना उपश्रुतेति कुन्ताप अर्धर्चशः । चतुर्दश पदावग्राहम्”
(वैतानमून ६ । २) ॥

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।

पष्टि सहस्रा नवति च कौरम आ रुशमेपु दग्धहे ।

हे मनुष्यों ! और हे कौरम नराशंस तुम स्तुति करने वालों के विषयमें यह बात सुनो, कि—हम साठ हजार रुशमोंको देते हैं ।

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो बधूमन्तो द्विर्दश ।

वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईपमाणा उपस्पृशः २

जिसके शरीररूपी रथके बधूमान् बीस ऊँट घोड़ेको देने वाले हैं वह घुलोक स्पर्श करते हुए हीडन करते हैं ॥ २ ॥

एष इपायं मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।

त्रीणि शतान्यर्वितां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥

हम अन्नके लिये सौ निष्क, दश माला, तीनसी घोड़े और दश हजार गौओंका दान करते हैं ॥ ३ ॥

वच्यस्व रेभं वच्यस्व वृक्षे न पके शकुनः ।

नष्टे जिह्वा चंचरीति क्षुरो न भुरिजोऽस्मि ॥ ४ ॥

हे स्तोतः ! जैसे पके हुए फल चाले वृक्ष पर बैठा हुआ पक्षी चहचहाता है, इसी प्रकार आप शब्द करिये, हाथोंमें वर्तमान क्षुरा जैसे चलता है इसी प्रकार कर्णके बन्द होने पर भी आपकी जिह्वा चलती रहे ॥ ४ ॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गावं इवेरते ।

अमोतपुत्रंका एषाममोतं गा इवासते ॥ ५ ॥

बुद्धिसम्पन्न स्तोता वर्षक साँडोंकी समान चल रहे हैं इनके घरमें पुत्र और गौ बैठे हुए से हैं ॥ ५ ॥

प्र रेभ धीं भंस्व गोविदं वसुविदम् ।

देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीपुर्नार्वास्तारम् ॥ ६ ॥

हे स्तोतः ! गौ प्राप्त कराने वाली और घन प्राप्त कराने वाली बुद्धि को धारण कर, देवताओंमें इस वाणीका श्रोणन कर, जैसे बाण फैलाने वाले मनुष्यकी रक्षा करता है, इसी प्रकार वाणी तेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोमर्त्याँ अतिं ।

वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोतां परिक्षितः ॥ ७ ॥

यदि देवता विश्वजनीन राजाके मनुष्योंका अतिक्रमण करता हो तो वह परिक्षित वैश्वानरके सुन्दर स्तोत्रको करे ॥ ७ ॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम् आसनमाचरन् ।

कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जाययां ॥ ८ ॥

परिच्छिन्न (देवता) कन्याणको करता है, आसन (स्थिति) को विस्तृत करता है, इस प्रकार विस्तृत करता हुआ कौरव्य-पति जायासे कहता है ॥ ८ ॥

कनस्त् त आ हंराणि दधि मन्यां परि श्रुतम् ।

जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९ ॥

राजा परिक्षितके राज्यमें जाया पतिसे बृहन्ता है, कि-मंया में परिश्रुत दधिको तेरे लिये कितना लाऊँ ॥ ९ ॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो विलम् ।

जनः स भद्रमेधाति राष्ट्रे राज्ञः परित्तितः ॥ १० ॥

पक्का हुआ यवका धन मार्गमें उदररुख विलम्बो प्राप्त होता है, इस प्रकार राजा परित्तित् के राज्यमें प्राणी कल्याणतो प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इन्द्रः कारुण्यबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।

ममेदुग्रस्य चर्कधि सर्व इत् ते पृणादुरिः ॥ ११ ॥

इन्द्रने स्तोतासे कहा, कि-खड़ा हो, जनसमाजमें विचरण कर, मुझ उग्रके प्रतापसे तू कर्म कर तेरा शत्रु तुझको सब कुब्ध दे जाय ॥ ११ ॥

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।

इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा नि पीदति ॥ १२ ॥

यहाँ गौएँ व्याधें, यहाँ अश्व और पुरुष मरुट होयें, और सहस्रों प्रकारकी दक्षिणा देनेवाले पूषा यहाँ बिराजें ॥ १२ ॥

नेमा इन्द्र गावो रिपन् मो आसां गोपं शीरिपत् ।

मासांममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! यह गौएँ हिसित न हों, और इनका पालन करने वाला गोप भी नष्ट न होवे, इन पर अमित्रता करने वाला का चोर भी अपना प्रभाव न दिखा सके ॥ १३ ॥

उप नो नरमासि सूक्तेन वचंसा वयं भद्रेण वचंसा वयम्

वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥

तं प्रतिगिरेति प्रतिकुरत । ओयामोदैवेति पञ्चपदा चतुर्दशी
एकेन द्वाभ्यां वा प्रणीति ॥

इति नवमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप हमें सूक्तसे प्रसन्न सा करते हैं और
हम भी आपको कन्याणमय वचनसे आनन्दित करते हैं,
अन्तरिक्षसे आप हमारी वाणियोंको सुनिये, हम कभी भी नष्ट
न होंगे ॥ १४ ॥

नवम अनुवाकमें एकतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४३)

“यः सभेयो विदध्यः” इति षोडशर्चः ॥

“यः सभेयो विदध्यः” एतस्य शंसनप्रकारः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

“यः सभेयो विदध्यः” यह सोलह श्रुचा वाला सूक्त है ।

“यः सभेयो विदध्यः” इसका शंसनप्रकार पूर्वसूक्तमें कह
दिया है ।

यः सभेयो विदध्यः सुत्वा यज्वाय पूरुषः ।

सूर्यं चामूं रिशादसस्तद् देवाः प्रागंकल्पयन् ॥ १ ॥

जो सभाके योग्य, यज्ञगृहके योग्य, अभिषेक करने वाला
और यजन करने वाला पुरुष होता है, वह सूर्य (मण्डल)
को भेद डालता है और ऊपरके लोकमें पहुँच जाता है, इस
बातको देवताओंने पहिले ही बना रक्खा है ॥ १ ॥

यो जाम्या अग्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्पति ।

ज्येष्ठो यदग्रचेतास्तदाहुरथरागिति ॥ २ ॥

जो जामिसे विस्तृत करता है और जो मित्रका दुधूर्पण करता
है, जो अग्रचेता ज्येष्ठ है उसको अथराक् कहते हैं ॥ २ ॥

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाघृषिः ।

तद् विप्रो अत्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वर्चः ॥ ३ ॥

जिस मंगलमय पुरुषका पुत्र धर्पणशील होता है, वह विप्र कामना करने योग्य वचनको कह सकता है, वह गन्धर्व होता है ३ यश्च पणि रघुजिष्ठयो यश्च देवाँ अदाशुरिः ।

धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

जो वणिक् रघुजिष्ठय और जो देवताओंको हवि आदि न देनेके स्वभाव वाला होता है, हम सुनते हैं, कि-वह शश्वत धीरोंका अपाक्-मुख फेरने योग्य-होता है ॥ ४ ॥

ये च देवा अयं जन्ताथो ये च पराददिः ।

सूर्यो दिवमिव गत्वायं मघवा नो वि रप्सते ॥ ५ ॥

जो स्तुति करने वाले-स्वोता यज्ञ करते हैं और जो परादान करते हैं वह स्वर्गमें सूर्यकी समान जाते हैं, हमारे इन्द्र महान् हैं ५

योनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।

अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥

जो अनाक्ताक्ष है, अनभ्यक्त है, अमणिव अहिरण्यव और अब्रह्मा है, वह ब्रह्माका पुत्र तोता कल्पोंमें संमिता है ॥ ६ ॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।

सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥

जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुमणि, सुहिरण्यव, सुब्रह्मा ब्रह्माके पुत्र तोता हैं वह कल्पोंमें संमिता हैं ॥ ७ ॥

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्ययः ।

अयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ८

अप्रपाणा वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्य अयंभ्या कन्या कन्याणी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ ८ ॥

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्सुप्रतिदिश्ययः ।

सुयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ९

सुप्रपाणा वेशन्ता रेवान् सुप्रतिदिश्य सुयंभ्या कन्या कन्याणी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ ९ ॥

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।

अनाशुरश्रायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥

परिवृक्ता, महिषी, स्वस्त्या और युधिगम अनाशुर आयामी तोता कल्पोंमें संमित है ॥ १० ॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।

श्वाशुरश्रायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥

वावाता महिषी स्वस्त्या और युधिगम श्वाशुर आयामी और तोता कल्पोंमें सम्मित हैं ॥ ११ ॥

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गांध्याः ।

विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यज्ञाय कल्पते १२

हे इन्द्र ! जो आपने दाशराजके मनुष्यको विगाहित किया है, आप सबके लिये विरूप हुए थे और आप यज्ञके साथ समर्थ होते हैं ॥ १२ ॥

त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।

त्वं रोहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिन्नच्छिरः ॥ १३ ॥

हे वर्षक मघवन् ! आप मर्याकर रविरूपमें अक्षुको नम्र करते हैं, और रोहिणको फँसे हुए मुख वाला करते हैं और आपने वृषासुरके शिरको काट डाला है ॥ १३ ॥

य पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यंगाहयाः ।

इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोस्तु ते ॥ १४ ॥

जिन्होंने पर्वतोंको विशेषरूपसे स्थापित किया है, और जिन्होंने जलका अवगाहन किया है और जो इन्द्र वृषासुरका संहार करने वाले हैं, ऐसे हे इन्द्र ! आपके लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥

पृष्ठं धावन्तं ह्युरोर्ध्वैःश्रवसमंभुवन् ।

स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्तजम् ॥ १५ ॥

हरिनाभक घोड़ोंकी पीठ पर दौड़ते हुए (इन्द्रको देख कर प्राणियोंने) उच्चैःश्रवासे कहा, कि—हे अश्व ! तेरा कन्याण हो नू विजयशील कर्मके लिये सुन्दरमाला वाले इन्द्रकी सवारी दे १५

ये त्वां श्वेता अजैश्रवसो हायौ युजन्ति दक्षिणम् ।

पूर्वा नमस्य देवानां विम्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥

इति नवमेनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

जो श्वेत अजैश्रवस हारी आपकी दक्षिण ओर जुनते हैं, हे देवताओंके नमस्य ! हे उन पूर्वाओंको धारण करने वाले आप महत्त्व पाते हैं ॥ १६ ॥

“एता अश्वा आ सवन्ते” इति षट्सप्तत्यष्टादशपदान्त्यः मण-
वत्पष्ट मति त्वा ॥

“एता अश्वा आ सवन्ते” [२०. १२६] इत्यादि “नील-
शिखण्डवाहनः” [२०. १३२] इत्यन्तम् ऐतशमलापाख्यं षट्-
सप्ततिपादसमुदायं पदावग्राहं सूत्रोक्तप्रकारेण शंसति । तद्वक्तं
वैताने । “एता अश्वा आसवन्त इत्यैतशमलापं पदावग्राहम् ।
तासामुत्तमेन पदेन मणौति” इति [वै० ६. २] ॥

“एता अश्वा आसवन्ते” (२० । १२६) इत्यादि “नील-
शिखण्डवाहनः” (२० । १३२) तत्र ऐतशमलाप नामक
द्विह्रस्व पादसमुदायको पद २ ग्रहण करके सूत्रोक्त रीतिसे पढ़े ।
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“एताः अश्वा आसवन्त इत्यैतशमलापं
पदावग्राहम् । तासामुत्तमेन पदेन मणौति” (वैतानसूत्र ६।२) ॥

एता अश्वा आ सवन्ते १ प्रतीपं प्राति सुत्वनम् २
तासामेका हरिकिका ॥३॥ हरिकिके किमिच्छसि ४
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥५॥ काहतं परास्यः ॥ ६ ॥
यत्रामृस्तिस्त्रिंशिरापाः ॥ ७ ॥ परिं त्रयः ॥ ८ ॥
पृदांक्रवः ॥ ९ ॥ शृङ्गं धूमन्तं आसते ॥ १० ॥
अयन्महा ते अर्वाहः ॥११॥ स इच्छकं सघाघने १२
सघाघने गोमीद्या गोगंतीरिति ॥ १३ ॥

पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥

पल्लं वद्ध वयो इति ॥१५॥ वद्धं वो अघा इति १६

अजांगार केविका १७ अश्वस्य वारो गोशपद्यके १८
श्येनीपती सा ॥१६॥ अनामयोपजिह्विका ॥२०॥

इति नवमेनुवाके त्रयस्त्रिंशं सूक्तम् ॥

ये अश्वा दौहती हैं ॥ १ ॥ सुत्वा प्रतीपको पूर्ण करता है २
उनमेंसे एक हरिक्रिका है ॥ ३ ॥ हे हरिक्रिके ! तू क्या चाहती
है ॥ ४ ॥ दित रमणीय साधु पुत्रको ॥ ५ ॥ परास्य कहाँ अहि-
सित रहता है ॥ ६ ॥ जहाँ यह तीन शिशपा हैं ॥ ७ ॥
चारों ओर तीन ॥ ८ ॥ सर्प ॥ ९ ॥ स्मृगको धौंकते हुए बैठे
हैं ॥ १० ॥ यह दिन आपका बड़ा घोड़ा है ॥११॥ वह इच्छक
का सघाघ करता है ॥ १२ ॥ गोमीघा गोगतियोंको सघाघन
करता है ॥ १३ ॥ पुरुष और पृथिवी तेरा निमिच्छन करते हैं १४
हे वद्ध पशु अन्न है इस प्रकार ॥ १५ ॥ हे वद्ध तुम्हारी अघा
है ॥ १६ ॥ केविका न जागी ॥ १७ ॥ अश्वका वार गोश-
पद्यकमें है ॥ १८ ॥ वह श्येनपती है ॥ १९ ॥ वह अनामया
उपजीविका है ॥ २० ॥

नवम अनुवाकमें तैंतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४५)

को अर्य बहुलिमा इयानि ॥१॥ को असिद्यापयः २
को अर्जुन्याः पयः ॥३॥ कः काण्ण्याः पयः ॥४॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५॥ कुहांकं पक्कं पृच्छ ॥६॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ७ अकुप्यन्तः कुपायंकुः ८
आमणको मणत्सकः ॥९॥ देवं त्वप्रतिसूर्य ॥१०॥
एनंश्चिपइत्तिका हविः ॥११॥ प्रदुदुदो मघाप्रति १२

शृङ्गं उत्पन्न ॥ १३ ॥ मा त्वाभिसखां नो विदन् १४
 वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥ इरावेदुमयं दत् ॥ १६ ॥
 अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥ अथो इयन्निति १८
 अथो रवा अस्थिरा भवन् १९ उयं यकांशलोकका
 इति नवमेनुवाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

इन बहुतसे वाणोंको कौन स्वामित्वमें रखता है ॥ १ ॥ अस्ति-
 दीका पय कौन है ? ॥ २ ॥ अर्जुनीका पय कौन है ? ॥ ३ ॥
 काष्णीका पय कौन है ? ॥ ४ ॥ इससे बृह, कुहसे बृह ॥ ५ ॥
 कुहाक पक्वकसे बृह ॥ ६ ॥ यतिरूप धन वाली पृथिवियोंसे
 मिलता हुआ ॥ ७ ॥ कृपायकु क्रोधमें भर गया ॥ ८ ॥ आम-
 णक मणत्सक ॥ ९ ॥ किंतु हे अप्रतिमूर्य देव ॥ १० ॥ एनश्चि-
 पङ्क्तिका हवि ॥ ११ ॥ मद्बुद्ध मघाप्रति ॥ १२ ॥ हे मृग !
 हे उत्पन्न ! ॥ १३ ॥ मेरा सखा तुझको और मुझको अभि-
 मुख होकर प्राप्त हो ॥ १४ ॥ वशाके पुत्रको प्राप्त होते हैं १५
 हे दत् इरावेदुमय ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त यह यह, इसप्रकार १७
 इसके उपरान्त यह इस प्रकार है ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त रवा
 अस्थिर होता है ॥ १९ ॥ उयं यकांशलोकका ॥ २० ॥

नवम अनुवाकमें औनीसवाँ सूक्त समाप्त (७४६)

आमिनोनिति भद्यते ॥ १ ॥ तस्य अनु निभंजनम् २
 वरुणो याति वस्वभिः ॥ ३ ॥ शतं वा भारती शवः ४
 शतमाश्वा हिंरण्ययाः । शतं रथ्या हिंरण्ययाः ।
 शतं कुथा हिंरण्ययाः । शतं निष्का हिंरण्ययाः ५

अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शुफेनं इव ओहते ७
 आयं वनेनतीजनीं ॥ ८ ॥ वनिष्ठा नावंगृह्यन्ति ९
 इदं मह्यं मदूरिति ॥ ११ ॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठति १२
 पाकं वलिः ॥ १२ ॥ शकं वलिः ॥ १३ ॥
 अश्वत्थ खदिरो ध्रुवः ॥ १४ ॥ अरंदुपरम ॥ १५ ॥
 शयो हत इव ॥ १६ ॥ व्यापु पुरुषः ॥ १७ ॥
 अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥ अत्यर्धर्च परस्वतः १९
 दौव हस्तिनो हृती ॥ २० ॥

इति नवमेनुवाके पञ्चत्रिंशं सूक्तम् ॥

आमिनोमिति कहा जाता है ॥१॥ उसके पीछे निमज्जन है २
 वरुणदेव रात्रियोंके साथ जाते हैं ॥ ३ ॥ सौ भारती बल ॥४॥
 सौ हित रमणीय घोड़े सौ हिरण्य रथ्या, सौ हिरण्य कुध्या
 और सौ हिरण्य निष्क ॥ ५ ॥ अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥
 शफसे घहनसा करता है ॥ ७ ॥ आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥
 वनिष्ठा नौका पकड़ी जाती हैं ॥ ९ ॥ यह मृगको मसन्न करने
 वाला है ॥१०॥ वह वृक्षोंके साथ स्थित होती है ॥ ११ ॥ पाक-
 वलि ॥ १२ ॥ शकवलि ॥ १३ ॥ अश्वत्था खदिरध्रुव ॥१४॥
 चला, विरामको प्राप्त हो ॥ १५ ॥ सोने वाला मरा हुआ
 होता है ॥ १६ ॥ पुरुष व्याप्त होजाता है ॥ १७ ॥ मैं अन्तमें
 पूषाको दुहता हूँ ॥ १८ ॥ परस्वान् नामक मृगका अतिक्रमण
 करके अर्धर्च प्रवृत्त होवे ॥१९॥ हाथीकी दंतियोंका दुहन कर २०

आदलावुकमेकंकम् ॥ १ ॥ अलावुकं निखातकम् २
 कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥ तद् वात उन्मथायति ४
 कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥ उग्रं वनिपदाततम् ६
 न वनिपदनाततम् ॥ ७ ॥ क एपां कर्करी लिखत् ८
 क एपां दुन्दुभिं हनत् ९ यदीयं हनत् कथं हनत् १०
 देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥ पर्यांगारं पुनः पुनः १२
 त्रीण्युष्टस्य नामानि १३ हिरण्य इत्येके अब्रवीत् १४
 द्वौ वां ये शिशवः ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डवाहनः १६

इति नवमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर अलावुक (रामतुरई-लौकी) एक ॥ १ ॥
 खोदने वाला अलावुक ॥ २ ॥ निखातक कर्करिक ॥ ३ ॥
 यह वायुको उखेड़ता है ॥ ४ ॥ कुलायको करता है ॥ ५ ॥
 विस्तृत उग्रकी संभक्ति करता है ॥ ६ ॥ अविस्तृतका सेवन
 नहीं करता है ॥ ७ ॥ इनमेंसे कौन कर्करी लिखता है ॥ ८ ॥
 इनमेंसे कौन दुन्दुभिको मारती है ॥ ९ ॥ यदि यह मारती है
 तो कैसे मारनी है ॥ १० ॥ देवीने मारा, कुहनन किया ॥ ११ ॥
 भवनके चारों ओर बारम्बार ॥ १२ ॥ उष्ट्रके तीन नाम हैं १३
 एक हिरण्य यह बोला ॥ १४ ॥ जो शिशु हैं वे दो हैं ॥ १५ ॥
 नीलशिखण्डवाहन ॥ १६ ॥

नवम अनुवाकमे छत्तीसवां सूक्त समाप्त (७४८)

“वितनौ किरणौ द्वौ” इति प्रवहिकाख्या अथः अर्धचर्चाः

शंसति । तद् उक्तं वैताने । “विततो किरणौ द्वाविति प्रवहिकाः”
इति [वै० ६. २] ॥

“विततो किरणौ द्वौ” इस प्रवहिका नामक ऋचाको अथर्व-
रूपमें पढ़े । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विततो
किरणौ द्वाविति प्रवहिकाः” इति (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

विततो किरणौ तावां पिनष्टि पूरुषः ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥

दो किरणें फैली हुई हैं पुरुष उनका पिशन करता है, हे
कुमारि ! तू उसको जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ १ ॥

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते । न वै० २

हे पुरुष ! अनृतसे निवृत्त हुआ जो तू है, उस तेरी माताकी
दो किरणें हैं । हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा
नहीं है ॥ २ ॥

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । न वै० ३

हे मध्यमे ! तू दोनों कानोंको पकड़ कर नहीं देती है, हे
कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ३ ॥

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि । न वै० ४

उत्ताना वा शयानाके लिये खड़ी होकर आलिङ्गन करती है,
हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ४ ॥

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि । न वै०

तू श्लक्ष्णा वा श्लक्ष्णकामें श्लक्ष्ण ही अवगूहन करती है, हे
कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ५ ॥

अवश्लक्ष्णमिवं भ्रंशदन्तलोममतिं हृदे ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

इति नवमेऽनुवाकेऽसप्तविंशं सूक्तम् ॥

दृष्टे दाँत और लोमयुक्त सरोवरमें अवश्लक्ष्णकी समान है ।
हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है, वह तैसा नहीं है ॥ ६ ॥

नवम अनुवाकमें सैंतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४३)

“इहेत्य प्रागपागुदगधराक्” इति प्रतिराधाख्या ऋचः अर्ध-
र्चशः शंसति । न संतनोति । तद् उक्तं वैताने । “इहेत्य प्रागपा-
गुदधराग् इति प्रतिराधान् । न संतनोति” इति [वै० ६. २] ॥

“इहेत्य प्रागपागुदगधराक्” इन प्रतिराधा नामक ऋचाओं
को अर्धर्चरूपमें पढ़े । विस्तार न करे । इसी बातको वैतानसूत्र
में कहा है, कि—“इहेत्य प्रागपागुदगधराग् इति प्रति राधान् ।
न संतनोति” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

इहेत्य प्रागपागुदगधराग्—अरालागुदंभर्त्सथ ॥ १ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण अरालसे उर्भर्त्सन
करो ॥ १ ॥

० वत्सा पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥

० वत्स पुरुष बनना चाहते हुए बैठे हैं ॥ २ ॥

० स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥

० स्थालीपाक विलीन होता है ॥ ३ ॥

० स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥

० वह बहुत ही लीन होजाता है ॥ ४ ॥

० अष्टौ लाहणि लीशांथी ॥ ५ ॥

० लाहनमें लीशाथी उपभोग करती है ॥ ५ ॥

इहेत्य प्रागपागुदगधराग्-अचिल्ली पुच्छिलीयते ६

इति नयमेनुवाके अष्टत्रिंशं सूक्तम् ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व पश्चिम उत्तरमें अचिल्ली पुच्छिल होती है ६

नयम अनुवाकमें अष्टासीसवाँ सूक्त समाप्त (७५०)

“भुगित्यभिगतः” इत्याजिज्ञासेन्याख्यास्तिस्रः अचः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “भुगित्यभिगत इत्याजिज्ञासेन्यास्तिस्रः” इति [वै० ६. २] ॥

“वीमे देवा अक्रंसत” इत्यतीवादख्या अचः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । , “वीमे देवा अक्रंसतेत्यतीवादम्” इति [वै० ६. २] ॥

“भुगित्यभिगतः” इन आजिज्ञासेनी नामक तीन अचआँ को पढ़ता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“भुगित्यभिगत इत्याजिज्ञासेन्यास्तिस्रः” (वैतानमूत्र ६ । २) ॥

“वीमे देवा अक्रंसत” इन अतीवाद नामक अचआँको आधी २ अचआ करके पढ़े । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“वीमे देवा अक्रंसतेत्यतीवादम्” (वैतानमूत्र ६ । २) ॥

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः ।

दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथांमो देव ॥ १ ॥

सूक् यह अभिगत है, गल् यह अपक्रान्त है, फल यह अभिष्ठित है, हे स्तोतः ! इसके उपरान्त आप दुन्दुभियों को ताड़ित करने वाले दो दण्डोंसे क्रीड़ा करिये ॥ १ ॥

कोशविलं रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।

उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तां जनीन् वर्त्मन्यात् २

कोशविल रजनिमें ग्रन्थिके धानको जूतेमें पैरको और उत्तमा जनिमा, जन्य और उत्तमा जनियोंको मार्गमें (स्थापित करे) २

अलावूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।

पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरित
रोथामो दैव ॥ ३ ॥

लौकी, पृषातक, अश्वत्थ, ढाक, पिपीलिक, अवटश्वम, विद्युत्, स्वापर्णशफ, गोशफ, हे स्तोतः ! इसके उपरान्त तू बल से क्रीड़ा कर ॥ ३ ॥

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचरं ।

सुसत्यमिद् गवांस्यसिं प्रखुदसिं ॥ ४ ॥

ये देवता दमक रहे हैं, हे अध्वर्यो ! आप शीघ्रतासे मन्त्रों-का उच्चारण करिये, आप गौओंके लिये सत्य और प्रसुत् हैं ४

इह इत्येतामर्धर्चशः प्रणवत्पनुते ॥

पत्नी यदृश्यते पत्नी यद्यमाणा जरितरोथामो दैव ।

होता विंष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥ ५ ॥

जो पत्नी है वह पूजन करती हुई ही पत्नी दीखती है, हे जरितः ! इसके उपरान्त आप भयोंकी जीतनेकी इच्छा करिये ५

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।

तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ६

हे स्तोतः ! आदित्य अंगिराओंसे दक्षिणाको लाये थे, हे जरितः ! उसको वे लाये थे, हे स्तोतः ! उसको वे लाये थे ६
तां हं जरितर्नः प्रत्यंगृभ्णंस्तामु हं जरितर्नः प्रत्यंगृभ्णः
अहानेतरसं न विचेतनां न यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः

हे हमारे स्तोतः ! उसको उन्होंने ग्रहण किया था, हे हमारे स्तोतः ! उसको आपने ग्रहण किया था, अहानेतरमको नहीं विशेष चेतनोंको और यज्ञानेतरसंको नहीं, किंतु विशेष चेतनोंको हम सम्मुख होकर प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः ।

उतेमाशु मानं पिपति ॥ ८ ॥

श्वेत और आशुपत्वा आप पदमयी ऋचाओंसे युक्त होते हैं और इनको शीघ्र मान पूर्ण करता है ॥ ८ ॥

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं रायः प्रतिगृणीह्यङ्गिरः
इदं राधो विभु मभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥

हे अंगिरः ! आदित्य वसु और रुद्र तेरे अनुकूल हैं, तू इस धनको ग्रहण कर, यह धन विभु और मभु है, और यह धन विशाल और बृहत् है ॥ ९ ॥

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।

युष्मां अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥

देवता तुम्हें प्राणबल देवें, वह आपको चेतनता देने वाला होवें, तुम्हें प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होवें, प्रत्येक अवसर पर आपको प्राप्त होवें ॥ १० ॥

सप्तदश पदान्यष्टादशभिर्व्याख्याता प्रतिगरे विकारः । ॐ ह
जरितस्तथा ह जरितरिति विपर्यासं जरितुं मतिष्वेवं प्रतिगरामके
सर्वाश्रितिपाणिनास्त्वमिन्द्र शर्मरिणेति तिस्रो भूतेष्वदो अर्धर्चशः॥

सत्रह पद अठारहसे व्याख्यात होगए, प्रतिगरमें विकार है ।
ओं ह जरितस्तथा ह जरितः इस विपर्यायसे स्तुति करनेके लिये
तथा प्रतिगरामकमें सर्वाशु हाथसे “त्वमिन्द्र शर्मरिणा” इन
ऋचाओंके होने पर इनका अर्धर्चरूपमें पढ़े ।

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।

विप्रांय स्तुवते वसुवर्णिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! आप इस लोक और परलोक दोनों लोकोंके पार
तक पहुँचने वाले (देवताओं) के लिये शर्मरी (कल्याणप्रद
अवयव) से हव्यका बहान करिये । और जिसको अन्न मिलना
दुस्तर होरहा है उस स्तुति करने वाले विप्रके लिये धनका सं-
भक्तन करने वाली शक्तिको दीजिये ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वज्रते ।

श्यामाकं पक्कं पीलुं च वारस्मा अकृणोर्वहुः ॥ १२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप परकटे अतएव खिचड़ते हुए कपोतके लिये
काकुनी, और अखरोटको तथा बहुतसे जलको करिये ॥ १२ ॥

अरंगसो वावदीति त्रेधा वज्रो वरत्रया ।

इरामह प्रशंसत्यनिरामपं सेधति ॥ १३ ॥

इति नवमेनुवाके एकोनचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

चमड़ेकी रस्सीसे तीन स्थानोंमें बँधा हुआ अरंगर वारम्बार

(५६०) अथर्ववेदसंहिता समाप्य-भाषानुवादसहित

शब्द करता है । यह पृथ्वी की प्रशंसा करता है और पृथ्वी-
रहित स्थानका अपसेधन करता है ॥ १३ ॥

मयम अनुपाकमे उन्तालोसर्वा एक समाप्त (७५१)

“यदस्या” इति षोडश आह्नस्या वृषाकपिला वैशिषमुत्तमेन
पादेन प्रणीति ॥

“यदस्या अंहुभेद्याः” इत्याह्नस्याख्याः षोडशर्चः वृषाकपि-
शस्त्रवच्छंसति । तद् उक्तं वैताने । “यदस्या अंहुभेद्या इत्याह-
नस्या वृषाकपिवत्” इति [वै० ६. २] ॥

“यदस्या अंहुभेद्याः” इन आह्नस्य नामक सोलह श्रुचाओं
को वृषाकपिशस्त्रकी समान पढ़े । इसी घातको, वैतानसूत्रमें कहा
है, कि— ‘यदस्या अंहुभेद्या इत्याह्नस्या वृषाकपिवत्’ (वैतान-
सूत्र ६ । २) ॥

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातंसत् ।

मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शंकुलाविव ॥ १ ॥

जो इस पापभेदिनीका स्थूल कृधु क्षीण होगया है, शंकुल
(सौरा मझली) की समान इसके मुष्क गोशफमें हिलने हैं १
यदां स्थूलेन पसेसाणौ मुष्का उपावधीत् ।

विष्वेद्या वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दिभौ ॥ २ ॥

जब स्थूल पसः (शिश्न) से अणुमें मुष्कोंका प्रहार किया
तब जैसे रेतमें गधे बढ़ते हैं तैसे ही इस चारों ओर गमन करती
हुई आच्छादिकामें मुष्क बढ़ते हैं ॥ २ ॥

यदलिपिकास्त्रालिपिका कर्कधूकेवपद्यते ।

वासान्तिकमिव तेजनं यन्त्यवातांय वित्पति ॥ ३ ॥

जो अन्निकामें अन्निका है, और जो कर्कषूकाकी समान अव-
पदन करती है, वासन्तिक तेजनकी समान अवातके लिये वित्पत्
में जाते हैं ॥ ३ ॥

यद् देवासां ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।

सकुला दंदिश्यते नारी सत्यस्यांक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥

जब देवता प्रविष्ट सुन्दर गौमें प्रसन्न होते हैं, तब सत्य अक्षि-
भूकी समान सकुला नारी बार बार अला दीजाती है ॥ ४ ॥

महानग्न्युत्प्रद्वि मोक्रंददस्थानासरन् ।

शक्तिकानना स्वंचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥

ऊपर खड़े हुआ पर न दौड़ता हुआ, उत्क्रमण न करता हुआ
महाअग्नि वृत्त होता है, शक्तिकानन हम स्वचमशक दमकते हुआ
को प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

महानग्न्युल्लूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।

यथा तवं वनस्पते निरंघ्रन्ति तथैवति ॥ ६ ॥

महान् अग्नि उल्लूखलका अतिक्रमण करती हुई कहने लगी
कि-हे वनस्पते ! जैसे तुझे कुटते हैं, तैसे ही ॥ ६ ॥

महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोथाप्यभूभुवः ।

यथैव ते वनस्पते पिप्पन्ति तथैवति ॥ ७ ॥

महान् अग्नि कहती है, कि-तू भ्रष्ट होकर भी बारम्बार प्रकट
होजाता है, हे वनस्पते ! जिस प्रकार तू पूरण होता है तिसी
प्रकार ॥ ७ ॥

महानग्न्युपं ब्रूते अष्टोथाप्यभूभुवः ।

यथा वयो विदाह्यं स्वर्गे नमवदुह्यते ॥ ८ ॥

महान् अग्नि कहता है, कि-तू अष्ट होकर भी बारम्बार प्रकट होजाता है, जैसे अवस्था जीर्ण होकर स्वर्गमें इविकी समान धारण की जाती है ॥ ८ ॥

महानग्न्युपं ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।

इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पं शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

महान् अग्नि कहता है कि-यह शिश्रु भली प्रकार आवेशित कर दिया है, इस प्रकार हम फलसम्पन्न वृक्ष के छात्रमें छात्र का भजन करते हैं ॥ ९ ॥

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परिं धावति ।

अयं न विज्ञ यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् १०

महान् अग्नि कृक शब्द करने वालेपर कर्मसे दीड़ता है। हम जानते हैं कि-वह मृगकी समान शिरसे धाणिकाका हरण करता है महानग्नी महानग्निं धावन्तमनु धावति ।

इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामञ्चौदनम् ॥ ११ ॥

महान् अग्नि दीड़ते हुए महानग्नके पीछे दीड़ता है। इसकी इन इन्द्रियोंकी रक्षा कर, मेरे साथ मैथुन कर और भात भक्षण कर ११ सुदेवस्त्वा महानग्नीर्विधाधते महतः साधु खोदनम् । कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

शोभन दमकने वाला महान् अग्नि भली प्रकार विशेषरूपसे पीड़ा देता है, यह बड़े बड़ोंको कुरेदने वाला है, अधुना कृशको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

वशा दग्धानिमाङ्गुरिं प्रसृजतोग्रतं परे ।

महान् वै भद्रो यम् गामंध्यौदनम् ॥ १३ ॥

वशाने इस जली हुई अंगुलिको रचा है, दूसरे उग्रतकी रचना करते हैं महान् कन्याणकारी होता है, मेरे साथ मैथुन कर और भातका भक्षण कर ॥ १३ ॥

विदेवस्त्वा महानंभीर्विवांधते महतः साधु खोदनम् ।

कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मां कु धावन्ति १४

यह विशिष्ट देवता महान् अग्नि विशेषरूपसे पीड़ा देता है, यह बड़ेको साधु खोद डालता है, कुमारिका पिङ्गलिका कार्मको करके दौड़ जाती है ॥ १४ ॥

महान् वै भद्रो विन्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।

महाँ अभिक्त वांधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

महान् विन्व भद्र है, महान् उदुम्बर भद्र है, जो महान् चारों ओरसे पीड़ा देता है, यह बड़ों २ को भली प्रकार खोदन करने वाला है ॥ १५ ॥

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्ते पीवरी लभेत् ।

तेलंकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुद्धमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

इति नवमेनुराके सत्वारिंशं सूक्तम् ॥

इति कुन्तापस्तुकानि ॥

जो पिंगलिका पीवरी कुमारी वसन्तको पाजावे तो तैलके कुण्डमेंसे अँगूठेकी समान इस कुरेदते हुए शुद्धका उद्धार करती है

नयन अनुशास्त्रमें चालीसवीं सूक्त समाप्त (७१२)

सोमयागे “दधिक्राव्णः” [२०. १३७. ३] इत्यस्या अच आग्नीध्रीये दधिभक्षणे विनियोगः । तद् उक्तं वैताने । “आग्नीध्रीये दधि भक्षयन्ति दधिक्राव्ण इति” इति [वै० ३. १३] ॥

तथा पृष्ठपङ्कहे “दधिक्राव्णः” इत्येतामृचम् अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “दधिक्राव्णो अकारिपमित्यर्धर्चशः” इति [वै० ६. २] ॥

तत्रैव “सुतासो मधुमत्तमाः” [२०. १३७. ४-६] इति पावमान्याख्यास्तिस्रः अचः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः” इति [वै० ६. २] ॥

तत्रैव “अव द्रप्सो अंशुमतीम्” [२०. १३७. ७-८] इति तिस्रः अचः पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति पच्छः” इति [वै० ६. २] ॥

सोमयागमें “दधिक्राव्णः” (२० । १३७ । ३) अचका आग्नीध्रीय दधिके भक्षणमें विनियोग है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“आग्नीध्रीये दधि भक्षयन्ति दधि क्राव्णः” (वैतानसूत्र ३ । १३) ॥

तथा पृष्ठपङ्कहमें “दधिक्राव्णः” अचको अर्धर्चरूपमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“दधि क्राव्णो अकारिपमित्यर्धर्चशः” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

तहाँ ही “सुतासो मधुमत्तमाः” (२० । १३७ । ४-६) इन पावमानी नामक तीन अचकोंको अर्धर्चरूपमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

तहों ही “अव द्रप्सो मधुमतीम्” (२० । १३७ । ७-६)
 इन तीन ऋचाओंको पद पद करके पढ़ें । इसी बातको वैतान-
 सूत्रमें कहा है, कि—“अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति पच्छः”
 (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।

हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुधुदयाशवः ॥ १ ॥

यत् । ह । प्राचीः । अजगन्त । उरः । मण्डूरधाणिकीः ।

हताः । इन्द्रस्य । शत्रवः । सर्वे । बुधुबुदयाशवः ॥ १ ॥

जब प्राचीन मण्डूरधाणिकी वनःस्थलको प्राप्त हुई, तब इन्द्र
 के सब बुधुबुदयाशु शत्रु मारे गए ॥ १ ॥

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाज-
 सातये ।

निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सवाध इह सोम-
 पीतये ॥ २ ॥

कपृत् । नरः । कपृथम् । जत् । दधातन । चोदयत । खुदत । वाज-
 सातये ।

निष्टिग्र्यः । पुत्रम् । आ । च्यावय । ऊतये । इन्द्रम् । सवाधः । इह ।
 सोमपीतये ॥ २ ॥

मनुष्य कपृत् है, तुम कपृथको धारण करो, अन्नकी मांसिके
 लिये मेरणा करो, रूक्षा पानेके लिये पुत्रको उत्पन्न करो और

वाचः । पतिः । मत्स्यते । विरवस्य । ईशानः । ओजसा ॥ ५ ॥

सोम इन्द्रदेवके लिये पवित्र किया जाता है, इस प्रकार देवता कहते हैं, विरवके ईश्वर वाचस्पति बलपूर्वक मशंसा पाते हैं ॥ ५ ॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीद्वयः ।

सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

सहस्रधारः । पवते । समुद्रः । वाचमीद्वयः ।

सोमः । पतिः । रयीणाम् । सखा । इन्द्रस्य । दिवेदिवे ॥ ६ ॥

यह गमन करने वाला जलसे भरा हुआ सहस्रों धारों वाला सोम पवित्र किया जा रहा है, यह सोम धनोंका स्वामी है और मत्येक स्तोत्रके लिये इन्द्रका मित्र बन जाता है ॥ ६ ॥

अवं द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहसैः ।

आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणां अधत्त ॥ ७ ॥

अव । द्रप्सः । अंशुमतीम् । अतिष्ठत् । इयानः । कृष्णः । दशभिः । सहसैः ।

आवत् । तम् । इन्द्रः । शच्या । धमन्तम् । अप । स्नेहितीः । नृमणाः । अधत्त ॥ ७ ॥

दश सहस्र किरणोंसे (रसको) खेंचने वाले सूर्य पृथ्वीको

विंशः । अदेवीः । अभि । आऽचरन्तीः । बृहस्पतिना । युजा ।

इन्द्रः । सप्तहे ॥ ६ ॥

इसके उपरान्त शुकने अपने शरीरको सूक्ष्म करके अंशुमती
क्रोड़में स्थापित कर दिया, जो देवताओंको न मानने वाली मजाएँ
हैं, उनको इन्द्रने बृहस्पतिकी सहायता लेकर नष्ट कर दिया ६
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रु-
रिन्द्र ।

गूल्हे द्यावां पृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो
रणं धाः ॥ १० ॥

त्वम् । ह । त्यत् । सप्तभ्यः । जायमानः । अशत्रुभ्यः । अभवः
शत्रुः । इन्द्र ।

गूल्हे इति । द्यावां पृथिवी इति । अन्तु । अविन्दो । विभुमद्भ्यः ।
भुवनेभ्यः । रणम् । धाः ॥ १० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सातों अशत्रुओंमें प्रकट होकर उनके शत्रु
बन जाते हैं, आपने द्यावापृथिवीका आलिङ्गन किया है और
इसके अनन्तर आपने उनको प्राप्त किया है, और विभुत्व वाले
भुवनोंसे रणको ठान दिया था ॥ १० ॥

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृपितो जघन्य
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शन्येदविन्दः

गिरा वज्रो न संभृतः सवलो अनपच्युतः । ववक्ष
ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४ ॥

गिरा । वज्रः । न । सम्भृतः । सवलः । अनपच्युतः ॥ ववक्षे ।

ऋष्वः । अस्तृतः ॥ १४ ॥

इति नवमेनुवाके एकचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

अच्युत बलवान् इन्द्र पर्वतसे मिलने वाले वज्र की समान
बलसे भरे हुए हैं । यह अहिंसित श्रेष्ठ पुरुष (शत्रुओंके धनोंको)
यजमानों पर पहुँचाते हैं ॥ १४ ॥

नवम अनुवाकमे इकतालीसवाँ सूक्त समाप्त (८५३)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्तेषु “महौ इन्द्रो य ओजसा” इत्यस्य
विनियोगः “तमिन्द्रं वाजयामसि” [२०. ४७] इत्यनेन सह उक्तः
तथा छन्दोमाह्वयेषु त्रिष्वहःसु अस्य विनियोगस्तत्रैवोक्तः ॥
तथा त्र्यहाणां चतुर्थेष्वहःसु “महौ इन्द्रो य ओजसा” इत्यस्य
विनियोगः “अभि म वः सुराधसम्” [२०. ५१] इत्यत्र उक्तः
तथा चतुरहाणां चतुर्थेष्वहःसु “महौ इन्द्रो य ओजसा” [२०.
१३८] “य एक इद्र विदयते” [२०. ६३. ४] इत्येतां आज्यो-
क्वस्तोत्रिया भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थेषु महौ इन्द्रो य
ओजसा य एक इद्र विदयत इति” इति [वै० ७. ३] ॥

तथा त्रिककुडशाहस्य अष्टमेहनि एष आज्यस्तोत्रियो भवति ।
तद् उक्तं वैताने । “अष्टमे महौ इन्द्रो य ओजसेति” इति [वै० ८. ४]

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्त्यां “महौ इन्द्रो य ओजसा” इसका
विनियोग “तमिन्द्रं वाजयामसि” (२० । ४७) के साथ कर
दिया है ।

हे अश्विनीकुमारों ! तुम सत्यकी प्रजाको पुष्ट करो, कि—
जिसका अग्निएँ भरण कर रही हैं और ब्राह्मण यज्ञका बहन
करने वाले अग्निसे जिसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ २ ॥

कएवा इन्द्रं यदक्रंत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि
ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

कएवाः । इन्द्रम् । यत् । अक्रंत । स्तोमैः । यज्ञस्य । साधनम् ॥

जामि । ब्रुवते । आयुधम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके द्विचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

कएवने जिस इन्द्रको स्तोमोंसे यज्ञका साधन बनाया है उसी
को जामि आयुध बताती हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें अष्टालोसर्ग सूक्त समाप्त (७५५)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थेपु स्तोत्रियानुरूपयोरनन्तरम् “आ नून-
मश्विना युवम्” [२०. १३६] “तं वां रथम्” [२०. १४३]
इति सूक्ते शंसति । तत्र पूर्वसूक्तस्य दशमीं द्वादशीमृचम् उग्र-
सूक्तं च पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “आ नूनमश्विना युवं
तं वां रथमिति सूक्ते । पूर्वस्य दशमीं द्वादशीमुत्तरं च पच्छा”
इति [वै० ४. ३] ॥

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थोंमें स्तोत्रिय और अनुरूपके अनं-
तर “आ नूनमश्विना युवम्” (२० । १३६) “तं वां रथम्”
(२० । १४३) इन सूक्तोंको पढ़े । इनमें प्रथमसूक्तकी दशमी
और चारद्वीं अष्टकाको और अगले सूक्तको भी पद पद करके
पढ़े । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“आ नूनमश्विना
युवं तं वां रथमिति सूक्ते । पूर्वस्य दशमीं द्वादशीमुत्तरं च पच्छा”
(वैतानमूत्र ४ । २) ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो ब्राह्मण आपके कर्मोंका परिमर्जन करते हैं, इस सबको काण्वका कृत्य समझो ॥ ३ ॥

अयं वां धर्मो अश्विना स्तोमेन परि पिच्यते ।

अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः

अयम् । वाम् । धर्मः । अश्विना । स्तोमेन । परि । सिच्यते ।

अयम् । सोमः । मधुमान् । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू ।

येन । वृत्रम् । चिकेतथः ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आपका यह स्तोम धर्मसे परिपिश्रित होना है, यह सोम मधुसम्पन्न है, हे हविरूप क्रियात्मक धनसे संपन्न अश्विनीकुमारों ! इस सोमसे आप आबरक शत्रुको जानते हैं ४

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोपधीषु पुरुदंससा कृतम् ।

तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

यत् । अप्सु । यत् । वनस्पतौ । यत् । ओपधीषु । पुरुदंससा ।

कृतम् ।

तेन । मा । अविष्टम् । अश्विना ॥ ५ ॥

इति नवमेनुवाके त्रिचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों जलमें वनस्पतिमें और ओपधियोंमें ओ कृत है, उससे आप मुझको पूर्ण करिये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें तैत्तिरीयसंघात सूक्त समाप्त (७५५)

यन्नांसत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।

हे अश्विनीकुमारों ! तुम शीघ्रतासे चलने वाले रथमें बैठने हो, यह आपके लिये कृपे हुए मेरे स्तोत्र आकाशकी समान अच्युत रहे ॥ ३ ॥

यद्वा वां नासत्योऽश्विनाञ्चुन्यवीमहि ।

यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥

यत् । अथ । वाम् । नासत्या । उरथैः । आञ्चुन्यवीमहि ।

यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना । एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज उरथोंसे आपकी शरणमें आ रहे हैं, हे अश्विनीकुमारों ! जो हम वाणीसे आपकी (स्तुति कर रहे हैं यह) काण्वकी ही कृपा समझिये ॥ ४ ॥

यद्वां कृत्तीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्गद्वां दीर्घ-
तमा जुहाव ।

पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेत-
येथाम् ॥ ५ ॥

यद् । वाम् । कृत्तीवान् । उत । यद् । विश्वरवः । ऋषिः । यद् ।
वाम् । दीर्घेऽन्तमाः । जुहाव ।

पृथी । यद् । वाम् । वैन्यः । सादनेष्व् । एव । इत् । अतः ।
अश्विना । चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

इति नवमेऽनुवाके चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

यत् । आदित्येभिः । ऋभुऽभिः । सऽजोपसा । यत् । वा ।

विष्णोः । विऽक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इन्द्रके साथ एक रथमें बैठ कर जाते हैं, और आप वायुके साथ एक स्थानमें रहने वाले हैं, और आप आदित्य तथा ऋभुओंके साथ समान मीति रखने वाले हैं और आप विष्णुके विक्रमणोंमें रहते हैं ॥ २ ॥

यद्वाश्विनां वहं हुवेय वाजसातये ।

यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोस्वः ॥ ३ ॥

यत् । अथ । अश्विनौ । अहम् । हुवेय । वाजसातये ।

यत् । पृत्सु । तुर्वणे । सहः । तत् । श्रेष्ठम् । अश्विनोः । अथः

हे अश्विनीकुमारों ! मैं जो आपको अन्नप्राप्तिके लिये आह्वान कर रहा हूँ, हे यजमानोंको शीघ्रतासे सेवन करने वाले ! जो आप संग्रामोंमें शत्रुओंको दबाने वाले हैं, वही आपकी श्रेष्ठ रक्षा है ३
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सोमांसो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथं ४

आ । नूनम् । यातम् । अश्विना । इमा । हव्यानि । वाम् । हिता ।

इमे । सोमांसः । अधि । तुर्वशे । यदा । इमे । कण्वेषु । वाम् ।

अथ ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप अवश्य आइये, ये हव्य आपका दित करने वाले हैं, यह सोम मनुष्य यदुमें और कण्वमें है अब आप दोनों आइये ॥ ४ ॥

(हे स्तोतः !) आप मातःकालके समय अश्विनीकुमारोंको
(अपने स्तोत्रको) जताइये, हे मृतुते देवि ! आप उसको प्रशं-
नीय करिये और हे यज्ञहोतः ! आप विशाल कीर्तिको चारों
ओर फैलाइये ॥ २ ॥

यदुपो यासिं भानुना सं सूर्येण रोचसे ।

आ हायमाश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

यत् । उपः । यासिं । भानुना । सम् । सूर्येण । रोचसे ।

आ । ह । अयम् । अश्विनोः । रथः । वर्तिः । याति । नृपाय्यम्

हे अश्विनीकुमारोंके रथ । तू अपनी कान्तिसे उपाको प्राप्त
होता है और सूर्यके साथ दमफ्ता है, और अश्विनीकुमारोंका
रथ घोड़ोंके नृपाय्य मार्गमें जाता है ॥ ३ ॥

यदापीतासो अशवो गावो न दुह ऊधंभिः ।

यद्वा वाणीरनूपत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

यत् । आपीतासः । अशवः । गावः । न । दुहे । ऊधंभिः ।

यत् । वा । वाणीः । अनूपत । प्र । देवयन्तः । अश्विना ॥ ४ ॥

जब किरणें पी हुईंसी होती हैं, तब गौएँ ऐनोंसे दुही जाती
हैं, हे अश्विनीकुमारों ! उस समय अश्विज स्तुति करते हैं, और
वाणी आपकी स्तुति करती है ॥ ४ ॥

प्र ह्युम्नाय प्र शवंसे प्र नृपालाय शर्मणे । प्र दक्षाय

प्रचेतसा ॥ ५ ॥

८. ६) ये दो ऋचाएँ क्रमशः परिधानीया और शस्त्रयाज्या होती हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मधुमेतीरोपधीरिति परिधानीया उत्तरा याज्या” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तं वां रथे वयमद्या हुमेव पृथुज्रयंमश्विना संगतिं गोः ।

यः सूर्या वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् १

तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम । पृथुज्रयम् । अश्विना ।

सम्संगतिम् । गोः ।

यः । सूर्याम् । वहति । बन्धुरायुः । गिर्वाहसम् । पुरुतमम् ।

वसूयुम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज आपके उस रथका आवाहन करते हैं, जो आपका रथ विशाल वेग वाला है, गौओंकी संगति करने वाला है जो ऊँचेनीचे स्थानमें जाने वाला आपका रथ सूर्याका वहन करता है. उस बाणीका वहन करने वाले पुरुतम वसुको प्राप्त कराने वाले रथ का मैं आवाहन करता हूँ ॥ १ ॥

युवं श्रियंमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः

शचीभिः ।

युवोर्वपुंरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् कंकुहासो

रथे वाम् ॥ २ ॥

युवम् । श्रियम् । अश्विना । देवता । ताम् । दिवः । नपाता ।

वनथः । शचीभिः ।

पिनाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधंथो रत्नं विधत्ते जनाय ४

हिरण्ययेन । पुरुभू इति पुरुषभू । रथेन । इमम् । यज्ञम् । ना-
सत्त्वा । वय । यातम् ।

पेवायः । इन् । मधुनः । सोम्यस्य । दधंथः । रत्नम् । विधत्ते ।
जनाय ॥ ४ ॥

हे महान् रूपमें मरुट होने वाले अश्विनीकुमारों ! आप हित
रमणीय रथसे इस यज्ञमें आइये । मधुर सोमके अंशको पीजिये
और सेवा करने वाले मनुष्यके लिये रत्न दीजिये ॥ ४ ॥

आ नो यातं दिवो अञ्छा पृथिव्या हिरण्ययेन
सुवृता रथेन ।

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नामिः
पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥

आ । नः । यातम् । दिवः । अञ्छा । पृथिव्याः । हिरण्ययेन ।
सुवृता । रथेन ।

मा । नः । वामन्ये । नि । यमन् । देवयन्तः । सम् । यद् । ददे ।
नामिः । पूर्व्या । वाम् ॥ ५ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम हित रमणीय सुवृत् रथके द्वारा पृ-
थ्वीके पृथिवीलोकके अभिमुख होकर आओ दूसरे पूजन करने
वाले आपको वशमें न कर सकें मैं तुम दोनोंको पूर्व (नवीन)
भवनकागिणी (स्तुति) प्रदान करता हूँ ॥ ५ ॥

को वाजरत्ना सुमतिसे-संयुक्त करिये, हे अश्विनीकुमारों । आप
इस स्तोताकी रक्षा करिये इसकी कामना आप परही निर्भर है७
मधुमतीरोपधीर्द्याव आपो मधुमन्तो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्तो अस्त्वरिण्यन्तो अन्वेनं चरेम ८
मधुमतीः । ओपधीः । द्यावः । आपः । मधुमन् । नः । भवतु ।
अन्तरिक्षम् ।

क्षेत्रस्य । पतिः । मधुमान् । नः । अस्तु । अरिण्यन्तः । अनु ।
पुनम् । चरेम ॥ ८ ॥

ओपधिये हमारे लिये मधुमती होवें, द्यलोक हमारे लिये मधु-
मय हो, अन्तरिक्ष हमारे लिये मधुमय हो, क्षेत्रका पति हमारे
लिये मधुमय हो और इसके पीछे हम नष्ट न होते हुए विचरण करें
पुनार्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजंसः

पृथिव्याः ।

सहस्रं शंसां उत ये गविंष्टौ सर्वा इत् तां उप याता
पिवंथ्ये ॥ ९ ॥

पुनस्तम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वाम् । वृषभः । दिवः ।
रजंसः । पृथिव्याः ।

सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोशृष्टौ । सर्वा । इत् । तान् ।
यात । पिवंथ्ये ॥ ९ ॥

नवमेनुवाके सप्तवत्वारिंशं सूक्तम् ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम ग्रीष्मनाम, चलने वाले रथमें बैठने हो, यह आपके लिये किसे हुए मेरे स्तोत्र आकाशकी समान अच्युत रहे ॥ ३ ॥

यद्वा वा नासत्योक्थेराचुच्यवीमहि ।

यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत् काणवस्य बोधतम् ॥ ४ ॥

यत् । अथ । वाम् । नासत्या । उक्थैः । आऽचुच्युवीमहि ।

यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना । एव । इत् । काणवस्य । बोधतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज उक्थोंसे आपकी शरणमें आ रहे हैं, हे अश्विनीकुमारों ! जो हम वाणीसे आपकी (स्तुति कर रहे हैं यह) काणवकी ही कृपा समझिये ॥ ४ ॥

यद्वां कृत्तीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्गद्वां दीर्घ-
तमा जुहाव ।

पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेत-
येयाम् ॥ ५ ॥

यत् । वाम् । कृत्तीवान् । उत । यत् । विश्वरवः । ऋषिः । यत् । वाम् । दीर्घजमाः । जुहाव ।

पृथी । यत् । वाम् । वैन्यः । सादनेषु । एव । इत् । अतः । अश्विना । चेतयेयाम् ॥ ५ ॥

इति नवमेनुवाके चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों ! कक्षीवान् व्यश्व और दीर्घतमा नामक ऋषियोंने जो आपके निमित्त आहुति दी है, और जो वेनका पुत्र पृथी है, वह आपके सदनमें ही है, हे अश्विनीकुमारों ! इस लिये प्रबुद्ध होइये ॥ ५ ॥

नथम अनुवाकमे चीवालीसवाँ सूक्त समाप्त (७५६)

यातं हृदिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्त-
नूपा ।

वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

यातम् । हृदिःऽर्पा । उत । नः । परःऽपा । भूतम् । जगद्ऽर्पा ।

उत । नः । तनूऽपा ।

वर्तिः । तोकाय । तनयाय । यातम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप हमारे भवनकी रक्षा करते हुए मास हजिये, श्रेष्ठ रक्षक होने हुए आप मास हजिये, जगत्के रक्षक होते हुए मास हजिये और हमारे शरीरके रक्षक बनने हुए मास हजिये, पुत्र और पीत्रके लिये वर्तन करते हुए मास हजिये ॥१॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवयः

समोकसा ।

यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोपसा यद् वा विष्णोर्वि-

क्रमणेषु तिष्ठथः ॥ २ ॥

यत् । इन्द्रेण ससरथम् । याथः । अश्विना । यत् । वा । वायुना ।

भवयः । सम्ऽमोकसा ।

यत् । आदित्येभिः । ऋभुभिः । सऽजोपसा । यत् । वा ।
विष्णोः । विक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इन्द्रके साथ एक रथमें बैठ कर जाते हैं, और आप वायुके साथ एक स्थानमें रहने वाले हैं, और आप आदित्य तथा ऋभुओंके साथ समान मीति रखने वाले हैं और आप विष्णुके विक्रमणोंमें रहते हैं ॥ २ ॥

यद्वाश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत् पृतसु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवं ॥ ३ ॥

यत् । अथ । अश्विनौ । अहम् । हुवेय । वाजसातये ।

यत् । पृतसु । तुर्वणे । सहः । तत् । श्रेष्ठम् । अश्विनोः । अवं :

हे अश्विनीकुमारों ! मैं जो आपको अन्नमाप्तिके लिये आवाहन कर रहा हूँ, हे यजमानोंको शीघ्रतासे सेवन करने वाले ! जो आप संग्रामोंमें शत्रुओंको दबाने वाले हैं, वही आपकी श्रेष्ठ रक्षा है ३
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सोमांसो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथं ४

आ । नूनम् । यातम् । अश्विना । इमा । हव्यानि । वाम् । हिता ।

इमे । सोमांसः । अधि । तुर्वशे । यदा । इमे । कण्वेषु । वाम् ।

अथ ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप अवश्य आइये, ये हव्य आपका दित करने वाले हैं, यह सोम मनुष्य यदुमें और कण्वमें हैं अब आप दोनों आइये ॥ ४ ॥

(५८०) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यन्नांसत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।

तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ५

यत् । नासत्या । पराके । अर्वाके । अस्ति । भेषजम् ।

तेन । नूनम् । विमदाय । मश्चेतसा । छर्दिः । वत्साय । यच्छतम् ।

इति नवमेनुवाके पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो आपधि दूर वा पास है, आप अपने ज्ञानयुक्त मनसे विशेषमद करनेके लिये उ सकों दीजिये और वत्सके लिये घर दीजिये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमं वै ॥ लोमवाँ सूक्तं समाप्तं (७५७)

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाह अश्विनोः ।

व्यांवदेव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

अभुत्सि । ऊँ इति । प्र । देव्या । साकम् । वाचा । अहम् । अश्विनोः ।

वि । व्यावः । देवि । आ । मतिम् । वि । रातिम् । मर्त्येभ्यः ।

मैं ज्ञानमय बुद्धिसे अश्विनीकुमारोंको साथ रहनेवाला जानता हूँ, हे बुद्धिदेवि ! आप हमारी मतिको प्रकाशित करिये और मनुष्योंको धन प्रदान करिये ॥ १ ॥

प्र वोधयोपो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।

प्र यज्ञहोतरानुपक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

प्र । वोधय । उपः । अश्विना । प्र । देवि । सूनृते । महि ।

प्र । यज्ञहोतः । आनुपक् । प्र । मदाय । श्रवः । बृहत् ॥ २ ॥

(हे स्तोतः !) आप प्रातःकालके समय अश्विनीकुमारोंको
(अपने स्तोत्रको) जताइये, हे मृत्युते देवि ! आप उसको प्रशंस-
नीय करिये. और हे यज्ञहोतः ! आप विशाल कीर्तिको चारों
ओर फैलाइये ॥ २ ॥

यदुपो यासिं भानुना सं सूर्येण रोचसे ।

आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्यांति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

यत् । उपः । यासिं । भानुना । सम् । सूर्येण । रोचसे ।

आ । ह । अयम् । अश्विनोः । रथः । वर्तिः । याति । नृपाय्यम्

हे अश्विनीकुमारोंके रथ । तू अपनी कान्तिसे उपाको प्राप्त
होता है और सूर्यके साथ दम होता है, और अश्विनीकुमारोंका
रथ घोड़ोंके नृपाय्य मार्गमें जाता है ॥ ३ ॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह ऊधंभिः ।

यद्रा वाणीरनूपत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

यत् । आपीतासः । अंशवः । गावः । न । दुहे । ऊधंभिः ।

यत् । वा । वाणीः । अनूपत । प्र । देवयन्तः । अश्विना ॥ ४ ॥

जब किरणें पी हुईंसी होती हैं, तब गौएँ ऐनोंसे दुही जाती
हैं, हे अश्विनीकुमारों ! उस समय अश्विन स्तुति करते हैं, और
वाणी आपकी स्तुति करती है ॥ ४ ॥

प्र हुम्नाय प्र शवसे प्र नृपास्याय शर्मणे । प्र दक्षाय

प्रचेतसा ॥ ५ ॥

(५८२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य—भाषानुवादसहित

म । धुम्नाय । म । शवसे । म । नृऽसहाय । शर्मणे ।

म । दत्ताय । मऽचेतसा ॥ ५ ॥

मैं प्रकृष्टरूपसे धन पानेके लिये, और मनुष्योंको दवाने वाला श्रेष्ठ बल पानेके लिये तथा कन्याएँ और दत्त पानेके लिए प्रकृष्ट ज्ञान वाले मनसे (आपकी स्तुति करता हूँ) ॥ ५ ॥

यन्नूनं धीभिरंश्विना पितुर्योनां निपीदथः । यद्वा
सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

यत् । नूनम् । धीभिः । अश्विना । पितुः । योनां । निऽपीदथः ।

यत् । वा । सुम्नेभिः । उक्थ्या ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाके षट्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

जो आप बुद्धियोंसे अपने पालकके कारणमें बैठते हैं और जो सुखमद कारणोंसे प्रशंसनीय होते हैं (इस कारण मैं आपकी स्तुति करता हूँ) ॥ ६ ॥

नवम अनुवाकमें छियालीसवाँ सूक्त समाप्त (७५८)

“तं वां रथम्” इत्यस्य विनियोगः “आ नूनमश्विना युवम्”
[२०. १३६] इत्यत्र उक्तः ॥

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थे “मधुमतीरोपधीः” [२०. १४३. ८. ८] इति द्वे अर्चो परिधानीयाशस्त्रयाज्ये क्रमेण भवतः । तद्वत् उक्तं वैताने । मधुमतीरोपधीरिति परिधानीया । उत्तरा याज्या” इति [वै० ४. ३] ॥

“तं वां रथम्” इसका विनियोग “आ नूनमश्विना-युवम्” (२० । १३६) में कह दिया है ।

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थमें “मधुमतीरोपधीः” (२०।१४३।

८. ६) ये दो ऋचाएँ क्रमशः परिधानीया और शस्त्रयाज्या होती हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मधुमेतीरोपधीरिति परिधानीया उत्तरा याज्या” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तं वां रथं वयमुद्या हुमेव पृथुञ्जयंमश्विना संगतिं गोः ।

यः सूर्या वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् १

तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अथ । हुवेम । पृथुञ्जयम् । अश्विना ।

समुज्गतिम् । गोः ।

यः । सूर्याम् । वहति । बन्धुरायुः । गिर्वाहसम् । पुरुतमम् ।

वसूयुम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज आपके उस रथका आह्वान करते हैं, जो आपका रथ विशाल वेग वाला है, गौओंकी संगति करने वाला है जो ऊँचेनीचे स्थानमें जाने वाला आपका रथ सूर्याका वहन करता है, उस बाणीका वहन करने वाले पुरुतम वसुको प्राप्त कराने वाले रथ का मैं आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

युवं श्रियंमश्विना देवता तां दिवां नपाता वनथः

शचीभिः ।

युवोर्वपुंरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् कंकुहासो

रथं वाम् ॥ २ ॥

युवम् । श्रियम् । अश्विना । देवता । ताम् । दिवां । नपाता ।

.....

वनयः । शचीभिः ।

युवोः । वपुः । अभि । पृत्तः । सचन्ते । वहन्ति । यत् । ककु-
हासः । रथे । वाम् ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप लक्ष्मीके अधिष्ठात्री देवता हैं और उसको धुलोकसे नहीं गिरने देते हैं और आप शक्तियोंसे उस का सेवन करते हैं, अन्न आपके शरीरसे संयुक्त होते हैं और जो विशाल (घोड़े) रथमें आपका वहन करते हैं, वह आपके शरीरसे संयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्केः ।
ऋतस्य वा वनुपे पूर्वाय नमो येमानो अश्विना
ववर्तत् ॥ ३ ॥

कः । वाम् । अथ । करते । रातहव्यः । ऊतये । वा । सुतपे-
याय । वा । अर्केः ।

ऋतस्य । वा । वनुपे । पूर्वाय । नमः । येमानः । अश्विना ।
आ । ववर्तत् ॥ ३ ॥

आज कौन हवि देने वाला आपकी सेवा कर रहा है, और कोन रक्षा पानेके लिये और अभिषुत सोमका पान करनेके लिये मन्त्रोंसे आपका आह्वान कर रहा है, यज्ञका सेवन करने वाले (इन्द्रके लिये) प्रणाम है, और जो उपरम करता हुआ इन अश्विनीकुमारोंको लाता है उसके लिये प्रणामकरता है ॥ ३ ॥

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।

पिनाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधंधो रत्नं विधत्ते जनाय ४
 हिरण्ययेन । सुहभू इति सुहभू । रथेन । इमम् । यज्ञम् । ना-
 सत्या । उप । यातम् ।

पिनाथः । इत् । मधुनः । सोम्यस्य । दधयः । रत्नम् । विधत्ते ।
 जनाय ॥ ४ ॥

हे महान् रूपमें प्रकट होने वाले अश्विनीकुमारों ! आप हित
 रमणीय रथसे इस यज्ञमें आइये । मधुर सोमके अंशको पीजिये
 और सेवा करने वाले मनुष्यके लिये रत्न दीजिये ॥ ४ ॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन
 सुवृता रथेन ।

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नामिः
 पूर्वा वाम् ॥ ५ ॥

आ । नः । यातम् । दिवः । अच्छ । पृथिव्याः । हिरण्ययेन ।
 सुवृता । रथेन ।

मा । नः । यातम् । दिवः । अच्छ । पृथिव्याः । हिरण्ययेन ।
 सुवृता । रथेन ।

हे अश्विनीकुमारों ! तुम हित रमणीय सुवृत् रथके द्वारा पृ-
 थ्वीलोकसे पृथिवीलोकके अभिमुख होकर आओ दूसरे पूजन करने
 वाले आपको वशमें न कर सकें मैं तुम दोनोंको पूर्व (नवीन)
 भवनकागिणी (स्तुति) प्रदान करता हूँ ॥ ५ ॥

(५८६) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादः

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दत्तां मिमांथामुभयेष्वस्मै ।
नरो यद् वामशिवना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमी-
ल्हासो अगमन् ॥ ६ ॥

नु । नः । रयिम् । पुरुवीरम् । बृहन्तम् । दत्तां । मिमांथाम् ।
उभयेषु । अस्मे इति ।

नरः । यत् । नाम् । अशिवना । स्तोमम् । आवन् । सधस्तुतिम् ।
आजमील्हासः । अगमन् ॥ ६ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इस यजमानके लिये दोनों लोकोंमें बहुतसे-वीर्यसे उत्पन्न होने वाले उन पुत्र पौत्र आदि-वीरोंसे सम्पन्न धनको दोनों लोकोंमें प्रदान करिये, हे अश्विनीकुमारों ! जो मनुष्य आपकी स्तुति करते हैं, वह स्तुतिके साथ ही आजमीढ़ होकर प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इहेह यद् वामसमना पृष्टे सेयमस्मे सुगतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युव-
द्रिक् ॥ ७ ॥

इहइह । यत् । वाम् । समना । पृष्टे । सा । इयम् । अस्मे इति ।
सुगतिः । वाजरत्ना ।

उरुष्यतम् । जरितारम् । युवम् । ह । श्रितः । कामः । नासत्या । युव-
द्रिक् ॥ ७ ॥

जिस प्रकार आप एकसे मन वाले हैं तिस प्रकार आप

को वाजरत्ना सुमतिसे-संयुक्त करिये, हे अश्विनीकुमारों । आप
इस स्तोताकी रक्षा करिये इसकी कामना आप पराही निर्भर है ७
मधुपतीरोपधीर्द्याव आपो मधुमन्तो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्येन चरेम ८
मधुमतीः । ओपधीः । द्यावः । आपः । मधुमत् । नः । भवतु ।
अन्तरिक्षम् ।

क्षेत्रस्य । पतिः । मधुमान् । नः । अस्तु । अरिष्यन्तः । अनु ।
एनम् । चरेम ॥ ८ ॥

ओपधिये हमारे लिये मधुपती होवें, धूलोक हमारे लिये मधु-
मप हो, अन्तरिक्ष हमारे लिये मधुमप हो, क्षेत्रका पति हमारे
लिये मधुमप हो और इसके पीछे हम नष्ट न होते हुए विचरण करें
पुनार्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः

पृथिव्याः ।

सहस्रं शंसां उत ये गविंष्टौ सर्वा इत् तां उप याता
पिवंथ्ये ॥ ९ ॥

सहस्रम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वाम् । वृषभः । दिवः ।

रजसः । पृथिव्याः ।

सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोऽष्टौ । सर्वा । इत् । तान् ।

पिवन्ति । यात । पिवंथ्ये ॥ ९ ॥

नवमेनुवाके सप्तवत्वारिंशं सूक्तम् ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

(५८८) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

आपकी स्तुतिरूप किया हुआ 'कर्म' घलोक और ५ पर (फलकी) वर्ण करने वाला है, गोपूजामें जो सैंकड़ों हैं सोमपान करके उन सबको आप प्राप्त होते हैं अर्थात् पान करानेसे इन सब स्तोत्रोंके पाठका फल मिलता है ॥

नवम अनुवाकमें सैंतालीसवाँ सूक्तसोमोदं (१०५९)

नवम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका विंशकाण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र

शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल

भाषानुवाद सहित

समाप्त.

॥ विंशः काण्डः समाप्तः ॥

॥ अथर्ववेदसंहिता पूर्णा ॥



मिलने का पता—

सनातनधर्म-यन्त्रालय,

मुराद